परिश्चम की कला—

यूरोप की चित्रकला

लेखक—
डा० गिर्राज किशोर अग्रवाल
एम ए, पी-एच डी.

अशोक प्रकाशन मन्दिर
अलीगढ (उ० प्र०)

प्रकाशक :
अशोक प्रकाशन मन्दिर
सराय दुबे, अलीगढ़।

द्वितीय संस्करण
मूल्य—बीस रुपये

मुद्रक—
रवि प्रिंटर्स,
प्रीमियर नगर, अलीगढ़।

भूमिका

यूरोपीय चित्रकला के इतिहास पर हिन्दी पुस्तको के अभाव ने ही प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन की प्रेरणा दी है। विश्व-विद्यालय स्तर पर चित्रकला के अध्ययन-अध्यापन में जो कठिनाइयां व्यक्तिगत रूप में अनुभव होती रही हैं उनके समाधान को दृष्टिगत रखते हुए यह पुस्तक लिखी गयी है। आशा है इससे छात्र एवं साधारण पाठक, दोनो वर्गों का ही लाभ होगा।

पुस्तक को सीमित कलेवर देने के हेतु एक निश्चित परिधि मे रहकर ही किसी देश, युग तथा कलाकार का परिचय दिया गया है। आधुनिक कला पर पृथक् से एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की आवश्यकता है अतः प्रस्तुत पुस्तक में प्रभाववाद से पूर्व तक की यूरोपीय कला का विवेचन ही पाठको को उपलब्ध होगा। यूरोपीय कला की पृष्ठभूमि में मिस्र की कला की भी पर्याप्त भूमिका रही है, अतः एक अध्याय में मिस्री चित्रकला पर भी विचार किया गया है।

यूरोपीय नामों के उच्चारण में स्वय यूरोप मे ही बहुत भेद दिखायी देता है, फिर भारत मे उनके स्वरूप के विषय में तो कुछ कहना ही व्यर्थ है। मैंने जो उच्चारण दिये हैं उनसे पाठको का पर्याप्त मतभेद हो सकता है अतः हिन्दी नामो के आगे कोष्ठों मे अँग्रेजी नाम भी दे दिये गये हैं।

पुस्तक के प्रणयन में प्रयोग की गयी सभी कृतियो के अधिकारियो के प्रति लेखक

—गिर्राज किशोर अग्रवाल

विषयानुक्रम

यूरोपीय पाषाण-कालीन चित्रकला

कला का आरम्भ मानव जाति के आदि-युगीन इतिहास से जुड़ा हुआ है। प्रागैतिहासिक मनुष्य द्वारा निर्मित कलाकृतियों के अवशेष आज भी विश्व के अनेक भागों में सुरक्षित हैं। आखेटक मानव द्वारा सर्जित ये शिला-चित्र तत्कालीन कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

यूरोप के निवासी अपनी कला-परम्पराओं को प्राचीन यूनान आदि से सम्बन्धित करके पौराणिक आधार देते रहे हैं, अतः उन्हें अपने ही महाद्वीप की प्रागैतिहासिक चित्रकला के साथ अपनी सभ्यता की संगति बिठाने में कठिनाई प्रतीत होती है। इसके विपरीत अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि महाद्वीपों की सभ्यताओं के साथ वहाँ की प्रागैतिहासिक कला का सम्बन्ध सरलता से बन जाता है। यूरोपीय सभ्यता के परिप्रेक्ष्य में साधारणतः यूरोप की प्रागैतिहासिक चित्रकला का अध्ययन नहीं किया जाता।[1]

प्रागैतिहासिक शिला-चित्रों का अध्ययन जहाँ विचित्र कल्पना एवं आकर्षणमय है वहाँ उसमें अनेक सावधानियों की भी आवश्यकता है। पाषाणयुगीन मानव-सभ्यता के इतिहास का अत्यन्त समृद्ध, यथार्थतापूर्ण एवं रंगीन विवरण ये शिला-चित्र प्रस्तुत करते हैं। वस्तुतः इसी से ये इतने आकर्षक हैं, क्योंकि इनके अतिरिक्त तत्कालीन इतिहास को जानने का एकमात्र रूक्ष साधन अश्मास्त्र ही है। अन्य समस्त सामग्री एवं उपकरण समय के विशाल अन्तराल में नष्ट हो चुके हैं। इनके अध्ययन में सावधानी की आवश्यकता इसलिये है कि प्रागैतिहासिक मानव ने इन चित्राकृतियों के माध्यम से वाह्य जगत के प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं को व्यक्त किया है अतः उनके विश्लेषण में त्रुटि की सम्भावना बनी रहती है।[2]

"आदिम संस्कृति" शब्द का अर्थ भी स्पष्टतः जान लेना चाहिये। एक ओर इस शब्द का प्रयोग प्रागैतिहासिक आदिम संस्कृति के हेतु किया जाता है जो बहुत सशक्त, जीवन्त और विकासमान थी। दूसरी ओर यह शब्द उन अनेक आदिम संस्कृतियों के हेतु प्रचलित है जो आज भी जीवित हैं। ये प्रायः निर्जीव हो चली हैं और इनका विकास रुक गया है तथा ये ह्रास की ओर बढ़ रही हैं। ये बहुत अधिक सीमित और संकुचित भी हो गई हैं। इनका आज की सभ्यताओं पर कोई प्रभाव नहीं है।

प्रागैतिहासिक कला जिस आखेटक संस्कृति की उपज है उसका विकास तीन दिशाओं में हुआ, ऐसा विश्वास किया जाता है। सुदूर एवं धुँधले अतीत में आदिम मानव जिस अवस्था में रहा उसे प्रारम्भिक आखेटक संस्कृति कह सकते हैं। इसके परवर्ती विकास का प्रथम चरण भूमि को जोतने-बोने, दूसरा पशु-पालन तथा तीसरा विकसित आखेटक संस्कृति (Advanced hunter culture) की ओर उन्मुख हुआ। अपने प्रारम्भिक रूप की भाँति यह तृतीय विकसित संस्कृति भी संग्रहपरक एवं अनुत्पादक थी, तथापि इस युग के आखेटक अपने कार्य में निष्णात थे। यह तीसरा चरण स्वयं में ही समाप्त हो गया क्योंकि शेष दो चरणों ने मिलकर जिस कृषक-सभ्यता का विकास किया उसकी तुलना में वह ठहर न सका। समस्त सभ्यताओं में कृषक-जीवन की ही चरम परिणति हुई है। प्रस्तुत अध्याय में इस तृतीय चरण की कला का ही विवेचन किया जायगा।

---

1 'The legacy of the European Stone Age peoples does not easily fit into the concept of Western culture." —H G Bandi The Art of Stone Age, P 11

2 'Stone Age rock-pictures were never "art for art's sake" but always an expression of certain attitudes of mind, and this readily leads to an excessively speculative interpretation' —Ibid, P. 11.

दैनिक जीवन मे प्रयुक्त उपकरणो की दृष्टि से इसे पाषाण काल भी कहा जाता है। आरम्भ के १० लाख वर्ष ई. पू. से ५ लाख वर्ष ई० पू० के युग को छोडकर शेष पाषाण युग को तीन भागो मे विभाजित किया जाता है —

१ पुरा पाषाण युग (५ लाख वर्ष ई० पू० से २० हजार वर्ष ई० पू० तक)। इसी युग में तृतीय तथा चतुर्थ हिम-युग भी अवतरित हुए थे।

२ मध्य पाषाण युग (२० हजार वर्ष ई० पू० से १० हजार वर्ष ई० पू० तक)

३ नव पाषाण युग (१० हजार वर्ष ई० पू० से ३ हजार वर्ष ई० पू० तक)

नव पाषाण युग के मनुष्य ने क्रमश ताम्र, कास्य एव लौह का पता लगाया जिसके कारण नव पाषाण युग के तीन भेद, ताम्र युग, कास्य युग एव लौह युग नाम से किये जाते हैं।

विकसित आखेटक सस्कृति चतुर्थ हिमयुग के अन्तिम चरण मे लगभग पचास हजार वर्ष पूर्व आरम्भ हुई थी। अपनी मरणासन्न अवस्था मे इसके कुछ चिन्ह आज भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं जैसे दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, सहारा, स्पेन तथा फ्रास में। इस युग के मानव का समस्त आर्थिक, सामाजिक एव धार्मिक अस्तित्व आखेट के चारो ओर ही परिक्रमा करता रहा है। मनुष्य पशु के साथ अपने सघर्ष के विषय मे ही सोचता रहा है। इससे मानव एव पशु मे एक यथार्थ सम्बन्ध भावना जागृत हुई। मनुष्य और पशु दोनो एक ही सत्य के दो रूप समझे जाने लगे। इस सबसे अनुष्ठानपरक (ritualistic) कला का विकास हुआ। आज इस कला के माध्यम से ही हम तत्कालीन मानव के विषय मे कुछ जानने मे समर्थ है।

सबसे पहली मानव-सस्कृति अन्तिम हिमयुग के अन्तिम चरण मे प्रकट हुई थी कोई ३०,००० ई पू, और इसका चरम विकास दक्षिणी-पश्चिमी फ्रास तथा उत्तरी स्पेन की कला मे लगभग १२,००० ई पू में हुआ था।

आखेटक सस्कृति की कला की सर्वप्रधान विशेषता पशु-चित्रण थी। कही-कही मानव आकृतियाँ भी अकित है, किन्तु उन्हें उतनी नैसर्गिकता से प्रस्तुत नही किया गया जितना पशु आकृतियो को किया गया है। मनुष्य का सारा ध्यान पशुओ पर केन्द्रित था जिन पर कि उसका जीवन निर्भर था, और इस समय तक मनुष्य मे पशुओ की अपेक्षा श्रेष्ठता की भावना उत्पन्न नही हुई थी।

यद्यपि प्रागैतिहासिक कला के अवशिष्ट चिन्ह प्रतिमाओ, पात्रो एव उपयोग के अन्य अनेक उपकरणो आदि के रूप मे भी उपलब्ध हैं तथापि प्रस्तुत विवेचन मे केवल शिला-चित्रो का ही आधार लिया गया है। शिला-चित्रो का निर्माण केवल प्रागैतिहासिक मानव ने ही नहीं किया, अन्य विकसित सभ्यताओ मे भी हुआ है और उनमे कही-कही प्रागैतिहासिक परम्पराओ के चिन्ह भी उपलब्ध हैं। यूरोप की पाषाण-कालीन चित्रकला का जिन क्षेत्रो मे विभाजन किया गया है उनका परिचय इस प्रकार है —

फ्रांको-कैंटाब्रियन क्षेत्र (Franco-Cantabrian Rock-Art)

गुफाओं की खोज—उत्तरी-स्पेन तथा दक्षिणी-पश्चिमी फ्रास की कलात्मक गुफाओ का पता उन्नीसवी शती के अन्त मे चला था। इन गुफाओ मे दीवारो तथा छतो पर अङ्कित चित्रो के रूप मे हिमयुग तक की प्राचीन सामग्री सुरक्षित है। इन चित्रो मे अङ्कित पशुओ का अस्तित्व अब समाप्त हो चुका हैं। इनके अतिरिक्त इनमे अनेक उत्कीर्ण चित्र तथा विचित्र सकेताक्षर बने हुए हैं। प्राचीन मैसोपोटामिया एव मिस्र की कला से अपना उद्भव समझने वाली यूरोपीय कला-प्रवृत्ति को इस अत्यन्त प्राचीन प्रागैतिहासिक कला की शोध से बड़ा आश्चर्य हुआ। फलत इसे प्रामाणिक मानने के मार्ग मे भी अनेक अवरोध आये। कोई पच्चीस वर्ष तक वाद-विवाद चलने के उपरान्त ही इस कला को प्रामाणिक स्वीकार किया गया।

१८६६ ई में अल्टामिरा गुहा के प्रवेश द्वारा का पता एक शिकारी को लगा जो उत्तरी स्पेन के सेन्तिलाना दे मार (Santillana del Mar) नामक ग्राम के निकट एक जगली चरागाह में लोमडियो का शिकार कर रहा था। दस वर्ष उपरान्त १८७६ ई में सातुओला (Sautuola, Marcelinode) नाम के एक स्थानीय व्यक्ति ने अल्टा-

मिरा मे उत्खनन आरम्भ किया । एक दिन वह अपनी पांच वर्ष की पुत्री मेरिया को भी वहाँ ले गया । गुफा के प्रवेश द्वार से कोई तीन गज भीतर उसकी पुत्री ने छत पर अङ्कित चित्र देखे और अपने पिता को दिखाये । सातुओला का विचार था कि इस गुफा मे प्रवेश करने वाला और इन चित्रो को देखने वाला वह प्रथम व्यक्ति है अत. इन चित्रो के किसी आधुनिक चित्रकार द्वारा निर्मित होने का प्रश्न ही नही है। सन् १८८० ई में लिस्बन नगर मे पुराविदो की समिति ने इन चित्रों को जाली घोषित कर दिया । सन् १८९५ ई. मे ई. रेवियर (E Reviere) ने डोर्डोन (Dordogne) की ला माउथ (La Mouthe) गुफा मे तथा १८९६ ई. मे एफ डाल्यू (F. Daleau) ने गिराड (Gironde) की पेअर-नान-पेअर (Pair-non-pair) गुफा मे अनेक चित्रो तथा उत्कीर्ण रेखाकृतियो का पता लगाया । इन शिला-चित्रो पर गुफा की उष्णता से उत्पन्न क्षार (calcarius deposits) की मोटी तह जमी होने के कारण केवल इन्हीं चित्रो को प्राचीन माना गया ।

बीसवी शती मे पुराविदो की नयी पीढी ने हिमयुग की शिला-चित्रकला को प्रामाणिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है । सितम्बर सन् १९०१ मे हेनरी ब्रुइल (Henri Breuil) तथा एल केपिटन (L Capitan), एव डी पीरानी (D Peyrony) ने ल ईजीज (Les Eyzies) के निकट चित्रो एव उत्कीर्ण रेखाकृतियो से युक्त ल कम्बारेली (Les Combarelles) नाम की एक अत्यन्त समृद्ध गुफा का पता चलाया । इसके केवल एक ही सप्ताह पश्चात् इन तीनो शोधकर्त्ताओ ने ल ईजीज (Les Eyzies) के निकट ही वेजेर (Vezere) घाटी मे फॉन्त-द-गॉम (Font-de-Gaum) नामक गुफा को खोज निकाला । इन गुफा-चित्रो पर जमी क्षार की मोटी तह ने इनकी प्राचीनता के सम्बन्ध मे सभी शकाओ को निर्मूल कर दिया । फॉन्त-द-गॉम (Font-de-Gaum) के इन चित्रो तथा अल्टामिरा (Altamira) मे प्राप्त चित्रों मे जो साम्य है उससे पुराविदो को अपना पिछला मत परिवर्तित करना पड़ा और इन चित्रो को निर्विवाद रूप से हिमयुग से सम्बन्धित मान लिया गया ।

सन् १९०३ मे पीरानी (Peyrony) को डोर्डोन (Dordoge) क्षेत्र के वर्नीफाल (Bernifal) तथा तीजात (Teyjat) नामक स्थानो पर भी कुछ उत्कीर्ण रेखाचित्र प्राप्त हुए । सन् १९०६ मे सर्वाधिक पाषाणकालीन चित्र उपलब्ध हुए । इस वर्ष अल-कैसिल्लो (El Coslillo), कोवालानास (Covalanas), ला हाजा (La Haza), पैरीनीज (Pyrenees) में गरगास (Gargas) व नियो (Niaux) आदि गुफाओ मे प्रसिद्ध एव महत्वपूर्ण चित्रो की खोज हुई । कुछ समयोपरान्त ल पोर्टेल (Le Portel) ला पसीगा (La Pasiega) आदि में भी चित्र मिले । १९१२ तथा १९१४ मे टक-द-ओडोबर्ट (Tuc-d' Audoubert) एव त्राय फ्रेअर्स (Trois Freres) मे चित्र उपलब्ध हुए । १९४० मे लास्को (Lascaux) का पता चला । १९५६ ई० मे रूफिनेक (Rouffignac, Dordogne) की गुफाएँ प्रकाश मे आयी । इन सभी गुफाओ मे अकित चित्र यथेष्ट सतर्कता के पश्चात् हिमयुग से सम्बन्धित मान लिये गये ।

यह समस्त फ्राको-केण्टाब्रिअन (Franco-Cantabrian) कला फ्रास एवं स्पेन के कुछ निश्चित क्षेत्र से सम्बन्धित है । कतिपय अपवादो को छोडकर हिमयुग की यह समस्त कला प्राय· तीन क्षेत्रो से सम्बन्धित है —(१) दक्षिणी-पश्चिमी फ्रास : डोर्डोन (Dordogne) तथा उसका निकटवर्ती क्षेत्र, (२) दक्षिणी फ्रास का पेरीनियन (Pyrenean) क्षेत्र तथा (३) उत्तरी स्पेन का केण्टाब्रिअन (Cantabrian) क्षेत्र । कुछ गुफाएँ मध्य स्पेन, दक्षिणी इटली, सिसली तथा एजेडियन (Aegadian) द्वीप आदि मे है । कुछ चित्र बेल्जियम, जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया एव इग्लैंड मे भी मिले हैं किन्तु इनकी तिथियाँ निश्चित नही हो पायी हैं ।

फ्रांको केण्टाब्रिअन क्षेत्र की गुफाओ मे रगीन अथवा उत्कीर्ण चित्रो की रचना भित्तियो पर ही हुई है । इन भित्तियों में प्राय चूने वाला श्वेत पत्थर ही उपलब्ध हुआ है । कुछ स्थानो पर अन्य प्रकार के पत्थर की गुफाएँ भी हैं । इतने दिन तक ये चित्र किस प्रकार सुरक्षित रहे और किन-किन प्रभावो के सम्पर्क मे आये यह भी ध्यान देने योग्य बात है । चूना-पत्थर की शिलाओ द्वारा निर्मित इन गुफाओ मे पानी अथवा सीलन के कारण चित्रो की ऊपरी

सतह पर एक प्रकार का क्षार जमा हो गया है। कहीं-कहीं इस क्षार की सतह बहुत मोटी भी है जिससे उसके आर-पार चित्र दिखायी नहीं देते। किन्तु इससे चित्रों की रक्षा भी हुई है। लास्को (Lascaux) में जो गुफा चित्र हैं वे हिम युग में ही उस समय तक गुफा की दीवार पर जमा हुई हल्की एवं चमकदार क्षारीय सतह पर चित्रित हैं। इस प्रकार प्रागैतिहासिक चित्र दोनों ही प्रकार की परिस्थितियों में निर्मित हुए हैं।

इन गुफाओं की दीवारों में स्थान-स्थान पर काई तथा अनेक प्रकार के छोटे-छोटे पौधे एवं घास भी उत्पन्न हो गयी है। इसने चित्रों को बहुत नष्ट किया है। सूखी दीवारों में आक्सीजन की प्रतिक्रिया निरन्तर होती रहती है इसके कारण गुफाओं की दीवारों का पत्थर शनै शनै गहरे रंग का होता गया है। इसके कारण भी चित्र सरलता से दिखायी नहीं देते।

इन सभी पदार्थों का चित्रों की प्राचीनता का अनुमान लगाने में बहुत महत्व भी है। कहीं-कहीं गुफाओं में पानी भर जाने अथवा शीतलता के कारण इन चित्रों पर क्षार की मोटी तह जम जाने से भी इन चित्रों की प्राचीनता सिद्ध होती है। इन चित्रों में जिन पशुओं का अंकन है उनकी जातियाँ अब लुप्त हो चुकी हैं और यूरोप भर में कहीं नहीं मिलती। बारहसिंगा (रेनडीअर), हाथी, (मैमथ), गैंडा (रीनोसेरोज) कस्तूरी-वृषभ (Musk-Ox), महिष (बाइसन) तथा पश्चिमी एशिया में मिलने वाला सैगा हरिण आदि इसी प्रकार के जीव हैं जो फ्राको-केण्टाब्रिअन क्षेत्र में निश्चित रूप से हिम युग के अन्तिम चरणों में रहते थे अत इन्हें अंकित करने वाली कला भी उसी युग की मानी जानी चाहिये, अर्थात इनका आरम्भ अन्तिम हिम युग में माना जाना चाहिये जिसकी समाप्ति लगभग दस हजार वर्ष ई० पू० हुई थी। इन गुफाओं में तत्कालीन अथवा परवर्ती युग के उपकरण एवं इन चित्रों की सतह पर पुन. बने हुए चित्र भी इनके काल-निर्धारण में बहुत सहायक हैं। आदिम मनुष्य ने गुफाओं के अतिरिक्त विशाल चट्टानों तथा दैनिक उपयोग के छोटे-बड़े अनेक उपकरणों पर जो चित्र आदि अंकित किये हैं उनसे हिमयुगीन मानव की उर्वर कला-सृजन प्रतिभा का प्रमाण उपलब्ध होता है। प्राय. सींग, हड्डी, शिला आदि पर उभरी हुई अथवा गड्ढेदार नक्काशी की गयी है। लघु कला के क्षेत्र में कोरकर बनाई गयी पाषाण प्रतिमाएँ, मृण्मूर्तियाँ, हाथीदाँत के खिलौने आदि भी उपलब्ध हैं। भित्तियों पर अनेक आकृतियाँ एक-दूसरी के ऊपर बनी हैं। इनकी शैलियों में भी विभिन्नता है जिससे स्पष्टत पूर्ववर्ती एवं परवर्ती कला-शैलियों में भेद परिलक्षित होता है। एक नहीं, अनेक गुफाओं में इसी प्रकार के चित्र मिलते हैं। इन सबके गम्भीर अध्ययन के परिणाम-स्वरूप हिमयुग की कला प्रकाश में आयी है। इस क्षेत्र में सर्वाधिक कार्य ब्रुइल (Breuil) ने किया है।

ब्रुइल के अनुसार इस कला के दो प्रमुख युग रहे हैं —

(१) आरिग्नेशियन-पैरीगार्डियन तथा (२) सोल्यूट्रियन-मैग्डेलेनियन। पुरातत्व में ये चार पृथक् युग माने गये हैं किन्तु कला की दृष्टि से अंतिम हिमयुग के दो-दो वर्गों को एक साथ मिलाकर केवल दो भाग किये गये हैं।

(१) आरिग्नेशियन-पैरीगार्डियन युग—यूरोप के अन्तिम ग्लेशियेशन में उच्च पूर्वपाषाण युग (Upper-paleolithic Period) के चित्रों का आरम्भ कोई तीस हजार वर्ष ई० पू० से होता है। इस कला के प्राचीनतम उदाहरण मध्य आरिग्नेशियन युग में अंकित हाथों के चित्र हैं जो गरगास (Gargas), अल कैसिल्लो (El Castillo) तथा अन्य गुफाओं में लाल एवं काली बाह्य रेखाओं में बनाये गये हैं। इसी युग में भित्ति अथवा मिट्टी की सतह पर कई अँगुलियों अथवा छुरियों से एक साथ बहुत-सी रेखाओं का समूह चित्रित करने की चेष्टा की गयी है। इस अस्पष्ट स्थिति में से ही शनै शनै मनुष्य ने आकृति-चित्रण का विकास किया है। बहुत समय तक इस प्रकार के रेखा-जाल का अभ्यास करते हुए मनुष्य सरल पशु-आकृति के विकास में समर्थ हुआ। अँगुलियों से चित्रांकन के स्थान पर किसी ऐसे नुकीले एवं कठोर उपकरण का प्रयोग किया जाने लगा जिससे पत्थर की शिलाओं पर चित्र उत्कीर्ण किये जा सकें। सम्भवत यह चकमक पत्थर (Flint) था। अल्टामिरा (Altamira) तथा गरगास (Gargas) में इस प्रकार की आकृतियाँ उपलब्ध हुई हैं जिनमें मनुष्य ने रेखा-जंजाल में मुक्ति पाकर बड़ी सफाई से पतली-पतली

रेखाओ मे पशु-चित्र उत्कीर्ण किये हैं। इनमे केवल पशु-मुण्ड ही चित्रित हैं। तदुपरान्त किसी तूलिका जैसी वस्तु के द्वारा अंकित रंगीन पशु रेखा-चित्रो का विकास हुआ। प्राय लाल तथा पीले और कहीं-कहीं काले रंग के प्रयोग से निर्मित ऐसे चित्र कैसिल्लो (Castillo) तथा फोन्त-द-गॉम (Font-de-Gaume) मे उपलब्ध हुए हैं। चौडी वाह्य रेखाओ अथवा विन्दुओ द्वारा अंकित पशु रेखाकृतियाँ परवर्ती काल की हैं। कोवालानास (Covalanas), अल्टामिरा (Altamira) तथा अल कैसिल्लो (El Castillo) मे इस प्रकार की आकृतियाँ मिली है। अब तक चित्र की वाह्य-रेखाओ को ही रंगीन बनाया जाता था किन्तु अब पशु के शरीर मे भी रंग भरा जाने लगा। पहले केवल कुछ विशिष्ट भागो मे और फिर पूरे शरीर मे। लाल रंग के ऐसे चित्र अल्टामिरा तथा ल-पोर्टेल (Le-Portel) मे मिले हैं। फोन्त-द-गॉम (Font-de-Gaume) तथा लास्को (Lascaux) मे काले तथा सीपिया रंग के ऐसे चित्र अंकित हैं। दुरंगे चित्रो की उत्पत्ति यहीं से माननी चाहिये। लास्को मे अंकित लाल रंग के विशाल-पशु जिनके शिर काले तथा गहरे बादामी हैं, इसी युग की कृतियाँ है। पेरीगोर्डियन कला मे विकृत परिप्रेक्ष के उदाहरण-स्वरूप सींगो का अंकन सम्मुख मुद्रा मे तथा पशु का अंकन पार्श्व मुद्रा मे हुआ है। रंगीन चित्रो की भाँति उत्कीर्ण चित्रो का शिल्प भी विकसित हुआ। पहले गीली मिट्टी पर अँगुलियों से रेखाएँ खींची गयी किन्तु शीघ्र ही पशुओ की आकृतियाँ नैसर्गिक पद्धति (Naturalistic style) मे बनने लगी। पैर अब भी संकेतात्मक विधि से बनाये जाते थे। इनका अंकन कठोर होता था। किन्तु इन चित्रो मे वे समस्त तत्व मिल जाते हैं जिनके आधार पर आगे चलकर बडी सजीव पशु-आकृतियाँ उत्कीर्ण की गयी। ब्रुइल के अनुमान से अल्टामिरा, पेअर-नान-पेअर (Pair-non-pair) तथा ला ग्रेज (La greze, Dordonge) की उत्कीर्ण आकृतियो की ही भाँति अन्य स्थानो की जो आकृतियाँ पहले उथली और परवर्ती काल मे गहरी गड्ढेदार रेखाओ से अंकित की गयी हैं, वे पेरीगार्डियन युग (Perigordian period) की हैं। इन चित्रो के माध्यम से ही डोर्डोन (Dordogne) तथा शरेन्त (Charente) क्षेत्रो के स्थूल विविक्त रूपो (Bast reliefs) मे पाषाण युगीन कला ने संक्रमण किया है।

(२) सोल्यूट्रियन-मैग्डेलेनियन युग (Solutrian-Magdalenian Periods) २०,००० ई० पू० से १०,००० ई० पू० तक—अब तक उपलब्ध किसी भी चित्र को प्रामाणिक रूप से सोल्यूट्रियन (Solutrian) युग से सम्बद्ध नहीं किया जा सका है। आरम्भिक मेग्डेलेनियन (Magdalenian) युग के चित्र स्केच के समान काली रेखाओ मे अंकित हैं। अल्टामिरा (Altamira) की छतो पर काले रंग से अंकित चित्र (Black tectiforms) भी इसी वर्ग के है। विकास के परवर्ती चरण मे यह रेखा चौडी तथा अस्पष्ट हो जाती है, कुशलता पूर्वक सीमा-रेखा चित्र (Contour drawings) बनने लगते है, पशु के शरीर के कुछ भागो मे रंग भरा जाने लगता है, और पशु की त्वचा के रोम द्दढ तूलिका-स्पर्शों के द्वारा अंकित किये जाते है। नियो (Niaux), पेच-मर्ले (Pech-Merle) तथा ल-पोर्टेल (Le-Portel) के चित्र इस कला के अच्छे उदाहरण है। हिम युग की कला का चरम विकास इन बहुरंगे चित्रो मे हुआ है। अल्टामिरा की छतो मे बने लाल तथा बादामी रंगो से चित्रित तथा काले रंग की वाह्य रेखा वाली उत्कृष्ट पशु-आकृतियाँ उत्खचित होने के कारण अधिकाधिक प्राकृतिक-सी प्रतीत होती हैं। किन्तु लगता है कि मैग्डेलेनियन कलाकार अपनी प्रतिभा समाप्त कर चुका था क्योकि हिम युग की कला का अन्त अनुकृति-मूलक आकृतियो मे होता है। छोटे-छोटे रेखाचित्र अधिकाधिक शैलीगत वैशिष्ट्य एवं नियमो के बन्धन मे बँधते चले जाते हैं। यहाँ तक कि फ्रांको-कैण्टाब्रियन क्षेत्र मे इनकी रचना प्राय. विलुप्त हो जाती है।

सोल्यूट्रियन युग के मध्य एवं मेग्डेलेनियन युग के आरम्भ से ही विविक्त गढनशीलता (रिलीफ मोडलिंग) के प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं। यहाँ विकृत परिप्रेक्ष्य नहीं मिलता। चित्र प्राय. एक के ऊपर दूसरे भी अंकित हैं। इस युग के कलाकार ने मिट्टी के खिलौनो के रूप मे भी पशु आकृतियाँ बनायी है।

उपकरण तथा टेकनीक (Implements and technique)—शिला चित्रो की रचना मे प्रयुक्त उपकरणो

एव टेक्नीक का विचार करने से पूर्व गुफाओ मे प्रकाश की समस्या का विचार करना भी आवश्यक है। ये चित्र प्राय गुफाओ के प्रवेश द्वारो से बहुत दूर अँधेरे और भीतरी भागो मे अंकित हैं। गुफाओ के मार्ग अन्दर से बहुत टेढ़े-मेढ़े हैं। कुछ गुफाओ मे प्रवेश करने के हेतु प्रकाश एव रस्सी की भी आवश्यकता रहती है। कही-कही सीढी की भी आवश्यकता होती है। ला-माउथ (La-Mouthe, Dordogne) की गुफा मे एक कुप्पी मिली है जिसे गुफावासी मनुष्य का दीपक माना जा सकता है। सम्भवत इसमे चर्बी जलाई जाती होगी। कुछ ऐसी शिलायें भी मिली हैं जिनके एक सिरे पर कुछ गड्ढा बना है। सम्भवतः इसमे चर्बी भरकर बत्ती जलाई जाती होगी। सम्भवत मशालो का प्रयोग भी होता था क्योकि गुफाओ मे कोयले के अवशेष मिले है।

हिमयुग की कला मे उपकरणो एव टेक्नीक की विविधता उपलब्ध होती है। प्राय किसी गीले अनुलेप से ही चित्रांकन किया जाता था यद्यपि यदा-कदा सूखी वर्तिका द्वारा अंकित चित्र भी उपलब्ध हुए है। निम्न पूर्व-पाषाण युग (Lower paleolithic period) के अन्तिम चरण की कुछ चित्रण-सामग्री भी उपलब्ध हुई है। इससे यह निष्कर्ष निकला है कि हिम युगीन चित्रकार मिट्टी के माध्यम से कई रग निर्मित करता था। ये प्राय बादामी अथवा लाली लिये हुए पीले से लेकर लाल एव बादामी रग की वर्ण-शृ खला मे थे। लाल खडिया का भी प्रयोग होता था। मैंगनीज तथा कोयले से वह काले रग का निर्माण करता था। सम्भवत श्वेत रग का कभी-भी प्रयोग नही हुआ। हिम-युगीन चित्रो मे नीले तथा हरे रगो का एकान्त अभाव है। अल्टामिरा मे बैंजनी जैसे रग से भी चित्रण हुआ है। गेरू के टुकडो की नुकीली बत्तियाँ मिली हैं जिन्हे सम्भवत पेस्टल रगो की भाँति प्रयुक्त किया जाता होगा। गीले रग बनाने के हेतु रगो के महीन चूर्ण मे कोई चर्बी आदि मिलाई जाती थी। रक्त तथा अण्डे की सफेदी (Albumen) का प्रयोग बाध्य पदार्थ (Binders) के रूप मे हुआ होगा। इस रग को गुफा की दीवार पर लगाया गया होगा। अगुलियो, टहनियो अथवा पखो से तूलिका का कार्य लिया गया होगा। कभी-कभी रग को मुख मे भर कर भी स्प्रे की भाँति फूंका जाता था जिससे भित्ति पर छोटे-छोटे बिन्दु बन जाते थे। आस्ट्रेलिया के आदि-वासियो मे यह विधि आज भी प्रचलित है।

उत्कीर्ण चित्रो के हेतु चकमक पत्थर (Flint) का प्रयोग किया जाता था। इन चित्रो के अनेक उदाहरण सर्वत्र उपलब्ध हुए हैं। जिन चित्रो की रेखाये बहुत गहरी खोदी गयी हैं, उनके हेतु अधिक कडे और मजबूत उप-करणो का प्रयोग हुआ होगा। पत्थर के इस प्रकार के उपकरण आरम्भिक मैग्डेलेनियन युग (Magdalenian Period) से सम्बन्धित डोर्दोन (Dordogne) नामक स्थान पर प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध हुए हैं।

हिम-युगीन कला की उत्पत्ति एव महत्व (Origin and Significance of Ice Age-Art)—उत्तर हिम युगीन कला का उद्भव आज हमारी जानकारी से पूर्णतः अछूता है और उसे ज्ञात कर पाना भी ज्ञान की वर्तमान स्थिति मे बडा दुष्कर है, अत इस विषय मे केवल दो-चार मोटी बातो का ही अनुमान लगाया जा सकता है। कला के विकास से पूर्व किन्ही दो जीवधारियो मे साम्य का अनुभव किया गया होगा जिसके आधार पर जीवधारियो की जाति-विषयक धारणाये बनी होगी। चित्रकला के विकास मे प्राचीनतम कला 'अभिनय' का भी विशेष सहयोग रहा होगा क्योकि आदिम मनुष्य अपने नृत्यो मे जीवित प्राणियो की अनुकृति करता होगा। इनमे जो मुखौटे पहने जाते थे उनका स्वतन्त्र महत्व बना होगा और उन्हे धारण करने वाला व्यक्ति विशेष यातुक शक्ति से सम्पन्न माना जाता होगा।

चित्रण की अन्य प्रेरणा आखेट से मिली होगी। आदिम मनुष्य भूमि पर पशुओ के पद-चिन्ह अंकित देखता होगा। इन्ही के अनुकरण पर उसने गुफाओ की दीवारो पर पहले अपने हाथ की छाप गीली मिट्टी मे हाथ भिगो कर अंकित की होगी। इस प्रकार कुतूहलवश अंकित आकृतियो से उसे चित्रांकन का अनुमान हुआ होगा। अँगुलियो से भी उसने अनेक टेढी-मेढी रेखाओ तथा प्रहेलिकादि आकृतियो की रचना की होगी। इन्ही मे

सहसा कोई पशु आकृति बन गई होगी अथवा उसे आभासित हुई होगी। चित्रकला की उत्पत्ति उच्च पुरा-पाषाण युग मे कोई तीस हजार वर्ष पूर्व हुई होगी। इस समय यूरोप मे अन्तिम हिम-युग चल रहा था। इसी समय यूरोप के इस भाग मे एक नयी मानव जाति (homo-sapiens) ने प्रवेश किया जो पुरानी मानव जाति से श्रेष्ठ थी। इसमे कला के विकास के हेतु पर्याप्त प्रतिभा थी।

अन्तिम हिम युग मे मनुष्य भयकर और भीमकाय वन्य पशुओ से घिरा हुआ था। इनमे हाथी (मैमथ), गैडा, महिष, वृषभ, जंगली अश्व, कस्तूरी वृषभ, बारहसिंघा, रीछ, चीता और सिंह प्रमुख थे। अपने दैनिक सकट-पूर्ण जीवन में उसके मन पर इस वातावरण का बडा व्यापक और स्थायी प्रभाव पडा, इसके साथ ही पशुओ के सान्निध्य मे रहने के कारण उसे पशु-स्वभाव की निकट से जानकारी प्राप्त हुई जिसके आधार पर वह उनकी जीवन्त आकृतियाँ चित्रित कर सका। फ्रास तथा स्पेन की भित्ति चित्रकला केवल कुछ व्यक्तियो की प्रेरणा के आधार पर ही विकसित नही हुई। कला का लक्ष्य केवल कला ही नही था यद्यपि सौन्दर्य की प्रेरणा से भी इन्कार नही किया जा सकता। इन चित्रों की रचना के पीछे धार्मिक एव सामाजिक विश्वास तथा समूहगत हित ही प्रमुख रहे होगे। परवर्ती युगो मे भी ये ही प्रेरणायें मिलती हैं। हिम-युग की कला आखेटक मानव के सामाजिक एव धार्मिक ढाँचे की ही विशद अभिव्यक्ति है। उर्वरता तथा मृत्यु सम्बन्धी उत्सवों का समस्त आखेटक सभ्यताओ मे महत्व-पूर्ण स्थान है। इनमे पशु आकृतियों का प्रचुर प्रयोग होता है। चित्रो के गुफाओ के भीतरी एव अँधेरे स्थानो में बने होने का केवल यही स्पष्टीकरण दिया जा सकता है। एक ही स्थान पर एक के ऊपर दूसरी पशु आकृति अकित करके हिम युगीन आखेटक मानव वन के सीमित क्षेत्र मे पशुओ की प्रचुरता एव आखेट मे सफलता की कामना करता था।

पाषाण युगीन आखेटक मानव-समूह मे जो कलाकार होते थे वे ही ओझा होते थे और उन्ही को यातुक क्रियाएँ एव अनुष्ठानादि सम्पन्न करने का अधिकार था।

छ. प्रमुख गुफाओ का वर्णन.—

(१) अल्टामिरा (Altamira), (२) फोन्त-द-गॉम (Font-de-Gaume), (३) ल कम्बारेली (Les Combaralles), (४) लास्को (Lascaux), (५) नियो (Niaux) तथा (६) त्राय फ्रेअर्स (Trois Freres)

इन गुफाओ मे फ्राको-केन्टाब्रियन क्षेत्र का सर्वोत्कृष्ट शिल्प उपलब्ध है। फ्रांस, स्पेन तथा इटली की शेष गुफाओ का वर्णन सक्षिप्त रूप मे किया जायगा।

(१) अल्टामिरा—प्रागैतिहासिक मानव द्वारा अकित सर्वप्रथम चित्र अल्टामिरा गुफा की गीली दीवार पर हाथ की अगुलियो द्वारा बनाई गई फीते के समान टेढी-मेढी रेखाएँ हैं। यह गुफा सेण्टेण्डर (Santander) से ३१ कि मी दूर उत्तरी स्पेन मे स्थित है। अल्टामिरा (तथा लास्को) की गुफाएँ सर्वोत्कृष्ट शिल्पका उदाहरण हैं। इसका पता कोई एक सौ वर्ष पूर्व चला था। चूने वाले पत्थर की अल्टामिरा प्राय तीन सौ गज मे फैली हुई है किन्तु चित्र केवल "कला वीथी" मे ही उपलब्ध हैं जो गुफा के प्रवेशद्वार के कोई तीस गज अन्दर है। गुफा की छत कही-कही ६-७ फुट ऊँची है अत छत पर अकित चित्रो को देखने के हेतु भूमि पर लेटना ठीक रहता है। यही कारण है कि इन्हें सर्वप्रथम मेरिया सौतुओला नामक एक बालिका ने देखा था। गुफा के अधिक भीतरी भागो मे लाल तथा काले रग से अन्य चित्र तथा विभिन्न युगो की उत्कीर्ण आकृतियाँ विभिन्न दीवारो पर प्राय क्रम-हीन अवस्था मे अकित हैं।

गुफा की छत पर अकित चित्र सर्वाधिक सुरक्षित हैं। यहाँ कोई २५ बहुरगे चित्र हैं जिनमे अधिकाश लालगेरू से तथा कुछ बादामी एव काले रग से चित्रित हैं। पशु प्राय वास्तविक आकारो मे तथा कोई पन्द्रह गज के विस्तार मे चित्रित हैं। प्राय: महिष (बाइसन) ही चित्रित हैं और इनके सीमारेख (Contours) कही-कही उत्कीर्ण कर दिये गये हैं जिनसे आकृतियो मे विशेष उभार आ गया है। किंचित् गढनशीलता-युक्त धरातल के द्वारा इसके बीच-बीच मे अन्य पशु भी अकित हैं जिनकी सीमा-रेखाएँ काले रग से बनाई गयी हैं। कही-कही ये प्राचीन चित्रो

के ऊपर भी अंकित है। छत पर अनेक चिन्ह भी हैं जिनमे से कुछ गदा-मुग्दर आदि आयुधो की भाँति है और कुछ नसेनी के समान (Scalariform) हैं। पशु आकृतियो की पंक्ति-(भद्रिका, Frieze) के दायी ओर अनेक अपूर्ण रंगीन आकृतिया है। यही कुछ प्राचीनतम चित्रो के अश है जिनमे लाल रग द्वारा अकित अति प्राचीन पशु, विन्दु-समूह एवम् हाथो की आकृतियाँ बनी है।

इन रगीन चित्रो का टेक्नीक बहुत विकसित है। प्राय पीले तथा लाल गेरू एव काले रगो का प्रयोग हुआ है जिनसे पीले, लाल एव बादामी आदि विभिन्न रगो का निर्माण किया गया है। रगो की शलाकाएँ भी यहाँ उपलब्ध हुई हैं। चित्रो की रचना मे सर्व प्रथम काले रग से महीन बाह्य रेखा खीच ली जाती थी। स्थान-स्थान पर रग भरे जाते थे और कही-कही गठनशीलता भी उत्पन्न की जाती थी। चित्र की समाप्ति के पूर्व नेत्र, सीग, नथुने तथा खुर आदि को कड़े पत्थर की छेनी से कुछ उभार दिया जाता था। कही-कही इससे सीमारेखा को मोटी करने का काम भी लिया जाता था। रगो का प्रभाव सामजस्यपूर्ण तथा कोमलता-युक्त करने के हेतु चित्रो को रग भरने के उपरान्त धो देते अथवा कही-कही खुरच भी देते थे। इन सरलतम विधियो से हिम-युगीन कलाकार अद्भुत् गठनशीलता, छाया-प्रकाश तथा वर्ण-वैपरीत्य के प्रभाव उत्पन्न कर देता था। उसने पशुओ को उनकी आदतो के अनुकूल मुद्राओ मे ही अकित किया है। यहाँ कुछ महिष अपने वास्तविक आकारो मे सीधे खड़े हैं, भूमि पर पड़े हैं अथवा पूर्ण वेग से कुलाचे भर रहे है या चुपचाप धीरे-से खिसक रहे हैं। किन्तु कलाकार केवल यही नही रुका। उसने गुफाकी छत के खुरदरे स्थानो, उभारो, गढ्ढो अथवा दरारो आदि का इतने स्वाभाविक ढग से अपनी आकृतियो मे समावेश कर लिया है कि उसके चित्र अधिकाधिक यथार्थतापूर्ण हो गये हैं। इससे इन आकृतियो मे पर्याप्त शक्ति भी उत्पन्न हो गयी है। अल्टामिरा मे प्राय महिष ही अकित हैं। कुछ चित्रो मे जगली अश्व, हिरनी, बारहसिंघा, लम्बे सीग वाला जगली बकरा तथा जगली सूअर भी अकित हैं। यदा-कदा जगली वृषभ, और दुर्लभ रूप मे भेड़िये तथा लम्बे कानो वाला एल्क नामक हिरण भी चित्रित है। सभी पशु प्राकृतिक मुद्राओ मे बनाये गये हैं, बहुत परिश्रम तथा सावधानी से इनका अकन हुआ है। बाइसनो का आकार प्राय ४ फुट ६ इन्च से लेकर ६ फुट तक हैं। साँभर हिरनी की आकृति ७ फुट ४ इन्च लम्बी है। (फलक १-क)

अल्टामिरा मे दृश्यात्मक सयोजनो का अभाव है। प्राय सम्पूर्ण फ्राको-केण्टाब्रियन कला मे ही सुयोजित दृश्य नही मिलते। गुफाओ की छतो मे अकित प्रत्येक पशु का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। यद्यपि कही-कही वे समूहो मे भी अकित हैं किन्तु फिर भी उनमे कोई दृश्यात्मक सम्बन्ध नही है।

अल्टामिरा की 'चित्र-वीथी' मे आकृतियाँ एक-दूसरे पर अकित बहुत कम ही हैं। वास्तव मे जो रगीन आकृतियाँ हैं वे ही सबसे बाद के युग मे बनी हैं। अनेक चित्र प्राचीन चित्रो के ऊपरी सिरे पर अकित हैं और उन पर कोई दूसरा चित्र नही बनाया गया है। कघी जैसे कुछ चिन्ह विभिन्न रगो मे जो सम्भवत परवती हैं, आकृतियो के बीच-बीच मे अकित किये गये हैं। रगीन चित्र सम्भवत उच्च मैग्डेलेनियन युग मे निर्मित हुए जो प्राय १२,००० ई० पू० का माना जाता है। यहाँ अनेक उत्कृष्ट उत्कीर्ण चित्र भी हैं। रेखा-लाघव तथा प्रभाववादी रग-योजना अल्टामिरा की प्रधान विशेषता है।

(२) फोन्त द गॉम (Font-de-Gaume)—फ्रास की भूमि पर सर्वाधिक अलकृत फोन्त द गॉम गुफाएँ ब्यून घाटी (Beune valley) मे स्थित हैं। यहाँ कोई एक सौ गज लबा सँकरा मार्ग है जिसमे दोनो ओर कई छोटी-छोटी गैलरियाँ निकली हुई हैं। मुख्य गैलरी की ऊँचाई कही-कही २३ से २६ फुट तक है। प्रवेशद्वार के कोई सत्तर गज भीतर से चित्र आरम्भ होते हैं। यहाँ दिन का प्रकाश नही पहुँचता। प्रवेशद्वार के निकट अकित चित्र सम्भवत वातावरण के प्रभाव से नष्ट हो गये। यहाँ लगभग २०० चित्र हैं। महिष आकृतियो से युक्त बहुरङ्गी भद्रिका यहाँ की विशिष्ट कृति है जिस पर परवर्ती युग के छोटे-छोटे आकारो मे हाथी अकित हैं। छतो के चित्र बहुत क्षत-विक्षत हैं। महिष आकृतियाँ लाल तथा बादामी रगो मे अकित हैं तथा सीग, नेत्र, पृष्ठ-भाग एव थूथन को

उत्कीर्णन-विधि द्वारा उभार सहित दर्शाया गया है। यहाँ से सोलह फीट दूर तक एक सुन्दर भद्रिका अंकित है जो "छोटे बाइसनो के गृह" तक चली गई है। एक स्थान पर दो सुन्दर मृग एक-दूसरे को निहारते हुए चित्रित हैं। वे नर तथा मादा प्रतीत होते हैं। नर को मादा का मस्तक सूंघते हुए अंकित किया गया है। इस युगल चित्र को भी लाल तथा बादामी रङ्गो मे अङ्कित किया गया है तथा सीमा रेखा मे किंचित् उभार देने के हेतु शिला को उत्कीर्ण भी किया गया है। ये चित्र बायी भित्ति पर हैं। दाईं भित्ति पर भी बहुरंगे बाइसन-चित्र अङ्कित हैं। इनके मध्य मे छोटे-छोटे अश्व, एक भेडिया तथा एक बारहसिंघा अङ्कित हैं। "छोटे बाइसनो के गृह" मे छत एव दीवारें इसी प्रकार के चित्रो से अलकृत हैं। कुछ आकृतियाँ काले रङ्ग के एक ही वल मे अङ्कित हैं, कुछ बादामी रङ्ग मे हैं एव कुछ बहुरङ्गी हैं। काले तथा बादामी रङ्गो मे बनी वृषभाकृतियाँ अपेक्षाकृत प्राचीन प्रतीत होती हैं। इस गृह के पश्चात् मुख्य दीर्घा (गैलरी) एक सँकरे मार्ग मे परिवर्तित हो जाती है। उसकी भित्तियो पर विविध रङ्गीन चित्र बने हैं। इसमे बिल्ली की जाति का एक पशु अनेक अश्वो को देखते हुए चित्रित है। एक गैंडा (जो हिम युग का एक यूरोपीय विशिष्ट पशु प्रतीत होता है)—भी चित्रित है। ये सभी चित्र विशिष्ट माने जाते हैं। इस गैंडे का अङ्कन अन्यत्र बहुत कम हुआ है। ऊन के सदृश रोम वाला यह गैंडा लाल बाह्य रेखा द्वारा चित्रित किया गया है। सीमारेखा के पास लकीरो द्वारा बालो का आभास दिया गया है। सीग स्पष्ट दिखाई देते हैं। यह आकृति निश्चित रूप से आरिग्नेशियन युग की है। दायी ओर की दीवार पर काले बारहसिंघे का सुन्दर चित्र है। इसका शिर कठि-नाई से पहचान मे आता है। इसके पीछे एक बाइसन भी काले रङ्ग मे चित्रित है तथा उसका पिछला भाग उभरी हुई चट्टान के द्वारा निर्मित किया गया है। फोन्त-द-गाम मे छतो पर अनेक चिन्ह अङ्कित हैं, कुछ चित्रित तथा कुछ उत्कीर्ण। श्री ब्रूइल का विचार है कि ये प्रागैतिहासिक घरो के चित्र हैं जिनकी छतें सूखी घास द्वारा निर्मित की जाती थी।

फोन्त-द-गॉम के चित्र प्रागैतिहासिक युग के विभिन्न चरणो मे अङ्कित किये गये हैं जबकि न केवल मनुष्य, बल्कि पशु भी विभिन्न स्थानो को बदलते रहे और नये-नये क्षेत्रो मे बसते गये। इन चरणो मे वनस्पतियो मे भी परिवर्तन आये। फोन्त-द-गॉम मे चित्रो के (एक के ऊपर दूसरे) कई स्तर हैं जिनसे चित्रण की विभिन्न शैलियो का सरलतापूर्वक अनुमान लगाया जा सकता है और उन्हें कालानुक्रम मे स्थिर किया जा सकता है। उच्चपुरापाषाण युग में यहाँ की गुफाओ मे हिमयुगीन मानव प्राय निरन्तर प्रविष्ट होता रहा। यहाँ अंकित पशुओ को ब्रूइल ने निम्नांकित गणना मे रखा है—महिष चित्रो की सख्या ८०, जगली अश्व ४०, मैमथ २३, बारहसिंघे १७, जगली वृषभ ८; गैंडे २, एक या दो बिल्ली की जाति के पशु, एक भेडिया तथा एक रीछ। ब्रूइल के विचार से गैंडा, बिल्ली, रीछ तथा बकरा इस प्रदेश मे उच्च पुरापाषाण काल के प्रथम चतुर्थांश अथवा तृतीयाश मे रहते थे। वृषभ यहाँ के स्थायी निवासी नही रहे फिर भी वे आरम्भ से ही यहाँ घूमते रहे थे। बारहसिंघा यहाँ सदैव मिलता था। महिष (बाइसन) आरम्भ मे बहुत कम मिलता था। शनै-शनैः अन्त तक आते-आते वह सर्वोपरि हो गया। गैंडा, बिल्ली, गुहावासी रीछ तथा सम्भवत बकरा भी हिम युग का अन्त होते-होते या तो समाप्त हो गये या यहाँ से दूसरे क्षेत्रो मे चले गये। मैमथ बीच-बीच मे प्रकट होता रहा। हिम युग की कला के आरम्भ के समय अश्व प्रचुरता से उपलब्ध थे। ब्रूइल के विचार से यद्यपि कुछ चित्र आरिग्नेशियन—पैरीगार्डियन युग के हो सकते हैं तथापि अधिकाश चित्राकृतियाँ आरम्भिक एव मध्य मैग्डेलेनियन युग की है।

(३) ल कम्बारेली (Les Combarelles) की गुफाएँ—ये गुफाये फोन्त-द-गॉम से अधिक दूर नही हैं। ल ईजीज (Les Eyzies) से केवल कुछ मील दूर स्थित चूना-पत्थर की चट्टानों मे ये निर्मित हैं। ये गुफाएँ दो सँकरी गैलरियो मे हैं जिनकी छते नीची हैं। दोनो गैलरियाँ एक विशाल कमरे मे खुलती है। इनमे से बायी गैलरी मे महत्त्वपर्ण चित्र है। यह गुफा लगभग २५० गज भीतर तक पहाड़ी मे चली गयी है। किसी समय यहाँ पहाडी

नदी बहती थी जो हिमयुगीन मानव के यहाँ आगमन तक सूख गयी। यहाँ चित्र बहुत कम हैं। प्राय उत्कीर्ण चित्र ही अधिक है। गुफा मे प्रवेश करने के उपरान्त कोई ७५ गज तक सैकडो चित्र अकित हैं जिनमे रेखाओ के जजाल मे से कोई आकृति ढूँढ पाना सहज नही है। यहाँ बने चित्रो की जो पहचान बडी कठिनाई से हुई है उसके अनुसार ३०० में से २६१ चित्रो मे ११६ अश्व, ३७ महिष, १० रीछ, १४ बारहसिंघे, १३ हाथी, ६ बकरे, ७ पशुमुख, ५ हिरन, ३ हिरनी, ५ सिंह, ४ भेड़िये, एक लोमड़ी तथा ३६ मानवीय आकृतियाँ है। शेष एक सौ चित्रो का क्षत-विक्षत अवस्था मे सरक्षण किया जा रहा है किन्तु उन्हे पहचाना नही जा सका है। ध्यान से देखने पर इनमे बडी सुन्दर आकृतियाँ दिखायी देने लगती हैं। कुछ आकृतियाँ तो हिमयुग की सर्वश्रेष्ठ कला की श्रेणी मे रखी जा सकती हैं। प्रवाहपूर्ण शैली मे बने ये चित्र सम्भवत. मैग्डेलेनियन युग के हैं। कुछ चित्र प्राचीन भी हैं तथा आरिग्नेशियन युग से सम्बन्धित किये जाते हैं।

१—मैमथ, ल कम्बारेली गुफा

यहा ममथ चित्र उत्तम प्रकार के हैं। केवल अश्वो की ही चार जातियो का अङ्कन है। एक रीछ की आकृति बडी शक्तिशाली प्रतीत होती है। बिल्ली की जाति का एक पशु मांसलता का प्रभाव लिये हुए अङ्कित है। उसके नितम्ब, वक्ष, उरू, उदर एव पजे उभरे हुए हैं जो स्थूल रिलीफ मे अकित हैं। यह चीते की अपेक्षा सिंह से अधिक मिलता-जुलता है। इसी कारण इन पशुओ की ठीक-ठीक पहचान कठिन है।
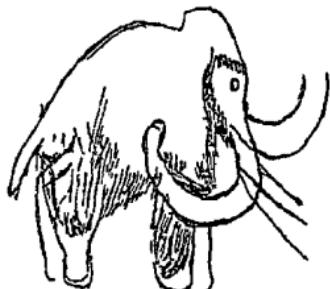
यहाँ पर अकित मानवाकृतियो का सास्कृतिक इतिहास की दृष्टि से बहुत महत्व है। यद्यपि ये अकुशल रचनाएँ हैं तथापि पशु-मुड धारण किये मनुष्यो का-सा आभास देती हैं। सर्वाधिक विशाल आकृति हाथी का शिर पहने मनुष्य की है। उसकी भुजाएँ बहुत लम्बी हैं जो शायद बाहर निकले दाँतो की प्रतीक हैं। एक अन्य स्थान पर एक पुरुष एक स्त्री के पीछे जा रहा है तथा एक दाढी युक्त पुरुष स्पष्ट पहचाना जा सकता है। जहाँ पशुओ को बहुत सावधानी से चित्रित किया गया है वहाँ मानवाकृति के प्रति प्रागैतिहासिक मनुष्य की इस लापरवाही का कोई कारण अवश्य रहा होगा। सम्भवतः यातुक भावनाओ और शत्रु के द्वारा अपनी आकृति के उपयोग के भय ने उसे इस ओर से उदासीन रखा होगा। प्राय सभी गुफाओ में मनुष्यो को पशु-मुण्ड पहने चित्रित किया गया है जिनका उपयोग वह आखेट अथवा उत्सवों मे करता था। ये आकृतियाँ पौराणिक पात्रो की प्रतीक एव यातुक क्रियाओं से सम्बन्धित मानी जाती थी। यहाँ कामचार-सम्बन्धी चित्र प्राय दुर्लभ हैं किन्तु यदि उनका अकन हुआ भी है तो वह उर्वरता के यातुक क्रिया-विधान के सन्दर्भ में ही हुआ है। ये चित्र इतने संकरे, सीलन युक्त तथा अँधेरे एव दुर्गम स्थान मे हैं कि यहाँ तत्कालीन मानव के निवास की कल्पना नही की जा सकती। सम्भवत कुछ विशिष्ट ओझा व्यक्ति यहाँ आकर गुप्त रूप से अभिचार कृत्य करते रहे होंगे और उसी के सन्दर्भ मे इन आकृतियों का चित्रण एव उत्कीर्णन किया गया होगा। आवास-गृहो के अलकरण के प्रयोजन के रूपो मे यहाँ की चित्रकला की गणना नहीं की जा सकती।

(४) लास्को (Lascaux) की गुफाएँ—इन गुफाओ की खोज १९४० ई० में हुई थी। समस्त फ्रांको-कैण्टाब्रियन क्षेत्र मे उपलब्ध गुहा-चित्रो मे ये सर्वश्रेष्ठ हैं। यहाँ के चित्र आश्चर्यजनक रूप से सुरक्षित भी हैं और इनमें बडी चमक है। हल्की तथा चमकदार पृष्ठभूमि पर लाल, पीले, बादामी एव काले रग के विभिन्न बल बड़े आकर्षक तथा उभर कर आये है। चूना पत्थर की चट्टानों मे निर्मित ये गुफाएँ मॉन्टिग्नेक (Montignac) ग्राम से एक मील दूर वेजेर (Vezere) घाटी में स्थित है। गुफा में प्रवेश करते ही चित्रवीथी के दर्शन होते हैं जो ३२

गज लम्बी और ११ गज चौडी है। दीवारों पर अनेक पशु अंकित हैं। दीवारें सभी स्थानो पर पूरी तरह चित्रो से सुसज्जित है। विशाल कक्ष के अन्त में एक छोटी वीथिका खुलती है। यह सीधी चलती हुई चट्टानो मे लीन हो जाती है। इसमे भी अनेक सुन्दर भित्ति-चित्र अंकित हैं। कक्ष की बायी ओर की दीवारो मे से एक और मार्ग अन्य गुफा की ओर जाता है जो कुछ ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ अनेक उत्कीर्ण चित्र हैं। इसके भीतर २३ फुट गहरी सुरग को पार करने के उपरान्त एक नीची वीथी मे भी हिम युग का एक वर्णनात्मक चित्र है जिसमे घायल महिष को वेधता हुआ भाला, सीगो से वार करने की मुद्रा मे पशु तथा उसके सामने एक मनुष्य भूमि पर औंधे मु ह गिरा हुआ अकित है। अग्रभूमि में एक ठू ठ पर बैठा हुआ पक्षी अकित है और बायी ओर एक गैंडा दूर जाता हुआ चित्रित किया गया है। समस्त संयोजन काले रग से चित्रित है और बाह्य रेखा किंचित् धुंधली है। इस दृश्य के अनेक अर्थ लगाये गये हैं। कोई इसे दुःखान्त कथानक का अकन बताता है, कोई इसे केवल आखेट-दृश्य और कोई यातुक भावना से युक्त चित्र बताता है।

यहाँ जो उत्तम चित्र बने हैं उनका उल्लेख अप्रासंगिक न होगा। "विशाल कक्ष" का एक नाम "जगली वृषभों (aurochs) वाला कक्ष" भी है। इसके चित्र बड़े मार्मिक हैं जिनमे तीन पूर्ण तथा एक अपूर्ण आकृतियाँ अंकित हैं। कोई अठारह फुट लम्बाई मे अकित ये चित्र हिमयुगीन कला का एक विशिष्ट पक्ष हैं। सीमाएँ काले रंग से चित्रित हैं और प्रवाहमयी रेखाओ के माध्यम से प्रस्तुत की गई हैं। शरीर का भीतरी भाग काले र ग से या काले बिन्दुओं से (विशेषकर उदर रेखा, थूथन एवं पैरो को) रगा गया है। सीगो का अकन त्रुटि पूर्ण है जो समस्त आरिग्नेशियन कला की विशेषता है। खुर भी इसी भाँति अकित हैं। इनकी आकृतियो के नीचे इनसे पहले गहरे लाल रंग द्वारा चित्रित जंगली वृषभो की आकृतियाँ बनी है। इसी वर्ग मे वह आकृति है जिसे सीग वाला अश्व (unicorn) कहा गया है। विशाल कक्ष की बाँयीं दीवार पर बनी यह प्रथम आकृति है। इसकी सीमा रेखाएँ बड़ी सपाटेदार हैं, शरीर एव पैर शक्तिशाली हैं। पशु की युवावस्था प्रतीत होती है। इसका रूप गैंडे अथवा वृषभ से बहुत साम्य रखता है किन्तु छोटा सा शिर जिसमे से बहुत लम्बे सीग निकले हैं, बड़े विचित्र हैं और इस पशु को यथार्थ जगत से निकालकर पौराणिक जैसा बना रहे हैं। वक्ष एव पृष्ठ भाग बिन्दुमय हैं तथा पू छ बहुत छोटी है। यह या तो कोई पौराणिक पशु है या पशु वेश मे मनुष्य है। इस प्रकार के यद्यपि कई विचित्र पशु फ्रांको-कैण्टाबरी क्षेत्र मे चित्रित हैं तथापि यह सबसे अधिक विचित्र है।

बायी ओर की दीवार पर चित्रित आमने-सामने देखते हुए दो वृषभो के मध्य अनेक छोटे हरिण चित्रित हैं जिनके सीग बहुत विशाल है। वे भी गहरे लाल रंग मे चित्रित होने के कारण अपेक्षाकृत प्राचीन समझे जाते हैं। यूनीकोर्न के निकट एक बड़ा अश्व भी चित्रित है। उसके शरीर मे लाल-बादामी रग भरा है किन्तु शिर, पीठ तथा पैर काले हैं। एक अन्य अश्व भी इसी प्रकार का है। इनके नीचे छोटे-छोटे कई अश्व कुदान भरते हुए चित्रित हैं। निकट की गैलरी मे जो काले टट्टू बने है वे इनसे मिलते-जुलते हैं। यहाँ एक गाय भी चित्रित है जिसके शरीर मे पहले भरे हुये लाल रग पर काला रग भर दिया गया है जिससे यह चित्र बहुरगा जैसा लगता है। यहाँ बड़े सुन्दर छोटे-छोटे अश्व भी गहरे लाल रग के मुख एव हल्के लाल रग के शरीर द्वारा चित्रित है। कुछ के शरीर पर रोम-राजि का आभास दिया गया है। लाल-बादामी रंग की गायें भी बनी हैं। बीच मे कहीं-कहीं पुरानी आकृतिया झलकती हैं और फीते के जाल के समान कुछ चिन्ह भी बने हैं। क्या ये जाल हैं अथवा क्रीडा के हेतु अकित चौपड जैसा कोई खेल है?

२—लाल तथा काले रगों में अंकित विशाल गाय (लास्को)

पीछे की गैलरी मे उत्कीर्ण चित्र हैं, यद्यपि रगो से निर्मित चित्र भी अनेक हैं। तैरते हुए हरिणो वाला चित्र बहुत प्रसिद्ध हुआ है जिनके केवल शिर एवम् ग्रीवा चित्रित हैं। सम्पूर्ण चित्र की लम्बाई १६ फुट ६ इन्च है। सामने वाली दीवार पर अनेक जगली अश्व एव दो सुन्दर महिष चित्रित हैं। ये पशु परस्पर पीठ मिलाये खडे हैं।

३—तैरते हुए हरिण (लास्को)

यहाँ एक हरिण का सुन्दर उत्कीर्ण चित्र है जिसमे इस पशु की शक्ति का अच्छा अकन हुआ है। एक अश्व एव एक सिंह के उत्कीर्ण चित्र भी उल्लेखनीय है। काले अश्व तथा बहुरगे जाल उत्कीर्णन विधि द्वारा अंकित हैं।

कलात्मक विशेषतायें—लास्को में अगुली एवं तूलिका द्वारा चित्रण करने के अतिरिक्त बारीक चूर्ण का बुक्का उडा कर गीली दीवार पर रग लगाने की विधि भी मिलती है। पशुओ की सीमायें (Contours) रेखाओ द्वारा न बनाकर इसी विधि से बनायी गयी हैं। हाथ की छाप लेकर दीवार पर छायाकृति बनाने मे भी इस विधि का उपयोग किया जाता रहा है। सीगो के परिप्रेक्ष्य के आधार पर ये चित्र परवर्ती आरिग्नेशियन एव पेरीगार्डियन युग के कहे जा सकते हैं। अन्य शैलीगत विशेषताओ से भी इसी की पुष्टि होती है। लास्को की गुफाएँ इस शैली की चरम विकसित स्थिति को प्रस्तुत करती हैं। उत्तम कारीगरी और यदा-कदा विशाल आकार इसके गुण हैं। टेक्नीक की विविधता से अनुमान होता है कि ये प्रतिभाशाली कलाकार अपनी सर्जन क्षमता की प्रेरणा से निरन्तर नवीन प्रयोग करते रहे थे। लास्को की कला महान है और अपने आप मे पूर्ण है।

(५) नियो (Niaux) की गुफायें—पैरीनीज घाटी की ओर उन्मुख यह विशाल गुफा निकटतम नगर तारास्कन-सुर-एरियेज से ४ कि मी की दूरी पर है। सत्रहवी शती से ही यहाँ यात्री और पर्यटक आते रहे हैं और यहाँ दीवारो पर अपने नाम लिखते रहे हैं। १८६६ ई० मे यहाँ "नोइर-कक्ष (Salon-noir) के चित्रो का पता चला किन्तु उस समय इनका कोई महत्व नही आँका जा सका। १९०६ मे जब हिम युग की कला का अस्तित्व प्रामाणिक माना जाने लगा तो पुन इन काली रेखाओ में अंकित चित्रो की ओर ध्यान गया।

स्थिति—एक सँकरे मार्ग मे से प्रथम कक्ष मे प्रविष्ट होने पर एक छोटी झील मिलती है। प्रवेश द्वार से ६६८ गज दूर एक विशाल कक्ष है जिसकी छत क्रमश नीची होती गयी है। यहाँ अनेक चिन्ह अंकित हैं जैसे लाल एव काले रग के बिन्दुओ तथा रेखाओ के समूह। लाल तथा पीले सगमरमर के कक्षो को पार करने पर रेत से भरा एक कक्ष मिलता है। इसके उपरान्त ही वह कक्ष है जिसे "नोइर सेलून" कहा गया है। सम्पूर्ण गुफा मे अनेक उत्तम चित्र बने हुए हैं। सभी चित्र प्रवाहपूर्ण शैली में काली बाह्य रेखा द्वारा निर्मित हैं। पास-पास रेखायें खीचकर रोम-राजि का आभास दिया गया है। सीग तथा खुर प्राकृतिक परिप्रेक्ष्य मे हैं।

यहाँ पर अंकित महिष, अश्व, बकरा एव हिरन के चित्र मैग्डेलेनियन-युगीन कला के सर्वोत्तम उदाहरणो मे से हैं। ब्रूइल ने इन्हे उत्तर-मैग्डेलेनियन युग का माना है। इनके पूर्ववर्ती चित्र रेखात्मक टेकनीक मे चित्रित हैं। बाद मे जबकि शैली अधिक प्रवाहपूर्ण हो गयी, कलाकारो ने चट्टानो के उभरे हुए भागो को भी चित्राकृतियो मे समाविष्ट करके रिलीफ के समान प्रभाव उत्पन्न करने की चेष्टा की है। इस कक्ष के प्रमुख चित्र महिष समूह के है जो भालो से विंधे हैं। यह कोई यातुक क्रिया प्रतीत होती है। यहा का एक दुर्लभ टेक्नीक मिट्टी मे काटकर बनाये गये उत्कीर्ण चित्र हैं। गुफा के फर्श पर एक सुन्दर महिष तथा ट्राउट मछली इसी विधि से अंकित है। गुफा

के प्रवेश द्वार से ८४० गज भीतर बने इस कक्ष के अन्तिम छोर पर भी कुछ प्राचीन धुँधले चित्र लाल तथा काले रगो मे अंकित है तथा अनेक चिन्ह भी बने है। गुफा के अन्त मे एक सुन्दर झील है जो पूर्णत शान्त है। यहाँ के वातावरण मे वायु का वेग बिल्कुल नही है।

(६) त्राय फ्रेंअर्स अथवा तीन भाइयो की गुफा (Trois Freres or Three Brothers' cave)—इसकी खोज हेनरी बैगवें तथा उसके तीन पुत्रो ने की थी इसी से इसका नाम तीन भाइयो की गुफा पडा। इसका अन्तरंग कक्ष, जो पवित्र भूमि (सैंक्चुअरी) के नाम से प्रसिद्ध है, गुफा के सर्वाधिक महत्व-पूर्ण चित्रो से सुसज्जित है। इसकी भूमि तिरछी एव ढलाव युक्त है। दीवारो पर एक-दूसरे पर अंकित अनेक उत्कीर्ण-चित्र हैं। कुछ चित्र ऑरिग्नेशियन-पैरीगार्डियन युग के है तथा कुछ मैग्डेलेनियन युग के हैं।। चित्रो की रेखाएं चट्टानो मे उत्कीर्ण की गयी है जो हल्की पृष्ठ-भूमि पर बहुत उभर कर आयी है। यहाँ सुन्दर वाइसन, शक्तिशाली हिरन, अनेक बारहसिंगे, रीछो के शिर, अश्व, बकरे तथा प्रवेश द्वार पर दो सिंह-मुख सम्मुख मुद्रा मे प्रहरियो अथवा रक्षको के रूप मे चित्रित हैं। कक्ष की दायी दीवार पर एक विशालकाय हाथी (मैमथ) अंकित है जिसकी पीठ की रेखा सहसा समाप्त कर दी गयी है। एक रीछ के शरीर पर अनेक छिद्र अंकित हैं। उसके थूथन से रक्त बह रहा है। एक स्थान पर शीत प्रदेश मे रहने वाले दो उलूको का भी अकन है। ये ऑरिग्नेशियन युग के प्रतीत होते हैं। एक स्थान पर महिष का मुण्ड पहने एक मानव भी चित्रित है जो नृत्य की मुद्रा मे है। उसके हाथ मे एक सुषिर वाद्य है जिसे वह फूंककर बजाने के हेतु मुख मे लगाते हुए चित्रित है। सम्भवत यह वंशी है। इसी प्रकार की अनेक यातुक आकृतिया गुफा मे स्थान-स्थान पर चित्रित हैं। ये प्राय पशु—आकृतियो के बीच-बीच मे हैं। गुफा मे अनेक विकृत मानव मुखाकृतियाँ भी अंकित है। इन्हे पशु-आत्मायें समझा गया है। यहाँ भी हिमयुग की कला का एक आश्चर्य-प्रद रूप 'ऋक्ष-मानव' अंकित है। सम्भवत. यह यहाँ के सबसे बडे ओझा का चित्रण है जो १३ फुट की ऊँचाई से समस्त गुफा पर दृष्टिपात कर रहा है।

४—ओझा, त्राय, फ्रेअर्स गुफा

यहाँ एक हिरन की बहुत लम्बी दाढी एव गोल आँखें चित्रित हैं। इसके आगे के पैर उठे है और पिछले पैर नर्तन की मुद्रा मे है। उपस्थेन्द्रिय पूर्णत स्पष्ट अंकित है तथा बडे-बडे सीग शिर पर हैं। शरीर के विभिन्न अगो को अधिक उभारने के हेतु काले रग के स्पर्श लगाये गये हैं किन्तु सीमायें (Contours) उत्कीर्ण की गयी हैं। मैग्डेलेनियन युग की यह कलाकृति किसी दैवी शक्ति की प्रतीक प्रतीत होती है।

फ्रॉस की अन्य गुफायें एवं शिलाश्रय

इन छ' विशाल गुफाओ के अतिरिक्त यूरोप की अन्य गुफाओ का परिचय इस प्रकार है —

(१) बॉम लैंट्रोन (Baume Latrone)—यह विशाल गुफा गार्ड नदी के बाँये किनारे पर नाइम्स नामक स्थान से लगभग १४ कि.मी. की दूरी पर स्थित है। इसका पता १९४० मे लगा था। इसके सभी चित्र प्रवेशद्वार से कोई २६० गज अन्दर एक कक्ष मे हैं। पहले मानवीय हाथो (प्राय. बायें हाथो) के अनेक चित्र छतो पर अंकित मिले। शोधकर्ताओ ने भित्ति-चित्रो पर ध्यान दिया तो अनेक पशु आकृतियाँ समक्ष मे आने लगी। गीली मिट्टी मे अँगुलियों को भिगोकर दीवारो पर अत्यन्त पुरातन शैली मे पशु-आकृतियाँ अंकित की गयी हैं। इसी प्रकार के चित्र ला पिलेटा की एण्डालूसियाँ गुफा (Andalusian cave of Lapileta) मे भी मिले है। बाम लैंट्रोन मे कोई छः हाथी स्पष्ट पहचाने जा सकते हैं जो प्राय ४ फुट ९ इन्च के आकार के हैं। गैंडे और सर्प भी चित्रित हैं। हाथियो की सूंड विचित्र टेढ़ी-मेढी रेखाओ द्वारा अंकित की गई है। सर्प कोई ९ फुट ९ इच लम्बा है और उसका

शिर रीछ की भाँति तथा जबड़े डरावनी मुद्रा मे हैं। यहाँ कुछ चित्र परवर्ती युग की विकसित कला को भी प्रस्तुत करते हैं। ये रेखात्मक शैली मे है। ये सभी आकृतियाँ आरिग्नेशियन युग की ही मानी जाती हैं।

(२) शॅबोट (Chabot)—इसका पता १८७८ मे चला था। यहाँ एक गर्भगृह (antechamber) मे कुछ गहरे उत्कीर्ण रेखा-चित्र हैं। ये प्राय विशालकाय हाथियो (मैमथ) के चित्र हैं। १६२८ ई० मे यहाँ ब्रूइल ने अश्वो, बकरो तथा हाथियो के कुछ अन्य चित्रो का भी पता लगाया। सभी पुरातन शैली मे अ कित है।

(३) एबू (Ebbou) इसका पता १६४६ मे लगा था। प्रवेश द्वार के निकट लाल रग मे हाथो की छाप है। ७१ गज लम्बे तथा १६ गज चौड़े एक कक्ष मे कोई ७० आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। इनमे २४ अश्व, १२ वृषभ, २ महिष, एक हाथी तथा अनेक बकरे हैं। प्रत्येक आकृति के केवल दो पैर बनाये गये है। वृषभो के सीग मुड़े हुए परिप्रेक्ष्य मे हैं। हिरनो के अ कन मे भी परिप्रेक्ष्य दुर्बल है। इसी पद्धति के बकरो के चित्र ऐबी बेयल (Abbe Bayol) की गुफा मे भी मिले हैं।

(४) ले पोर्टल (Le Portal)—यह गुफा इसी नाम के एक फार्म के निकट है। यहाँ चित्रो का पता सर्वं प्रथम १६०८ ई० मे लगा था। इसके उपरान्त यहाँ जो उत्खनन हुआ उसके परिणाम स्वरूप मध्य मैग्डेलेनियन युग की सामग्री उपलब्ध हुई है। गुफा तक पहुँचने का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। एक तग मार्ग मे होकर अन्दर जाना होता है जो शीघ्र ही बहुत नीचा होता चला जाता है। फर्श गीली मिट्टी से युक्त है। गुफा का पिछला भाग ही सरलता से खड़े होने तथा चलने योग्य है। यही पर कुछ चित्र अ कित हैं जो लगभग ६५ गज लम्बे बरामदे मे हैं। इस बरामदे मे होकर कई बड़े कक्षो का मार्ग है। इनमे से भी अनेक गैलरियाँ निकली हैं। प्रथम बरामदे के पिछले भाग की बायी दीवार के आलो (niches) मे अनेक चिन्ह लाल रग से बने हैं। इनमे से एक मे हाथ चित्रित हैं। इसके पश्चात् लाल रग का ही एक बारहसिंघा अ कित है। यह रेखात्मक शैली में है जिसके सीग विकृत अथवा मुड़े हुए परिप्रेक्ष्य मे हैं। दायी दीवार के अनेक धुंधले चित्रो मे काले रङ्ग से चित्रित एक महिष (बाइसन), एक उल्लू, जिसका सिर बड़ा एव शरीराग अनुपातहीन हैं, एव एक काला टट्टू प्रमुख हैं।

निकटवर्ती बायी गैलरी मे विशाल मुखाकृतियो सहित दो मानव-चित्र हैं। हल्के बादामी रग मे कुछ उत्तम अश्व-चित्र हैं। उनकी शैली लास्को का स्मरण कराती है। मध्य गैलरी मे लाल रग का एक अश्व तथा बादामी र ग का कुरूप वृषभ है। इस स्थान के सभी चित्र प्राय काले अथवा गहरे कत्थई र ग मे अ कित हैं। शैली के आधार पर इन्हें ऑरिग्नेशियन-पेरीगार्डियन युग का माना गया है। अश्व-चित्र अधिक हैं किन्तु महिषो की भी कमी नही है। श्रेष्ठ अश्व-चित्र वीथिका के अन्त मे ही अ कित हैं। आकृतियो की रेखाओ का काला रग अश्वो के शरीर पर भी कही-कही फैल गया है। इससे कही-कही गढनशीलता का प्रभाव आ गया है। इसी से इन्हे मध्य मैग्डेलेनियन युग का माना गया है। एक अन्य गैलरी मे जो चिन्ह मिले हैं उनसे अनुमान है कि यहा रीछ रहते थे। इसके एक भाग मे मैग्डेलेनियन शैली मे कुछ उत्कीर्ण चित्र हैं। इनमे महिष की एक सुन्दर चित्राकृति है। तीर से घायल एक अश्व भी चित्रित है। एक दूसरे को देखते हुए दो महिषो की आकृतियाँ यहाँ की सर्वोत्तम कृतियो मे हैं। काली रेखाओ से अ कित इन चित्रो मे र ग फैल जाने से कही-कही गढनशीलता आ गयी है। सीगो का अ कन स्वाभाविक परिप्रेक्ष्य मे है। इन्हें ब्रूइल ने आरम्भिक मैग्डेलेनियन युग का माना है। इस प्रकार यहाँ पर आरम्भिक आरिग्नेशियन-पैरीगार्डियन तथा आरम्भिक मैग्डेलेनियन युग की कृतियाँ सुरक्षित हैं।

(५) टक द-आडोबर्ट (Tuc d' Audoubert)—बाय फ्रेअर्स के निकट के क्षेत्र मे ही ये विशाल गुफाएँ हैं। गुफाओ मे एक जलधारा भी है। लगभग एक मील तक भूमध्य-सागरीय चट्टानो को भीतर ही भीतर काटती हुई यह जलधारा गुफाओ के एक द्वार से बाहर आती है। लाखो वर्ष पूर्व इसी के कारण इस गुफा का निर्माण हुआ। फिर इसमे रीछो तथा मनुष्यो का निवास हुआ। यहीं से अन्वेषक विद्वान इसमे गये और अन्दर एक

छोटी वीथिका मे सुन्दर चित्रों का पता लगाया। अश्व, महिष, एक लघु बारहसिंघा, अनेक तीर एव गदा की आकृति के अनेक चिन्ह यहाँ मिले है। ऊपरी गुफा की बहुत गहराई मे तथा प्रवेश द्वार से कोई ७६५ गज दूर एक विशाल कक्ष मे महिषो की दो सुन्दर एवं अद्वितीय प्रतिमाएँ गढी गयी हैं। दोनो नर-मादा है और नर को मादा की गन्ध का अनुकरण करते हुए गढा गया है। ये गुफा की मिट्टी द्वारा ही निर्मित हैं। दोनो बहुत जीवन्त प्रतिमाएँ हैं और सम्भवत: इनका सम्बन्ध समृद्धि के देवता एव यातुक कृत्यों से रहा होगा। यहाँ की कठोर हुई मिट्टी मे सुरक्षित जो अनेक पद चिन्ह मिले हैं उनसे अनुमान है कि वे पन्द्रह वर्ष के लगभग आयु के युवक एव युवतियो के हैं। अतः ऐसा विश्वास किया जाता है कि आदिम सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप यहा आकर उन्हे प्रणय की प्रथम दीक्षा प्राप्त होनी होगी। यह गुफा मैग्डेलेनियन युग की मानी जाती है।

(६) माण्टेस्पान (Montespan) ये गुफायें लगभग आधा मील तक फैली हुई हैं। समस्त वीथिकाओ की कुल लम्बाई २७५० गज है। गुफाओ मे एक छोटी नदी हुण्टाओ बहती है जिसके कारण गुफाओ मे जाना बडा कष्ट-साध्य है। यहाँ १६२३ ई० मे चित्रो का पता लगा था। इनका कुछ भाग अब जल-मग्न है। सम्भवत मैग्डेलेनियन युग मे ऐसा नही होगा। २३० गज भीतर पहुँचने के पश्चात् गुफा के ऊपरी भाग मे सर्वप्रथम उत्कीर्ण चित्र मिलते हैं। पहले एक अश्व का पृष्ठ भाग की ओर से अकन है। फिर तीन अश्वों, एक खच्चर तथा एक पक्षी के चित्र है। आठ महिषो के चित्र हैं जिनके सीग मुडे हैं तथा प्राकृतिक परिप्रेक्ष्य मे अकित हैं। एक अन्य सूखी वीथिका मे अनेक रोचक आकृतियाँ उत्कीर्ण है, जैसे एक अश्व का शिरोभाग, जो बहुत ही सुन्दर है। आगे दायी ओर दीवार मे भाले से बहुत से छिद्र किये गये प्रतीत होते है। यहीं पर अकित एक अश्व को भी इसी प्रकार भाले के प्रहारो से बहुत अधिक छिद्रित किया गया है। इनके कारण मिट्टी से बनी आकृति मे बहुत गहरे गड्ढे बन गये हैं।

गुफा का दूसरा भाग निचली सतह पर स्थित है। यह कला की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है किन्तु इसमे प्रवेश करने वाले को पहले गुफा के हिम-शीतल जल मे चलना पडता है। कुछ दूर चलने पर सूखा तथा ऊँचा स्थान आता है। इसकी दीवार पर जो कि १७५ गज लम्बी है, अनेक चित्र व्यतिक्रम में उत्कीर्ण है। गुफा में नमी होने के कारण वे अच्छी दशा मे नही हैं। ब्रुइल ने चार पूर्ण अश्व चित्रो, चार महिषो तथा एक गो जाति के पशु का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त अश्वो एव महिषो के मुण्ड भी अकित हैं। मोण्टेस्पान के सभी चित्र आरम्भिक मैग्डेलेनियन युग मे उत्कीर्ण किये गये हैं।

इस गुफा की सबसे बडी विशेषता मिट्टी की मूर्तियाँ हैं। स्थूल विविक्त रूपो (Bas-reliefs) मे तो अनेक आकृतियाँ अश्वो आदि की बनी ही हैं, कुछ आकृतियाँ सिंहो की भी हैं। अनेक मूर्तियाँ इतनी क्षति-ग्रस्त हो गयी हैं कि उनकी वाह्याकृति समाप्त हो गयी है तथा केवल मिट्टी के ढेर मात्र बचे हैं। एक नीची छत वाली गुफा में एक रीछ की शिर-विहीन प्रतिमा है जो दो फुट ऊँची तथा ४ फुट ८ इन्च लम्बी है। इसे भूमि पर बैठा हुआ बनाया गया है। अगले पैर आगे को फैल गये हैं और पिछले पैर उदर के नीचे दब गये है। इस पर एक प्रकार के क्षार की सतह चढी हुई मिलती है। इसकी ग्रीवा मे छिद्र हैं और सम्भवत काठ की खूँटी को इसमे गाड कर उस पर वास्तविक रीछ का शिर लटका दिया जाता होगा। इसका शरीर भी भालो के प्रहार से छलनी हो रहा है। सम्भवत इसका उपयोग किसी यातुक कृत्य से सम्बन्धित रहा होगा।

(७) गरगास (Gargas) की गुफा—यह एक विस्तृत गुफा है जो अनेक कक्षो को जोडती है। यहाँ समय-समय पर लोग शरण भी लेते रहे हैं। उन्नीसवी शती से इसे देखने बहुत से पर्यटक आते रहे हैं। १८८१ से इसमे उत्खनन का कार्य आरम्भ हुआ जिससे गुफावासी रीछ तथा अन्य पशुओ के अस्थि-पंजर प्राप्त हुए। इनसे इस गुफा का समय आरिग्नेशियन तथा पैरीगार्डियन युगो तक विस्तृत माना गया।

यहा पर हाथो की छाप की अनेक छायाकृतियाँ हैं। ये प्राय काले एव लाल रग की हैं। तीन अन्य कक्षो मे भी इसी प्रकार की आकृतियाँ अंकित हैं। फ्रांको-कैण्टाब्रियन क्षेत्र की लगभग अठारह गुफाओ मे हाथो के चित्र मिलते है किन्तु इतनी बडी सख्या मे ये केवल यही चित्रित हैं। इन गुफाओ मे केवल हाथो के चित्र ही रगीन हैं जो प्राय लाल, काले तथा पीले रगों से गुफा की नम दीवारो पर अंकित किये गये हैं। ये चित्र दो प्रकार के हैं। प्रथम प्रकार मे तो हाथ को दीवार पर रखकर मुँह अथवा किसी नली से रग फूंका गया है जिससे हाथ के आस-पास की दीवार रगीन हो गयी है। दूसरे प्रकार के चित्र हाथ को रग मे डुबो कर उसकी छाप लगाने से बने हैं। हाथो को चित्रित करने की यह प्रथा केवल यूरोप ही नहीं वरन् अन्य महाद्वीपो की अनेक सस्कृतियो मे भी मिलती है। यह एक प्रकार का व्यक्तिगत प्रतीक है जिससे एक व्यक्ति का अन्य व्यक्तियो तथा दैवी शक्तियो से सम्बन्ध माना जा सकता है।

इस स्थान पर हाथो के कोई १५० चित्र अंकित है। लाल रग के चित्रो पर काले रग से हाथ चित्रित हैं। प्राय बाँये हाथ के ही चित्र बनाये गये हैं। जहाँ हाथ को रग कर उसकी छाप लगायी गयी है वहा दायाँ हाथ प्रयुक्त हुआ है। सम्भवत यह चित्रण की सुविधा के कारण किया गया है क्योकि यदि हम ऐसा मानकर चले कि हिम-युगीन मानव दैनिक काम करने मे दाँये हाथ का ही प्रयोग अधिक करता था तो बाँये हाथ को दीवार पर रख कर दाँये हाथ से नली द्वारा रग फूँकने मे सुविधा रहती होगी और इसी प्रकार दाँये हाथ को रग मे डुबो कर दीवार पर छाप लगाने मे भी सुविधा रहती होगी। इनमे अनेक हाथो की अगुलियाँ कटी भी हैं। सम्भवत तत्कालीन मनुष्य अपनी अँगुलियाँ काट कर देवता को अर्पित कर देता होगा। यह भी सम्भव है कि आखेट मे उसका अग-भग हो जाता हो।

इसी स्थान पर मिट्टी लगी दीवारो तथा छतो पर सेवई के समान रेखा-जाल चित्रित हैं। ये सम्भवत आलेखनो के आरम्भिक रूप हैं और इनसे इस अनुमान की भी पुष्टि होती है कि आदिम मानव ने रेखा-जाल मे से ही पशु आकृतियो का विकास किया था। यहाँ जगली अश्व, पहाडी बकरे, हिरन, वृषभ, हाथी एव एक काई खाने वाला पक्षी उत्कीर्ण हैं। इनकी शैली पैरीगार्डियन शैली के समकक्ष रखी जाती है।

(८) इस्तुरित्ज (Isturitz) गुफा—इस गुफा का महत्त्व इसलिये है कि इसमे उत्तरी पाषाण युग की सभी सस्कृतियो से प्रभावित वस्तुएँ उपलब्ध हुई हैं। मैग्डेलेनियन युग की अनेक वस्तुओ के अतिरिक्त इस गुफा के मध्य मे एक स्तम्भ पर सुन्दर आकृतियाँ उभरी हुई उत्कीर्ण हैं। यहाँ आरम्भिक मैग्डेलेनियन एव उत्तरी सोल्यूट्रियन युग की सामग्री भी है। बाँयी ओर मुडकर देखता बारहसिंघा, एक अश्व, एक रीछ तथा शक्तिशाली बारहसिंघो की एक भद्रिका एव दो और हिरन यहाँ अंकित हैं।

(९) पेच मेर्ले (Pech merle) गुफा—यह स्थान केबरेरेट नामक स्थान के निकट एक छोटी नदी से थोडी दूरी पर है। इसके चित्रो का पता सन् १९२० तथा १९२२ मे लगा था। गुफा मे घुसते ही एक नीची भूमि वाले कक्ष मे प्रवेश करना होता है। यहाँ रीछो के अस्थि-अवशेष प्राप्त हुए हैं। इसकी छत मे लाल रग के बिन्दु एव हाथो की छायाकृतियाँ चित्रित मिली हैं जो बहुत धुँधली हो चुकी हैं। कोमल मिट्टी की सेवँई जैसी बत्तियो से दीवार में एक हिरन की सुन्दर एव विशाल आकृति बनाई गई है। यहाँ की विशाल चित्र वीथी १५३ गज लम्बी है तथा कही कही २२ गज तक चौडी है। शिलाओ की प्राकृतिक बनावट से ही इस स्थान पर बडी विचित्र आकृतियाँ जैसी निर्मित हो गयी हैं जो बडी आकर्षक हैं। यहीं पर इस स्थान के सुन्दरतम रूप उत्कीर्ण एव चित्रित है। चित्रकार ने यहाँ मिट्टी की दीवार पर अगुलियो द्वारा तीन नारी आकृतियाँ स्थापित की हैं। झूलते हुए स्तन, विवरण-विहीन भुजाएँ तथा झुकी हुई मुद्राओं मे इनका रेखाकन हुआ है। केवल एक एक पैर चित्रित है। दो आकृतियो में कण्ठ के निकट केश-राशि को सुन्दरता मे अलकृत किया गया है। कुछ ही दूर एक पशु अंकित है जिसे वृद्ध ने

महिष अथवा कस्तूरी-वृषभ माना है। इससे ऊपर बैठी हुई मुद्रा मे एक शिर-विहीन मानवाकृति है। सम्भवत उसके हाथ मे एक तीर है। ऑरिग्नेशियन युग की इन आकृतियो से कोई ३३ गज दूर दस विशालकाय हाथी कोमल लाल रग की चट्टानी भित्ति पर काले रग से अकित हैं। इनके नीचे लाल रग के बिन्दु अकित हैं जो ऑरिग्नेशियन युग के हैं। हाथी-चित्रो का समय परवर्ती पेरीगार्डियन अथवा पुरातन मेग्डेलेनियन युग से सम्बन्धित माना जाता है। आकृतियो में विकृत परिप्रेक्ष्य का आरम्भिक रूप मिलता है। हाथी भाग रहे है मानो किसी आपत्ति से बचना चाहते हैं। इनकी शैली पेरीगार्डियन चित्रो से बहुत मिलती है। अन्य पशुओ का अ कन भी बडा सशक्त है। इनमे यथार्थवाद की भी झलक मिलती है।

"हाथियो के कक्ष" के ठीक सामने "काले अश्वो वाला कक्ष" है। इनकी शैली अद्वितीय है। प्रवेशद्वार से कोई १०४ गज दूर ग्यारह फीट चौडी तथा ६ फुट ३ इ च ऊँची एक भद्रिका है जिसमे काले रग की रेखा से दो अश्व चित्रित किये गये हैं। इनके शरीर पर काले रग के विन्दु अ कित हैं तथा ग्रीवा की केश-राशि सपाट काले रग से चित्रित है। शिर अनुपात मे बहुत छोटे हैं। एक अश्व का शिर चट्टान के उभरे हुए भाग की प्राकृतिक आकृति का उपयोग करके बनाया गया है। इन अश्वो के ऊपर-नीचे हाथो की छ छायाकृतियाँ हैं जो अधिक प्राचीन हैं। एक अन्य कक्ष मे लाल रग के बारह विन्दु चित्रित हैं।

(१०) सरजिएक (Sergeac) गुफा—यहाँ के सभी चित्र प्रायः उच्च (upper) पूर्वपाषाण युग के हैं। यहाँ उत्कीर्ण चित्र एव मूर्तियाँ भी हैं। १६०६ तथा १६११ ई मे जो अन्वेषण हुये उनसे यहाँ आरम्भिक ऑरिग्ने-शियन युग के कुछ प्रमाण उपलब्ध हुये है। पाषाणो पर गो, अश्व, हिरन आदि उत्कीर्ण एव चित्रित हैं। इनका साम्य लास्को से अनुमानित किया गया है।

(११) रेवरडिट (Reverdit)—यहाँ अश्वों तथा महिषो की आकृतियो के अतिरिक्त कुछ उपकरण भी मिले हैं जिनसे हिम-युग की कला की रचना-विधि एव समय के सम्बन्ध मे बहुत प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध हुई है।

(१२) लौजल (Laussel)—यहा की सुन्दर नारी आकृति, जिसे "लौजल की वीनस" कहा जाता है, वहुत प्रसिद्ध है। पहले यह एक गुफा के पत्थर पर उत्कीर्ण प्रतिमा थी जिसे अब वहाँ से पृथक् करके सग्रहालय मे रख दिया गया है। इसके पूर्ण विकसित एव पीन उरोज तथा पृथु नितम्ब बनाये गये हैं। दाये हाथ मे वह महिष का सीग पकडे प्रतीत होती है। बाँया हाथ उदर की दूसरी ओर तक फैला है। मुख गोल किन्तु विवरण रहित है और सीग की दिशा में मुड़ा हुआ है। केश कन्धो पर बिखरे हैं। सम्भवत इस पर गेरू पुता हुआ था जिसके चिन्ह कही-कही अवशिष्ट हैं। इसकी आकृतिगत विशेषताएँ ऑरिग्नेशियन युग की हैं किन्तु गेरू से रगने की प्रथा पेरीगा-र्डियन युग की कला के निकट है।

यहाँ तीन अन्य नारी-आकृतिया भी हैं किन्तु वे आकार मे छोटी है तथा उनके हाथो में सींग नही हैं। पार्श्वमुद्रा मे एक सुन्दर पुरुष आकृति भी है। यह बहुत छरहरे शरीर वाली है। सम्भवत किसी समय इसके हाथ मे धनुप अथवा वाण रहा होगा। इसकी कटि में गो-पुच्छ का चँवर बँधा है।

(१३) केप ब्लाक (Cap blanc)—लौजल से कोई आधी मील दूर केप ब्लाङ्क गुफा है। १६११ मे यहा आरम्भिक मेग्डेलेनियन युग के एक के ऊपर एक चढे दो स्तर मिले। यहाँ अश्वो तथा महिषो के चित्रो की सुन्दर भद्रिकाएँ मिली है जिनसे हिमयुगीन शिल्प के चरम विकास का प्रमाण उपलब्ध होता है। पशुओ की उत्कीर्ण आकृतियाँ लगभग १ फुट तक गहरी खोदी गयी हैं और उनमे पृथुलता का आभास वहुत सुन्दरता से दिया गया है। दुर्भाग्य से कुछ मूर्तियाँ नष्ट भी हो गयी हैं। आखें गोल तथा गहरी हैं। शरीर लम्बे हैं। जघाओ से गठनशीलता का सुन्दर आभास मिलता है। ग्रीवा के वाल हल्की रेखाओ से प्रस्तुत किये गये हैं। ब्रूइल ने इन्हे आरम्भिक मेग्डेलेनियन युग की कला मे स्थान दिया है।

(१४) पेअर-नौन-पेअर (Pair-non-pair)—यह गुफा छोटी डोरडोन नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित है। १८८३ ई से १८९६ ई तक यहा अन्वेषण होते रहे। यहा ला-माउथ की कला से साम्य रखते हुए अनेक चित्र उपलब्ध हुए हैं। एक भद्रिका पर छोटे से अश्व की आकृति है जो पीछे मुडकर देख रहा है। इसकी सीमारेखा बडी कुशलता से उत्कीर्ण की गई है। छोटे शिर, बडी आख तथा कोमल मुखविवर का अकन है। आगे के पैर स्पष्ट हैं। पीछे का केवल एक पैर ही दिखाया गया है। एक अन्य चित्र किसी सिंह जाति के पशु का है। इसके पिछले भाग पर एक विशालकाय हाथी अकित है। इसका एक दात हैं। पास ही दो रीछ-मुण्ड हैं। एक हिरन और एक बारहसिंघा अ कित हैं। निकट ही एक अश्व और चित्रित है।

(१५) ला मेग्डेलाइन (La Magdelaine)—टार्न नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित इस गुफा मे एक महिष तथा एक घोडी की आकृतियाँ अकित हैं। यहाँ दो नग्न नारी-आकृतियाँ भी हैं जो एक दूसरे को देखती हुई कक्ष के बाईं तथा दाईं ओर अकित की गयी हैं। ये नैसर्गिक शैली मे अकित हैं। अनुमान है कि इन्हें आरम्भिक मेग्डेलेनियन युग मे अकित किया गया था। इस प्रकार की सभी नग्न नारी आकृतिया तथा मूर्तियाँ गुफाओ के भीतरी तथा अँधेरे भागो मे नही मिलती। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि हिम-युगीन मनुष्य इन्हें देवताओ की श्रेणी मे नही रखता था और गुफाओ के केवल उथले तथा बाहरी भागो मे ही बनाता था।

स्पेन की गुफाएँ

(१) कोवालानाज—कैण्टाब्रिआ के पर्वतीय क्षेत्र में गिवाजा रेलवे-स्टेशन के निकट ही रेमेलीज (Ramales) नामक ग्राम है। इससे लगभग २ कि मी दूर ला हाजा एव कोवालानाज नाम की गुफाएँ है जो विशाल पर्वतीय उपत्यका मे स्थित हैं। १९०३ ई० मे इनकी खोज हुई थी। कोवालानाज के प्रवेशद्वार से ५½ गज भीतर दो वीथिकाएँ आरम्भ होती हैं जिनमे से एक मे चित्र अकित हैं। ये दायें हाथ की दायी दीवार पर हैं और द्वार से ८२ गज दूर हैं। दो हिरनियो के धुंधले एव क्षत-विक्षत चित्रो के पश्चात् एक मृगी समूह का चित्र है। एक मृगी मुडकर पीछे देख रही है। एक अन्य मृगी दायी ओर मुख किये है और एक और मृगी पीछे से आ रही है। सभी चित्र लाल रग से एक विशेष विधि से अकित हैं। सीमाएँ एक-दूसरे मे लीन होते हुए बिन्दुओ द्वारा अंकित हैं। सम्भवत इन्हे रुई की फुरेरी अथवा पोटली (Tampon) से अकित किया गया है। अन्य तीन पशु भी इसी विधि से चित्रित है। एक पशु की भागती हुई मुद्रा बडी ही सजीव बन पडी है। एक अन्य भद्रिका मे चार हिरनियाँ एक अश्व के चारो ओर खडी हैं। अश्व का शरीर कुछ लम्बा है। ब्रुइल के विचार से ये चित्र कैण्टाब्रिअन-पेरीगार्डियन युग के हैं।

(२) सेण्टिअन (Santian) गुफा—सेण्टेण्डर नगर से कोई १४ कि मी दूर सेण्टिअन राज-प्रासाद है, इसके निकट ही इस नाम की गुफा है। इसमे २२४ गज लम्बी एक वीथी है। इसमे १४२ गज चलने पर बायी दीवार चित्रो से अलकृत मिलती है। लाल रग के विचित्र चिन्हो द्वारा मानवीय भुजा तथा हाथो का अकन किया गया है। त्रिशूल तथा गदा के समान आयुध भी चित्रित है। ब्रुइल के विचार से ये चिन्ह मेग्डेलेनियन युग के आरम्भ मे ही विकसित हो चुके थे तथा इनका अल्टामिरा से कोई सम्बन्ध अवश्य है। यह भी सम्भव है कि ये हाथो के ही आरम्भिक चित्र हो।

(३) एल कैसिल्लो (El Castillo)—सेण्टेण्डर के २५ कि मी दक्षिण मे अनेक गुफायें हैं जिनमे सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुफा एल कैसिल्लो है। १९०३ मे इसका पता लगा था। १९०९-१९१४ ई० के मध्य यहाँ जो उत्खनन हुआ उसमे उत्तरी पुरापाषाण युग के अवशेष उपलब्ध हुये हैं। एक विशाल सुरग मे होकर विस्तृत कक्ष मे पहुँचने का मार्ग है जिसके बाईं ओर अनेक कक्ष बने है। इनकी भूमि पर हिम-युगीन मानव के पद-चिन्ह अकित हैं। वीथी के दायी ओर अनेक आकृतियाँ चित्रित एव उत्कीर्ण हैं। कुछ चित्र हाथो के भी हैं। ये लगभग ४४ हैं जिनमे ३५ बायें तथा ९ दायें हाथ के है। सभी चित्र रग को फूंक कर हाथ की छायाकृति के रूप में बनाये गये है। हाथो की अँगुलियाँ पूर्ण और सुष्ठु हैं, विकृत नही।

कुछ अन्य चित्र लाल तथा पीली रेखाओं में पशु आकृतियों के हैं। ये हाथों के चित्रों पर ही अंकित कर दिये गये हैं अतः उनकी तुलना में अर्वाचीन हैं। चित्र प्रायः महिष के हैं। एक दो आकृतियाँ अश्व एवं हिरनी की भी हैं। यहाँ एक स्थान पर कुछ पशु-चित्र चौड़ी तथा प्रवाहपूर्ण रेखाओं में अंकित हैं। चौथे वर्ग के चित्र काले रंग से कक्ष के अन्तिम भाग में बनाये गये हैं। इनकी रेखाएँ क्रमश बारीक से मोटी होती गयी हैं। अश्व, हिरनी, गाय, वृषभ, बकरे आदि के चित्रों में यह स्पष्ट देखी जा सकती हैं। परवर्ती मेग्डेलेनियन युग के काले रंग से अंकित महिष-चित्रों में गठन-शीलता का आभास देने की चेष्टा भी की गयी है। ऐसी दो आकृतियाँ अल्टामिरा के रंगीन चित्रों से मिलती-जुलती हैं।

यहाँ के उत्कीर्ण चित्रों में अश्व, बकरा, हिरन तथा हिरनी की आकृतियाँ प्रमुख हैं। इनके शरीर तिरछी रेखाओं से भरे गये हैं। यहाँ कुछ महिषाकृतियाँ भी उत्कीर्ण हैं जो पश्चात्-कालीन हैं।

(४) ला पेसीगा (La Pasiega)—यह गुफा एल कैसिल्लो के क्षेत्र में ही है। यहाँ ऑरिग्नेशियन-पेरीगार्डियन युग के अनेक चित्र मिले है। लाल, पीले तथा काले रंग से हाथों की आकृतियाँ, अश्व, हिरनियाँ, महिष तथा हिरन चित्रित हैं। लाल बिन्दुओं से भी पशु चित्रित किये गये हैं। छत पर भी अनेक चिन्ह बने है।

(५) पिण्डाल (Pindal) गुफा—चारसौ गज लम्बी इस गुफा में १२० गज अन्दर पहुँचने पर कुछ चित्र मिलते हैं। प्राय सभी चित्र दायी दीवार पर हैं। लाल रंग से विश्राम की मुद्रा में एक हाथी अंकित है। इसके पैर कुकुरमुत्ता के समान बनाये गये हैं। हिम-युगीन मैमथ से इसमे यह भिन्नता है कि न तो इसके लम्बे रोम हैं न बड़े-बड़े दाँत। इसके शरीर के मध्य में लाल रंग का एक बड़ा बिन्दु है जो लगभग पान के आकार का है। सम्भवत. यह हृदय की स्थिति का संकेत करता है।

यहाँ एक मछली उत्कीर्ण है। इसके नीचे एक विशाल महिषाकृति उत्कीर्ण है। दायी ओर लाल तथा काले बिन्दु हैं। इनका समय परवर्ती मेग्डेले-नियन युग माना गया है।

५—हाथी (पिण्डाल गुफा)

(६) लास कैसारेस (Los casares) गुफा—यहाँ विकसित पेरीगार्डियन शैली में १५ अश्व, १० जंगली वृषभ, ६ हिरन, ४ बकरे, २ सिंह, एक गैंडा तथा एक भेड़िया उत्कीर्ण हैं। कुछ अन्य प्राचीन आकृतिया भी उत्कीर्ण दिखायी देती हैं जो बहुत गहरी हैं।

यहाँ कुछ नर एवं पशु मिश्रित आकृतिया भी हैं जिनमे मछली तथा मेढक से साम्य रखती मुखाकृतियाँ बनी हैं। सम्भवत ये जल-सम्बन्धी अभिचार कृत्यों के उपयोग में आती थी। यहा काले रंग से कुछ चिन्ह भी अंकित हैं।

(७) ला पिलेटा (La Pileta)—फ्राको-कैण्टाब्रिअन कला के दक्षिणी स्पेन में सर्वाधिक सुदूर क्षेत्र तक पहुँचे प्रभाव के दर्शन ला-पिलेटा गुफा की कला में किये जा सकते हैं जो मलागा के निकट है। १९११ ई में इनकी खोज हुई थी। इनको आरिग्नेशियन युग से सबन्धित माना जाता है। अँगुलियों द्वारा बने बहुरंगी पुष्पालकरणो के रूप में आरम्भ होकर यहाँ की कला पशु-आकृतियों तक विकसित हुई है। ये चित्र पीले, लाल तथा काले रंगो से अंकित हैं। एक बकरे तथा एक वृषभ के शिर पहचाने जा सकते है। बकरो, हिरनियो, गायो, अश्वो आदि के चित्र भी परवर्ती युग के बने हुए हैं। अधिकाश चित्र हिमयुग के पश्चात् ही निर्मित हुए प्रतीत होते है।

इटली की गुफाएँ

(१) लीवान्जो (Levanzo)—इटली में फ्राको-कैण्टाब्रिअन शैली में अंकित गुफाओं की खोज में सर्वप्रथम १९५० ई. में लीवान्जो नामक द्वीप के उत्कीर्ण गुहा-चित्रों का पता चला। यह द्वीप सिसली के किनारे से कुछ दूर पश्चिम में है। गुफा के मध्य में स्थित आकृतियाँ पर्याप्त सुरक्षित हैं। इन पर गहरे रंग की ओप चढ़ी है। हिम-युगीन

६—गदहा (लीवान्जो)

पशुओ के अतिरिक्त यहाँ विचित्र नर-पशु आकृतिया भी अकित हैं। सम्भवत. ये छद्मवेषधारी मनुष्य हैं जो नृत्य कर रहे हैं। यहाँ की सबसे सुन्दर आकृति एक जगली गधा है जो पीछे मुडकर देख रहा है। इसकी रेखायें सशक्त हैं और चट्टान मे गहरी खुदी हुई हैं। एक गाय तथा उसका अनुगमन करते हुए एक वृषभ की आकृति भी मिली है। हिरन एव अश्वो की आकृतिया भी हैं। अन्य स्थानो की भाति यहाँ भी चित्र एक-दूसरे के ऊपर अकित किये मिलते हैं।

(२) रोमानेल्ली (Romanelli)—यह गुफा फ्राको-केण्टाब्रिअन कला की सीमा के बाहर पडती है क्योकि इसमे अर्ध-प्राकृतिक शैली का प्रयोग है। केवल एक वृषभ का चित्र ही उस शैली से मिलता-जुलता है। यहाँ के अधिकाश रूपों मे से कुछ इस प्रकार के हैं —विशिष्टीकृत एव अलकृत नारी आकृतियाँ, ज्यामितीय अभिप्राय, समान्तर रेखाओ के समूह एव सीढीनुमा रूप (scaliforms)। इनका सम्बन्ध फ्राको-केण्टाब्रिअन क्षेत्र की प्राचीन पेरीगार्डियन कला से जोडने का भी प्रयत्न किया गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि यहाँ छोटे पत्थरो पर एक सिंह तथा एक जगली शूकर की आकृतियाँ भी उत्कीर्ण हैं।

(३) एड्डौरा (Addaura)—यहाँ एक छोटी-सी गुफा मे अमरीकी शस्त्रास्त्र भण्डार था। एक दिन उसमे सहसा विस्फोट हो जाने से दीवारो पर जो प्रस्वेद का कडा स्तर था वह उखड कर गिर गया और नीचे से बडी सुन्दर उत्कीर्ण आकृतियाँ निकल आयी। शैली की दृष्टि से ये लीवान्जो के निकट हैं। अश्वो तथा हिरनियो के अतिरिक्त यहाँ मानवाकृतियो का भी बडा जीवन्त चित्रण है। ये नग्न हैं तथा कुछ लोग मुखौटे पहने हैं। दो व्यक्ति कुश्ती लड रहे प्रतीत होते हैं। दो अन्य भूमि पर लेटे हैं। उनके पैर बँधे हैं और उनकी रस्सी उनके गले मे भी बँधी है। वह खिच रही है और प्रतीत होता है कि वे आत्म हत्या कर रहे है।

यहाँ की पशु-आकृतियाँ मेग्डेलेनियन युग की हैं किन्तु मानवाकृतियाँ पूर्वी-स्पेन की शैली मे हैं।

(४) निसेमी (Niscemie)—यहाँ अकित पशु-चित्र एड्डोरा की शैली मे ही है। यहाँ अश्वो तथा जगली वृषभो के चित्र भी हैं जिनके सीग ठीक परिप्रेक्ष्य मे अकित हैं। इनसे यह अनुमान होता है कि ये मेग्डेलेनियन युग के हैं।

फ्रास, स्पेन तथा इटली की कला का उपर्युक्त विवरण हिम-युगीन मानव की विकसित कला का प्रमाण है। मेग्डेलेनियन युग की समाप्ति पर यूरोप मे जमी हुई बर्फ धीरे-धीरे आल्प्स तथा आर्कटिक की ओर हटने लगी। इससे इस क्षेत्र की वनस्पति तथा पशु-पक्षियो मे नवीन जातियो का विकास हुआ और मानव के निवास की नयी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं। गुफाओ के प्राकृतिक वातावरण मे रहने की आवश्यकता समाप्त हुई। प्रकृति के उपद्रवो के कारण गुफाओ के द्वार बन्द होने लगे, उनमे छते आदि गिरने से मिट्टी भरने लगी और अनेक गुफाएँ इस प्रकार या तो नष्ट हो गयी या उनके मार्ग अवरुद्ध हो गये। मनुष्य उन्हें और उनकी कला को भी भूल गया। पिछली शताब्दी मे सहसा ही वे मानव की आँखो के सामने पुन. प्रकट हुई हैं। आज फ्राको-केण्टाब्रिअन युग के लगभग १२० कला-केन्द्रो का ज्ञान मनुष्य को है। इनमे आरम्भिक पुरा-पाषाण युग के सभी केन्द्र सम्मिलित नही हैं। अनेक केन्द्रो का अन्वेषण अभी शेष है।

पूर्वी स्पेन की पाषाणयुगीन कला

पूर्वी स्पेन की कला पाषाण-युगीन मनुष्य की सर्वाधिक सशक्त कारीगरी का प्रमाण है। ये शिला-चित्र तटीय प्रदेश तथा पैरीनीज से नेवाडा तक की पर्वतीय उपत्यकाओ में मिलते हैं। फ्राको-केण्टाब्रिअन क्षेत्र में उपलब्ध कला-कृतियों के विपरीत ये चित्र उथली खोहों तथा बाहरी शिलाश्रयों मे ही अकित हैं और दूर से ही दिखायी देते हैं। गुफाओ के भूरे धरातल के विपरीत गेरुए रग में चित्रित होने के कारण ये स्पष्ट चमकते है। पूर्वी स्पेन की कला को "द्वितीय आर्येटन शैली" भी कहा जाता है। इसका आरम्भ लगभग ६००० ई० पू० मे हुआ था।

स्पेन के स्थानीय निवासियो को इन चित्रो की जानकारी सदैव रही है और इनके विषय मे उनमे भाँति-भाँति की भ्रान्त धारणाएँ भी प्रचलित रही हैं, किन्तु इनका ठीक-ठीक अध्ययन वर्तमान शती मे ही आरम्भ हुआ है। सन् १९०३ मे एक फोटोग्राफर केब्रे आग्वीलो ने केलापाटा (calapata) मे अनेक चित्र देखे, किन्तु उसे उनके महत्व का ज्ञान कुछ वर्षोपरान्त हिम-युगीन कला-विषयक लेखों को पढकर हुआ। उसके द्वारा इसकी सूचना ब्रुइल को मिली और फिर तो पूर्वी स्पेन की कला का अन्तर्राष्ट्रीय विद्वानो मे बहुत महत्व हो गया। तभी से इस क्षेत्र का विधिवत् अध्ययन आरम्भ हुआ। धीरे-धीरे अनेक गुफा-चित्रो का पता लगा। अनेक पत्रिकायें, चित्र एव लेख प्रकाशित हुए। यहाँ का सर्वाधिक प्रसिद्ध कला-मण्डप कोगुल है जिसका पता आरम्भ मे ही चल गया था। यह लेरिडा नामक स्थान के दक्षिण मे है। यहाँ लाल तथा काले रगो मे चित्रित "नर्तकी समूह" के सम्बन्ध मे १९०८ ई० से ही पर्याप्त खोजपूर्ण सामग्री प्रकाशित हुई थी। अलपेरा (Alpera) के निकट उपलब्ध शिलाचित्रों को १९१० ई०

७—धनुर्धर (केवा वीजा)

८—धनुर्युद्ध (मौरेल्ला ला वेल्ला)

मे कोगुल से भी अधिक महत्व प्रदान किया गया। केवा वीजा (Cueva Vieja) नामक स्थान पर अंकित अनेक पशु एव मानव आकृतियो की विशाल भद्रिका का विशेष रूप से उल्लेख किया जाता है। १९१३ ई. मे अलकानिज के निकट अनेक गुफा-चित्रो का पता चला। १९१४ ई में मिनाटेडा (Minateda) के महत्वपूर्ण चित्रो की खोज हुई। यहाँ ६० फीट लम्बी भद्रिका मे सैकडो आकृतियाँ चित्रित हैं जिनमे मनुष्य भी अकित है। ब्रुइल के विचार से ये तेरह विभिन्न युगों मे चित्रित हुई है। इस प्रकार शैलीगत अध्ययन मे स्पेन का यह कला-केन्द्र बहुत महत्वपूर्ण है।

१९१७ ई० में मोरेल्ला ला वेल्ला (Morella la vella) के निकट प्राचीन चित्र मिले। वालटोर्टा (Valltorta) से भी अनेक चित्र उपलब्ध हुए। यह स्थान पूर्वी स्पेन के कला-केन्द्रो मे सर्वाधिक समृद्ध माना गया है।

इसके बाद दो वर्ष तक जो अन्वेषण हुए उनमे एल्स सीकेन्स (Els Secans) तथा केवास डीला ऐरेना (Cuevas dela Arana) उल्लेखनीय है जहाँ मधु-सचय करने वाले दो व्यक्ति एक रस्सी के सहारे चढते हुए चित्रित हैं। एक अन्य स्थान तोरमोन (Tormon) मे मनुष्य, जगली वृषभ, अश्व तथा हिरन आदि पशु लाल तथा काले रगो मे चित्रित हैं।

१९३० के आस-पास केवा रेमीजिया (Cueva Remigia) तथा क्रिंगिल डी ला मोला रेमीजिया (Cingle de la Mola Remigia) के चित्रो का पता लगा। यहाँ बादामी, काले तथा लाल रगो मे मनुष्यो तथा पशुओ की सैकडो आकृतियाँ चित्रित हैं। ये चित्रित

९—धनुर्धर
(तोर्मोन गुफा)

चट्टानें बहुत ऊँचाई पर है। कुछ ही दूर ल डाग्स (Les Dogues) नामक स्थान पर योद्धाओं का लड़ते हुए एकमात्र दृश्य उपलब्ध हुआ है।

इसके पश्चात् छोटे-छोटे चित्र अनेक स्थानों पर मिले किन्तु कोई बड़ा दृश्य उपलब्ध नहीं हुआ। ये सभी चित्र ऊँची-ऊँची चट्टानों पर बने हैं तथा पूर्वी स्पेन के तटीय पर्वतों के उजाड़ क्षेत्र मे उपलब्ध हुए हैं अतः अनुमान है कि पुरा पाषाण-काल मे यहाँ स्थानीय आदिम मनुष्य का घर रहा होगा।

टेक्नीक—यहा प्राय रगो से निर्मित चित्र ही अधिक मिले हैं। उत्कीर्ण चित्र प्राय दुर्लभ ही हैं। यो तो यहाँ इकरगे चित्र ही अधिक है तथापि अपवाद रूप से बहुरगे चित्र भी मिल जाते हैं। रग भी सीमित हैं। प्राय. गेरुए रग के विभिन्न प्रकारो का ही प्रयोग है। कही-कही काले तथा श्वेत रग का भी प्रयोग किया गया है। इनके लिए प्राकृतिक रूप से उपलब्ध मैंगनीज, गेरू, बादामी, लाइमोनाइट, रामरज, लाल खड़िया तथा कोयले का प्रयोग हुआ है। रासायनिक परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि ये रग पतले-पतले वाश के रूप मे लगाये जाते थे। इनमें चमक भी है अत अनुमान है कि इन्हें पतले किए हुए रक्त, मधु, अण्डे की सफेदी अथवा वानस्पतिक रसो मे मिश्रित करके प्रयुक्त किया जाता था। रग कई बार लगाया जाता था। केवा डेल सिविल मे एक अपूर्ण चित्र से ज्ञात होता है कि पहले सीमाएँ अंकित की जाती थी। यहाँ पैर अंकित हैं जिनका केवल कुछ भाग ही रगा हुआ है। अनेक चित्रो से यह भी ज्ञात होता है कि आकृति का सम्पूर्ण आन्तरिक धरातल पहले पानी से भिगो दिया जाता था, तत्पश्चात् रग किया जाता था। किन्तु सदैव ही यह विधि नही अपनायी गयी है। अनेक आकृतियो के शरीर मे सपाट रग न भर कर धारियाँ चित्रित करदी जाती थीं और कही-कही बाह्यरेखा को चित्रित करने के बजाय उत्कीर्ण कर दिया जाता था।

ये चित्र खुले स्थानो मे रहने पर भी इतने दिन केवल इसी कारण सुरक्षित रह सके कि इन पर एक प्रकार की ओप की परत जमा हो गयी है। कही-कही ये चित्र इतने धुँधले हो गये हैं कि पानी के छींटे लगाकर ही उन्हें देख पाना सम्भव है। किन्तु बार-बार गीला करने से चट्टानो मे जो रासायनिक क्रिया होती है उसका इन चित्रो पर बहुत हानिकारक प्रभाव पड़ता है। कोगुल की "नर्तकी" की भी यही दशा हुई है। इन सबके पुनरुद्धार की तत्काल आवश्यकता है अन्यथा सभी चित्र शीघ्र ही लुप्त हो जाने की आशका है।

शैली—पूर्वी स्पेन के सभी शिला-चित्रो के दृश्य-सयोजन मे मानव तथा पशु-आकृतियो का साथ-साथ प्रयोग किया गया है। फ्रांको-कैण्टाब्रियन कला मे अलग-अलग पशुओ को ही प्रायः विशाल आकारो में चित्रित किया गया है अत पूर्वी स्पेन की कला की यह सबसे प्रमुख विशेषता समझनी चाहिए।

पूर्वी-स्पेन के पशु-चित्र बड़े यथार्थवादी हैं, किन्तु वे हैं बहुत छोटे आकारो मे। बड़ी से बड़ी आकृति तीस इन्च से अधिक लम्बी नही है। इन पशुओ की विशेषताएँ बड़ी बारीकी से चित्रित की गयी हैं जिनसे अनुमान होता है कि तत्कालीन मानव ने बड़े सूक्ष्म अध्ययन के उपरान्त ही इन्हें अंकित किया था। इसके विपरीत यद्यपि मानवाकृतियो मे भी स्वाभाविकता का ध्यान रखा गया है किन्तु उन्हें विशिष्ट शैली प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है, फलत वे आलकारिक हो गयी है। इनके प्राय चार वर्ग माने गये है—

(१) अलपेरा (Alpera type)—इसमे स्वाभाविकता तथा सही अनुपातो का ध्यान रखा गया है।

(२) सेस्टोसोमेटिक (Cestosomatic type)—इसमे शरीर कुछ लम्बा बनाया गया है, गोल शिर, चौड़ा त्रिकोणाकार वक्ष, छोटे नितम्ब तथा लम्बे एव स्थूल पैर अंकित किये गए हैं।

(३) पेकीपोडस (Pachypodous type)—इसका लघु शरीर, पार्श्वगत बड़ा शिर, छोटा पतला धड़ तथा बहुत मोटे पैर चित्रित है।

(४) नेमाटोमोरफस (Nematomorphous type)—इसमे मनुष्याकृति प्राय रेखा-मात्र रह गयी है। सारा शरीर केवल कुछ आड़ी-तिरछी रेखाओं का समूह-मात्र अंकित है। इसे अभिव्यजनावादी शैली कहा जाता

१०—अल्पेरा मानव (केवा साल्टाडोरा)

११—सेस्टोसोमेटिक मानव (केवा डेल सिविल)

है और यह विश्वास किया जाता है कि इस प्रकार की आकृतियो से केवल गति अथवा शक्ति की स्थिति का आभास मात्र कराया जाता था। यह भी सम्भव है कि किसी कलाकार ने पहले इसी विधि से मानवाकृति चित्रित युक्ति सोची होगी जो धीरे-धीरे रूढि बन गयी।

१२—पेचीपोडस मानव (केवा डी लास केवालास)

१३—नेमाटोमोर्फस मानव (केवा डी लॉस केवालास)

इन चारो वर्गों से यह अनुमान किसी भी प्रकार नहीं लगाया जा सकता कि ये किसी ऐतिहासिक विकास-क्रम से सम्बन्धित हैं अथवा मनुष्यो के विभिन्न वर्गों से प्रभावित हैं। किसी भी समूह-चित्र मे विभिन्न वर्गों की आकृतियाँ एक-साथ अकित नही हैं। एक समूह मे केवल एक ही वर्ग के मनुष्य बनाये गये हैं फिर भी सभी आकृतियाँ बडी जीवन्त हैं। आकृतियो की शिरो-भूषा, वस्त्रो-आभूषणो एव आयुधो आदि से एक प्रकार के व्यक्ति-चित्रण की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

विषय—यहा अधिकाश चित्रो मे आखेट का अकन है। आखेटको को शिकार की विभिन्न स्थितियो मे चित्रित किया गया है। कही वह पशु के पद-चिन्हो को पहचानता हुआ आगे बढ रहा है, कही घर मे शिकार आजाने पर आमोद-प्रमोद का आयोजन हो रहा है; कही-कही मानव तथा पशु आकृतियो को साथ-साथ चित्रित करके बड़ा ही जीवन्त वातावरण प्रस्तुत किया गया है। जगली बकरो के शिकार वाले चित्र मे बडी ही गति और शक्ति का अकन है। कही शिकारी छिपे हुए हैं, कही वे भाग रहे हैं, कहीं पशु भाग रहे हैं। इन शिकारियो के चित्र बडे सुन्दर बन पडे हैं। चित्रो से आखेट के समय की सकटपूर्ण स्थिति का भी आभास मिलता है। मोला रेमीजिआ मे आखेटको के समूह का चित्रण है। पाँच आखेटक, जिनमे कुछ दाढी वाले भी है, एक-दूसरे के पीछे चल रहे हैं। प्रत्येक के हाथो मे धनुष-बाण हैं। सम्भवत. यह युद्ध-नृत्य का अकन है। कही-कही भयकर युद्ध एव घायलो का भी चित्रण हुआ

है। केवा सेल्टाडोरा मे घायल और भागते हुए योद्धा का चित्र है। इसके शरीर पर अनेक तीर लगे हैं। वह गिर-सा रहा है। उसका शिरोवस्त्र गिर गया है। केवा रेमीजिआ मे एक व्यक्ति घायल पडा है। अनेक शस्त्रधारी हाथ उठाकर प्रसन्नता व्यक्त कर रहे हैं। यह अभिशप्त व्यक्ति कोई बन्दी है अथवा अपराधी है ? क्या इसकी बलि दी जायगी ? इस विषय की अभी पहचान नही हो पायी है। इतना निश्चित है कि उन लोगो मे, जिन्होने ये चित्र अंकित किये हैं, दण्ड की सामूहिक स्वीकृति का विधान अवश्य प्रचलित रहा होगा।

किन्तु इन चित्रों का विषय केवल इतने तक ही सीमित नही है। मधु-सचय करने वालो का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। कोगुल के नर्तकी-समूह का भी सकेत किया जा चुका है जहाँ लाल एव काले रग से चित्रित नारियो का समूह एक पुरुष के चारो ओर नाच रहा है। सम्भवत इसमें किसी उत्सव-परक नृत्य का चित्रण है। मिना देडा में एक बालक का हाथ पकडे एक स्त्री चलती हुई अंकित है। अर्ध-मानव एव अर्धपशु आदि के रूप मे अनेक आकृतियाँ वन्य-पशुओ की जीवात्माओ अथवा वृक्ष देवताओ की प्रतीक अथवा मुखावरण पहने नर्तकों के हेतु प्रयुक्त हुई हैं। गहरे लाल रग मे चित्रित मकडी, जिसके चारो ओर अनेक मक्खियाँ एकत्रित हैं, मोला रेमिजिआ मे चित्रित है। इसका अर्थ समझ मे नही आ सका है।

उपकरण—इन चित्रो से तत्कालीन उपकरणो का भी परिचय मिलता है। निःसन्देह सर्वाधिक प्रयुक्त आयुध धनुष एव बाण था। इसका प्रचुरता से चित्रण हुआ है। धनुष तथा बाणो के कई रूप चित्रित हैं। बाण के मुख एव पुच्छ के आधार पर उनके भेद किये गये हैं। सम्भवत चमडे के तरकसो मे बाण रखे जाते। भालो का भी प्रयोग होता था किन्तु चित्रो मे उन्हे बाणो से भिन्न करना कठिन है। पात्रो तथा थैलो का भी प्रयोग होता था जो चमडे तथा मिट्टी के बनते थे। रस्सी अथवा चमडे की पट्टियो से वस्तुएँ बाँधने एव ऊँचे स्थानो पर चढने का काम लिया जाता था।

परिधान—पुरुषाकृतियाँ प्राय. नग्न हैं किन्तु कहीं-कही पैरो को वस्त्र से ढका चित्रित किया गया है। कमर से कटिवस्त्र का भी चित्रण हुआ है। कहीं-कही फैंटा भी अंकित है। एक स्थान पर एक पुरुष कन्धो को ढके हुए एक जाकेट जैसा वस्त्र भी पहने है जिसकी झालर पीठ पर लटक रही है। सम्भवत ये वस्त्र वृक्षो की छाल अथवा चमडे मे बनते थे। उस समय तक बुनाई का ज्ञान नहीं हुआ था। सिर पर पख लगाये जाते थे। टोपी के ढग का भी एक वस्त्र प्रचलित था। पुरुष घुटनो तक भुजाओं में आभूषण भी पहनते थे। सिर के बाल छोटे भी होते थे और कन्धो पर फैलते हुए भी। दाढी-मूछ का भी प्राय प्रचलन था।

स्त्रियाँ कोई ऐसा वस्त्र पहनती थी जो घाघरा जैसा लगता था। यह नितम्बो पर लटकता था। वक्षस्थल अनावृत रहता था। कोगुल की नर्तकियो का यही वेश है। कुछ स्त्रियाँ भुजबन्ध एव कगन भी पहने हैं।

पूर्वी स्पेन की कला का महत्व—ये शिला-चित्र इस प्रदेश की प्रागैतिहासिक स्थिति के अध्ययन मे बहुत सहायक हैं। इन चित्रो की रचना का मूल प्रेरणा-स्रोत क्या था ? सम्भवत ये चित्र तत्कालीन घटनाओ का लेखा-जोखा अंकित करने के प्रयास मे रचे गये हैं। किसी विशेष शिला पर ही बार-बार अनेक युगो में चित्र बनाये गये हैं और आस-पास की शिलाओ को सुविधाजनक होते हुए भी छोड दिया गया है। इस सबका क्या कारण था—यह जानना बहुत ही दुष्कर है। एक ही स्थान को सदियों तक इतना महत्व क्यो प्रदान किया गया ? सम्भवत इन शिलाओ को किसी ओझा आदि ने विशेष पवित्र घोषित कर दिया होगा जिसका अनुकरण होता रहा। इनमे विशेष शक्ति का निवास कल्पित किया गया होगा। कहीं-कही इन पुराने चित्रो को प्रागैतिहासिक मनुष्य ने पुन' रगो से ठीक भी किया है अथवा उनका पुनरुद्धार भी किया है—इसके भी प्रमाण उपलब्ध हुए हैं।

इस सम्बन्ध में जीवात्माओं के रूप मे अंकित अर्धपशु-अर्धमानव आकृतियाँ भी विशेष उल्लेख्य हैं। ये निश्चय ही दैवी शक्तियो की प्रतीक हैं, केवल मनोरजन के हेतु निर्मित आकृतियाँ नही। सम्भवत. ये टोटमवाद मे से विकसित पौराणिक आकृतियो के चित्र हैं। इन चित्रो मे अंकित वेशभूषा के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जिन लोगों ने ये चित्र बनाये हैं उनका रहन-सहन किस प्रकार का था।

संक्षेप मे इस कला को समझने के हेतु पर्याप्त सावधानी की आवश्यकता है। न तो इन चित्रो को तत्कालीन घटनाओ की स्मृति ही कहा जा सकता है और न केवल अभिचारपरक कहकर ही टाला जा सकता है। इनके वस्तुत विश्लेषण से ही किसी सर्वमान्य निर्णय पर पहुँचना सम्भव है। फिर भी इन चित्रो का वास्तविक अर्थ समझने का दावा नही किया जा सकता।

काल-निर्धारण—ये सभी चित्र एक समय मे अंकित नही हुए हैं। चित्र एक-दूसरे पर अंकित हैं। कुछ चित्र तो बहुत पीछे से बनाये गये हैं। इनमे समय ही नही वरन् शैली का भी भेद है। इस कला मे पहले तो विकास दिखाई देता है किन्तु बाद मे अत्यधिक अलंकृति आ जाने से पतन के लक्षण उत्पन्न हो गये है। इससे इस कला की प्राचीनता की प्रामाणिकता का प्रश्न उत्पन्न होता है। प्रश्न यह है कि फ्राको-कैण्टाब्रिअन कला की ही भाँति पूर्वी स्पेन की कला हिम-युग के अन्तिम वर्षों मे उत्पन्न हुई थी अथवा वह अधिक अर्वाचीन है। यह उत्तरी पुरापाषाणकाल से सम्बन्धित है या बाद की किसी संस्कृति से है। फ्राको-केन्टाब्रिअन कला के विपरीत इस कला के समय-निर्धारण मे निम्नांकित कठिनाइयाँ हैं:—

(१) यहाँ अंकित पशु-पक्षी ऐसे है जो उष्ण एव शीतल दोनो प्रकार की जलवायु मे रह सकते हैं।

(२) तत्कालीन शिल्प के कोई उपकरण उपलब्ध नही हुए जिससे कि भित्ति चित्रो की शैली के साथ-साथ वस्तुओं के पदार्थों की प्राचीनता की परीक्षा की जा सके।

(३) ये चित्र गहरी गुफाओ में अंकित नही हैं और यह सम्भव है कि इन तक पहुँचने मे आसानी होने के कारण ये परवर्ती युगो मे बनाये अथवा सुधारे गये हो।

इन्हीं कारणो से इनकी प्राचीनता के सम्बन्ध मे विद्वानो मे परस्पर बहुत मतभेद हैं। ब्रूइल आदि ने इनका साम्य फ्राको-कैन्टाब्रिअन कला से बिठाया है और इनकी प्राचीनता तथा हिम-युगीन आधार मे विश्वास व्यक्त किया है। इसके विपरीत अनेक स्पेनिश अध्येताओ ने इसे नव-पाषाण-कालीन कला माना है, फिर भी इन्होंने अपना कोई स्पष्ट मत व्यक्त नही किया है। एक अन्य विद्वान ने इसे मध्य-पाषाण-कालीन कला माना है जब कि हिम गल चुका था और नवपाषाणकालीन मानव ने पुराने चित्रो पर अनेक नये चित्र अंकित किये। इनकी परम्परा को हिम-युगीन कला से प्रेरणा मिली होगी। यह भी सम्भव है कि पेरीगार्डियन मानव ने इन चित्रो की रचना की, जो उत्तरी पाषाण युग तथा मध्य पाषाण युग के साथ-साथ बिखरे हुए रूप मे नव पाषाण युग तक स्पेन मे रहा। ऐसे अनेक प्रमाण मिले हैं कि फ्राको-केन्टाब्रिअन कला की एक शाखा ही स्पेन मे आकर परवर्ती काल मे विकसित एवम् पल्लवित हुई। लापिलेटा तथा मलागा के चित्रो से इसकी पुष्टि होती है। अतः इस कला को फ्राको-कैण्टाब्रिअन कला की समकालीन नही माना जा सकता।

फ्राको-कैण्टाब्रिअन पशु-आकृतियो के साम्य के कारण इसकी जड़े वही खोजना तर्क सगत नही है। किसी पुरानी कृति के आधार पर नवीन कृति के अंकन मात्र से इसे सिद्ध नही किया जा सकता। वस्तुत फ्राको-कैण्टाब्रिअन कला के समान पशुओ का पूर्वी स्पेन की कला मे अकन बहुत अर्वाचीन है और शैली की दृष्टि से पर्याप्त भिन्न भी है। अनेक पशु दीर्घ काल तक अस्तित्व मे रहे थे अतः इनमे ऐसे पशुओ का भी अकन है जो उत्तरी पुरापाषाण काल से लेकर नवपाषाण काल तक मिलते हैं। अनेक ऐसे पशुओ का भी अकन हुआ है जिन्हे स्पेनिश कलाकार ने देखा नही, केवल परम्परा मे सुना था। हिरन, बकरा, शूकर एव वृषभ आदि ऐसे पशु है जो हिम युग मे भी थे और आज भी हैं। अत. यही प्रतीत होता है कि इस कला को हिम-युगोत्तर शैली के अन्तर्गत रखा जाय। सभी चित्र प्रायः आखेटक संस्कृति के हैं। पालतू पशुओ के चित्रो को अधिक प्राचीन तथा प्रामाणिक नही माना गया है। सम्भव है कि उस युग मे मनुष्य कुत्ता आदि पशुओ को पालने लगा हो।

ये सभी चित्र समुद्री किनारे से दूर पर्वतीय क्षेत्र मे हैं अत अनुमान है कि नवीन आखेटको के आगमन से

यहाँ के मूल निवासियो को इस क्षेत्र मे शरण लेनी पडी होगी। इसका प्रमाण इससे भी मिलता है कि यहाँ मछली तथा नावो के चित्र नही हैं। सम्भव है कि समुद्री किनारे पर किसी अन्य जाति अथवा समूह का अधिकार हो जिससे कि ये लोग उधर न जा सकते हो। ये लोग कितने समय तक यहाँ छिपे रहे इसका कोई ठीक अनुमान नहीं लग सका है। लगभग चार हजार वर्ष ई० पू० मे यहाँ नव-पाषाण काल की शुरूआत हुई थी और ये लोग किस समय इसके सम्पर्क मे आये, इसका भी कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नही है।

पूर्वी स्पेन की कला स्वतन्त्र शैली को लेकर विकसित हुई है। फ्राको-केण्टाब्रिअन कला की अपेक्षा यहाँ की शैली मे अफ्रीका की कला से अत्यधिक साम्य है अत सम्भव है कि इसे वही से प्रेरणा मिली हो। दक्षिणी अफ्रीका से दक्षिणी रोडेशिया होकर पूर्वी स्पेन तक एक अपेक्षाकृत नवीन शैली के प्रसार का भी पता चला है जिसके अवशेष वर्तमान युग मे बुशमैन आदि कतिपय नीग्रो जातियो मे अब भी मिल जाते हैं। दक्षिणी अफ्रीका तथा पूर्वी स्पेन की कला मे आश्चर्यजनक साम्य भी है। रोडेशिया, पूर्वी अफ्रीका, मिस्र तथा केन्द्रीय सहारा प्रदेश मे होकर इन दोनो स्थानो की कला में कोई सम्बन्ध-सूत्र बनना पर्याप्त सम्भव है।

आदिम कला के अध्ययन से कलाओ के अनिवार्य तत्वो को समझने मे सहायता मिलती है। संस्कृति के महान् युगो की कलाओ के अनुशीलन से हमें कला के मौलिक स्वरूप के अध्ययन मे कोई सहायता नही मिलती यद्यपि मानवीय चिन्तन, उच्चाकाक्षाओ एव आदर्शों के विचार से महान् संस्कृतियो की कलाओ का महत्व सर्वोपरि है। किन्तु ये आदर्श मानवीय जीवन-पद्धति आदि से सम्बन्धित हैं और स्वय मे ये कला के अग नही हैं। आदिम जीवन मे कलाएँ अनिवार्य रूप से घुली-मिली हैं और प्रत्येक क्षण वे उनका उपयोग करते हैं। आदिम कला में पूर्ण सामाजिकता है। उसका परिष्कृत संस्कृति और बौद्धिकता से कोई सम्बन्ध नही है, यह केवल सहज अनुभूतियो का इन्द्रियसवेद्य रूप है। यद्यपि आदिम समाजो मे कला-सृष्टि का उत्तरदायित्व कुछ गिने-चुने प्रतिभाशाली व्यक्तियो पर ही होता है किन्तु यह किसी व्यक्ति की सम्पत्ति नही होती, सम्पूर्ण समाज का इस पर अधिकार होता है। कलाकृतियो के निर्माता केवल उपकरणो के प्रयोग मे ही कुशल नही होते, वरन् सामग्री को इच्छानुसार रूप देने मे भी समर्थ होते हैं। प्रागैतिहासिक कला-कृतियाँ धर्म आदि से आरम्भ से ही सम्बन्धित नही थी अत यह कहना ठीक नही है कि प्रागैतिहासिक चित्राकृतियाँ 'कला' की परिधि मे नही आती, उनकी रचना कुछ अभिचार-परक कृत्यो के हेतु की गयी थी। वस्तुत कला, भाषा तथा उपकरणो का प्रयोग मनुष्य ने धर्म के आविष्कार से बहुत पहले ही कर लिया था, सम्भवत तभी जब वह आखेटक भी न होकर केवल अन्न का सग्रह मात्र करता था। यह स्थिति लगभग पचास हजार वर्ष पहले की है।

आदिम मनुष्य अपने चारो ओर की प्रकृति को सहज भाव से देखता है। सम्भवत वह उसके प्रति पूर्णत सचेत भी नही रहता। अत उसकी अभिव्यक्ति भी सहज और सीधी होती है। इसके साथ विकसित संस्कृतियो के धर्म, समाज और कला व्यवस्था की सगति बिठाना कठिन है।

कोई तीस से चालीस हजार वर्ष पूर्व डोरडोन तथा उत्तरी स्पेन के गुफावासी मनुष्य ने गीली दीवारो पर अगुलियो से टेढी-मेढी रेखाएँ बनाना आरम्भ किया। यह क्रिया आगे चलकर पशु आकृतियो की बाह्य-रेखाओ और रिलीफ चित्रो के रूप मे विकसित हुई। सोल्यूट्रियन युग (लगभग २०,०००—१५,००० ई पूर्व) तथा मेग्डे-लेनियन युग (लगभग १५,०००—१०,००० ई पू) के मध्य इन्ही रेखाओ ने भित्ति उत्कीर्ण चित्रो को जन्म दिया जिनमे हल्के रग भी भरे गये।

इन चित्रो की शैली को 'फ्रांको-केण्टाब्रिअन'' शैली कहा जाता है। इस शैली के विकास के तीन चरण रहे हैं—

(क) प्रथम चरण के चित्र काली बाह्य रेखाओं मे अकित किये गये है और उनमे कोई एक हल्का रग भरा गया है।

(ख) द्वितीय चरण मे बाह्य रेखा से बनी आकृति मे दो रगो को भरकर गठनशीलता दिखाने का प्रयास किया गया है। गुफाओ के खुरदरे धरातलो अथवा पत्थरो के उभारो का भी इन आकृतियो मे उपयोग कर लिया गया है।

(ग) तीसरे चरण मे अल्टामिरा तथा फॉन्त द गाम के बहुरगी चित्र निर्मित हुए। इनकी आकृतियो मे बहुत स्वाभाविकता है तथा घनत्व एवं गति के बड़े सशक्त प्रभाव है। इस समय की कला मे कुछ ज्यामितीय अभिप्रायो के आरम्भिक रूप भी मिल जाते हैं।

आखेटक शैली के चित्रो के ससार भर के विशाल भण्डार को तीन पद्धतियो मे विभक्त किया जा सकता है—

(क) ऐक्स-रे शैली (ख) पूर्णमुख सिंह (ग) पीछे देखता पशु

(क) ऐक्स-रे शैली—आरम्भिक आखेटक मानव ने अपने शिकार के आन्तरिक अवयवो की सही-सही स्थिति को लक्ष्य करके आकृतियो की सीमा रेखा में मुख से उदर अथवा हृदय तक का मार्ग, हृदय एव उदर की स्थिति आदि को सरल रेखाओ द्वारा दिखाया है। सम्भवत. इनसे आखेट मे भी सहायता मिलती होगी। इस शैली के सर्वप्रथम चित्र हड्डियो पर उत्कीर्ण हैं। इनके पश्चात् ही गुफाओ की दीवारो पर इस प्रकार के चित्र अकित किये गये हैं। यह शैली परवर्ती मेग्डेलेनियन युग मे लगभग १३,००० ई पू से ६,००० ई पू पर्यन्त दक्षिणी फ्रास मे प्रचलित रही और वहाँ से शनै. शनै. उत्तर एव पूर्व की ओर बढी। नार्वे आदि मे इसका प्रचलन लगभग २,००० ई पू तक रहा। किन्तु अब तक आते-आते पशु के आन्तरिक भागो की रचना के स्थान पर आयतो, शकरपारो आदि के ज्यामितीय रूपों का प्रचलन हो गया था। कही-कही हृदय अथवा उदर आदि का अकन वृत्त के रूप मे भी होने लगा था।

(ख) पूर्णमुख सिंह—दक्षिणी-पश्चिमी फ्रांस मे पैरीनीज क्षेत्र की त्राय फ्रेअर्स गुफाओ मे एक अन्य अभिप्राय भी आरम्भ हुआ जिसमे किसी पशु, विशेष रूप से सिंह को दर्शक की ओर अभिमुख चित्रित किया जाता था। यह अभिप्राय लगभग १६०० ई पू तक जीवित रहा। यह अभिप्राय: फ्राको-केण्टाबरी क्षेत्र से दक्षिण एव पूर्व मे फैला।

(ग) पीछे देखता पशु—इसकी आकृति मे पशु को पीछे देखते हुए तथा भागने की जैसी स्थिति मे चित्रित किया जाता रहा है।

मेग्डेलिनियन युग के लास्को के चित्रो मे कुछ आयताकार अभिप्राय भी अकित हैं जो या तो पशुओ के चारो ओर घेरा बनाये हुए हैं अथवा पशु के शरीर को ही आवृत कर रहे हैं। इन्हे जाल माना जाता है। पर ये शायद जाल न होकर जादुई चिन्ह थे जो पशुओ को अभिमन्त्रित करने के लक्ष्य से अकित किये गये थे।

पूर्वी स्पेन की कला मे फ्राको-केण्टाब्रियन क्षेत्र की कला से दो मुख्य भेद हैं—

१—स्पेन की कला मे मानवाकृतियो का निरन्तर चित्रण हुआ है जबकि फ्राको—केण्टाब्रियन क्षेत्र मे मनुष्याकृति का अकन यदा-कदा ही हुआ था।

२—स्पेन के पशु बड़े आकार वाले नही हैं। प्राय छोटे-छोटे आकारो मे हरिण आदि पशुओ का अकन है।

ये दोनो विशेषताएँ बदली हुई प्राकृतिक परिस्थिति की सूचक हैं।

मिस्र की चित्रकला

जिसे यूरोपवासी "इजिप्ट" के नाम से जानते है उसको अरब-लोग "मिस्र" कहते हैं जिसका सम्बन्ध यहूदी भाषा के "मिस्रैम" शब्द से है। पश्चिमी भाषा का "इजिप्ट" शब्द यूनानी भाषा के "एँगुप्टोस" से विकसित हुआ है। प्राचीन यूनान मे यह शब्द "हैका-प्टाह" था जिसको मिस्र के मेम्फिस नामक क्षेत्र के हेतु प्रयुक्त किया जाता था किन्तु सम्पूर्ण मिस्र के हेतु नही। इस देश के दो रूप हैं जिनमे एक काला देश और दूसरा लाल देश कहा जाता है। पूर्व तथा पश्चिम के रेगिस्तानी प्रदेश की मिट्टी मे लालिमा होने के कारण ही इस क्षेत्र को यह नाम दिया गया है।

इस देश की प्राकृतिक सीमाये बडी सुनिश्चित हैं। उत्तर मे भूमध्यसागर, पूर्व मे लाल सागर, पश्चिम मे लीबिया का मरुस्थल एव दक्षिण मे जल के स्रोतो का प्रथम विशाल क्षेत्र। नूबिया को अधिकार मे लेने के उपरान्त यह सीमा जल-स्रोतो के द्वितीय क्षेत्र तक विस्तृत हो गयी है और इस प्रकार एक असम आयत का निर्माण हो गया है। यहाँ की कुल भूमि का केवल तीसवाँ भाग कृषि योग्य है। इस देश की भौगोलिक स्थिति ने यहाँ के इतिहास एव सस्कृति को एक निराला ही स्वरूप प्रदान किया है।

पुरातत्ववेत्ताओ का अनुमान है कि यहाँ भी आदिम मानव ने हिम-युग मे स्वतन्त्र रूप से विकास किया था। यह मानव बादामी (Brown) रग की त्वचा, नाटे कद एव लम्बी खिंची हुई खोपडी से युक्त था। सम्राटो के शासन के आरम्भ के पूर्व यहाँ एशिया से मिलते-जुलते मानव का निवास था। दक्षिणी क्षेत्र मे कुछ नीग्रो नस्ल का भी प्रभाव मिलता है। यहाँ की आरम्भिक भाषा सम्भवत नीग्रो परिवार की थी जिसमे सामी धातु-रूपों एव व्याकरण के नियमो का समावेश हुआ। सातवी शती मे अरबो की विजय से यहाँ इस्लामी तत्वो एव अरबी भाषा का प्रवेश हुआ। इस क्षेत्र मे यह प्रभाव बहुत बलशाली सिद्ध हुआ।

प्रागैतिहासिक एव प्राग् राजवशीय युग

ऐतिहासिक युग के लाखो वर्ष पूर्व यहा पुरापाषाण युग के आखेटक मानव के चिन्ह प्राप्त हुए है। तब तक यहाँ वनस्पतियाँ भी प्रचुरता से उपलब्ध नही थी। आखेटक सस्कृति से कृषि-सस्कृति की ओर यहाँ के मनुष्य के परावर्तन के अनेक प्रमाण नव-पाषाणकालीन अवशेषो के रूप मे उपलब्ध हैं। उत्तर धातुयुग एव प्राग् राजवशीय युग लगभग समकालीन रहे हैं। इस समय पर यहाँ मैसोपोटामिया का भी कुछ प्रभाव परिलक्षित होता है। नवपाषाणकालीन समाधियाँ अण्डाकार गड्ढो के रूप मे मिली हैं। इसके कुछ समय उपरान्त ये चौकोर भी बनने लगी। कही-कहीं इनमे ईंटों का भीतरी घेरा भी बनता था।

प्राक् फराऊनी अथवा प्राक् मेम्फाइट युग—५००० ई. पू से २८५० ई पू तक—प्राचीन मिस्र का राजवशो की विधिवत् स्थापना से पूर्व का इतिहास प्राक् फराऊनी युग कहा जाता है।

फराऊनी युग—२८५०ई. पू से २०५० ई पू तक—मिस्र का इतिहास प्रायः राजवशो के आधार पर विभिन्न युगो मे विभाजित किया गया है। लगभग २८५० ई पू मे नारमेर नामक सम्राट ने दो विभिन्न शासनो मे बँटे राज्य का एकीकरण किया था। तभी से यहाँ राजवशो के शासन की परम्परा आरम्भ होती है। घाटी तथा डेल्टा की भौगोलिक विषमता ने परवर्ती सास्कृतिक विकास मे निर्णायक भूमिका निभाई है। इस समय राजधानी थीनिज थी अत. इस युग के आरम्भिक दो राजवशों को थीनी राजवश (Thenite Dynasties) कहा जाता है। मिस्र के प्राचीन शासक फराऊन कहे जाते थे अत इस युग को फराऊनी युग कहते हैं। इसे प्राचीन काल के प्रसिद्ध नगर 'मेम्फिस' के आधार पर वर्तमान मे यह मेम्फाइट युग के नाम से भी [illegible] है। [illegible]

(Memphis) नगर की नीव मेनी (Menes) ने रखी थी। प्राचीनतम प्रमाणों से सिद्ध होता है कि राजा को ईश्वर तथा राजवश को देवताओ का अवतार समझा जाता था। मिस्र के प्राचीन एकतत्रीय शासन का यह सामान्य स्वरूप रहा है। इसी युग मे शासन का स्वरूप कुलीन-तन्त्र के समान विकसित हुआ। प्रथम राजवश के राज्य करते हुए ही ये परिवर्तन आरभ हो गये थे। राज्य की आन्तरिक व्यवस्था के साथ-साथ पडौसी राज्यो से संबन्धो के बारे मे निश्चित नियम बनाये गये। मकबरो मे लेबनान प्रदेश से आयातित काष्ठ एव फिलिस्तीन से आयातित पकाई मिट्टी के उपकरणो के प्रयोग से यह स्पष्ट है कि इन देशो से मिस्र के सम्बन्ध मधुर थे।

प्राचीन राज्य—मिस्र के इतिहास का प्रथम महत्वपूर्ण युग तीसरे से छठे राज्यवशो तक रहा है जिसे प्राचीन राज्य कहा जाता है। इसकी राजधानी मेम्फिस मे थी। इस युग के लेख तो बहुत कम मिलते हैं किन्तु शवो के साथ गाडी जाने वाली सामग्री एव उपकरण पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हैं। इस समय की समाधिया "मस्तबा" कही जाती थी जो सीढीदार ढलाव वाले पिरामिडो के रूप मे निर्मित हुई हैं। तृतीय राजवश का सर्वाधिक महत्व-पूर्ण सम्राट जोसर (Zoser) था जिसने सक्कारा मे अनेक सुन्दर एव प्रसिद्ध समाधिगृहो का निर्माण कराया। मिस्र के पाषाण-निर्मित भवनो की विशाल एव समृद्ध योजनाओ का आरम्भ सर्वप्रथम यही से होता है। जोसर का समय २६५०-२६०० ई पू माना जाता है। चतुर्थ राज्यवश स्नेफेरु (Sneferu, २६००-२४८० ई पू. के लगभग) से आरम्भ होता है। नुबिया तथा लीबिया मे उसने जो लूट मचाई उसके प्रमाण अब प्राय नष्ट हो चुके है। उसके तीन उत्तराधिकारियो खूफू (khufu), खफ्रे (khafre) तथा मैकुरे (Menkure) का यश प्राय. उनके द्वारा बनवाये गये पिरामिडो की विशालता पर आधारित है जो सामूहिक श्रम के कुशल प्रबन्ध के परिचायक हैं। चतुर्थ राज्यवश ने अपने प्रशासनिक अधिकारियो की सख्या मे वृद्धि की। पाँचवें राज्यवश से राज्य मे पुरोहितो का प्रभाव बढने लगा। इसके प्रथम तीन शासको को हिस्न (हेलियोपोलिस Heliopolis) के पुरोहितो ने ही चुना था। छठा राज्यवश (२३५०—२२०० ई० पू०) यद्यपि सीरिया तथा फिलिस्तीन सहित एक विशाल क्षेत्र का शासक था तथापि देश के अनेक छोटे-छोटे भागो मे स्वतन्त्र शासन के हेतु उपद्रव एव विद्रोह आरम्भ होने लगे थे। परिणामत. मिस्र मे अनेक गृह-युद्ध आरम्भ हो गये। शीघ्र ही अनेक छोटे-छोटे राज्यो की स्थापना हुई और प्रत्येक व्यक्ति स्वय को असुरक्षित अनुभव करने लगा। सातवें से दसवें राज्यवंशो तक यही स्थिति रही। नवे तथा दसवें वन्श की राजधानी हेराक्लीपोलिस मे रही। दसवें वन्श ने उच्च मिस्र मे भी अपने प्रभाव-विस्तार का प्रयत्न किया। इसके ही समय थेब्ज मे ग्यारहवें राज्यवश का स्वतन्त्र उद्भव हो गया और इसके उत्साही शासक २०५० ई० पू० के लगभग सम्पूर्ण देश पर पुन आधिपत्य करने मे समर्थ हुए। इसके एक शासक मेनतूहातेप द्वितीय के प्रयास बडे प्रशसनीय कहे जाते है।

थीबन युग—२०५० ई० पू० से १०८५ ई० पू० तक—थेब्ज के शासको के सरक्षण मे पनपी कला थीबन कला कही जाती है। इसके अन्तर्गत मध्यकालीन तथा नवीन राज्य दोनो आ जाते हैं।

मध्यकालीन राज्य—मिस्र के इतिहास मे दूसरा महान् युग मध्यकालीन राज्य (The Middle kingdom) कहा जाता है। इस समय के स्थानीय सामन्त पुन शक्तिहीन होकर केन्द्र के अधीनस्थ अधिकारी मात्र रह गये। बारहवे राज्यवंश (१९९१—१७७८ ई० पू०) के समय यहाँ सभी क्षेत्रो मे आशातीत उन्नति हुई। आमेनेम्हेत प्रथम ने राजधानी को उत्तर मे वर्तमान लिश्त के निकट स्थानान्तरित किया और पूर्वी डेल्टा के क्षेत्र की सुदृढ घेराबन्दी की। सीसोस्त्रिस तृतीय ने नुबिया पर अधिकार किया तथा पश्चिमी एशिया की ओर विजय-अभियान आरम्भ किये। आमेनेम्हेत तृतीय ने फायूम को एक उर्वर क्षेत्र के रूप मे विकसित किया। तेरहवें तथा चौदहवें राज्यवश (१७७८—१६७० ई० पू०) बहुत निर्बल थे और सिंहासन पर बडी शीघ्रता से नये-नये सम्राट आसीन हुए। इस समय एशियाई तत्वो का भी समावेश हुआ। यूनानी परम्परा के हिक्सास सम्राटो ने मिस्र मे पन्द्रहवें

तथा सोलहवें राज्यवशो की स्थापना की और ग्रीक रथ का परिचय मिस्रवासियों को कराया। उच्च मिस्र में १६१० ई० पू० के लगभग सत्रहवें राज्यवश ने यूनानी राजाओ को निर्मूल करके पुनः स्थानीय शासन की स्थापना की। इनका अन्तिम सफल सम्राट कामूस (Kamose) था।

नवीन राज्य—मिस्री इतिहास का तृतीय महान् युग "नवीन राज्य" कहा जाता है जो तेरहवी से बीसवी थेबन वश-परम्पराओ से सम्बन्धित है। इस समय पश्चिमी एशिया की विजय से जहाँ मिस्र का सम्मान बहुत बढा वहाँ शनैः शनैः अन्त मे मिस्र बहुत दुर्बल भी हो गया। अठारहवें वश (१५७०—१३१८ ई० पू०) का प्रथम शासक आहमूस प्रथम था जिसने यूनानी हिक्सास को निकाल दिया और नूबिया को जीत लिया। थुतमोसिस प्रथम के समय मे मिस्र का साम्राज्य पश्चिम एशिया में फरात नदी तक विस्तृत हो गया। थुतमोसिस तृतीय के समय तक यह और भी विस्तृत हुआ। विजित देशो को अपने अधीन रखते हुए भी उन्हे अपनी शासन-प्रणालियो मे कार्य करने की छूट दी गयी। अनेक दुर्गों का निर्माण हुआ। इसके पश्चात् जो उत्तराधिकारी आये वे निर्बल सिद्ध हुए। इतना विशाल राज्य अनायास ही प्राप्त होने के कारण वे निष्क्रिय हो गये। उनमे नीति-कुशलता भी नही थी फलत राज्य क्षीण होने लगा। थीबियन पुरोहितो तथा एकमात्र देवता सूर्य को मानने के सिद्धान्त का भी उन्होंने विरोध किया। तूतनखामेन के प्रयत्नो से पुरोहितो की शक्ति पुन बलवती हुई। इस समय से उन्नीसवें राजवश का इतिहास आरम्भ होता है जो लगभग १३१८ से १२०० ई पू तक रहा। सेति प्रथम ने हिट्टाइट प्रदेश पर आक्रमण किये। उसका पुत्र रेमसेस द्वितीय (Ramses II) अपने पिता के समान शक्तिशाली था। बीसवें राज्यवश (११९०-११६० ई पू) का सर्वप्रसिद्ध राजा रेमसेस तृतीय था। उसने अनेक बाहरी आक्रमणो का सामना किया। इनके पश्चात् के राज बहुत दुर्बल हुए।

परवर्त्ती युग—(१०८५ ई पू से ३३२ ई पू तक) इस प्रकार की परिस्थितियो मे मिस्र मे परवर्त्ती युग आरम्भ हुआ। इस समय थेब्ज एक धार्मिक राजधानी थी जिसका सचालन बड़े-बड़े पुरोहित करते थे। डेल्टा प्रदेश में एक राजनीतिक राजधानी भी थी। इस समय लीबिया के सैनिक गुटो ने मिस्र के अनेक क्षेत्रो पर अधिकार कर लिया था। इन्हीं दलो मे से बाईसवें राज्यवश (९३५—७१९ ई. पू) का उदय हुआ जिसकी राजधानी बुबास्तिस मे थी। इस वश मे एक प्रसिद्ध राजा शेशोक प्रथम हुआ जिसने फिलिस्तीन पर आक्रमण किया और यरूशलम को लूटा। इसके साथ-साथ तानिस (Tanis) मे तेईसवें राज्यवश का उद्भव हुआ। इन दोनो वशो को चौबीसवे वश ने उखाड दिया और डेल्टा प्रदेश मे स्वय को सुदृढ किया। विजयी सम्राट प्यॉखी, जो २५वें नूबियन राज्यवश का द्वितीय राजा था, दक्षिण की ओर बढा तथा ७२५ ई पू मे वहाँ अधिकार कर लिया। इसके उपरान्त ६७० ई पू तथा ६६६ ई पू में असीरिया की प्रबल शक्ति ने आक्रमण करके मिस्र के बहुत से भूभाग पर अधिकार कर लिया। छब्बीसवें राज्यवश के साथ मिस्र के फराऊनी शासन ने पुन एकता का प्रयत्न किया। इस समय सामतिक प्रथम (Psamtik I) ने यूनानियो के सहयोग से मिस्र मे से असीरियन शक्ति को हिला दिया। ५२५ ई पू तक मिस्र पुन व्यक्तिगत विद्रोहो के कारण दुर्बल हो गया और फारस की बढती हुई शक्ति ने इस समय यहाँ अधिकार कर लिया। यहाँ का शासक सामतिक तृतीय बहुत कम समय तक राज्य कर सका। इसके उपरान्त अनेक छोटे-छोटे राज्यवश परस्पर लडते-झगडते विभिन्न स्थानो पर राजधानियाँ स्थापित करते रहे और देश की सीमाओ का विस्तार अथवा सकोच होता रहा। तीसवें वश के साथ यहाँ फारसी आधिपत्य समाप्त हुआ और ३३२ ई पू मे यहाँ सिकन्दर का आक्रमण हुआ।

यूनानी-रोमन तथा बिजैण्टाइन प्रभाव—३३२ ई पू से ६४१ ई पू तक सिकन्दर की मिस्र-विजय के पश्चात् कुछ समय तक यहाँ विदेशी शासन रहा। ३२३ ई पू मे विभाजित मिस्र पर प्तोलेमी प्रथम (Ptolamy I) का अधिकार हो गया जिसने ३२० ई पू तक शासन किया। इस डेल्टा प्रदेश के शासक ने यूनानी अधिकारियो को ही प्रमुखता दी। इस समय साहित्य, कला तथा विज्ञान की भी उन्नति हुई और सिकन्दरिया नामक नगर

यूनानी संस्कृति का महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया। मिस्र तथा यूनानी संस्कृतियों के समन्वय के प्रयत्न में नए शासक स्वयं को फराऊनों के वंशज कहने लगे। इसका विकास "सेरापीस मत" (The cult of Serapis) के रूप मे हुआ।

३० ई पू. मे मिस्र रोम का एक प्रदेश-मात्र रह गया यद्यपि शासक को अब भी फराऊनो का उत्तराधिकारी माना जाता था। यूनानी कानून को फराऊनो की तिथियो के साथ प्रस्तुत किया जाने लगा। सिकन्दरया को स्थानीय चिन्हो के साथ अपनी मुद्रा ढालने की स्वतन्त्रता थी। ईसवी सन् की प्रथम तथा द्वितीय शती मे यूनानियो एव यहूदियो मे बहुत सघर्ष रहा।

ईसा की चौथी शती में यहाँ ईसाई प्रभाव आने आरम्भ हुए। सम्राट, कौन्स्टेण्टाइन ने उसे राजधर्म घोषित कर दिया और लोगो से उसके प्रति सहिष्णु बनने की अपील की। थियोडोसियस ने ३८६ मे सिकन्दरिया को पुन मिस्र के शासन का केन्द्र बनाया। उसने समस्त प्राचीन पूजा-स्थलो को बन्द कर देने का आदेश दिया और इस प्रकार ईसाई धर्म को फैलने का अवसर मिला। इसके साथ-साथ नवीन धर्म से सम्बन्धित कला भी विकसित हुई जिसे काप्टिक कला (Coptic Art) कहा जाता है। यहाँ का धर्म बिजैण्टियम के धर्म तथा राजनीति दोनो से कुछ भिन्न रूप मे विकसित हुआ। सम्राट जस्टीनियन ने इस दरार को समाप्त करने के हेतु युद्ध भी किया किन्तु कोई परिणाम नही निकला। ईसाई धर्म का यह विवाद केवल तभी दूर हुआ जब ६४१ ई. के लगभग यहाँ अरबो ने अधिकार कर लिया।

मिस्र मे इस्लाम का प्रवेश—इस्लाम के आरम्भिक वर्षों मे मिस्र केवल गौण दृष्टि से ही मुस्लिम सभ्यता का क्षेत्र माना जाता था किन्तु दसवी शती से यह प्रथम श्रेणी के इस्लामी देशो मे गिना जाने लगा। इस समय यहाँ अब्बासी शासन था। इस समय के बहुत कम चिन्ह अवशिष्ट हैं। नवी शती के तूलू शासको द्वारा निर्मित भवन पीछे से परिवर्तित भी कर दिये गये हैं, फिर भी इनमें तत्कालीन विशालता का तत्व सुरक्षित है। फातमी तथा मामलुक युगो के इस्लामी शासन के अनेक स्मारक भी अवशिष्ट है। तत्कालीन लेखक मकरीजी (—१४४२ ई) ने अपनी महत्वपूर्ण कृति मे इनका पर्याप्त विस्तृत परिचय दिया है। प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्मारक प्रायः काहिरा तथा सिकन्दरिया मे ही हैं। फातमी युग की एक मस्जिद अबुल मा ती के नाम से प्रसिद्ध है जो दिमायत के निकट है। इसमे कतिपय प्राचीन स्तम्भ और कूफी लेख हैं। मेदीनेत अल-फायूम मे बनी काइतबे मस्जिद भी मामलुक युग की है। तांता की सीदी-अल-बदवी मस्जिद तुर्की साम्राज्य के समय की होने के कारण अधिक प्राचीन नही है। अस्वान मे अवश्य कुछ अरबो के आक्रमण के समय के अवशेष हैं। अरबो के पश्चात् यहाँ यूरोपीय प्रभाव आये, विशेषत' फ्रासीसी और अंग्रेजी। उन्नीसवीं तथा बीसवी शती मे यहाँ प्रायः आधुनिक पद्धति के भवनो एव अन्य कलाकृतियो का ही सृजन हुआ है।

मिस्री कला

प्राचीन मिस्र की कला मानव जाति की एक आरम्भिक तथा महत्वपूर्ण उपलब्धि है। अवशिष्ट खण्डहरों से इसे जो यश मिला है केवल उसी के कारण नही बल्कि अपने आन्तरिक गुण, मानव की कल्पना तथा सम्पूर्ण पश्चिमी सभ्यता पर व्यापक प्रभाव डालने और एक प्रमुख कलात्मक अभिव्यक्ति होने के कारण इसका महत्व सहज ही समझ मे आ सकता है।

मिस्र की कला के विकास के निर्णायक तत्व इस देश की प्राकृतिक परिस्थितियो मे निहित हैं; सकीर्ण नदी घाटी, जो दोनो ओर मरुस्थल द्वारा सुरक्षित है, इस देश को स्वयमाश्रित एव अपने मे सीमित भौगोलिक-सांस्कृतिक इयत्ता प्रदान करने मे सहायक हुई हैं। प्राचीन कृषि-सभ्यताओ में मिस्र की एक स्वय में निहित सस्कृति विकसित हुई जो बिना किसी व्यवधान के बहुत समय तक स्थिर रही। अन्य देशो से सम्पर्क रहने पर भी वह दूसरो से प्राय अप्रभावित ही रही। प्राक्-राजवंशीय युग से सिकन्दर की विजय पर्यन्त इस देश की

कला मे अनेक बार उत्थान और पतन आया, अनेक बार प्रतिक्रियाएँ हुई किन्तु इसका समस्त विकास देश के सीमित दायरे मे ही हुआ। कोई तीन हजार वर्ष तक कला के प्रति इस प्रकार की सामूहिक धारणा से यहाँ के निवासियो की रूढ़िवादिता ही प्रकट होती है जो इस स्थान की अनाम कला से स्पष्ट है। यद्यपि मिस्र मे अनेक व्यक्तिगत शैलियो एव कला-सम्प्रदायो को भी पहचाना जा सकता है किन्तु ये सब यहाँ की नामहीन कला की स्थापनाओ के आधार पर ही विकसित हुए हैं। फराऊनो, देवताओ तथा मरणोपरान्त जीवन की आवश्यकताओ का आधार लेकर यह कला धार्मिक एव मृत्यु सम्बन्धी सस्कारो तथा समाधि-गृहो के निर्माण का लक्ष्य लेकर चली है। जब इस कला का अन्य देशो की कलाओ से सामना हुआ तो इसका निजस्व समाप्त हो गया।

प्रारम्भिक युगो मे मिस्री जनता प्रकृति की शक्तियो का मानवीकरण करके पूजती रही। पीछे से देवताओ की सख्या बढी और प्रत्येक नगर का एक रक्षक देवता कल्पित हुआ। इनके लिये मन्दिर भी बनाये गये। इनसे यह विश्वास किया जाता था कि लोगो का भविष्य सुरक्षित रहेगा। यह भी विश्वास किया जाता था कि मृत्यु के उपरान्त -'का' (अर्थात् आत्मा) ईश्वरीय न्याय के दिन तक मकबरे मे पडी रहेगी और इतने समय मे यदि वह शैतान के हाथ पड गई तो पता नही वह क्या दुर्गति करे। ऐसा समझा जाता था कि मृत्यु के उपरान्त भी आत्मा उस दिन तक शरीर मे रहेगी जब तक कि ईश्वर न्याय करके उसे एक विशेष द्वीप मे रहने के हेतु नही भेज देता, जहाँ कि वह अपने प्रिय भक्तो को भेजता है। वह विचार पीछे से यूनानियो ने भी अपना लिया और सम्भवत यही मुख्य कारण था जिससे मिस्र-निवासी अपने प्रिय राजा-रानियो के मृत शरीर को ताबूत (ममी) बनाकर रखते थे। शायद यही कारण था जिससे कि उनके समक्ष जीवन से अधिक मृत्यु का महत्व हो गया और शव को दफनाने, उसके साथ कीमती एवम् कलात्मक वस्तुएँ रखने और मकबरे आदि की कारीगरी पर विशेष ध्यान दिया गया। अनुमान है कि मिस्री कला धार्मिक मान्यताओ के आधार पर पनपी और उसके प्राचीनतम नमूने समाधिगृहो एव मन्दिरो से सम्बन्धित हैं।

मिस्री कला के अभिप्राय—मिस्री जीवन का केन्द्र-बिन्दु राजा था और देवताओ को उसी का सम्बन्धी समझा जाता था। कला का अधिकाश राजाओ एव देवताओ की शान-शौकत मे ही लगाया जाता था। वे भव्य प्रासाद, जिनके खण्डहर हम आज भी देखते हैं, इन्ही राजाओ के रहने अथवा देवताओ की उपासना के हेतु बनवाये गये थे। शिखरो तथा मीनारो को देवता का प्रतीक और मूर्तियो अथवा चित्रो को आत्मा के कर्तव्य अथवा राजा के कार्यों के प्रदर्शन का माध्यम माना जाता था। लगभग सम्पूर्ण मूर्ति एव चित्रकला इसी उद्देश्य से सजित की गयी थी और इन कला-कृतियो का आकार इतना विशाल रखा गया कि सब लोग इन्हे देख सकें। इन्हे हम चित्र-कथा कह सकते हैं। मिस्री कलाकार अपनी कला मे शाश्वतता लाना चाहते थे अत उन्होने और कोई माध्यम उपयुक्त नही समझा। पेपीरस आदि पर लिखी गयी गाथायें हजारो वर्ष नही रह सकती थी। महलो के द्वारो आदि पर भारी पत्थर लगाये जाते थे जो धूप और गर्मी को रोक सकें। भीतर दीवारें रगो से अलकृत की जाती थी। युद्ध, न्याय, क्रीडा, धर्म-कर्म एव उत्सवो आदि के दृश्य बडी स्वच्छन्दता से भडकीले रगो मे अकित किये जाते थे और हरे, पीले तथा नीले रग से दोनो ओर का किनारा बनाया जाता था। पूरे भवनो मे प्रत्येक स्थान को चमकदार रगो से रगा जाता था, यहा तक कि छत मे भी नीला रग भरकर सुनहरी तारे अकित कर दिये जाते थे। इन सबसे मिस्री कला की अलकरणात्मक प्रवृत्ति का पता चलता है। प्राय बडे दृश्य बीच मे और छोटे दृश्य चारो ओर अकित किये गये हैं। इस प्रकार मिस्री कला के दो लक्ष्य, इतिवृत्त तथा अलकरण, प्रतीत होते हैं।

प्रागैतिहासिक अवशेष—मिस्र के प्राचीनतम चित्र तटवर्ती चट्टानो पर अकित हैं। इनका सम्बन्ध उत्तरी अफ्रीका की हिम युग के अन्त की कला से माना गया है। मिस्र मे इसका प्रवेश पश्चिम की ओर से हुआ था और यह नील नदी की घाटी तथा दक्षिणी मिस्र के ऊँचे भागो तक फैल गयी थी। इसके आरम्भिक चित्रो मे

शिलाओं पर हाथी तथा जिराफ की छायाकृतियों की भाँति उत्कीर्ण अथवा कहीं-कहीं खुरच कर बनायी गयी आकृतियाँ हैं जो प्रागैतिहासिक युग में इस कला के प्रथम विकास की द्योतक है। इसके पश्चात् नील नदी से सम्बन्धित पशुओं (जैसे हिप्पो सदृश प्राणी) आदि का अङ्कन हुआ है। जलपोतों का चित्रण बहुत बाद का है और इनका युग इसी प्रकार की अमरात संस्कृति (Amratian culture) से सम्बन्धित माना जाता है। यह पाषाण-कला प्रागैतिहासिक कला-केन्द्रों के निकट ही है।

नील नदी की घाटी में विभिन्न चट्टानों पर अङ्कित पशु उस परिस्थिति के द्योतक हैं जब प्राचीन आखेट-योग्य मैदानों में मरुस्थल बनता जा रहा था और मिस्री मानव नदी-घाटी में शरण लेने को बाध्य हुआ था।

नील नदी की घाटी में कला का आरम्भ—इस युग के मानव ने मिस्र के उच्च, निम्न तथा मरुस्थलीय जलाशयों के तत्कालीन प्रमुख भूभागों में सभी स्थानों पर अपना अधिकार प्रायः एक साथ किया था। मरुस्थल के प्रसार से नदी-घाटी का क्षेत्र अधिक सुरक्षित हो गया और इस क्षेत्र में भवन निर्माण तथा स्थायी निवास का सूत्रपात हुआ। यहाँ दो भू-भाग स्पष्ट रहे हैं—एक उच्च मिस्र जिसके दक्षिण में नील नदी के उद्गम-स्रोत के रूप में आस्वान है। इसके निवासी हैमेटिक जाति के हैं और घाटी के चट्टानी चित्रों के कलाकार हैं। यहाँ के आदिवासियों तथा जन जातियों की कला में यह शैली अब भी विद्यमान है। विभिन्न युगों में निर्मित हुए जो उपकरण यहाँ उपलब्ध हुए हैं उनमें इस क्षेत्र की कला-परम्परा के निरन्तर प्रवाह का प्रमाण मिलता है। दोनों क्षेत्रों के एकीकरण तक यह परम्परा चलती रही है। दूसरा क्षेत्र निम्न मिस्र का है जो नदी की घाटी से निर्मित है। इसका पूर्वी डेल्टा भाग पश्चिमी एशिया से भूमि द्वारा जुड़ा हुआ है जिसके कारण बाहरी प्रभाव यहाँ पहुँचे। यहाँ के निवासियों की सभ्यता में कृषि के तत्व अपेक्षाकृत अधिक हैं फिर भी इस क्षेत्र में कलाओं के उदाहरण बहुत कम मिले हैं। इसका कारण सम्भवतः उत्तरी क्षेत्र में चित्रकला की किसी प्राचीन परम्परा का अभाव ही है। दोनों दोनों में मुर्दे गाड़ने की प्रथाएँ भी भिन्न हैं। उत्तरी अर्थात् निम्न क्षेत्र में मुर्दों को गाँवों की झोपड़ियों में ही गाड़ दिया जाता था किन्तु दक्षिणी क्षेत्र में वे बस्तियों से दूर मरु-भूमि के निकट कब्रगाहों में दफनाये जाते थे। उनके साथ अनेक प्रकार का साज-सामान भी भूमि में गाड़ दिया जाता था। यहाँ के कलाकार ने भी शिलाचित्रों की शैली का आधार लेकर अपनी कला को मृतकोपासना में लगा दिया।

प्रथम राजवंश तक मिस्र में जो कला विकसित हुई उसका ज्ञान केवल उच्च मिस्र के कलावशेषों से ही होता है। इन अवशेषों में हाथी-दाँत की एक नारी-प्रतिमा एक कब्र से प्राप्त हुई है। इस मूर्ति में यथार्थ एवं यातुक अभिचार दोनों दृष्टियों से आवश्यक विवरण अंकित हैं। पश्चात्कालीन संस्कृति में उपलब्ध हाथी-दाँत की नर तथा नारी प्रतिमाएँ अपेक्षाकृत अधिक क्षीणकाय हैं। कुछ मिट्टी को पकाकर बनाई गयी रंगीन प्रतिमाएँ भी सरलाकृति एवं छरहरे शरीर वाली हैं। यद्यपि इनमें मिस्री रूप की कोई भी विशेषता नहीं है तथापि पीछे के युगों में विकसित दास-दासी प्रतिमाओं के रूप तथा शैली के निर्धारण में इन्हीं का आधार रहा है।

उच्च मिस्र के आरम्भिक पात्रों के गहरे लाल रंग के धरातल पर श्वेत रंग द्वारा पशुओं और यदाकदा मानवाकृतियों का सीमा-रेखाओं के द्वारा अङ्कन हुआ है। बीच-बीच में ज्यामितिक अथवा वानस्पतिक अभिप्राय चित्रित हैं। चौड़े प्यालों तथा कटोरों के भीतरी भागों तथा छोटे मुख वाले पात्रों के बाहरी किनारों पर इस प्रकार के आलेखन बने हुए हैं। इनमें कहीं-कहीं आखेट का भी अंकन है। कुछ समय पश्चात् इनमें हिप्पो, मकर, मत्स्य एवं आदि-युगीन नौकाएँ चित्रित करना आरम्भ हुआ। पशुओं आदि की आकृतियों को काल्पनिक शैलीगत रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया गया जिनके कारण मिस्र में कला का चित्राक्षर लिपि के समान विकास हुआ।

चौथी सहस्राब्दी के मध्य के उपरान्त यहाँ के पात्रों की हल्की गुलाबी पृष्ठिका पर गहरे लाल रंग से छायाकृतियाँ बनी हैं। प्राचीन आखेट के विषयों के स्थान पर पतवार युक्त नौकाएँ चित्रित हुईं। इनके विवरण बड़े ही विशद रूप में चित्रित हैं। इनके अतिरिक्त मानवाकृतियों, विशेषकर हाथ उठाये नृत्य करती हुई स्त्रियों आदि

का भी अकन हुआ। इसके साथ-साथ पात्रो पर बहुरगी चित्रकारी भी विकसित होने लगी। इस युग की कुछ आकृतियाँ लिनन के वस्त्र पर चित्रित उपलब्ध हुई हैं। धीरे-धीरे मिस्र-वासियो ने पत्थर पर आकृतियाँ उत्कीर्ण करना और मूर्तियाँ बनाना सीखा। इनकी पाषाणो पर अकित आकृतियो मे आरम्भ से ही गोलाई, उभार एव गढनशीलता का प्रभाव देने का प्रयत्न रहा है।

कोम अल अहमार (Kom el Ahmar) की समाधि मे मिस्र का प्राचीनतम सुरक्षित भित्ति-चित्र मिला है। यहाँ समाधि-कक्ष की एक भित्ति पर सावधानी-पूर्वक अस्तर लगाने के उपरान्त मटमैली पृष्ठिका देकर चित्र बनाये गये है। इस चित्र मे छः विशाल जल-पोत, अनेक मानवाकृतियाँ एव पशु चित्रित हैं। मानवाकृतियो के शिर ठीक पार्श्व मुद्रा मे हैं। कार्य-कलापो के अनुसार पात्रो की मुद्राएँ एव चेष्टाएँ भी विभिन्नता से चित्रित की गयी हैं। भूमि का सकेत देने वाली रेखाएँ यहाँ सर्व प्रथम उपलब्ध होती हैं। यहाँ योद्धाओ, बन्दियो एव युद्ध मे विजय आदि के चित्र भी अकित हैं। दो सिंहो के मध्य अकित एक वीर पुरुष की आकृति पर मैसोपोटामियन कला का स्पष्ट प्रभाव है। चित्र में भूतलोक के बजाय ऐहलौकिक चित्रण मिलता है जो इसके पूर्व नही किया जाता था।

एक चाकू के बेंटे (हैंडिल) पर एक ओर आखेट का दृश्य अङ्कित है, दूसरी ओर युद्ध का दृश्य है। आकृतियाँ अधिक उभार-युक्त हैं और मैसोपोटामिया का प्रभाव सूचित करती है। एक दाढी वाला व्यक्ति जो एक पगडी तथा लम्बा कोट पहने है, दोनो ओर के दो पालतू सिंहो के मध्य खडा है। स्पष्टत यह विदेशी प्रभाव है।

चित्र कला का विकास—उच्च तथा निम्न मिस्र के एकीकरण के हेतु जो प्रयत्न किये गये थे आज उनके प्रमाण केवल दृश्य कलाओ के रूप मे ही अवशिष्ट हैं। इस समय कला मे क्रमिक विकास होना आरम्भ हुआ। आकृतियो को विभिन्न आलकारिक अभिप्रायो के साथ प्रस्तुत किया जाता था किन्तु इनके विषय तत्कालीन परिस्थितियो, सघर्षों तथा उपलब्धियो से सम्बन्धित थे। इन घटनाओ को विजेताओ की दृष्टि से अङ्कित किया गया है। इन आकृतियो से यह पूर्णत. स्पष्ट हो जाता है कि मिस्री कला मे किस प्रकार दृश्यात्मक धारणाओ (visual concepts) का विकास हुआ, किस प्रकार सयोजनो मे एकता आई और किस प्रकार द्विविस्तारात्मक एव त्रिविस्तारात्मक मानवाकृति का स्वरूप स्थिर हुआ। आरम्भ मे आखेट के विषय लेकर जिन सिंहो एव भयकर पशुओं का अङ्कन किया गया था, आगे चलकर वे ही विजयी सम्राटो के प्रतीक बने। सिंह, पक्षियो तथा मनुष्यो को छायाकृतियो की भाँति प्रस्तुत किया गया है और हाथ-पैरो की दिशा से ही शरीर की स्थिति निश्चित की गयी है। विविध शरीरागो का सम्पूर्ण शरीर से कोई एकता का सम्बन्ध नही दिखाई देता। कन्धे सम्मुख मुद्रा मे है, पैर पार्श्व मुद्रा मे, शिर पार्श्व मुद्रा मे है किन्तु नेत्र सम्मुख मुद्रा मे है। एक अन्य उत्कीर्ण चित्र मे विजेता को सिंह के स्थान पर वृषभ के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

एक अन्य स्थान पर विजेता सम्राट को मानव रूप मे प्रस्तुत किया गया है किन्तु उसके पूँछ दिखायी गयी है जो पशु-जगत मे उसकी शक्ति के मूल की द्योतक है। पूँछ लगाने की यह प्रथा फराओनी सम्राटो तक प्रच-लित रही थी। इस स्थान पर जल, द्वीप, कृषि, पेपीरस के पौदे आदि भी अङ्कित किये गये हैं।

इस विकास-क्रम के अन्तिम चरण की आकृतियाँ सम्राट नार्मेर के युग की है। सभी दृश्यो मे भूमि की आधार रेखा अङ्कित है। मैसोपोटामिया के पशुओं का पुन अङ्कन होने लगा है। इन पशुओ की ग्रीवा बहुत लम्बी, सर्प के समान अथवा लपेटी हुई रस्सी के समान है, शेष शरीर सिंह जैसा है। पशिमानवों के समान आकृतियों का अङ्कन भी होने लगा है। नारी आकृतियो मे गाय के समान सींग तथा कान लगाकर उन्हें स्वर्ग से सम्बन्धित किया गया है।

सम्राट नार्मेर के युग मे मिस्री कला में आकृति-विधान के जो नियम स्थिर हुए उनके पालन यहाँ की

आकृतियाँ ससार की समस्त सभ्यताओ से पृथक् एक मौलिक रूप में विकसित हुईं। राजा का भाव व्यक्त करने के हेतु सिंहासन, परिधान, दरबार अथवा सैनिक आदि को उनके साथ-साथ प्रस्तुत किया गया। उसे देवता का अवतार भी माना गया अत उसके साथ दैवी-रूपो को भी चित्रित किया जाने लगा। ससार को चुने हुए पदार्थों की द्विविस्तारात्मक आकृतियो के माध्यम से प्रस्तुत किया गया। सत्य को व्यजित करने वाली इन आकृतियो मे सरलता का होना आवश्यक था। शाही आकृतियो को प्रस्तुत करने के लक्ष्य से शरीर का ऊपरी भाग सम्मुख स्थिति मे चित्रित किया गया और कटि से नीचे का भाग तथा शिर पार्श्व स्थिति मे अकित हुआ। इसके द्वारा आकृति की क्रिया-शीलता एव दिशा को प्रस्तुत किया गया। पद-तलो की स्थिति किंचित् स्थिर तथा किंचित सचेष्ट दिखाई गयी। मानवाकृतियो को दायी ओर से बायी ओर गतिशील बनाने के उद्देश्य से शरीर के दाये भाग मे से ही समस्त चेष्टाएँ उत्पन्न होती हुई चित्रित की गयी है। सम्भवत इसी हेतु ये मानवाकृतियाँ दायीं ओर उन्मुख अंकित है (चित्रो मे, रिलीफ मे तथा गूढाक्षरो मे यद्यपि इन्हे बायी ओर से पढा जाता है)। खडी हुई मानवाकृतियाँ जो दायी ओर देखते हुए अकित हैं, अपना बायाँ पैर आगे बढाते हुए बनी हैं। जिस दिशा में दृष्टि है, उसी मे कन्धे हैं, तथा उसी मे बायाँ पैर है। धड को सम्मुख स्थिति मे अकित करके चित्रकार को शरीर पर पहने जाने वाले अनेक आभूषणो तथा नग्न आकृतियो मे यौन अगो को चित्रित करने का अच्छा अवसर मिल जाता था।

धीरे-धीरे सभी आकृतियो को प्रस्तुत करने के नियम बन गये और उनका गणित भी स्थिर हुआ। मनुष्य शरीर को इसका आधार माना गया, जैसे एक हाथ, एक बालिश्त अथवा एक अगुल। इनमे पारस्परिक अनुपातीय सम्बन्ध भी निश्चित हुआ। शरीर को एक ऊर्ध्व रेखा द्वारा दो सम भागो (दाये तथा बाये) मे विभक्त किया गया। प्राचीन साम्राज्य के युग मे बने अनेक अपूर्ण रेखा-चित्रो मे अकित ज्यामितीय रचना से ये समस्त बातें स्पष्ट हो जाती हैं। वृश्चिक सम्राट (Scorpion King) तथा नारमेर सम्राट के चित्रो को देखने से यह स्पष्ट हो जाता हैं कि इन दोनो आकृतियो के बीच के युग मे समस्त नियम निश्चित हो चुके थे।

जहा एक ओर आकृतियो से सम्बन्धित नियम बने वहाँ दूसरी ओर गूढाक्षर-लिपि का भी विकास हुआ जो आरम्भ मे "पढ़े जाने वाले चित्रो" के समान थी। इनमे जैसे-जैसे सरलता आती गयी वैसे-वैसे इनके अर्थ प्रतीकात्मक तथा व्यंजनात्मक होते गये।

इस समस्त विकास पर सुदूर मैसोपोटामिया की कला का भी प्रभाव पडता रहा जो अनेक आकृतियो मे स्पष्ट है। इसके विपरीत मैसोपोटामिया की आरम्भिक कला पर मिस्र का प्रभाव नही मिलता। मैसोपोटामिया की जिन मुहरो के आयात से मिस्र की कला प्रभावित हुई उनका प्राचीन मार्ग मिस्र के उत्तरी भागो मे होकर था। फिर भी उत्तरी मिस्र मे किसी प्राचीन कला-परम्परा के न होने से वहाँ इनका कोई प्रभाव नही पडा और यह प्रभाव सीधे दक्षिणी अर्थात् उच्च मिस्र तक पहुँचे तथा वहाँ की स्थानीय परम्पराओ मे समन्वित हो गये।

मिस्र की सम्पूर्ण कला मे, इसी युग से एक निरन्तरता मिलती है। यह विषयो की एकरूपता तथा लक्ष्य की समानता के कारण ही है। कला-कृतियो की आवश्यकता का अनुभव करने वाले आश्रयदाताओ की समान रुचि तथा उच्च मिस्र के कलाकार-शिल्पियो की एक निश्चित परम्परा इनके पीछे सदैव रही है। उत्तरी-दक्षिणी मिस्र की एकता की घटनाओ के चित्र देवताओ को समर्पित किये गये हैं। युद्ध की किसी एक प्रमुख घटना का ही अंकन किया जाता था और सम्पूर्ण घटना की अनुकृति को अनावश्यक समझा जाता था। वस्तु के विवरणो की अपेक्षा प्रमुख विशेषताओ का ही ध्यान रखा जाता था और इस प्रकार एक व्यवस्थित ससार की पुन सृष्टि की जाती थी।

थीनी युग (Thinite Period)—प्रथम तथा द्वितीय राजवश, ३००० ई० पू से २७८० ई पू तक—

प्राचीन राज्यो के अन्तर्गत जिन नियमो के द्वारा मानवाकृति का चित्रण हुआ था उन्ही के आधार पर इस युग मे भी इसी प्रकार के रूपो का अकन हुआ। भवनो की भित्तियो एव द्वारो पर उत्कीर्ण की जाने वाली प्रतिमाओ मे भी इन्ही नियमो का पालन हुआ। प्रथम राजवश की नूबिया-विजय के उपलक्ष्य मे एक चट्टान पर

उत्कीर्ण चित्र मे इसका आरम्भिक उदाहरण मिलता है। यद्यपि इनकी रचना किसी अकुशल कलाकार द्वारा हुई है तथापि यहाँ किसी देवी-देवता को इसे समर्पित करने की पूर्वकालीन भावना का अभाव है। इस कृति का लक्ष्य सम्राट की शक्ति प्रस्तुत करना मात्र है। कला मे एक प्रकार की स्पष्टता, सन्तुलन एव प्रौढता आगयी है। प्राचीन रूपो को नये ढग से समझा जाने लगा है। बाज पक्षी को पहले जहाँ अपने आखेट पर झुका हुआ दिखाया जाता था वहाँ अब निश्चित ज्यामितीय चौखटे का आधार लेकर उसे सीधा और शाही मुद्रा मे कल्पित किया गया है। आकृति की सीमाये एव विवरण सब सुनिश्चित हो चुके हैं।

समाधि गृहो की अन्त कक्ष-भित्तियो के अलकरण मे चित्रकला महत्वपूर्ण समझी गयी। दीवारो मे काष्ठ के अनेक उपकरण जड दिये जाते थे जिन्हें चित्रित भी किया गया है। इनके अवशेष इतने क्षत-विक्षत हैं कि किसी आकृति अथवा दृश्य को समझ पाना कठिन ही नही असम्भव भी है। अनेक समाधियो मे काष्ठ-पट्टिकाओ पर अकित चित्र भी उपलब्ध हुए हैं। इनमे सम्राटो के जीवन से सम्बन्धित दृश्य हैं। पत्थर की तश्तरियो मे जो चित्र अकित है उनके विषय कुछ भिन्न हैं। इनमे हिरनो का पीछा करते हुए शिकारी कुत्तो तथा जाल मे उलझे पक्षियो के भी चित्र है। तश्तरी के गहरे रग के धरातलो मे हल्के रग के पत्थरो से बनी ये आकृतियाँ बडी सुन्दरता से जड दी गयी है। आकृतियो की गति तथा मुद्राएँ लयपूर्ण हैं। इस युग की पाषाणकृतियो मे मानवाकृति की अपेक्षा पशुओ का अधिक कुशलता से अकन हुआ है। इनकी मुद्राओ की स्वाभाविकता, बारीकी तथा निश्चयात्मकता दर्शनीय है। इस युग के अलकरण मे ज्यामितीय आकृतियाँ तथा टोकरी बुनने वाला अभिप्रायः (Basket Pattern) भी प्रयुक्त हुए हैं।

प्राचीन राज्य—तृतीय तथा चतुर्थ राज्य वश (लगभग २७८० ई० पू० से २२६० ई० पू० पर्यन्त)—

इस युग की कला की नीव थीनी युग पर आधारित हुई। तृतीय वश के सस्थापक सम्राट जोसर (Zoser) ने साम्राज्य को पुन सगठित किया। मैम्फिस को राजधानी बनाया गया फलत राज्य के समस्त वैभव एव कला-कौशल का केन्द्र यही आगया। उच्च मिस्र की स्थिति एक प्रान्त जैसी रह गयी। स्थापत्य, विशेषत पाषाण-निर्मित भवनो की कला का प्राधान्य हुआ। देव-राजाओ (God-kings) की समाधिया बनी जिनका देश के समस्त साधनो एव शक्ति के स्रोतो पर अधिकार था। इसे "पिरामिडो का युग" (the age of pyramids) भी कहा जाता है। इस युग में इनका एक विशेष रूप विकसित हुआ जिसकी बहुत अधिक अनुकृति हुई। बडे पिरामिडो के इर्द-गिर्द दरबारी अधिकारियो तथा राजपरिवार के अन्य सदस्यो के अनेक छोटे-छोटे पिरामिड बने हुये हैं। इनके आन्तरिक भागो मे अनेक प्रतिमाएँ एव भित्तिचित्र हैं। ये एक विशेष धार्मिक सम्प्रदाय की सूचक है जिसमे "मरणोपरान्त जीवन" के हेतु अनेक उपकरण समर्पित किये जाते थे। इस युग की राजकीय समाधिया अबू रोश (Abu Roash), अबूसिर (Abusir), सक्कारा (Saqqara), गिजा (Giza), दहशूर (Dahshur) तथा मदूम (Medum) आदि मे फैली हुई हैं। इस युग की कला-शैली मेम्फाइट कही जाती है और यह परवर्ती राजवशो के हेतु आदर्श एव अनुकरणीय रही है। प्राचीन राज्य के उत्तरार्द्ध मे शासन का विकेन्द्रीकरण होने से मेम्फाइट कला समस्त प्रान्तो मे फैली।

इस युग मे प्रधानत समाधियो की कला के साथ-साथ रिलीफ एव चित्रकला का विकास हुआ। इनमे परस्पर सम्बन्ध भी था। सम्राटो की समाधियो एव देवोपासना गृहो की भित्ति-चित्रकला के अतिरिक्त इस युग की मौलिकता चित्रित रिलीफ मे उपलब्ध होती है। उत्कीर्ण चित्रो को रङ्गने की कला इस युग की मौलिक देन है। चूना पत्थर के द्वारा निर्मित भवनो की हल्के रङ्ग की दीवारें स्वय किसी प्रकार के रगीन अलङ्करण की आवश्यकता का अनुभव करती थी।

इस समय मिस्री कला मे जिन रगो का प्रयोग हुआ है वे मिस्र मे प्राकृतिक रूप मे उपलब्ध हैं। खनिज लौह (गेरू) जनित लाल एवम् पीले, नीले पत्थर से प्राप्त इन्द्रनील, ताँबे से प्राप्त नीले तथा हरे, एवम् श्वेत और काले रगो का ही प्राय प्रयोग हुआ है। प्रत्येक वस्तु के रग परम्परा से निश्चित किये गये है। लाल तथा पीले

से पुरुषों तथा स्त्रियों के रग में भेद किया गया है। पानी नीले रग से तथा वनस्पति हरे रग से चित्रित हुये हैं। गूढाक्षरों के चित्रण मे भी रगो की इसी परम्परा को अपनाया गया है। श्वेत रग के मिश्रण से कुछ हल्के बल भी प्राप्त किये गये है। रिलीफ तथा चित्रित आकृतिया सीमा-रेखाओं के द्वारा ही बनायी गयी हैं।

रिलीफ चित्र प्राय. शवो को गाडने से सम्बन्धित सस्कारो का विवरण प्रस्तुत करते हैं। सम्राटो को मिस्र की दोनो भूमियो के स्वामी, देवताओं के मध्य देवता, ससार की व्यवस्था के रक्षक, तथा मिस्र के शत्रुओं के विजेता के रूप मे चित्रित किया गया है। सम्राटो के जीवन काल की प्रमुख उपलब्धियो को भी प्रतीक विधि से अकित किया है। इन सभी चित्रो मे राजाओं तथा देवताओं की विशाल आकृतियो से समाधियो की दीवारें भरी पडी है। भित्तियो के छोटे भाग गौण एवम् वर्णनात्मक दृश्यो से अलकृत हैं। इन चित्रो की कलात्मकता बहुत श्रेष्ठ कोटि की मानी गयी है। उत्कीर्ण आकृतियो मे कभी-कभी मणि भी जडे जाते थे।

सक्कारा मे बने समाधिगृहो की दीवारो मे बने आलो (Niches) मे उत्कीर्ण काष्ठ-चित्र लगे हुये हैं। पहले शव के साथ जो पदार्थ गाडे जाते थे, यहाँ उनके चित्र बनाये गये है।

मदूम मे चतुर्थ राजवश के ईटो से बने मस्तबो के चित्र विकास की विविधता को प्रस्तुत करते है। पहले के मकबरो की अपेक्षा इनकी भित्तियो पर चित्रण योग्य स्थान अधिक है। समाधियाँ केन्द्र मे हैं और उनकी चारो दिशाओ मे लम्बे-लम्बे कक्ष बनाये गये हैं मानो एक केन्द्र से चार गैलरियाँ क्रास अथवा धन के चिन्ह की भाँति चारो दिशाओ मे फैली हो। इन कक्षो की भित्तियो पर भेंट के अनेक उपहार हाथो मे लिये हुये अनेक स्त्री-पुरुषो की आकृतियाँ अकित है जो केन्द्रीय समाधि की दिशा मे उन्मुख हैं। इनके नाम भी लिखे हुए हैं। वृषभ-बलि का भी चित्रण है। समाधि के स्वामी को अकेले अथवा सपत्नीक अनेक स्थानो पर विशाल आकारो में चित्रित किया गया है। उसकी मुद्रा दृढ एवं सयत है। उसके सामने अथवा नीचे अनेक छोटे-छोटे स्थानो मे विभिन्न दृश्य जैसे कृषि, उद्यान कर्म, जलचरो के आखेट, नौका-निर्माण आदि अकित हैं। कृषि के चित्रो में सम्राट को पर्यवेक्षक के रूप मे दिखाया गया है। गूढाक्षरो की भाँति चित्रो मे भी प्राय तीन आधारभूत आकृतियो को असख्य विभिन्न रूपो मे प्रस्तुत किया गया हैं। नेफरमात (Nefermaat) के मकबरे मे रिलीफ आकृतियो के मध्य गाढे रग का लेप भरा गया है। इसकी सीमा-रेखाएँ निकटवर्ती पृष्ठ-भूमि मे लीन होती दिखायी गई हैं। कहा जाता है कि इस प्रकार की आकृतियाँ अधिक स्थायी होती है। इस मकबरे मे चूना-पत्थर का प्रयोग हुआ है। नेफरमात की पत्नी आतेत (Atet) की समाधि मे चूना पत्थर का प्रयोग नही हुआ है। ईटो से बने इस भवन की भित्तियो पर मसाले का लेप करके चित्राकन किया गया है। इसमें से केवल दाना चुगते हुए हसो के दृश्य का एक भाग ही शेष है। मूलचित्र मे जाल के द्वारा पक्षियो के पकडने की घटना को प्रस्तुत किया गया था। इसकी रग योजना त्रिविध है और केवल मूल रग ही नही वरन् उनके विभिन्न मिश्रणो का भी उपयोग किया गया है। स्वाभाविकता और स्पष्टता मे पुराने तूलिकाकारो जैसा कमाल नही है। गिजा क्षेत्र के अन्य मकबरो के चित्र प्राय दाह सस्कार से सम्बन्धित क्रिया-कलापो का विवरण प्रस्तुत करते हैं।

इसके उपरान्त चौथे राज्यवश के अन्त तक भित्ति-चित्रण मे कोई विकास नही हुआ। इसके उपरान्त ही विशाल मकबरो को चट्टानें काटकर बनाया गया और इनमे नवीन विषयो के चित्र अकित किये गये। साम्राज्ञी मरेसाख तृतीय के समय डूबे हुए रिलीफ (Sunk relief) की विधि का विकास हुआ। इस विधि मे आकृति की सीमा रेखाएँ गहरे गड्ढे डालकर अकित कर ली जाती हैं। चारो ओर की सतह को सपाट ही छोड देते है किन्तु आकृति मे गठनशीलता, उभार आदि लाने का यथासम्भव प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार की आकृतियाँ और उन पर लगे रग अधिक समय तक सुरक्षित रहते हैं। आकृतियो का सौन्दर्य इनकी गठनशीलता से उत्पन्न छाया-प्रकाश के प्रभाव पर निर्भर रहता है। यहाँ साम्राज्ञी के सम्मुख पेपीरस पर अंकित वस्तुओं की सूची को प्रस्तुत करते हुए शिल्पी, भेंट तथा पूजा का सामान लिये आगे बढते हुए उपासक वृन्द एव जन-समूह, सगीतज्ञ एव नर्तक आदि चित्रित

हैं। एक स्थान पर राजकीय पाकशाला का भी अ कन है। तक्षको द्वारा मकबरे के विभिन्न भागो के निर्माण के चित्र भी बनाये गये हैं। इस समाधि-गृह से सम्बन्धित जिन वस्तुओ अथवा उपकरणो का चित्राकन इस दीवार पर नही हो सका है उन्हे दूसरी दीवार पर दर्शाया गया है।

पाँचवें राज्यवश के समय मिस्र की कला मे एक नवीनता आयी। सूर्य की उपासना को राजधर्म घोषित किया गया। 'रा' (अथवा प्रकाश) को सम्पूर्ण सृष्टि का नियामक तत्व, ऋतुओ के परिवर्तन तथा प्राणियो के जीवन का कारण माना गया। चित्रो मे सूर्य के रूप मे ईश्वर तथा उसके द्वारा बनायी गयी सृष्टि को प्रस्तुत किया जाने लगा। अबू गुरोब (Abu Gurob) मे सम्राट नौशेरा द्वारा निर्मित सूर्य-मन्दिर के ऋतु-कक्ष ("Chamber of the seasons") मे इस प्रकार के सर्वोत्कृष्ट उत्कीर्ण चित्र हैं। बीच-बीच मे छोटे-छोटे आयतो मे प्रकृति की शक्तियो को सिद्ध करने की क्रियाओ के चित्र उत्कीर्ण है। इस धर्म का प्रभाव पहले से चले आते हुए मरणोपरान्त जीवन-सम्बन्धी विचारो पर भी पड़ा। मृत व्यक्ति के हेतु जिन-जिन वस्तुओ को अ कित किया गया है उन्हे देखने से यह स्पष्ट हो जाता है। नौका-यात्रा के दृश्य, जिनमे जल मे क्रीडा करते पक्षियो, मकरो, मछलियो एव हिप्पो आदि पशुओ का भी अकन है, प्रचुरता से बनने लगे। किनारो पर पेपीरस के घने जगल दिखाये गये है। पक्षी-आखेट के अतिरिक्त फसल काटने, जोतने, बोने, निराई करने, भूसा अलग करने, अनाज को खलिहान मे लाने आदि के भी चित्र बनाये गये है। पक्षी आखेट के दृश्य सर्वाधिक बन पडे हैं। इनमे सम्राट का भी अकन हुआ है। जाल मे से निकाल कर पक्षियो को पिंजडो में बन्द किया जारहा है। बाद मे सम्राट के भोजन की मेज पर तश्तरियो मे भी वे दिखाये गये है। नर तथा मादा पशुओ का सयोग, शावको का जन्म, शिकारी कुत्तो द्वारा पशुओ को पकड कर लाया जाना, चरागाहो में गडरिये तथा पशु आदि के दृश्यो का प्रचुरता से अकन हुआ है जिनमे कही-कही पृष्ठभूमि को भी महत्व मिला है।

मनुष्यो का सामाजिक परिवेश समान मुद्राओ एव समान क्रियाओ के द्वारा चित्रित हुआ है। इनके साथ अकित गूढाक्षर भी लगभग एक जैसे हैं मानो ये सभी पात्र एक जैसी भाषा बोल रहे हो जिसे इस प्रकार की लिपि के द्वारा प्रस्तुत किया गया हो। मृत राजाओ के हेतु प्रस्तुत पदार्थों की सख्या बहुत बडी है मानो राज्य की सम्पूर्ण निधियाँ उन्ही की सेवा में लगादी गयी हैं। इनका अकन कही-कही स्थिर जीवन के चित्रो (Still-life Painting) जैसा आभास देता है। सूर्योपासना से प्रभावित विषयो की विविधता छठे राज्य वश मे कलाओ के विकास की दिशा को निर्धारित करने लगी। वजीर मरेरुका तथा अन्य सभासदो के मकबरो के दैनिक जीवन-सम्बन्धी चित्रो मे विवरणात्मकता की प्रवृत्ति आयी। भौतिक जीवन की घटनाओ का विस्तार से चित्रण होने लगा और मृत्यु, शोक तथा दाह सस्कार को सासारिक जीवन का अन्त एव शाश्वत जीवन मे प्रवेश माना गया।

विषयो की विविधता होते हुए भी समस्त आकृतियाँ सामान्य (टाइप) नियमो के आधार पर बनती रही किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि कुछ मुद्राओ तथा क्रियाओ के रूप रूढ हो गये और कलाकार उन्ही की अनुकृति करते रहे। इतना अवश्य है कि एक श्रेणी के पात्रो के हेतु एक आकृति आदर्श मान ली गयी और अपने-अपने ढग से कलाकारो ने उसका विभिन्न क्रियाओ और मुद्राओ मे परिवर्तन कर लिया। कही कही उन्मुक्त रूप से खीची गयी आकृतियाँ भी मिल जाती हैं जैसे सक्कारा के तानेफरर (Ptahneferher) मस्तबे मे, जो पाँचवें राज्य व श के मध्य काल मे निर्मित हुआ था।

प्राचीन राज्य के अन्तर्गत पाँचवे राज्य वश के सरक्षण मे चित्रकला की सर्वाधिक उन्नति हुई। इसके सर्वोत्तम उदाहरण वेसरकाफ, साहुरा, तानेफरर तथा ताहोतेप (Weserkaf, Sahura, Ptahneferher and Ptahhotep) के समाधि गृहो मे उपलब्ध हैं। इनके सयोजन स्पष्ट और सरलता से समझ मे आने योग्य हैं। रिलीफ बहुत कम उभरे हुए हैं। छठे राज्यवश की आकृतियाँ उतनी अच्छी नही हैं। सयोजन मे सम्बद्धता का

अभाव है। कुछ मकबरो के रिलीफ मे अधिक उभार है। जहाँ रिलीफ मे कम उभार है वहाँ रग के प्रभाव से काम चलाया गया है। छठे राज्यवश की कला की विशेषताओ मे अधिक आकृतियाँ, अधिक गतिशीलता, भागने के दृश्यो के नये सयोजन तथा मुद्राओ पर अधिक ध्यान देना, आदि को रखा जा सकता है।

साधारण जन-जीवन के विषयो का अधिकाधिक अकन होने के साथ-साथ धार्मिक विषयो के प्रति अनिश्चय-वाद भी प्रबल हुआ। मिस्र-वासियो के मन मे यह शका होने लगी कि जीवन के उपकरणो का चित्रण तथा समाधियो के इस प्रकार के निर्माण से क्या वास्तव मे मरणोपरान्त जीवन की तैयारी पूर्ण हो जाती है ? फलत. लौकिक ऐश्वर्य के स्थान पर पुन धार्मिक कर्मकाण्ड का चित्रण महत्त्वपूर्ण हो गया। सक्कारा मे वजीर मेहू की समाधि इसी का उदाहरण है। अन्य सभासदो की समाधियो मे भी इसी प्रकार के चित्र बने। ऐसा भी हुआ कि दो-आयामी आकृतियो के साथ-साथ तीन आयामी काष्ठ प्रतिमाओ तथा उपकरणो का भी आयोजन होने लगा।

छठे राज्यवश मे गति से पूर्ण आकृतियो के साथ-साथ वर्ण-योजनाओ मे भी अन्तर आया। इस समय के रग उड़ जाने तथा चित्र नष्ट हो जाने से इसका थोडा-सा परिचय ही मिल सका है। इस के नीले, हरे तथा लाल रङ्ग पहले की अपेक्षा अधिक चमकीले और तेज है तथा रङ्गो के मिश्रण भी विविधतापूर्ण हैं। हल्के नीले के स्थान पर पृष्ठभूमि मे गहरे नीले रङ्ग का प्रयोग किया जाने लगा है। कही-कही मटमैले रङ्ग की पृष्ठभूमि भी बनायी गयी है।

अपूर्ण रिलीफ चित्रो से इनके निर्माण की विधि का अच्छा ज्ञान हो जाता है। पहले भित्ति को क्षेत्रो तथा आयतो (अथवा पट्टियों) मे विभक्त कर लिया जाता था। इसके हेतु रङ्ग से भीगा सूत्र रेखा अ कित करने के काम मे आता था। आकृतियो की भूमि-रेखा भी इसी प्रकार बनायी जाती थी। चूना पत्थर की चिकनी सतह पर आकृतियो का रेखाकन किया जाता था। सम्भवत. कडी तथा नुकीली तूलिका से यह कार्य होता था। काले रग से इन आरम्भिक रेखाचित्रो को ठीक किया जाता था। अब तक्षक अपनी नुकीली छैनी से आकृतियो का पार्श्व भाग काट देता था और उभरी हुई आकृतियो के किनारे गोल कर दिये जाते थे। आकृतियो मे गढनशीलता भी लायी जाती थी। इस पर श्वेत मसाले का पतला लेप कर दिया जाता था। इस पर चित्रकार कार्य करता था। पहले चौडी तूलिका से स्थानीय रग लगाया जाता था, तत्पश्चात् सूक्ष्म विवरण अ कित किये जाते थे। आकृतियाँ पूर्ण होने पर गहरे रग से उनकी सीमा-रेखा (Contour line) चिन्हित कर दी जाती थी।

इस प्रकार मिस्री रिलीफ मे सूत्रग्रही (Draftsman), तक्षक (Sculptor) तथा चित्रकार—तीनो का सहयोग रहता था। ऐसी स्थिति मे मूर्तिकार तथा चित्रशल्पी के कार्य को अलग-अलग देख पाना सम्भव नही है। मिस्री कला परम्परा से अनाम रही है। कुछ चित्रो पर जिन शिल्पियो के नाम मिलते हैं वे वास्तव मे हस्ताक्षर नही हैं बल्कि सम्बन्धित राजसभा के सदस्यो की सूची मे आ जाने के कारण केवल लिख दिये गये हैं। मिस्री भाषा के अनुसार सूत्रग्रही का अर्थ 'आकृति-लेखक' है जिसने एक ओर रिलीफ चित्रो तथा दूसरी ओर गूढाक्षरो के विकास का आधार प्रदान किया। वास्तव मे ये आरम्भिक आकृतियाँ लिपि के अक्षरों से अधिक कुछ नही हैं।

पाँचवें तथा छठे राजवशो के समय उच्च मिस्र के मकबरो की कला भी प्रभावित हुई। इनके निर्माण के हेतु मेम्फिस से कलाकार-शिल्पी बुलाये गये थे। एक प्रान्तीय शैली का विकास वहाँ नही हो सका। श्रेष्ठतम कलाकृतियो पर भी मेम्फाइट कला का प्रभाव है। फिर भी उच्च मिस्र की कला मे विषयो को प्रस्तुत करने की स्पष्ट पद्धति और सयोजनो की सुसम्बद्धता मेम्फाइट शैली के समान नही है।

प्रथम मध्य युग एव ग्यारहवाँ राज्यवश—प्राचीन राज्य की समाप्ति से मिस्र मे अनेक स्थानीय शासको का प्रभुत्व स्थापित हुआ। केन्द्र से सम्पर्क टूट जाने के कारण इन छोटे-छोटे शासको ने अपने मकबरो को अलंकृत करने के हेतु स्थानीय कलाकारो को ही आमन्त्रित किया। फलत कला मे प्राचीन नियमो का पालन सावधानी से न हो सका। आकृतियो मे अनुपातहीनता आयी और विषयो में भी स्वच्छन्दता आने लगी। अलखतीफी के मअल्ला मे बने मकबरे की एक भित्ति पर राजकुमारी के खिलौने तथा बत्तख एक डोरी से पेपीरस के लट्ठे के एक सिरे से बँधे

चित्रित है। निकट ही उसका पति बैठा मछली पकड रहा है। यही गधों के एक दल में एक गधा भूमि पर लेटा चित्रित है। इस युग के अधिकाश मकबरो मे रिलीफ के स्थान पर वर्ण-चित्र अधिक अकित है। प्राय मटमैले रगो का प्रयोग हुआ है। भूरे, गुलाबी तथा बैंगनी रग भी प्रयुक्त हुए है।

पैगन युग मे शिल्प की पद्धति मे कतिपय परिवर्तन किये गये। पहले आकृतियो को, मध्य मे खडी और पडी रेखाएँ खीच कर, विभाजित किया जाता था, किन्तु ग्यारहवे राजवश के समय आकृति को खानो मे अकित किया जाने लगा। खाने खीच कर चित्र बनाने से आकृति के सभी अग-प्रत्यग अधिक बारीकी एव शुद्धता से चित्रित किये जा सकते थे। मेम्फाइट आकृतियो की अनुकृति एव नवीन आकृतियो के सृजन-इन दोनो ही क्षेत्रो में चारखानो का प्रयोग बहुत लाभदायक प्रतीत हुआ। इनके कारण ही मिस्र मे एक नई कला-परम्परा की स्थापना हुई। नफ्रू, मेनतूहोतेप द्वितीय आदि के मकबरो मे इसके उदाहरण चित्रो एव प्रतिमाओ मे देखे जा सकते है। मेनतूहोतेप तृतीय के समय तक रिलीफ मे बहुत विकास हुआ। आकृतियो मे स्पष्टता तथा सन्तुलन आ गया। अनुपात भी शुद्ध होने लगे। गढनशीलता मे विविधता आयी। विवरणो की अपेक्षा आकृतियो के समग्र प्रभाव पर अधिक ध्यान दिया गया। आकृतियो के चारो ओर अधिक रिक्त स्थान छोडा जाने लगा। काष्ठ-निर्मित नारी-प्रतिमाएँ अब भी प्राचीन परम्परानुसार बनती रही। पुरुष-प्रतिमाओ मे ज्यामितीय नियमो की सूक्ष्मता मिलती है।

मध्ययुगीन राज्य (The Middle Kingdom)—इस युग के समाधिगृहों की छतो पर अनेक आलेखन चित्रित किये गये। इस युग के भित्ति-चित्रो के अश बडी छिन्न-भिन्न अवस्था मे है। समाधिगृह प्राय ईंटो के बनते थे और उनका महत्वपूर्ण केन्द्रीय भाग ही पत्थर से बनाया जाता था। भवनो के स्तम्भो आदि पर आकृतियाँ उत्कीर्ण एव चित्रित की जाती थी। स्थूल रिलीफ तथा डूबे हुए रिलीफ दोनो ही पद्धतियो से यहाँ कार्य हुआ है। खाने खीचकर आकृतियाँ बनाने वाली परम्परा से एक राजकीय शैली (Royal Style) का विकास हुआ। इस समय की आकृतियो मे भी विवरणो की अपेक्षा समग्र प्रभाव की प्रधानता है। शैली मे स्पष्टता एव प्रौढता है। कुछ समाधि-गृहो के चित्र अलकरण-सौंदर्य के कारण भी आकर्षक हैं। कही-कही चित्राकृतियाँ गूढाक्षर लिपि के सदृश अकित हैं और उनके नीचे विभिन्न पात्रो के नाम लिख दिये गये है।

मध्ययुगीन राज्य मे कुछ नवीन विषय भी चित्रित हुए। सभासदो के साथ राजकुमार की सैर, स्थानीय महत्वपूर्ण घटनाएँ आदि इसमे विशेष उल्लेख्य हैं जिन पर छठे तथा सातवे राज्यवश के समय की कला का भी प्रभाव है। बेनी हसन मे एक सामी कारवा के आगमन का अकन है। एक अन्य स्थान अल बरशह पर एक विशाल मूर्ति को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के प्रयत्न का चित्रण हुआ है। इस प्रकार के चित्र मिस्र की सुनिश्चित तिथियो से सम्बन्धित है जब कि मिस्री कला की प्रतिमाएँ तिथिहीन एव परम्परागत नियमो से बँधी हैं।

प्राचीन युग के समान इस युग में कला न तो धर्म और सामाजिक व्यवस्था के ही अधीन रही और न ही उसका शनै शनै सुनिश्चित एव रूढिगत विकास हुआ। कुछ सामान्य तत्वो के होते हुए भी इसमें बहुत विविधता है। शैली तथा अभिप्रायों के चयन मे समाधिगृहो मे पर्याप्त अन्तर है। कही-कही तो एक ही स्थान पर शैलीगत भेद दिखाई पडते हैं। इनसे अनुमान होता है कि किसी एक सम्प्रदाय अथवा दल के कलाकारो के स्थान पर अनेक अलग-अलग ढग के कलाकारो को सम्राट अपनी सेवा में आवश्यकता पडने पर नियुक्त कर लेते थे।

जिन मकबरों की चट्टानो का पत्थर अनुकूल था वहाँ भित्तियो का अलकरण उत्कीर्ण चित्रो द्वारा किया गया है किन्तु जहाँ ऐसा सम्भव नही था वहाँ चित्रकारी ही की गयी है। इस युग मे आकर चित्रकला केवल रिलीफ के स्थान पर काम दे जाने वाली कला न रह कर स्वतन्त्र रूप मे विकसित हुई। अल-बरशह मे जहूती-हैतप के मकबरे मे चित्रित रिलीफ का अकन है। इस विधि से सम्राट एव राज-परिवार के सदस्यो को प्रस्तुत किया गया है। खेतों, उद्यानों एव घरेलू-जीवन के दृश्यों को चूना पत्थर की चिकनी दीवारो पर चित्रित किया गया

है जिनमे प्रमुख एव महत्वपूर्ण व्यक्ति भी दिखाये गये हैं। यहाँ आकृतियो की गतिशीलता एव सयोजनो की सुसम्बद्धता के सम्बन्ध मे स्थान-स्थान पर अनेक नये प्रयोग किये गये है। बेनी हसन की भित्तियो को अलकृत करने वाले मल्लयुद्ध के अगणित रूप भी सम्भवत इसी दृष्टि से प्रस्तुत: किये गये हैं कि उनमे मानवाकृति को असाधारण मुद्राओ मे प्रस्तुत किया जा सकता है। गडरियो एव हरिणो के चित्र भी इस दृष्टि से बनाये गये हैं। निकट और दूर के रिक्ताकाश मे आकृतियो को विविध मुद्राओ मे प्रस्तुत करना केवल चित्रकला मे ही सम्भव है। मीर के निकट सनबी के मकबरे मे अकित आखेट-दृश्य मे इसी प्रकार के प्रयोग किये गये हैं। पहले जहाँ पट्टियाँ अथवा आयत बनाकर चित्र विभक्त किये जाते थे वहाँ अब टीलो की भाँति पृथ्वी का अकन किया गया है और उसी के विभिन्न स्थानो पर मानव एव पशु आधारित हैं। उखहोतप मे इसी विधि का और अधिक विकास दिखायी देता है।

इस युग के चित्रो का जो वैभव अपने निर्माण के समय रहा होगा, आज उसका बहुत थोडा-सा अश ही शेष है। कहीं-कही सम्पूर्ण सयोजनो की सीमा रेखाओ का पुर्ननिर्माण भी सभव है जैसे हफ-जफा प्रथम के मकबरे के भित्ति-चित्र। काब अल कबीर के मकबरे मे उद्यान और पक्षियो को जाल द्वारा पकडने के चित्र मे वृक्ष, पत्तिया, झाडियाँ एव लताएँ सरल रेखा एव रगो से बनाई गई हैं किन्तु पैपीरस के तने बडी सुन्दर विधि से चित्रित हैं। इनके पुष्प भी सुन्दर विधि से अकित हैं।

अलबग्शह् मे एक लकडी की समाधि-मजूषा अपनी मौलिक स्थिति मे सुरक्षित है। यह राजा जहूती नख्त की है। इस पर लघु-चित्रण पद्धति के अलकरण चित्रित हैं जिसमे मृत राजा को भेट ले जाते हुए सेवको की पक्तियाँ बडी सुन्दरता से अंकित हैं। इनमे एक फाख्ता (Dove) की आकृति बडी रमणीय है। नीले रंग से चौडे स्पर्शों के द्वारा लम्बी पूछ एवं पख बनाये गए हैं। शरीर पर नीले बिन्दु हैं जिनके बीच-बीच मे लाल रेखाये है। गहरे तथा हल्के भूरे रग से बिन्दु वर्तना (Stippling) का भी प्रयोग किया गया है। लगता है जैसे बडे कोमल तथा आभामय पखो वाला पक्षी सामने काष्ठ के धरातल पर महीन तूलिका से चित्रित किया गया है। सीमा रेखाओ का चित्रण नही है। एक अन्य चित्र मे राजा के शरीर को भी बिन्दु वर्तना से दिखाया गया है। अगरु के एक पात्र मे से उठता धुआँ हल्के नीले रग से अकित है। मध्यकालीन राज्य के अन्तिम चरण मे चित्रकला की समस्त परम्पराएँ एव रूढियाँ टूटने लगी थी और रगो का प्रभाव बिन्दुओ द्वारा कुछ-कुछ वर्तमान प्रभाववादी पद्धति से प्रस्तुत किया जाने लगा था। आकृतियो की सीमा रेखाये बनाना भी कम हो गया था।

सम्राटो तथा सभासदो के समाधि-गृहो के अतिरिक्त पूजागृहो की शिलाएँ चित्रित हुई जिनकी कला अन्य स्थानो की कला से पूर्णत: स्वतन्त्र है। इनमे सीमा रेखा की स्पष्टता है तथा सयोजन भी धीरे-धीरे स्पष्ट होते गए है। डूबे हुए रिलीफ की प्रधानता मध्यकालीन राज्य की प्रमुख विशेषता है।

नवीन राज्य—(अठारहवें राज्यवश से २० वें राज्यवश तक—१५७० ई. पू से १०८५ ई पू तक)—इस युग मे थेबन राजाओ ने मिस्र की सीमाओ का विस्तार किया। फिलिस्तीन, सीरिया, नुबिया आदि की विजय करके उन्हे मिस्र मे मिला लिया गया। देश की पर्याप्त समृद्धि हुई। इस समय की राजधानी थेब्स (Thebes) बडी ऐश्वर्यशालिनी थी जिसका नगर देवता 'आमेन' राष्ट्रीय देवता बन गया। विदेशी सम्पर्क से मिस्र का दृष्टिकोण विस्तृत हुआ और मिस्र की एकान्तता समाप्त हुई। हिट्टाइट साम्राज्य से सीमाएँ लगने के कारण मिस्र अब अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे भी रुचि लेने लगा।

इस समय की लगभग पाँच सौ वर्ष की कला प्राय तीन युगो मे विभक्त है जो राजनीतिक परिवर्तनो के लगभग युगपद चली है। थुतमोसिस तृतीय से आमेनहोतप तृतीय तक, अर्थात् १५५० से १३७० ई. पू के लगभग तक का युग कला के निरन्तर विकास एव उत्कर्ष का प्रथम काल रहा है। प्राय थेबन अभिप्रायो एव नियमो के आधार पर ही इस समय की कला विकसित हुई।

दूसरा काल सकट का युग रहा। आमेनहोतप तृतीय के अतिम वर्षों से यह सकट आरम्भ हुआ और उसके पुत्र के शासन काल तक चला। इस युग की मिस्री कला बडी व्यजनात्मक समझी जाती है।

तीसरा युग उन्नीसवें तथा बीसवें राज्यवशो से सम्बन्धित है। इस समय तानी (Tanis) मे राजधानी स्थापित हुई। थेब्स धार्मिक राजधानी बनी रही। इस समय पूर्व तथा उत्तर से खतरा उत्पन्न हुआ। यद्यपि इस समय भवनो का आशातीत सख्या मे निर्माण हुआ किन्तु उनमे एक प्रकार की जडता एव रूढि दिखाई देती है।

नवीन राज्य के भवनो मे पत्थर का प्रयोग बहुतायत से हुआ है जिसके कारण दीवारो पर रिलीफ के हेतु पर्याप्त स्थान उपलब्ध हो सका है। कारनाक, लक्सर तथा उन्नीसवें-बीसवें राजाओ के समाधि-गृहो की रचना इसका प्रमाण है। सभी स्थानो पर रिलीफ का कार्य अलकरण का एक मात्र साधन था। कोमल से कोमल रेखाओ वाली आकृतियाँ भी रिलीफ मे अकित की गई हैं। मन्दिरो मे राजा को देवताओ के सम्बन्धी के रूप मे एव विभिन्न लोकोत्सवो के सरक्षक के रूप मे चित्रित किया गया है। अठारहवें राज्यवश के पश्चात् ही युद्ध के दृश्यो का अकन हुआ है। 'दीर अल बाहरी' मे रानी हातशप्सुत के पूजागृह तथा लक्सर के तूतनखामन के विजयस्मारक इसके अपवाद हैं।

चट्टानो को काटकर बनाए गए समाधि-गृहो मे रिलीफ के हेतु अनुपयुक्त पाषाण होने के कारण भित्ति-चित्र अकित हुए। प्राय दैनिक जीवन के विषयो का स्वतन्त्रता से चित्रण हुआ। इस समय के रिलीफ कार्य की शैली में शक्तिमत्ता है, व्यक्ति चित्रण मे मुखाकृतियो की विशेषताओ का ध्यान रखा गया है तथा प्रतिमाओं को अधिकाधिक मानवीय अनुभूति के लक्ष्य से प्रस्तुत किया गया है। हातशप्सुत के पूजागृह मे रानी की गर्भिणी माता को देवी-देवताओ द्वारा प्रसूत-गृह की ओर ले जाते हुए दर्शाया गया है और इस प्रकार रानी की सन्तान और देवी-देवताओ में सम्बन्ध स्थापित किया गया है। एक भित्ति पर सोमालिया से प्राप्त सुगन्धित द्रव्यो, मिस्री सेना आदि का अकन है। मिस्री राजदूत को योद्धाओ के साथ सोमालिया में उपस्थित दिखाया गया है। सोमालिया की रानी, नुकीली झोपडियो तथा वहाँ के पशु-पक्षियो का भी अकन हुआ है। रानी को बहुत स्थूल चित्रित किया है। कुछ समय पश्चात् थुतमोसिस तृतीय हुआ। उसके समय अकित एक भित्ति-चित्र मे सीरिया के पशु-पक्षी एव पुष्प चित्रित हैं जिन्हें वह वहाँ से लाया था। ये चित्र करनाक (Karnak) मे है।

इस युग की रिलीफ मानवाकृतियो मे सहजता एव लावण्य है। मुद्राएँ परिष्कृत एव मर्यादित हैं। चलती-फिरती तथा बोझ उठाती आकृतियाँ भी किसी दबाव का सकेत नही देतीं। चित्रो का परिचय उनके साथ ही लिखा हुआ है। भद्रिका के समान सूक्ष्म रिलीफ आकृतियाँ, कोमल रग-विधान, दीवारो की बहुरगी वर्णिका आदि मिलाकर बडा आकर्षक प्रभाव उत्पन्न करते हैं। इन सबसे तत्कालीन परिस्थितियो का बडा स्पष्ट आभास मिलता है। थुतमोसिस तृतीय के समय की एक भित्ति पर सम्राट द्वारा आमेन के सामने युद्ध बन्दियो को दण्ड देने की घटना भी उत्कीर्ण है। अठारहवे राज्य वश के समय के चित्र प्राचीन परम्पराओ का अनुकरण सूचित करते हैं। इसके प्राचीनतम उदाहरण १५ वे समाधि-गृह मे मिले हैं। जो कुछ नये विचार इस युग मे उत्पन्न हुए, उन्हे बाद की पीढी में प्रौढता मिली। (फलक २ ख)

भावपूर्ण कलाकृतियो मे इस परिवर्तन का मुख्य आधार शारीरिक अनुपातो एव नियमो के आधार पर आकृति-चित्रण था। शरीर का अगानुसार विभाजन (Grid System) जो मध्यकालीन राज्य की उपलब्धियो के आधार पर विकसित हुआ था, इसमे बहुत सहायक सिद्ध हुआ। मिन्नाख्त के अवशेष इसके विशिष्ट उदाहरण हैं। यहाँ शोकार्त्त स्त्रियो की मुद्राएँ, उनके विभिन्न वर्ग, उनकी शारीरिक स्थितियाँ-सभी कुछ प्राचीन परम्परानुसार गूढाक्षर विधि से अकित हुए हैं। इनकी बाह्य रेखाये बडी स्पष्टता और शीघ्रता से खीची गयी हैं। आकृति-समूहो को सुव्यवस्थित आयतों मे सयोजित किया गया है तथा हल्की नीली पृष्ठभूमि के साथ आकृतियो मे पीला, काला एव श्वेत रग भरा गया है। मृतक-सम्कार की अन्य क्रियाये शोकार्त्त स्त्रियों के चित्रो के ऊपरी भाग में दिखायी गई हैं जहाँ एक जलाशय तथा उद्यान सहित भवन भी अकित है। इस प्रकार इस युग से कला मे स्थानीय जलवायु तथा वातावरण चित्रित करने का प्रयत्न भी आरम्भ हुआ।

नवीन राज्य के विषय राज्य एव समाज द्वारा देश, काल तथा व्यक्तिगत मान्यताओ के आधार पर निश्चित किये जाते थे। इस प्रकार शाश्वत नियमो तथा परम्परागत विषयो को अकित करने वाली प्राचीन मान्यताओ में परिवर्तन होने लगा। मृत सम्राटो के जीवन मे घटित हुई अनेक साधारण घटनाओ-जैसे सभा मे विदेशी दूतागमन, उत्सव, अन्य देशो से मगाई वस्तुओ का निरीक्षण—आदि का भी चित्रण होने लगा। वजीरो को राज्य-कार्यों का निरीक्षण करते हुए, सेनापतियो को सेना का सचालन करते हुए आदि विषयो को भी स्थान मिलने लगा, किन्तु प्राचीन विषय पूर्णत विस्मृत नही किये गये। पक्षी तथा मछली पकडना एवम् जगलो मे पशुओ के आखेट के दृश्य भी चित्रित हुए। इन चित्रो मे एक परिवर्तन आया। जगली पशुओ के आखेट के दृश्यो मे शिकारी राजा को घोडो द्वारा खीचे जाने वाले छोटे रथ मे आरूढ दिखाया जाने लगा। जगली पशु चौकडी भरकर भागते चित्रित होने लगे। ये तत्व यहाँ की कला मे हिक्सास (Hyksos) आक्रान्ताओ द्वारा समाविष्ट किये गये। वैसे कही-कही प्राचीन युग मे भी इस प्रकार के चित्र बने थे।

इस समय इन लोगो के धार्मिक विश्वासो मे भी परिवर्तन हुआ। 'आमेन' नामक देवता की वार्षिक सवारी निकाली जाने लगी। उसे नदी मे नावो पर सैर कराई जाती, तत्पश्चात् उसे देवी हाथोर (Hathor) के मन्दिर का निरीक्षण कराया जाता और इसके उपरान्त उसे सभी मृत राजाओ के समाधि-गृहो मे ले जाया जाता। इन समाधि-गृहो मे सम्बन्धित परिवारो के लोग एकत्रित होकर रात भर आमोद-प्रमोद मनाते और मृत पूर्वज को भी उसमें सम्मिलित करने के हेतु भित्ति पर उसके बडे आकार के चित्र अकित करते। उसे एक शानदार भोज मे सम्मिलित दिखाया जाता। इस प्रकार समाधि-गृहो के भीतरी कक्षो की उन दीवारो पर भित्ति-चित्र बनने लगे जहा शव को रखा जाता था।

नवीन राज्य की शैली के आरम्भ से आमेनहोतप तृतीय के शासनकाल तक की कला का विकास थेबन शासको एव अधिकारियो के समाधि-गृहो मे स्पष्ट देखा जा सकता है। यद्यपि नवीन राज्य की आकृतियाँ भी प्राचीन सिद्धान्तो के आधार पर बनी थी तथापि इनमे छरहरापन, फुर्ती तथा हल्कापन है, मुद्राएँ बड़ी सुन्दर हैं तथा चेष्टाएँ अभिव्यजनापूर्ण हैं। तूलिका बडी आर्द्र है और रग योजना मे सूक्ष्मता से अनेक बल प्रस्तुत किये गये हैं। थुतमोसिस तृतीय के समय की कला मे विलास-वैभव तथा शान-शौकत का चित्रण हुआ है, मुख्य रूप से शानदार भोज सम्बन्धी चित्र बहुत बने हैं। आमेनहोतप द्वितीय के समाधिगृह मे लम्बी क्षैतिज पट्टियो मे भोज का दृश्य अकित है। भोजन करने वाले व्यक्ति भूमि पर सरकण्डो के आसन बिछाकर बैठे हैं। उनके शिर पर कुल्लेनुमा सफेद टोपी है। युवती बालाएँ उनके प्यालो मे मदिरा उडेल रही है तथा उन्हे पुष्पहार पहना रही है। आकृतिया एक दूसरी पर आक्षिप्त (Overlapping) भी चित्रित की गई हैं इससे चित्रो में स्वाभाविकता तथा गहराई का समावेश हुआ है।

थुतमोसिस चतुर्थ के समय के एक समाधिगृह मे भी इसी प्रकार के विषयो का अकन हुआ है। कुमारिकाएँ लम्बे केश, सुवर्णमय कुण्डल आदि से युक्त तथा अपूर्व सौन्दर्यमयी हैं। उनके नेत्र किंचित झुके हैं। इस युग मे इस प्रकार के दृश्यो को कुछ स्वतन्त्रतापूर्वक चित्रित करने की प्रवृत्ति आरम्भ हो चुकी थी। नवीनता, नारी-सौंदर्य के प्रति आकर्षण, सहजता, स्वाभाविकता और जीवन के समान वास्तविकता एव जीवन के प्रति निकटता की ललक इस युग की कला मे दृष्टिगोचर होती है। इन चित्रो मे प्रमुख-व्यक्तियो को एक पट्टी मे तथा गौण पात्रों को अन्य पट्टियो मे चित्रित किया गया है, उदाहरणार्थ नर्तकियो का समूह एक पृथक स्थान पर चित्रित है, ऊपर की पट्टी मे अतिथि बैठे हैं और नीचे की पट्टी मे एक वशी-वादिका, तीन गायिकाएँ तथा दो नर्तकियाँ अकित हैं। गायिकाएँ हाथो से ताल दे रही है। नर्तकियाँ अलकृत किन्तु अनावृत्ता हैं। दोनो के शरीर मे पर्याप्त गति दर्शायी गयी है। एक नर्तकी ऊपर की ओर तथा दूसरी नीचे की ओर ताली बजाती हुई अकित है। एक का मुख गायन-वादन करती युवतियो की ओर है, दूसरी विपरीत दिशा मे उन्मुख है। कलाविदों के विचार से इन चित्रो के माध्यम

से नारी-सौंदर्य की अन्तहीन विविधता को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। एक-दूसरे पर आक्षिप्त आकृतियो तथा पार्श्व एव सम्मुख मुद्राओ द्वारा चित्रगत विस्तार का सयोजन किया गया है। यद्यपि आकृतियो मे घनत्व का आभास मिलता है तथापि वे द्विविस्तारात्मक नियमो के आधार पर चित्रित हुई हैं। आकृतियो की सभी प्रकार की गढनशीलता का प्रभाव सरल आधार रेखा एव पृष्ठभूमि मे अ कित लिपि के द्वारा समाप्त कर दिया गया है। इन चित्रो मे जालीदार परदाज तथा बिन्दुवर्तना (दाना परदाज) का भी प्रयोग हुआ है। इस विधि मे चित्रण करने वाले चित्रकार स्वतन्त्रतापूर्वक आकृतियां बनाने लगे। उन्हे आन्तरिक रेखाकन (under-drawing) की आवश्यकता न रही। फिर भी महत्वपूर्ण व्यक्ति-चित्रो मे इस विधि का प्रयोग नही हुआ है। आरम्भ मे नीले-हरे तथा श्वेत आदि प्रधान र गो का प्रयोग हुआ। धीरे-धीरे र गो मे विविधता एव पारदर्शिता आयी। फिर भी प्राय आभाहीन, अपारदर्शी रगो का ही प्रयोग इस युग की प्रौढ कला मे अधिक हुआ है।

इस युग की आखेनातन के समाधिगृह की कला मे सूर्योपासना-सम्बन्धी विषयो का अ कन हुआ है। सम्राट के पारिवारिक जीवन के दृश्यो को भी स्थान मिलने लगा है। इस स्थान की आकृतियाँ बडी दुर्बल तथा अनुपात-विहीन प्रतीत होती हैं। लगता है कि रुग्ण मनुष्यो का चित्रण किया गया है। आखेनातन के युग की कला मे विषयो तथा शैली मे यह परिवर्तन बडा महत्वपूर्ण माना गया है। कहा जाता है कि वह कलाविद् नही था, फिर भी उसने कला की धारा को मोड दिया। प्राचीन परम्पराए प्राय समाप्त हो गयी। इस परिवर्तन का कारण विषयो की धर्म-विहीनता, आकृतियो की व्य जनापूर्णता, एव विभिन्न प्रकार के क्षणिक क्रिया कलापो मे रुचि का उत्पन्न होना था।

आखेनातन के पश्चात् उसका दामाद तूतनखामन सम्राट हुआ। उसके समय का बहुमूल्य सिंहासन सुरक्षित है और इसके साथ-साथ अन्य अनेक वस्तुए भी मिली है। सिंहासन की पीठ पर सम्राट और उसे कोई पेय भेंट करती हुई साम्राज्ञी अंकित हैं।

उन्नीसवें राजवश मे राजा की दैवी-भावना को पुन प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया गया। देवताओ तथा ईश्वर की यात्राओ एव उत्सवो से सम्बन्धित प्राचीन विषय पुन चित्रित होने लगे। उन्नीसवें तथा बीसवें राज्यवशो के समय विदेशी आक्रमणो के कारण देश की सुरक्षा का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण हो गया और राजाओ की वीर-भावना को बलवती करने के हेतु इसी प्रकार के चित्र भी बनाए गये। राजा को युद्ध करते हुए तथा युद्ध मे शत्रु का सहार करते हुए अकित किया जाने लगा। उसे रथारूढ भी दिखाया गया। इन चित्रो मे वास्तविक सघर्ष न दिखाकर प्राय. शत्रु का पलायन ही दर्शाया गया है। बीच-बीच मे भौगोलिक चिन्ह भी अंकित हैं। परवर्ती चित्रो मे वास्तविक युद्ध को भी चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है। सघर्ष, व्यूह-रचना एव विजय, सभी कुछ प्रस्तुत करने की चेष्टा हुई है। रैमसेस द्वितीय के कादेश के युद्ध का दृश्य इसका अच्छा उदाहरण है। इस युद्ध का जो साहित्यिक विवरण उपलब्ध है, उससे इस चित्र की घटनाएँ बहुत अधिक मेल खाती हैं। परवर्ती राजाओ के समय इस प्रकार के चित्रो के सूक्ष्म विवरण प्राय बिल्कुल भी अकित नही किये गये है।

इन राजवशो के समय की कला मे से पूर्वकालीन उल्लास तथा उत्सव-सम्बन्धी आमोद-प्रमोद के विषयो का निष्कासन-सा हो गया है। प्राय. धार्मिक क्रिया-कलापो का ही अकन हुआ है। आकृतियाँ यन्त्रवत् और जड हैं तथा रूढिगत होने के कारण नीरस है। शुष्क रेखांकन, आभाहीन एव सीमित रग एकरसता का प्रभाव उत्पन्न करते हैं। कठोर आकृतियाँ फीके पीले धरातल पर चित्रित है। जीवन की प्रसन्नता को अंकित नही किया गया है। कही-कही मछली पकडने आदि के दृश्य अवश्य मिले है। इन चित्रो मे पशु-पक्षियो तथा वनस्पति का अंकन किंचित् उन्मुक्त रूप से हुआ है। चित्रण मे सहजता और मौलिकता है।

नवीन राज्य के उत्सवो मे फूलो का बहुत महत्व था अत दीवारो पर पुष्प-मालाओ के अनेक अलकरण चित्रित हैं। कुछ विद्वानो का विचार है कि प्रकृति के इस प्रकार के अकन मे क्रीटन कला का प्रभाव है।

मालकेता के राजमहल मे बने अनावृत राजकुमारियो के चित्रो मे केवल रगो से ही गढनशीलता का प्रभाव उत्पन्न किया गया है। कुछ अन्य समाधि-गृहो मे भी इस प्रकार के चित्र उपलब्ध हुए हैं। दीर-अल-मदीनह के एक चित्र मे वंशी बजाकर नाचती हुई एक गणिका की आकृति गृह-स्वामी की शय्या के सिरहाने एक विशिष्ट क्षेत्र मे अकित है।

नवीन राज्य के पश्चात् की कला—२१ वें से २४ वे राज्यव श तक (१०८५—७१२ ई पू)

इस युग का मिस्र थेबन तथा थीनी—इन दो भागो मे विभक्त हो गया। लीबियन राजाओ का २२ वाँ वश केवल कुछ ही समय तक यहाँ एकता रख सका यद्यपि इसके पश्चात् थेबन परम्परा राजनीतिक दृष्टि से दुर्बल हो गयी किन्तु उसकी कला-परम्परा प्राय. २५ वें वश तक चलती रही। निर्धनता के कारण देश मे किसी बडे स्मारक का निर्माण नही हुआ। राजाओ ने प्राचीन भवनो पर अधिकार कर लिया और उन्ही में किंचित् वृद्धि कराते रहे। २१ वें राज्यवश के समय बने समाधि-गृहो के साथ-साथ कला का थेबन युग समाप्त हो गया किन्तु थेबन विषयो की परम्परा २२ वे राजवश के समय भी अनुकृत हुई। इस समय के समाधिगृह प्राय स्थानीय कला-परम्पराओ के आधार पर ही चित्रित हुए है, अत सम्पूर्ण देश की दृष्टि मे किसी एक परम्परा के विकास की विभिन्न स्थितियो का अनुमान इसके आधार पर नही लगाया जा सकता। नुबियन युग के समाधि-गृहो मे, जो कि २५ वें २६ वे व शो के है, प्राचीन विषयो का अकन हुआ है। २६ वें व श के आरम्भ मे शरीर की रचना मे कुछ अन्तर आया। इस समय पैर के तलवे से ऊपर के पलक तक शरीर को २१ भागो मे बाँटा गया। नवीन राज्य के समय यह १८ भागो मे विभक्त किया जाता था। इस समय की आकृतियो की सीमा रेखाये पहले के समान स्पष्ट तथा विवरणात्मक नही है। जहा प्राचीन आकृतियो के आदर्श का पालन हुआ है वहा भी अनुकृति न होकर किंचित् परिवर्तन मिलता है। इस यु ग के कुछ उत्कीर्ण चित्रो मे वृद्धावस्था का अकन भी मिलता है। इस प्रकार की आकृतियो मे किंचित् यथार्थवादिता भी है। इस युग के अन्त मे जो चित्र उत्कीर्ण हुए उनमें बडे सिर, विवरणो की बारीकी, आकृतियो की विशालता तथा अधिक से अधिक स्थान मे आकृतियाँ अकित करने की प्रवृत्ति, आलंकारिक पुष्पो के अभिप्राय तथा बडी सुन्दर और बहुत-सी सलवटें पडे हुए वस्त्र आदि विशेषताएँ प्रचुरता से मिलती हैं। आकृतियो में घनत्व तथा मुद्रानुसार सही स्थिति को भी अकित करने का प्रयत्न हुआ है।

नुबियन सम्राटो को अपनी विजय के चित्र अंकित कराने का भी शौक था। नव मेम्फाइट शैली मे अकित नुबियन सम्राट तहरका अपने शत्रु लीबियन राजा तथा उसके परिवार पर विजय प्राप्त करते हुए नृसिह (Sphinx) के रूप मे अकित है। फारसी विजय के उपरान्त बने उत्कीर्ण चित्रो मे पृष्ठभूमि का चिकनापन तथा आकृतियो की रुक्षता दर्शनीय है। फारसी शासन के अधीन होने पर मिस्री कला मे ओज का भी समावेश हुआ।

रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत मिस्र मे अलकरण का स्थान सकुचित हो गया। सयोजन मे एक-रूपता आने लगी और विवरण भी प्राय एक से ढग से दिये जाने लगे। हेलेनिक शैली का कोई विशेष प्रभाव नही पड़ा और प्राचीन मिस्री नियमो का ही पालन होता रहा। चित्रों के आन्तरिक क्षेत्र (Picture-Plane) मे ही गूढाक्षर लिखे जाते रहे। रोमन प्रभाव से रग-योजनाओ मे कुछ अन्तर आया। पृष्ठभूमि अब मटमैली हरी बनायी जाने लगी। बादामी एव बैंगनी रगो को आकृतियो मे भरा जाने लगा। हैलेनिक कला के अनेक अभिप्राय मिस्र मे प्रयुक्त हुये। दैनिक जीवन-सम्बन्धी दृश्यो का भी चित्रण हुआ। (फलक ३)

मिस्र की कला का समुचित अध्ययन तब तक सम्भव नही है जब तक कि उस सुदीर्घ काल-विस्तार को ध्यान मे न रखा जाय जिसमें कि वह विकसित हुई। पाषाणयुगीन गुफा-चित्रकला को छोडकर, यह अनिवार्यत राजकीय कला रही है। जिन यु गो मे फराऊनी शासन सर्वाधिक सुदृढ रहा था उन्हीं युगो मे मिस्र की कला ने भी उन्नति की; और सम्राटो के पतन के साथ ही इस कला का पतन हुआ। जैसे-जैसे मिस्री शासन की राजधानियाँ बदलतीं रही, कलात्मक गतिविधि के केन्द्र भी बदलते रहे। इनके अतिरिक्त बड़े-बडे नगरो मे भी कलाकारो ने विशाल चित्रशालाएँ स्थापित कर ली थी। सम्राटो का अनुकरण करने वाले स्थानीय शासनाधिकारी इन कला-

कारो के संरक्षक थे। प्रत्येक नगर मे एक छोटा-सा मन्दिर होता था जो एक प्रकार से संग्रहालय का कार्य करता था। इसमे अनेक प्रकार के वस्त्रो, आभूषणो, कलाकृतियो आदि का भंडार रहता था। ऊँचे अधिकारी अपने हेतु शानदार समाधियाँ बनवाते थे। ये समाधिगृह किसी भी दरबार से कम वैभवपूर्ण नही होते थे। नील नदी के किनारे बनी समाधियाँ इस ऐश्वर्य की मौन गाथा आज भी कह रही हैं।

आज हमे इसका कुछ भी ज्ञान नही है कि इन समाधियो को बनाने और अलकृत करने वाले कलाकार कौन थे। किसने इनकी योजनाएँ बनाईं—और किसने उन योजनाओ को कार्य रूप मे परिणत किया। शिल्पियो ने चित्रो अथवा प्रतिमाओ पर कही भी अपने नाम के चिन्ह नही छोडे। कुछ सम्राटो की प्रशसा मे जो अभिलेख लिखे गये उनमे सम्राटो को अनेक गुणो से अलकृत कहा गया है और उन्हें 'कारीगर' की उपाधि से भी विभूषित किया गया है। मिस्र मे सभी प्रकार के कलाकार 'कारीगर' (हेमूत) कहे जाते थे। 'हेमू' का अर्थ 'कार्य' है।

मिस्र की कलाएँ स्थानीय प्रकृति से प्रभावित है। वहाँ की पर्वत—मालाओ की नीची क्षैतिज रेखा के अनुकरण पर प्राकृतिक दृश्यावली के अनुरूप ही भवनो तथा पिरामिडो की रचना की गयी है। सडकें तथा नहरें सँकरी होने के कारण दो नावें अथवा दो व्यक्ति भी कही-कही एक साथ नही निकल सकते। यही बात यहा के चित्रो मे भी है। दीवारो पर लम्बी-लम्बी आयातकार पट्टियाँ बनाकर जुलूसो के समान आकृति-सयोजन किया गया है। जहाँ-कही कलाकार ने स्वतत्रता से कार्य किया है वहाँ इसके अपवाद भी मिल जाते हैं।

मिस्री कलाकार ने क्षैतिज तथा ऊर्ध्व धरातलो को एक साथ भी चित्रित किया है। किसी पर्यङ्क के पाँव चित्रित करने के उपरान्त सम्मुख परिप्रेक्ष्य मे ही ऊपरी भाग का अकन कर दिया गया है मानो ऊपर से देखा गया हो। उद्यानो, तालावो आदि को भी वर्ग अथवा आयत के रूप में अकित किया गया है। मानवाकृतियाँ सीधी खडी हुई अथवा पार्श्व मुद्रा मे चित्रित हुई हैं।

परिप्रेक्ष्य से आकृतियो मे विकार उत्पन्न होता है। दूर की वस्तुएँ छोटी हो जाती है, वृत्त वलय अथवा बदामा में बदल जाता है, और वर्ग शकर-पारे की भाँति दिखायी देने लगता है। मिस्री कलाकार ने इन परिवर्तनो को स्वीकार नही किया। उसके हेतु सभी वस्तुओ का एक आदर्श रूप है और उसी मे उन्हें अकित किया गया है। निकट और दूर की मनुष्याकृतियाँ परिप्रेक्ष्य के बजाय महत्व के अनुसार छोटी-बडी चित्रित हुई हैं। वे प्राय देवता, राजा अथवा सामन्तो के वर्गो मे विभक्त हैं। पशु प्राय पार्श्व मुद्रा मे हैं जिससे कि इन्हें सरलता से पहचाना जा सके। फिर भी वे रूढ-रूपो मे चित्रित नही हैं। पक्षी उडते हुए, फुदकते हुए तथा पख बन्द करके उतरते हुए बनाये गये हैं। वृषभ गर्दन मोड कर पीछे देखते, तग करने-वाले बच्चो से दूर भागते हुए अथवा भूमि कुरेदते हुए चित्रित हैं। उनका द्वन्द युद्ध भी अकित किया गया है। मनुष्य का शिर पार्श्व स्थिति मे, सम्मुख नेत्र, सम्मुख स्कन्ध, त्रि-पार्श्व कटि एव दोनो पैर पार्श्व स्थिति मे हैं। कार्यरत व्यक्ति को प्राय एक स्कन्ध वाला ही दिखाया गया है। मिस्री कलाकार मनुष्य का छाया-चित्र बिना विकृति के और सही-सही भी अकित कर सकता था, यह पार्श्व मुद्रा वाली मूर्तियो के रेखाकन से स्पष्ट ज्ञात होता है फिर भी ऐसे चित्र बहुत कम हैं।

पक्तिबद्ध व्यक्ति-समूह चित्रित करने मे सबसे आगे वाली आकृति बनाकर उसके पीछे समान आकार वाली अन्य आकृतियो के अग्रभाग का ही चित्रण कर दिया जाता था। गधो के कान, वृषभो के सीग, जलयानो के मस्तूल एव सैनिको के शिर, सब एक ही तल पर चित्रित किये गये हैं। इसे त्रुटि नही समझनी चाहिये क्योकि मिस्र का कलाकार परिप्रेक्ष्य पर ध्यान नही देता था और सभी रूपो को शास्त्रीय आकारो मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता था।

कुछ स्मारको मे प्रतिमाओ को उत्कीर्ण किये बिना ही दीवारो पर चित्राङ्कन किया गया है। यहाँ बिना पकाई ईंटो अथवा साधारण किस्म के पत्थर की भित्ति पर पलस्तर चढाकर चित्राकन हुआ है। पत्थर से निर्मित

अन्य स्मारको मे पहले भित्ति को समतल किया गया है और उस पर पलस्तर करके काले रग से क्षेत्रीय खण्ड बाँटे गये हैं। इनमें अनेक खडी रेखाएँ खीची गयी हैं जो आकृति-चित्रण का आधार रही हैं। कही-कही वर्ग भी बनाये गये हैं। चित्रकार के पास एक आरम्भिक चित्र रहता था और प्राय उसी की प्रतिकृति उसे दीवार पर बनानी होती थी। आकृति-चित्रण की रेखाएँ प्राय दृढ और निश्चित है। इनमे कही-कही सुधार भी किया गया है। कभी-कभी बिन्दुमय रेखाओ से भी यह कार्य हुआ है। पहले एक शिल्पी ने पत्थर मे इन आकृतियो को छैनी से उभारा है, दूसरे ने इसके विवरण उत्कीर्ण किये हैं और तत्पश्चात् चित्रकार ने इसे रङ्गा है। हल्के-भूरे अथवा नीले रङ्ग की पृष्ठभूमि मे चमकदार रङ्गो से आकृतियो को स्पष्टता तथा प्रौढता से उभारा गया है। छाया-प्रकाश की पद्धति का प्रयोग नही हुआ है। प्राय लाल रङ्ग से पुरुष देह, पीले रङ्ग से नारी-शरीर एवम् नीले, हरे, श्वेत तथा काले रङ्गो से विभिन्न पशुओ एवम् अन्य वस्तुओं का चित्रण हुआ है। प्रत्येक रङ्ग अनेक रङ्गतो मे उपलब्ध था। समय तथा जल-वायु के प्रभावो से ये रङ्ग उखड गये हैं, फिर भी कही-कही इनके अवशेष मिल जाते हैं।

'मिस्री कला की आविष्कारक प्रवृत्ति, इसकी विविधता और प्राणवत्ता हमे आश्चर्यजनक रूप से अभिभूत कर लेती है। यहाँ के वास्तुशिल्पी, मूर्तिकार, चित्रकार, पाषाण-शिल्पी एवं आभूषण-निर्माता विदेशी आदर्श का आश्रय लिये बिना ही अद्वितीय रूपो के सृजन मे सफल हुए। भीमकाय पाषाणो से लेकर लघु-चित्रो तक उन्होने समान भाव के कार्य किया है, अपनी कलाकृतियो के द्वारा देवताओ एव सम्राटो की वन्दना की है तथा सौंदर्यपूर्ण आनन्द का सृजन किया है। इस विशाल कार्य मे उन्होंने असीम धैर्य का परिचय दिया है।'[1]

'कला के क्षेत्र मे मिस्रवासी यूनानियो से स्पर्द्धा करते हुए अन्य समस्त प्राचीनो को पीछे छोड जाते हैं। पिरामिड और भवन, मूर्ति और चित्र-सभी मे उन्होंने अपनी कुशलता तथा अनेक प्रकार की विचित्र आकृतियो में शैली की मौलिकता का परिचय दिया है। उनके द्वारा निर्मित कतिपय भवन अपनी पूर्णता मे ग्रीक उपासनागृहो का स्मरण कराते हैं। उनकी कुछ प्रतिमाएँ युग-युग तक महान् कलाकृतियो के रूप मे समादृत होती रहेंगी। अपने चित्रो मे उन्होंने उस जीवन की अमर झाँकी छोडी है जो अपूर्व उल्लासमय था।'[2]

---

1. "The inventiveness of Egyptian art, its diversity and its vitality are quite staggering. Architects, Sculptors, Painters, Stonecarvers and Jewellers, without relying on any foreign models, succeeded in creating unique forms They were as much at ease in dealing with statues of colossal dimensions as they were in working on a minute scale, and they brought to bear on all they did to extol their gods and their kings, or simply to produce aesthetic delight, an unfailing conscientiousness and a superhuman patience, which overcame all material difficulties" —*Pierre Montel · Eternal Egypt, P 278.*
2. In the field of art, the Egyptians rival Greeks and outshine the other peoples of antiquity. They excelled in extremes-pyramids and colossi or pectorals and pendants Their unequalled stylistic originality is shown in their plant-columns, obelisks, pylons and avenues of sphinxes Certain of their chapels and colonnades are reminiscent, in their perfection, of Greek temples Some of their statues have a place among the greatest masterpieces of all time. The pictures they have left us of their daily round suggest that life must have been very enjoyable during the reigns of Cheops and Sesostris"
—*Ibid, P. 306*

क्रीट तथा माइसीनिया की कला

एजियन द्वीपो एव महाद्वीपीय यूनानी क्षेत्रो मे कास्य युग (विशेषत द्वितीय सहस्राब्दी ई० पू०) की कला को क्रीटन-माइसीनियन नाम से अभिहित किया गया है। भूमध्यसागरीय प्रागैतिहासिक युग मे विकसित शैलियो मे यह सर्वाधिक मौलिक एव विशिष्ट है। इसका सम्बन्ध पूर्वी देशो से भी रहा है। एक अर्थ मे यह यूनानी कला की आधारभूत प्रेरणा भी रही है। इसका कारण स्थानो, धार्मिक परम्पराओ, चित्रो, मूर्तियो तथा भवनो के अभिप्रायो की निरन्तरता ही नही है वरन् प्राचीन तथा नवीन युगो मे रहने वाले लोगो की भाषा की एकता भी है। उन्नीसवी तथा बीसवी शती के उत्खनन कार्यों से यह सिद्ध हो चुका है कि यूनानी सभ्यता का केन्द्र क्रीट मे ही था। आर्थर इवान्स नामक शोधकर्त्ता ने मिनोस नामक पौराणिक राजा के आधार पर क्रीट की सभ्यता को मिनोअन (Minoan) नाम दिया, किन्तु क्रीट के बाहर भी अनेक द्वीपो मे इसका प्रसार मिला है, अत यह नामकरण सही नही है। यूनान की मुख्य भूमि के आधार पर इसे हैलैडिक (Helladic) भी कहा गया किन्तु माइसीनियन नाम ही अधिक उपयुक्त माना जाता है। कुछ लोग इस सभ्यता के व्यापक प्रसार के साथ-साथ एकसूत्रता के कारण इसे 'एजियन' भी कहना चाहते हैं। क्रीट तथा माइसीनिया दो अलग-अलग द्वीप हैं। क्रीट की कला अपेक्षाकृत प्राचीन है। माइसीनिया की कला और सस्कृति का प्रभाव क्रीट एव आस-पास के अन्य क्षेत्रो पर भी पडा है अत यहाँ इन दोनो स्थानो की कला का पृथक्-पृथक् विचार किया जायगा। क्रीट की कला का इतिहास इवान्स द्वारा तीन युगो मे विभाजित किया गया है —आरम्भिक मिनोअन, मध्य मिनोअन तथा परवर्ती मिनोअन, किन्तु अधिकाश विद्वान क्रीट के भवनो के निर्माण से ही इसका आरम्भ मानते है और उसी के अनुसार इसका वर्गीकरण भी करते है। इस प्रकार इस कला को चार युगो मे विभाजित किया गया है: प्रासाद-पूर्व का युग २५००—२००० ई पू, प्रासाद-निर्माण का प्रथम युग २०००—१७०० ई पू, द्वितीय युग १७०० ई पू —१४०० ई पू एव परवर्ती युग १४००—११०० ई पू। प्रथम युग क्रीट मे नव-पाषाण काल समाप्त होने के ठीक पश्चात् ही आरम्भ हो जाता है। द्वितीय तथा तृतीय युग इस सभ्यता के उत्कर्ष काल से सम्बन्धित हैं। इसका सम्बन्ध मिस्र तथा पूर्वी देशो से भी रहा है। अन्तिम युग मे मिनोअन सभ्यता का पतन हो चुका था।

माइसीनियन सभ्यता, जो कि पेलोपोनीसस के नगर-राज्यो मे फली-फूली थी, तीन चरणो मे विभक्त है - प्राचीन (१६००—१५०० ई पू), मध्य (१५००—१४०० ई पू) तथा अन्तिम (१४००—११०० ई पू)। प्रथम चरण मे निर्मित अनेक राजकीय समाधियाँ माइसीनिया मे हैं। इनमे क्रीट की मिनोअन कला का मिश्रण स्पष्ट दिखाई देता है। कुछ लोगो के विचार से माइसीनियावासियो द्वारा क्रीट-अभियान के कारण यह प्रभाव आया है। द्वितीय चरण मे दोनो शैलियो का सुन्दर समन्वय हो गया है और तृतीय चरण मे इस शैली का विस्तार अन्य क्षेत्रो में भी हुआ है। कुछ स्थानो पर पतन के लक्षण भी प्रकट होने लगे हैं जिसे १२वी शती ई पू के डोरियन आक्रमण का परिणाम भी माना जाता है। इस आक्रमण ने माइसीनियन शासन को समाप्त कर दिया था।

क्रीट की कला—

प्रासाद-पूर्व का युग—२५००—२००० ई पू—इस युग की चित्रकला के उदाहरण उपलब्ध नही हैं। इस समय बिना पकाई ईटो के भवन निर्मित किये जाते थे जिन पर चमकीले रगो का पलस्तर किया जाता था। शनै शनै पत्थर का प्रयोग भी होने लगा और भवनो की दीवारे विविध रगो मे रगी जाने लगी। कड़े तथा मुलायम दोनो प्रकार के पत्थर एव पकाई मिट्टी के खिलौने एव मूर्तियाँ भी बनी जिनमे मानवाकृति को

सरल ज्यामितीय आकारो मे बांधने का प्रयत्न किया गया। नवपाषाणकालीन प्रतिमाओ, जो कि प्राकृतिकता की ओर उन्मुख रहती थी, के विपरीत ये आकृतियाँ एक नवीन रुचि की द्योतक हैं जो बाद मे यूनानी प्रतिमाओ मे प्रकट हुई। क्रीट की पात्र-कला सर्वाधिक सुरक्षित अत उल्लेखनीय है। हाथ से बने ये पात्र साधारण विधि से पकाए जाकर उत्तम प्रकार से पालिश किये जाते थे। इन पर प्राय कोई ज्यामितीय आलेखन खचित करके श्वेत अथवा लाल र ग भर दिया जाता था। अनेक पात्रो पर कुण्डली एव प्रहेलिका भी अ कित हैं। मिट्टी के पात्र धातु-पात्रो की अनुकृति पर बनाये गये हैं। प्राय काले चमकदार धरातल से युक्त इनका वाह्याकार कोणीय रूप प्रस्तुत करता है। कही-कही हल्के र ग के धरातल पर गहरे अ धेरे र ग से भी चित्रकारी हुई है। प्रासाद-युग के आरम्भ से कम-से-कम एक शताब्दी पूर्व अनेक आकृतियो मे बने पात्र इस कला की विविधता प्रदर्शित करते हैं। इन पर सीधे एव वक्र रूपो मे अलकरण बनाये गये हैं। किंचित लाल अथवा नारगी का पुट लिये श्वेत रग से ये आलेखन चित्रित हैं।

प्रथम प्रासाद युग—२०००—१७०० ई. पू—क्रीट मे राजनीतिक सत्ता जब स्थानीय शासको के हाथ मे आगयी तो उन्होने महल बनवाने आरम्भ कर दिये। इस प्रकार क्रीट की सभ्यता का विकास शीघ्रतापूर्वक होने लगा। इन भवनो मे वक्र रेखाओ के माध्यम से आलकारिक आलेखन चित्रित किये गये है। नासास (Knossos) तथा मेलिया (Mallia) मे भित्ति-चित्र भी मिले हैं किन्तु इनमे आकृति-चित्रण नही हुआ।

इस युग के पात्रो पर सुन्दर अलकरण बनाये गये हैं। श्वेत अथवा इकरंगी पृष्ठभूमि पर केवल एक या दो रगो से ऐसी सुन्दर वर्ण-योजना की गयी है कि पात्र बहुर गे प्रतीत होते हैं। पात्र की एक दिशा मे गहरे र ग के धरातल पर हल्के र ग से और दूसरी दिशा मे हल्के र ग के धरातल पर गहरे र ग से आलेखन अ कित हैं। कहीं-कही एक-दूसरे के निकट अकित पट्टियो मे भी यही वर्ण-विधान प्रयुक्त हुआ है। पात्रो के आन्तरिक तथा वाह्य भागो मे वक्र रेखाओ, कुण्डलियो, पुष्प-गुच्छो एव चौडी पट्टियो के अलकरण बनाये गये हैं। आकृतियाँ पूर्णत. आलकारिक हैं। वनस्पति तथा सागरीय जीव-जन्तुओ की आकृतियाँ भी विशुद्ध आलकारिक रूपो मे कल्पित की गयी हैं। बिना शिर के ऑक्टोपस तथा गुलाबो पर मँडराते कीट भी चित्रित हुए हैं। गतियुक्त चक्र का आभास देते हुए जाल मे फँसी मछली का भी चित्रण किया गया है। पात्रो पर रगो से विभिन्न पत्थरो के धरातलो एव नसो का भी कृत्रिम प्रभाव दिखाया गया है।

कुछ पात्र धातु-पात्रो की अनुकृति पर बनाये गये हैं। इनकी दीवारे इतनी पतली हैं जितना अण्डे का छिलका होता है। इनकी सतह पर धातु-पात्रो की ही भाँति खचित चित्रकारी एव तेज चमकदार पालिश की गयी है। इनका उपयोग राजकीय प्रासादो, भोजनालयो, पूजागृहो एव समाधियो मे विभिन्न अवसरो पर किया जाता था।

द्वितीय प्रासाद युग—१७००—१४०० ई पू—सम्भवत भूकम्पो आदि से क्रीट के प्राचीन प्रासाद नष्ट हो गये। इस युग मे जो नवीन प्रासाद निर्मित हुए उनमे नवीन दृष्टि अपनायी गयी अत क्रीट की कला इस युग मे विशेष उन्नत हुई। समस्त राजकीय भवनो के अतिरिक्त धनिको के आवास भी चित्रित किये गये। इन चित्रो के शिल्प-विधान का अभी ठीक-ठीक निश्चय नही हो पाया है फिर भी यह कहा जाता है कि दीवार पर क्रमश. अधिक पतली होती जाने वाली कई परतो मे पलस्तर चढाया जाता था और इस गीले पलस्तर पर ही पृष्ठ-भूमि का रग कर देते थे। इस पृष्ठ-भूमि पर रगो द्वारा चित्र अ कित करने की विधि अज्ञात है। कही-कही एक के पश्चात दूसरे र ग की परतें भी लगायी गयी हैं जिनसे आकृतियो में कुछ उभार प्रतीत होता है। इसी विधि के द्वारा इन भित्तियो पर विभिन्न धरातलो के खण्ड अथवा क्षेत्र बनाकर कुण्डलियो, ऑक्टोपस, कमल, गुलाब एव मछलियो आदि के आलकारिक रूप चित्रित किये गये हैं। प्राय सागरीय तथा उद्यानों के वातावरण की प्रेरणा से विषयो का चयन किया गया है। चित्रो से सम्पूर्ण दीवारो को भर दिया गया है। कही-कहीं सम्पूर्ण उद्यानो के भी चित्र है जिनमे विदेशी पशु-पक्षियो से सुशोभित पर्वतो, हास्यपूर्ण मुद्रा वाले बन्दरो एव आकर्षक र गो वाले दुर्लभ पक्षियो के चित्र हैं। यदा-कदा पक्षी पकड़ने की ताक मे लगी बिल्ली, निर्झर मे स्नान करते कपोत-युगल

आदि के अधिक जीवन्त चित्र भी बनाये गये है। ये चित्र आदर्श उद्यान-कल्पनाएँ हैं, किसी विशेष स्थान से सम्बन्धित नही। इनके रग भी कृत्रिम हैं, पौदे अस्वाभाविक भगिमाओ से युक्त हैं तथा रिक्त स्थानो मे वानस्पतिक अलङ्करण बने है। पृष्ठिभूमि को विविध रगो मे चित्रित किया गया है।

मानवाकृतियो से युक्त भित्तिचित्र प्राय धार्मिक उत्सवो के सन्दर्भ मे अकित किये गये हैं। इनमे प्रफुल्लता-पूर्ण दरवारी वातावरण प्रदर्शित है। कही राजभवनो मे धार्मिक कृत्य होते हुए अकित है और कहीं पवित्र वनो मे। भवनो के दृश्य गवाक्षो आदि के साथ चित्रित किये गये हैं। मानवाकृतियाँ विविधतापूर्ण हैं और उनमें सूक्ष्म विवरण अकित हैं। पुरुषो तथा स्त्रियो के शरीर के रग मे भी भेद दर्शाया गया है। केशविन्यास, अलकृत वस्त्र एव आभूषण-भार से बोझिल शरीर बडी सुन्दरता से चित्रित हैं। प्राय उन्हे स्वाभाविक मुद्राओ मे वृक्षो के नीचे बैठे हुए अकित किया गया है जैसे कि जैतून के वृक्षो वाले उद्यान के चित्र मे। उन्हे प्राय. परस्पर वार्तालाप अथवा तर्क-वितर्क करते हुए अथवा हरित भूमि पर नृत्य करते हुए चित्रित किया गया है। अन्य चित्रो में कुछ बडे आकार की एकाकी नर्तकियाँ बनायी गयी हैं। वे छोटी अगिया के ढग का वस्त्र (bolero) पहने हैं। टिलीसॉस (Tylissos) के भित्तिचित्रो मे व्यायाम-क्रीडा प्रस्तुत की गयी है। यह भी लघुचित्रण पद्धति मे है। पुजारिनो के युग्म, जिनके वस्त्रो मे पवित्र गाँठ लगी है, बीच-बीच में पुजारियो के चित्रो के साथ अकित हैं, जो नारी-वेश मे अनुष्ठानो मे सलग्न हैं। नासास के वृषभ-युद्ध के चित्र मे दो स्त्रियाँ तथा एक पुरुष विशाल आकार के वृषभ से युद्ध करते दिखाये गये हैं। इनका चित्रण बडा सजीव है। नासास मे इस प्रकार के चित्र अनेक स्थानो पर अकित किये गये थे जिनके खडित अश ही अब अवशिष्ट हैं। इस युग के अन्त के लगभग धार्मिक जुलूसो के दृश्य अधिक बने। नासास के एक भित्ति-चित्र मे ऊपर-नीचे अकित दो पक्तियो मे इस प्रकार की ३५० से अधिक आकृतियाँ मिली हैं। यहाँ प्रवेशद्वार पर एक विशाल भित्ति-चित्र था जिसमे सगीतज्ञो, उपहार भेंटकर्त्ताओं, पुरोहितो एव बहुमूल्य परिधान पहने राजकीय महिलाओ की अनेक पक्तियाँ बनी थी। दुर्भाग्यवश इसका निचला अश ही शेष है जिसमे एक चपक-धारी 'राइटोफोरस' (Rhytophoros) की प्रसिद्ध आकृति भी है। हेगिया त्रियादा (Hagia-Triada) की पाषाण-समाधि पर अकित चित्र मे वृषभ-बलि, फल-दान, सगीतज्ञ, मुकुट धारण किये एक स्त्री, एक वीणा-वादिनी, मृतक की प्रेतात्मा एव नौका सहित भेंट की गयी अनेक वस्तुएँ अकित हैं। दो रथ भी हैं जिनमे से एक को पखदार ग्रिफिन खीच रहा है तथा दूसरे को अश्व। मिनोअन सभ्यता के ज्ञान मे सहायक यह चित्र बहुत अच्छी दशा मे है।

गौण रूप से बनाये गये महलो के चित्रो मे पर्याप्त मौलिकता है और अन्य कला-सम्प्रदायो का किंचित् प्रभाव भी है। मिस्र तथा मेसोपोटामिया का प्रभाव सयोजन की पद्धति पर प्रतीत होता है। रग योजनाएँ मौलिक और उल्लासपूर्ण हैं। आकृति-चित्रण की सहजता और सधता से चित्रो मे सजीवता, गति एव आकर्षण आ गया है। दरवारी तथा धार्मिक दृश्यो की तुलना मे मिनोअन चित्रकला प्रकृति से अधिक प्रेरित है।

परवर्ती युग—इस युग मे यूनान की मुख्य भूमि से माइसीनियनो ने क्रीट के द्वीप पर आक्रमण कर दिया। फलत. प्राचीन परम्परा मे नवीन प्रभावो का समन्वय हुआ और नयी कला-शैली पनपी। इस युग के चित्र उपलब्ध नही हैं। हेगिया त्रियादा के मृग-चित्र माइसीनियन प्रभाव के हैं। अलकरणों में प्राय अर्धवृत्त एवं कोणीय आकृतियो की अत्यधिक पुनरावृत्ति हुई है। योजनाबद्ध चित्रण तथा विविधता की कमी और विपुल सख्या मे पात्रो का निर्माण इस युग की विशेषता है। आलेखनों मे रूप योजना का स्थान रेखा-जाल ने ले लिया है। धीरे-धीरे यह कला पूर्णत ज्यामितीय और अमूर्त होती जाती है। समाधियो पर भी पात्र-कला का प्रभाव है।

माइसीनियन कला—

यूनान की मुख्य भूमि पर इस कला का जन्म एव विकास हुआ था। विद्वानों का विचार है कि

यह भी क्रीट-मूल की थी। आगे चलकर दोनो का समन्वय भी हो गया था जैसा कि क्रीट की कला के सन्दर्भ मे संकेत किया जा चुका है।

प्राचीन युग—१६००—१५०० ई पू—इस युग की कला के बहुत छिन्न-भिन्न अवशेष भित्ति-चित्रो के रूप मे मिलते हैं किन्तु माइसीनिया की राजकीय समाधियो से उपलब्ध चित्रित पात्रो से तत्कालीन चित्रकला का पर्याप्त अनुमान लगाया जा सकता है। प्राय सभी को १६वी शती ई पू का माना गया है। आयातित मिनोअन पात्र भी यहाँ उपलब्ध हुए हैं। सिंदूरी लाल तथा बादामी रग के पात्रो पर क्रीट का प्रभाव है जो साइक्लेडिस द्वीप के माध्यम से आया। शनै-शनै. यह प्रभाव कम होता गया और यद्यपि सागरीय विषयवस्तु एव पशु-पक्षियो तथा वनस्पतियो का अकन उसी प्रकार होता रहा तथापि पृष्ठभूमि, बाह्यरेखा एव विन्दुमय धरातलो की दृष्टि से पर्याप्त मौलिकता आयी।

मध्य युग—१५००-१४०० ई पू.—इस युग की कला मे हैलेडिक तथा मिनोअन तत्वो का समन्वय हुआ और माइसीनियन संस्कृति का एक सङ्गतिपूर्ण संगठित रूप मे विकास हुआ। यह इतनी मन्द गति से हुआ कि दो विभिन्न संक्रान्ति कालो के मध्य निश्चित सीमा-रेखा खीचना कठिन है।

इस युग की चित्रकला के उदाहरण भित्ति-चित्रो के रूप मे अल्प परिमाण मे ही मिले है। थेब्स के कादमोस प्रासाद तथा माइसीनिया के राजकीय प्रासाद के चित्राश भी पर्याप्त महत्वपूर्ण हैं। माइसीनिया मे अंकित भद्रिका में टीलों के समान भूमि बनाकर मानवाकृतियाँ अनेक पंक्तियो मे प्रस्तुत की गयी हैं। इस जगह युद्ध का चित्रण हुआ है अत. विषय का चयन परम्परा से हट कर माना जा सकता है। आकृतियो की मुद्राओ तथा घटना की सजीवता दर्शनीय है। सैकडो मानव, डेरे-तम्बू, युद्ध की तैयारी, रथ, अस्त्र-शस्त्र, दोनो सेनाओ का मोर्चा लगाना, एक्रोपोलिस का युद्ध और एक महल मे से इस दृश्य का अवलोकन की हुई महिलाएँ इसमे दिखाई गयी है। सैनिको के परिधान और अन्य विवरण दर्शनीय हैं।

कादमोस के भित्ति-चित्र भी इसी के समकालीन समझे जाते है। एक लम्बा धार्मिक जुलूस मिनोअन रीति से अकित किया गया है। प्राय भेंट लिए हुए मनुष्य क्रीटन शैली की वैभवपूर्ण वेशभूषा मे बनाये गये हैं। इसे देखकर नासास मे बने चित्रो का स्मरण हो आता है।

अन्तिम युग—१४००-११०० ई पू—पन्द्रहवी शती ई पू के अन्त मे मिनोअन प्रासादो के नष्ट हो जाने से एजियन क्षेत्र की सत्ता माइसीनियन साम्राज्य के हाथो मे आ गयी। यह इस क्षेत्र का सास्कृतिक केन्द्र भी बन गया। क्रीटन प्रभाव के समाप्त होने के साथ-साथ हैलेडिक प्रभाव को बढने का अवसर मिला। मिनोअन परम्पराओं को आत्मसात् करते हुए नवीन परिस्थितियो के अनुसार इस कला-शैली एव संस्कृति का विकास हुआ।

इस युग मे माइसीना, टाइरिन्स, आरकोमेनस, थेब्स, तथा पाइलस के राजभवन भित्ति-चित्रो से अलंकृत किये गये। सभी के विषय परम्परागत क्रेटन कला के समान है-वृषभ-युद्ध, पवित्र स्थल' जुलूस, राक्षस, ग्रिफिन, आखेट एव युद्ध के दृश्य। टाइरिन्स मे शूकर-आखेट, आक्टोपस तथा डौलफिन मत्स्य, एक गाडी मे आरूढ दो महिलाएँ आदि भी अंकित हैं। हेगिया त्रियादा के समान यहाँ मृगो के चित्रो की भद्रिका भी है पर सम्भवत यह क्रीट पर माइसीनियन प्रभाव से है। माइसीनियन कला मे सूक्ष्मता एव आलंकारिकता की प्रवृत्ति अधिक है। स्पष्ट सीमा-रेखाएँ, सयमित सयोजन एव समृद्ध रग विधान इसकी ऐसी विशेषताएँ हैं जो यूनानी कला मे सतुलन एव सगति के तत्वो के आरम्भ का पूर्व-सकेत देती है।

डोरियन आक्रमणो के कारण इस सभ्यता का भी पतन हुआ और प्राचीन नगरो के ध्वसावशेषो पर नवीन नगर निर्मित हुए। यही से यूनान की कला मे शास्त्रीय युग का आरम्भ होता है। समस्त क्रीटन-माइसीनियन युग मे क्रीट का प्रभाव ही प्रमुख रहा। इसमे भी पात्र-चित्रण के ज्यामितीय नियम अधिक महत्वपूर्ण रहे। यद्यपि इन नियमो का उद्भव क्रीट मे हुआ था किन्तु माइसीनियन युग के अन्त मे ही इन नियमो का पूर्ण विकास हुआ।

शास्त्रीय कला : यूनान से रोम तक

शास्त्रीय कला के सम्बन्ध मे आज हमे जो कुछ भी ज्ञात है वह सब उन्नीसवी शती से ही सम्भव हुआ है। प्राचीन युग के समाप्त होने के साथ-साथ अनेक महान कला-कृतियाँ भी नष्ट हो गयी। कांस्य प्रतिमाये गला दी गयी, चित्र नष्ट कर दिये गये, सगमरमर के भवनो और प्रतिमाओ को फूक कर चूना बना लिया गया। कुछ बडे-बडे भवन केवल इसी से बच रहे क्योकि उन्हे किसी राजकीय कार्यालय अथवा अन्य उपयोग मे ले लिया गया था। लगभग एक सहस्र वर्ष के उपरान्त इटली की पुनरुत्थान कला ने इस प्राचीन शैली से प्रेरणा लेना और इसका गम्भीर अध्ययन आरम्भ किया। लेखको तथा कलाकारो ने इसकी प्रत्येक विशेषता को उत्तम माना किन्तु जिन कृतियो का वे अध्ययन कर रहे थे वे यूनान की प्राचीन कला के सम्पूर्ण कोष का एक अल्पाश मात्र थी। बिना मूल कृतियो के इसका ठीक-ठीक मूल्याकन असम्भव था और केवल रोमन अनुकृतियाँ ही उपलब्ध थी। अठारहवी शती मे इसका वैज्ञानिक अध्ययन आरम्भ हुआ। उस समय यूनानी कला की रोम आदि मे बनाई गयी यन्त्रवत् अनुकृतियों की बडी प्रशसा की गयी किन्तु उन्नीसवी शती मे यूनान के उत्खनन आदि से प्राचीन प्रतिमाओ एव भवनो आदि के अप्रतिम उदाहरण प्रकाश मे आये। फिर भी आज यह स्थिति है कि तीन-चार श्रेष्ठ मूर्तियो के अतिरिक्त उस कला की कोई उत्तम सामग्री प्राप्य नही है। चित्र तो एक भी नही मिला। रोम के पोम्पिआई स्थित भित्ति-चित्रो के अतिरिक्त स्फुट रूप मे कुछ अनुकृतियाँ ही उपलब्ध हैं। अरस्तू, प्लुटार्च, प्लिनी तथा सिसरो आदि ने चित्रकला के जो उल्लेख किये हैं, हमे चित्रकला के इतिहास के लिये उन्ही पर आधारित रहना पडेगा।

यूनान की कला का स्वरूप—यूनानियो को मिस्र की कला का अनुकर्ता एव अनुगामी कहा जाता है किन्तु वास्तव मे उन्होंने एक पूर्णत भिन्न कला-जगत की सृष्टि की है। इस सृष्टि मे शाश्वत अथवा चिरन्तन के स्थान पर क्षणिक एव तात्कालिक को व्यक्त किया गया है। समय के किसी एक बिन्दु पर विभिन्न शक्तियो का जो सन्तुलित प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है, यूनान का कलाकार उसी के अकन मे लगा रहा है।

इसे प्राप्त करने का यूनानी कलाकार का प्रधान साधन गति है। यद्यपि कलाकृति जड होती है तथापि शारीरिक अवयवो की बाह्य सीमाओ, अक्षो, भार एव दृष्टि-बिन्दु के समन्वय से आकृतियो मे जो गतिशीलता अनुभव की जा सकती है, यूनानी कलाकार ने उसका पूर्ण उपयोग किया है। इसमे एक दिशाहीन लोच है जबकि मिस्री कला मे निर्दिष्ट सयम है।

यूनानी कलाकारो के हेतु यह भौतिक एव दृश्य जगत ही सत्य था। जीवन को अधिक से अधिक पूर्ण बनाने की चेष्टा ही वे अपना लक्ष्य मानते थे इसीलिये उनके देवता भी मानवीय आकाक्षाओ के आदर्श रूप मात्र है।

हैलेनिस्टिक युग तक यूनानियो के जीवन मे कलाओ का बहुत महत्व रहा है। आरम्भिक यूनानी कला देवालयो अथवा पात्रो के अलकरण का व्यावहारिक उद्देश्य लेकर चली। समाज मे कलाकार का बडा सम्मान था। कला उस समय एक व्यवसाय थी और उसका स्तर बहुत अच्छा था। इसी से उस युग मे अनेक श्रेष्ठ कृतियो की रचना सम्भव हुई। कलाकार को उसके गुरु द्वारा दीर्घकाल तक की शिक्षा दी जाती थी, यही कारण है कि इस कला मे प्राय विषयो, पात्रो तथा घटनाओ की निरन्तर एकरूपता ही मिलती है। फिर भी कला केवल शिल्प न होकर उससे कुछ अधिक थी। लोगो का विश्वास है कि रूप की पूर्णता की दिशा मे यूनानी लोग ५ वी शती ई पू के उत्तरार्ध मे चरमोत्कर्ष कर चुके थे। मानवाकृति के आकलन मे प्रकृति एव आदर्श रूप का सुन्दर समन्वय तत्कालीन डोरिक शैली के पारथीनन नामक भवन की प्रतिमाओ मे उपलब्ध होता है।

चतुर्थ शती ई पू से इस क्रम मे परिवर्तन आरम्भ हुए। नवीन विषयो का अकन किया जाने लगा।

व्यक्ति-चित्रण इसका एक प्रमाण है। अनेक सामाजिक विषयो को भी स्थान मिला। सम्पूर्ण देश मे परस्पर पर्याप्त आदान-प्रदान से इस कला-शैली का व्यापक प्रसार हुआ। पहले बनी कला-कृतियो को सम्मान प्राप्त होने लगा और उपयोगिता का विचार त्याग कर केवल सौंदर्य आदि की दृष्टि से कला-कृतियो का सग्रह किया जाने लगा। हैलेनिस्टिक सम्राट इस प्रकार की कृतियाँ सग्रहीत करने लगे और अनुकृतियाँ बनवाने लगे। यही से कला मे दो धाराये फूट निकली। एक धारा प्राचीन कला की परम्परा मे थी किन्तु विकास का ध्यान रखते हुए नवीन समस्याओ का समाधान खोज रही थी। दूसरी धारा पाँचवी तथा चौथी शती ई पू की कला को ही आदर्श मान कर उससे प्रेरणा लेने तक सीमित थी। ग्रीक कला मे प्रयुक्त होने वाले रंगो आदि का पता नही चल सका है। समाधियो के अलकरण की विधि एशिया, फिनीशिया तथा मिस्र से सीखी गयी थी। पीछे से भित्ति-चित्रण में मिस्र का प्रभाव आया। फ्रेस्को तथा टेम्परा मे कुछ नवीन प्रयोग भी किये गये। सीक्योनियन स्कूल के साथ एक नयी प्रणाली आरम्भ हुई जिसमे पहले रग को मोम मे मिलाकर दीवार पर लगाते थे और फिर गर्मी पहुँचाकर उसे पक्का कर देते थे। सम्भव है, वे तैल-चित्रण भी जानते थे पर उसका अधिक प्रचार न था।

ग्रीक कला तथा रोम—द्वितीय शती ई पू मे रोम को हैलेनिस्टिक सम्राटो के माध्यम से यूनानी कला-परम्परा उत्तराधिकार मे प्राप्त हुई। जैसे-जैसे इस कला के प्रति उनका उत्साह बढा, ये दोनो धाराएँ स्पष्ट होती गयी। एक ओर वे प्राचीन कला का सम्मान करते हुए उनके नमूने एकत्रित करते और उनकी अनुकृतियाँ बनवाते रहे। इस अनुकृति की कला मे किंचित् भी नवीनता नही है, केवल अच्छी-अच्छी कृतियो की लोकप्रिय विशेषताओ को एकत्रित करके नवीन कृतियाँ बनादी गयी हैं। दूसरी ओर वे, हेलेनिस्टक सम्राटो की भाँति, यूनानी कलाकारो को आश्रय देते रहे जो रोम तथा इटली मे भवनो को अलकृत करते, प्रतिमाएँ, चित्र तथा नवीन भवन बनाते थे।

शनैं शनैं यूनानी तथा रोमन परम्पराओ का समन्वय भी आरम्भ हुआ। इस समय के स्मारक यूनान की प्राचीन-कला से पर्याप्त भिन्न हैं किन्तु इनमे यूनानी अभिप्रायों का प्रभावशाली समन्वय हुआ है। द्वितीय शती ई पू तक यह स्थिति चली। धीरे-धीरे रोमन साम्राज्य मे अनेक नवीन विचारो का प्रादुर्भाव हुआ। ये प्राचीन शास्त्रीय कला के विरोधी बनगये और बिजेण्टाइन कला मे यह विरोध स्पष्ट रूप मे सामने आया। इटली के पुनरुत्थान युग मे फिर से यूनान को प्रेरणा-स्रोत स्वीकार किया गया।

यूनानी सभ्यता का इतिहास—यूनानी सभ्यता का सर्वप्रथम अरुणोदय क्रीट मे हुआ था जो प्राय तृतीय सहस्राब्दी ई पू से १४०० ई पू. पर्यन्त विस्तृत रही। नामास आदि के मिनोअन भवनो के विषय मे क्रीट की कला मे सकेत किया जा चुका है। इस युग के वैभव ने अनेक प्रकार की कलाओ के विकास मे सहायता दी। वर्णमय आलकारिक चित्रण, सजीव तथा प्राकृतिक मूर्तिकला तथा धातु-शिल्प की उत्कृष्टता इसके उदाहरण हैं।

जिस समय क्रीट मे भवन बन रहे थे, ग्रीक-भाषी जन-समुदाय का यूनान की मुख्यभूमि मे प्रथम प्रवेश हुआ। १६०० ई पू तक वे पर्याप्त शक्तिशाली एव समृद्ध हो गये। इसका प्रमाण हम माइसीनियन सस्कृति मे देखते हैं। यह सभ्यता क्रीट से भिन्न थी। यहाँ विशाल नगर और बस्तियाँ दीवारो से घिरे प्रकोष्ठो के समान निर्मित हुई। किन्तु मूर्ति तथा चित्रकला की दृष्टि से यहाँ क्रीट का प्रभाव पडा। १४०० ई पू तक इन्होने क्रीट को जीत लिया। १४००-११०० ई. पू के मध्य यहाँ जो कला विकसित हुई उसका परवर्ती यूनानी कला पर बहुत प्रभाव पडा। बारहवी शती ई पू. में सहसा इस साम्राज्य का अन्त हो गया और कुछ समय के हेतु यूनान मे अन्धकार का युग आ गया। इसका कारण उत्तर की ओर से डोरियन आक्रमण का होना था जिसने समस्त भवनो को नष्ट कर दिया। माइसीनियन सभ्यता के विनाश के साथ-साथ, आक्रमणो के कारण यूनान की मुख्यभूमि के निवासी अपने देश से निष्क्रमण भी करने लगे और वे एजियन सागर को पार कर एशिया माइनर आदि मे पहुँचे। वहाँ उन्होने यूनानी नगरो की स्थापना की। इस समस्त उथल-पुथल के समय की वैभवपूर्ण कला-कृतियाँ

तथा राजप्रासाद तो उपलब्ध नही है किन्तु चित्रित पात्र अवश्य मिले है जो इसके क्रमिक विकास को सूचित करते हैं। यह शैली ज्यामितिक आकृतियो के अत्यधिक निकट है और सम्भवत इसकी उत्पत्ति १००० ई० पू० के लगभग एथेन्स मे हुई थी। अमूर्त अलकरण, जो सावधानी से चित्रित ज्यामितीय पैटर्न पर आधारित है, यूनान की परवर्ती कला के विकास का प्रधान प्रेरणा-स्रोत बना।

माइसीनियन सामन्ती व्यवस्था के समाप्त होने पर यूनान की मुख्य भूमि के भौगोलिक भेद अधिक स्पष्ट होने लगे। इन्होने एक ऐसे समाज को जन्म दिया जिसमे नगर-राज्यो की स्थापना हुई। यूनानी लोग इन्हे "पोलिस" कहते थे जिसका अर्थ है पर्वतो आदि प्राकृतिक सीमाओ से घिरा क्षेत्र जिसका केन्द्र कोई नगर हो। शाही शासन के स्थानो पर पूँजीवादी वर्गों का प्रभुत्व बढा। माइसीनियन ससार से भी सम्पर्क बढा और प्राचीन यूनानी महाकाव्यो की प्रेरणा तथा प्राचीन ओलम्पियन धर्म का आधार लेकर इन नगर-राज्यो (City States) की सस्कृति विकसित होने लगी।

आठवी शती ई पू तक ये नगर-राज्य पर्याप्त सुदृढ हो चुके थे। धनिक वर्ग के प्रभुत्व के कारण विदेशी व्यापार का विस्तार हुआ जिसके साथ साथ भूमध्य सागरीय क्षेत्र मे यूनानी औपनिवेशिक बस्तियो की स्थापना हुई। सम्पन्नता तथा वैभव के कारण स्थूलता- प्रधान कृतियो के निर्माण का युग प्रारम्भ हुआ। एथेन्स मे ज्यामितीय शैली के मृत्पात्रो (Funcrary vases) का निर्माण हुआ, उपासना-गृह बने तथा देवताओ की उपासना-मूलक प्रतिमाएँ (Cult-images) बनने लगी। परवर्ती ज्यामितीय शैली मे बनी मानवाकृतियो को वर्णन-प्रधान चित्रो मे सयोजित किया गया। होमर की कविताओ से इनकी विषय वस्तु ली गयी है। अन्य विषय यूनान की शास्त्रीय कला-शैली के ऐतिहासिक युग मे से चुने गये है। इस समय से यूनान की शास्त्रीय कला का विकास स्पष्ट एव निरन्तर चलता है।

यूनानी कला का विकास ऐतिहासिक परिस्थितियो से बँधा हुआ है। सातवी शती ई पू मे व्यापार आदि के कारण यूनान का पूर्वी देशो से सम्पर्क हुआ। मिस्र के विशाल पूजागृहो, फराऊनो की प्रतिमाओ आदि को देखकर यूनानियो ने इसी शताब्दी के मध्य मे बडे आकार की मूर्तियो की रचना की। यह प्रभाव इतना व्यापक है कि नवी तथा आठवी शती ई पू के पश्चात सातवी शती ई पू की यूनानी कला मे इसे पूर्वीकरण (Orientalising) कहा जाता है। फिर भी यह अन्धानुकरण नही है। इसे स्थानीय परम्पराओ के अनुकूल ढाल लिया गया है।

धीरे-धीरे इन नगर राज्यो मे प्रशासनिक अव्यवस्था होने से छठी शती ई पू मे विद्रोह प्रारम्भ हो गये। पाचीन युग (Archaic period) के आरम्भिक चरण मे धनी वर्ग कलाओ का प्रमुख आश्रयदाता था, किन्तु क्रान्ति के युग मे यह स्थान धनी व्यापारियो ने ले लिया। पिसिस्त्रातुस (Pisistratus) इस प्रकार का प्रसिद्ध कला-सरक्षक हो गया है। इसने कलाओ को जितना प्रोत्साहित किया उतना हैलेनिस्टक सम्राटो से पहले कोई नही कर सका।

जिस प्रकार का प्रजातन्त्रीय शासन पाँचवी शती ई पू मे एथेन्स में स्थापित हुआ उसी प्रकार अनेक नगर राज्यो मे प्राचीन धनी-लोगो के शासन के विरुद्ध विद्रोह सफल हुआ। देश मे ऐसी सुदृढता आयी जिसने पारसी आक्रमण को विफल कर दिया। इससे ऐथेन्स की प्रतिष्ठा बढी और उसी के अनुकरण पर अन्य राज्यो मे प्रजातन्त्रीय शासन की नीव पडी। युद्ध के पश्चात् की कला प्राचीन परम्परा से पूर्णत पृथक हो गयी। नवीन आदर्शों और आत्म-विश्वास के साथ यूनानी कलाकार मौलिक रूपो के सृजन मे प्रवृत्त हुए।

पेलोपोनेशियन (Peloponnesian) युद्ध के कारण नगर-राज्य ध्वस्त हो गये, उनकी राजनीतिक शक्ति विशृखल हो गयी, प्राचीन देवताओ मे से विश्वास उखड गया और व्यक्तिवाद तथा व्यक्तिगत सुख-भोग की धारणा बलवती हुई। पाँचवी शती ई पू की कला जहाँ सामाजिकता, धर्म-परायणता और कलाकार की निष्ठा की द्योतक है वहाँ चौथी शती ई पू की कला के लक्ष्य अस्पष्ट हैं। आदर्श आकृति के निर्माण की दिशा मे जो

थोड़ा-सा प्रयत्न पाँचवीं शती ई पू मे हुआ था, उससे कलाकार सन्तुष्ट नही था, और न ही प्राचीन ओलम्पियन धर्म प्रेरणादायक रह गया था। प्रेक्सीटेलीज द्वारा निर्मित देवाकृतियाँ अपना शाही रङ्ग-ढग छोडकर मानवीयता धारण करने लगी। व्यक्ति-चित्रण मे व्यक्ति—वैशिष्ट्य की वृद्धि होने लगी। देश के आर्थिक विघटन के कारण कलाकार सीमावर्ती राज्यो मे शरण लेने लगे। कलाकार का दृष्टिकोण व्यापक और व्यक्तित्व स्वतन्त्र होता गया।

ई. पू चतुर्थ शती के मध्य से फिलिप तथा उसके पुत्र सिकन्दर के शासन मे मकदून साम्राज्य यूनानी संस्कृति का केन्द्र बिन्दु बना। सिकन्दर की पूर्व—विजय ने इस कला के हेतु नवीन द्वार खोले। सिकन्दर यूनानी संस्कृति को सार्वभौमिक रूप देना चाहता था किन्तु उसका यह स्वप्न पूर्ण न हुआ। सीरिया के सेलेयूसिड तथा मिस्र के प्टोलेमी साम्राज्यो तथा एशिया के अनेक स्थानो मे यूनान का पर्याप्त प्रभाव पडा। इस समस्त परिस्थिति का प्रतिफल ही हेलेनिस्टिक कला मे दिखाई देता है। कला का लक्ष्य धार्मिक विषयो का अकन न रह कर व्यक्तिगत सरक्षको की रुचि की सतुष्टि हो गया। प्राय धर्मेतर विषयो का आधार लेकर ही इस युग की महान् कृतियो की रचना हुई है। समस्त मानव जाति, सभी युगो तथा सम्पूर्ण जीवन से सम्बन्धित भावनाओ का अङ्कन नये-नये टेक्नीक के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

दूसरी शती ई पू के आरम्भ मे रोमन साम्राज्य बहुत शक्तिशाली हो गया। उसके अधिकार-क्षेत्र मे यूनान भी आ गया। आगस्टस के समय रोमन साम्राज्य का विस्तार स्पेन से लेकर सीरिया तक था और इसकी शासन-पद्धति तीन सौ वर्ष तक स्थायी रही। रोम द्वारा यूनानी कला परम्परा को ग्रहण कर लेना कला के इतिहास मे बहुत महत्वपूर्ण घटना है। दक्षिणी इटली तथा सिसली मे यूनानी उपनिवेशो तथा ईट्रस्कन लोगो द्वारा यूनानी कला मे अभिरुचि लेने के कारण यूनान की संस्कृति को प्रसार का सुअवसर मिल चुका था। सशक्त रोमन साम्राज्य के प्रयत्नो ने शेष यूरोप मे भी इसको फैलाने मे सहायता दी। रोमन लोगो ने यूनानी परम्पराओ के पुनरुद्धार के बहुत प्रयत्न किये। उनके कारण इस कला मे ऐसी शक्ति उत्पन्न हो गई कि रोमन फिलिस्तीन के यहूदियो मे उत्पन्न होकर पूर्वी रहस्यवाद मे विकसित तथा प्राचीन यूनानी विश्वासो का विरोध करने वाले ईसाई धर्म ने भी यूनानी कला का ही आधार लिया और ईसाई कला निरन्तर उसी से प्रेरित होती रही।

यूनानी कला-विभिन्न युगो में

आरम्भिक युग (Archaic Period)—यो तो किसी भी देश की आरम्भिक संस्कृति अथवा कला के हेतु यह शब्द प्रयुक्त किया जा सकता है किन्तु आधुनिक यूरोपीय विद्वानो मे यह यूनानी जगत् की आरम्भिक कला के विकासशील युग के हेतु प्रयुक्त किया जाता है। इसके काल-विस्तार के विषय मे सभी विद्वान् एकमत नही हैं। यह तो सभी मानते हैं कि इसकी समाप्ति लगभग ४५० ई पू मे हुई किन्तु इसके आरम्भ के विषय मे तीन तिथियाँ मानी जाती हैं —

(१) कास्य युग (१५०० ई पू) के कुछ पहले—इस समय एजियन मे माइसीनियन सभ्यता थी और मिस्र से सम्पर्क था।

(२) ८०० ई पू अथवा १००० ई पू मे—जबकि ज्यामितीय शैली आरम्भ हुई थी। इस समय पूर्वी जगत से नवीन सम्पर्क स्थापित हुए।

(३) ६५० ई. पू के लगभग—जबकि यूनानियो ने सगमरमर की मूर्तियाँ बड़े आकार मे बनाना आरम्भ किया था और लगभग इसी अर्थ मे इस शब्द का आज तक व्यापक प्रयोग होता है।

इस युग का अन्त ४८० ई पू मे हुआ जबकि पारसीको ने एथेन्स को नष्ट-भ्रष्ट किया। यद्यपि दूरवर्ती क्षेत्रों में यह शैली फिर भी चलती रही होगी तथापि ४५० ई पू से ही शास्त्रीय युग आरम्भ हो गया था। एशिया माइनर, सिसली, दक्षिणी इटली, साइप्रस, एट्रूरिया, एखमन फारस तथा स्पेन मे इसका प्रभाव बहुत समय तक बना रहा।

अब तक यूनान के इतिहास मे जिन्हें अन्धकारपूर्ण युग कहा जाता था वे अब पहले से कम अन्धकारपूर्ण रह गये हैं। यद्यपि उस समय का इतिहास अभी तक अज्ञात है तथापि पुरातत्व के अनुशीलन से पर्याप्त प्राचीन सामग्री प्रकाश मे आयी है। माइसीनियन सभ्यता के पतन तथा सातवी शदी ई पू मे यूनानी नगर-राज्यो के उद्भव के मध्य जो अन्धकारपूर्ण युग भी रहा है उसको बहुत कुछ प्रकाश मे लाया जा चुका है। एक प्राचीन उल्लेख मे कहा गया है कि एक युवती ने किसी दीवार पर अपने प्रेमी का छाया देखी। उसने उसमे रङ्ग भर दिया और इस प्रकार चित्रकला की उत्पत्ति हुई। किन्तु इस उल्लेख मे कोई सच्चाई नही है माइसीनियन सभ्यता के पतन के उपरान्त यूनानी भाषा बोलने वाली एक नवीन जाति ने इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया। ये लोग लोहे का प्रयोग, अनेक मृतक सस्कार, तथा एक भिन्न जीवन-पद्धति साथ लाये थे। इन्हें 'डोरियन' कहा गया है। इनके आगमन से यहाँ के निवासी पूर्वी देशो तथा निकटवर्ती द्वीपो की ओर भागे जिसके कारण इन क्षेत्रो मे "पूर्वी यूनानी जगत्" का आरम्भ हुआ।

डोरियन आक्रमण ने कोई कलात्मक प्रेरणा प्रदान की हो-ऐसा प्रतीत नही होता। एथेन्स ही एक ऐसा केन्द्र था जिसने ग्यारहवी शती ई पू. मे इस नवीन परिस्थिति को कलात्मक प्रेरणा दी और इस आक्रमण का शिकार भी यह नही बना। वास्तव मे इसी समय से यूनानी कला ज्यामितीय रूपो के आधार पर आरम्भ हो जाती है जिसमे मानव अथवा प्रकृति को कोई स्थान नही मिला है। कुछ लोगो का यह विचार सही नही है कि यूनानी कला पाँचवी शती ई पू मे विकसित विशेषताओ के आधार पर ही समझी जा सकती है। निर्धनता और सकट से ग्रस्त ग्यारहवी शती ई पू के यूनान की कला के उदाहरण केवल पात्रो के रूप मे ही उपलब्ध हैं। ये घरेलू तथा दाह-सस्कार, दोनो के उपयोग मे आते थे। इस शैली को प्रथम ज्यामितीय शैली (Proto geometric style) कहा जाता है जिसमे अलकरण के अभिप्राय ज्यामितिक आकृतियो पर आधारित होते थे। यह शैली आठवी शती ई० पू० तक चली। इस शैली मे पहले के समान पतित प्राकृतिकतावाद (Decadent-Naturalism) नही है बल्कि दृढ औपचारिकता है। पात्रो की आकृतियाँ अधिक अनुपात-पूर्ण हैं। उन पर अङ्कित अलकरण भी समतापूर्ण हैं। प्राय समकेन्द्रिक वृत्त, चौपड एव गोमूत्रिका का अङ्कन हुआ है। उन्ही आकृतियो के आधार पर अनुपात, समता, स्पष्टता' तथा सफाई से युक्त मानव-शरीर का विकास इस कला मे सम्भव हुआ। यूनानी कला की महानम कृतियो मे भी ये ही गुण मिलते हैं।

ज्यामितीय शैली—पात्र-चित्रण की प्रथम ज्यामितीय शैली १०००ई० पू० के लगभग एथेन्स मे उत्पन्न हुई। समस्त ज्यामितीय युग मे एथेन्स की ही प्रेरणा भी रही। प्राय टेढी-मेढी रेखाएँ, कुण्डली, शक्करपारा, प्रहेलिका आदि ही चित्रित होते रहे। आठवीं शती ई०पू० की अन्तिम ज्यामितीय शैली मे पात्रो को अनेक प्रकार के अलकरणो की पट्टियो से सजाया जाता रहा। फिर भी सभी प्रकार की आकृतियाँ बहुत धीरे-धीरे प्रयुक्त होनी आरम्भ हुई। दसवी शती ई०पू० के अलकरणो में कही-कही अश्व की छोटी-सी आकृति मिलने लगती है, किन्तु आठवी शती ई०पू० मे ही मानव तथा पशु आकृतियो को पात्रो मे कुछ महत्वपूर्ण स्थानो पर अङ्कित किया जाना आरम्भ हुआ। इस समय अङ्कित विचित्र मानवाकृति प्राय छाया के रूप मे है जिसमे पार्श्वमुद्रा मे शिर, सम्मुख मुद्रा मे त्रिभुज के समान शरीर, दियासलाई की तीलियों के समान पतली भुजाएँ, दोनो हाथ शिर पर रखे, पार्श्व-स्थिति मे टाँगें, गोल नितम्ब एव दृढ पिंडलियाँ उद्धरणीय विशेषताएँ हैं। पार्श्व स्थिति के रथ मे भी चारो पहिये दिखाये गये हैं। इस प्रकार इस युग के कलाकार ने अत्यन्त उलझे हुए दृश्यो को भी समझने योग्य स्थिति मे प्रस्तुत किया है। (फलक ४-क)

७५० ई० पू० के लगभग एथेन्स मे निर्मित डाइपाइलन शैली के पात्र इस ज्यामितीय प्रवृत्ति के सर्वोत्तम उदाहरण है। ये पात्र पाँच फुट तक ऊँचे हैं। एथेन्स के डाइपाइलन कब्रिस्तान की समाधियो की अनुकृति

पर बने ये पात्र स्थूलता-प्रधान सरलाकृति शैली का आरम्भिक स्वरूप दर्शाते हैं। इनके संयोजनो मे आकृतियो को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। इन पर शव दफनाने, रथो की पक्तियो, शोकाकुल जन-समुदाय, सशस्त्र सैनिको एव युद्धो के दृश्य पक्ति-बद्ध आकृतियो के रूप मे चित्रित हैं। सम्भवत पौराणिक कथाओ के आधार पर इनका अकन हुआ है। आगे चलकर इन्ही के अनुकरण पर यूनानी कला मे पुराण तथा इतिहास का अकन हुआ।

इस युग मे छोटे आकार की कांस्य-प्रतिमाओ तथा मृण्मूर्त्तियो का प्रचुरता से निर्माण हुआ। क्रीट मे मिनोअन शैली मे कांस्य की मानव तथा पशु प्रतिमाएँ बनी। आठवी शती ई० पू० के लगभग पात्रो पर अकित आकृतियो के समान ही ज्यामितीय नियमो पर आधारित आकृति रचना होने लगी। छोटे बेलनाकार शिर, लम्बी टाँगो तथा दृढ अग्र एवम् पृष्ठभागो वाले काँसे के बने छोटे-छोटे अश्व तत्कालीन पात्रो पर चित्रित अश्वाकृतियो के ही समान हैं। मानव शरीर भी स्पष्ट ज्यामितीय नियमो के आधार पर कल्पित हुआ। बोस्टन सग्रहालय मे रखी अपोलो की कांस्य प्रतिमा, जो लगभग ७०० ई० पू० मे बनी थी, ज्यामितीय शैली की पूर्णता दर्शाती है। लम्बा त्रिभुजाकृति मुख, विस्तृत नेत्र, लम्बी ग्रीवा, त्रिभुज शरीर एव सुदृढ जघाएँ इसकी विशेषताएँ हैं। इन छोटी-छोटी प्रतिमाओ मे ग्रीक कलाकारो को मानव तथा पशु आकृति के वे ज्यामितीय सूत्र हाथ लगे जिनके आधार पर भविष्य मे कला का विकास सम्भव हुआ।

७५० ई० पू० के लगभग एथेन्स मे ज्यामितीय शैली परिपक्व हो चुकी थी। इसी समय यूनानियों ने पूर्वी भूमध्यसागर के देशो से व्यापार-सम्पर्क स्थापित किये और इन देशो की सस्कृति का प्रभाव यूनान पर पड़ने लगा। विशालकाय भवनो एव प्रतिमाओ का भी निर्माण आरम्भ हुआ। वाहरी प्रभावो को ग्रहण करते हुए भी यूनानी कला की मौलिकता मे अन्तर नही आया।

पूर्वी देशो का प्रभाव हमें सर्व प्रथम पात्रो के चित्रण मे दिखायी देता है जहाँ आलंकारिक तत्वो की दृष्टि से प्राकृतिक पैटर्न, नवीन तथा विचित्र पशु-पक्षी अकित किये गये हैं। इनमे कुछ वास्तविक हैं और कुछ काल्पनिक। ज्यामितीय शैली मे परिवर्तन नही हुआ है, केवल शनै. शनै आकृतियो की बाह्य सीमा-रेखा मे वर्तुलता का आभास दिया जाने लगा है। इस समय अंकित अश्वो मे न तो पहले जैसी कोणात्मकता है और न उतनी जडता। इन्हे पूर्ण पार्श्व-स्थिति मे बनाया गया है। पात्र के सम्पूर्ण धरातल पर जहाँ पहले ज्यामितीय अभिप्रायो की प्रमुखता रहती थी वहाँ अब आकृति-चित्रण प्रमुख हो गया है और चित्रकार दृश्याकन मे विशेष रुचि लेने लगा है। अनेक वास्तविक-काल्पनिक पशुओ की पक्तियाँ चित्रित की गयी हैं। धीरे-धीरे पौराणिक दृश्य भी चित्रित किये जाने लगे हैं। काली आकृतियाँ अकित करने की विधि ही इस समय प्रचलित रही जो प्राय: छठी शती ई० पू० तक विद्यमान थी। इस विधि मे पात्र के प्राकृतिक रग पर गहरी छायाकृतियाँ चित्रित की जाती थी और शरीर के आन्तरिक विवरण उत्कीर्ण कर दिये जाते थे। कही-कही आकृतियो के इकरगेपन को समाप्त करने की दृष्टि से श्वेत अथवा बैगनी रगो का भी प्रयोग किया गया है। युद्ध, आखेट, रथो की पंक्ति एवम् अन्य पौराणिक घटनाएँ प्रचुरता से चित्रित हुई हैं।

यूनान की जो कला अमूर्त ज्यामितीय रूपों से आरम्भ हुई थी, आठवी शती ई० पू० तक मानव तथा पशु आकृति के हेतु ज्यामितीय सूत्र का विकास कर चुकी थी। मानव तथा देव आकृतियो के आदर्श रूप की खोज मे यूनान का कलाकार मिस्र से प्रभावित हुआ। सातवी शती ई० पू० की यूनानी मूर्तिकला इसका प्रमाण है। शरीर त्रिभुजाकार होते हुए भी केश-विन्यास मिस्र की भाँति है तथा मुद्राएँ भी वही से ली गयी हैं। सातवी शती ई० पू० के अन्त मे यूनान की मानव-प्रतिमा ज्यामितीय रूढियो मे मुक्त हो गयी। इस समय की कूरोस (Kouros) की पुरुष प्रतिमा पूर्ण सम्मुख मुद्रा मे है। उसका बायाँ पैर कुछ आगे बढा हुआ है तथा मुट्ठी बँधे हाथ दोनो ओर जंघाओ को स्पर्श कर रहे हैं। शक्ति और सरलता इसकी विशेषताएँ हैं और इसे यूनानी मानव-प्रतिमा का प्रथम आदर्श रूप माना जा सकता है। नेत्रो की विशालता, मासलता, अनावृत शरीर के सौंदर्य का आकर्षण एवं अग-

प्रत्यग का स्पष्ट विभाजन (सुविभक्तता) आदि इसकी अन्य विशेषताए हैं। इस आकृति की भव्यता, विशालता एव आनुपातिकता सम्पूर्ण यूनानी प्रतिमा—कला के इतिहास की सभी उत्तम आकृतियो मे प्राप्त हैं (फलक ५–घ)। इसी युग की नारी आकृतियाँ वस्त्राच्छादित हैं और उनमे भी विविधता है। वस्त्र-विन्यास मे भी यथेष्ट विभिन्नता है (फलक ५–क)।

सातवी शती ई० पू० मे यूनानी उपासना-गृहो का स्वरूप स्थिर हो जाने पर उन्हें अलकृत करने के हेतु प्रतिमा एवम् चित्र बनाने वाले कलाकारो की आवश्यकता हुई। काष्ठ के भवनो मे मिट्टी के रगीन खिलौनो से प्रवेशद्वार अलकृत होते थे। कही-कही चित्रकारी भी की जाती थी। इस समय के अवशिष्ट चित्र शैली की दृष्टि से तत्कालीन पात्रो की कला के ही समान हैं। इन प्रवेश-द्वारो का शीर्ष त्रिभुजाकृति बनाया जाने लगा जिसके अल-करण मे कुछ कठिनाइयाँ भी आयी। इनका मध्यभाग ऊँचा और दोनो ओर के भाग छोटे होते जाते हैं अत इनके हेतु उपयुक्त आकृतियो का चयन भी एक समस्या थी। प्राय दोनो ओर पशुओ आदि के मध्य किसी देवता अथवा दैत्य की आकृति बना दी जाती थी और अन्त के नुकीले भाग मे बहुत छोटी आकृतियाँ बनायी जाती थी।

छठी शती ई० पू० के आरम्भ मे यूनानी पात्र-कला एव प्रतिमा-कला मे चित्रण के विषय निश्चित हो चुके थे। पूर्वी देशो के प्रभावो का युग समाप्त हो चुका था और यूनानी कला अपने मार्ग पर बढने लगी थी। यद्यपि उस समय भवनो को अलकृत करने वाली चित्राकृतियाँ अब शेष नही रही हैं, तथापि पात्रो के ऊपर बनी आकृतियो से तत्कालीन चित्रकला की स्थिति का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। इनमे से कुछ का स्तर बहुत अच्छा है। प्रति-रूपण कला (Representational Art) की समस्याओ को सुलझाते हुए यूनानी कलाकार निरन्तर नवीन विचारो की अभिव्यक्ति कर रहे थे। वे प्रत्येक बात को भली प्रकार समझने की चेष्टा मे थे इसीसे उनकी अनेक कलाकृतियाँ उनकी श्रेष्ठता और विचारो की स्पष्टता का संकेत देती है।

ऐथेनियन पात्र-चित्रण—प्राचीन यूनानी कला के अन्तिम चरण का विचार एथेन्स के पात्रो पर हुई चित्र-कारी से आरम्भ किया जा सकता है। इस समय काले रग की आकृतियो वाले टेक्नीक का प्रयोग हुआ है जिन्हें पकाई मिट्टी के लाल धरातल पर चित्रित किया गया है। आकृतियो की आन्तरिक रेखाए काले रग को खुरचकर अकित की गयी हैं तथा कही-कही श्वेत तथा बैंगनी रग का भी पुट लगाया गया है। भित्ति-चित्रण मे यद्यपि इसी प्रकार की आकृतियो का प्रयोग हुआ होगा तथापि उस समय की रगी हुई प्रतिमाओ से अनुमान किया जा सकता है कि भित्ति-चित्रकार पात्रो की तुलना मे अधिक रगो का प्रयोग करता होगा। कब्रो मे काम आने वाले पात्रो पर प्राय नेसास नामक अर्द्धमानव-अर्द्ध अश्व दैत्य को मारते हुए हेराक्लीज की पौराणिक कथा का अकन बहुत लोक-प्रिय था। दौडती हुई आकृतियो के हेतु घुटने मुडे हुए पार्श्व मुद्रा मे पैर अकित किये जाते थे किन्तु शरीर का ऊपरी भाग सम्मुख मुद्रा मे ही चित्रित होता था।

एथेन्स की काली-आकृति चित्रण-शैली ५६० ई. पू के लगभग अपनी चरम उन्नति कर चुकी थी। इस समय पिसिस्त्रातुस यहाँ का शासक था। प्राय लाल धरातल पर काले रग से आकृतिया बनती थी किन्तु छठी शती ई पू. के अन्तिम चरण में पात्रो के धरातल को काला रगा जाने लगा और उनके रगने के समय ही आकृतियो वाले भाग रिक्त छोड जाने लगे। इस टेक्नीक को काले धरातल पर लाल आकृति-चित्रण कहा गया गया है (फलक ४-ख)। काली आकृति तथा लाल आकृति मे कोई कलागत मौलिक भेद तो नही है क्योकि चित्रकारो ने काली आकृति-चित्रण विधि को ठीक उल्टा करके इस नयी विधि का विकास किया गया है, फिर भी इसमे कुछ ऐसी विशेषताए हैं जो पहले वाले टेक्नीक मे नही थीं। काली आकृति मे रूपो के आन्तरिक विवरण रग को खुरच कर गड्ढेदार रेखाओ के रूप मे अकित करने पडते थे किन्तु लाल आकृति मे चित्रकार इन विवरणो को काले रग से सीधे तूलिका द्वारा ही बना सकता था। इस नवीन विधि से मानवाकृति की गठनशीलता को भी अधिक सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया जा

१४—लाल आकृति, एथेनियन पात्र चित्रण

सकता था। काली आकृति मे प्रायः सम्मुख अथवा पार्श्व मुद्राओ को ही दिखाया जा सकता था जबकि लाल आकृति मे अ ग-प्रत्य ग की विभिन्न भगिमाओ की भी सफलता से अ कित किया जा सकता था (चित्र-१४)। इस समय र गो मे भी विविधता आयी। पात्र का धरातल श्वेत र ग कर उस पर आकृतियाँ रेखांकित कर दी जाती थी और फिर आकृति के विभिन्न क्षेत्रो मे पतले र ग के वाश भर दिये जाते थे जिन मे लाल, बैंगनी, बादामी तथा पीले र गो का प्रयोग होता था। सम्भवतः समकालीन भित्ति-चित्रण मे भी ये र ग प्रयुक्त हुए थे।

आरम्भ मे काली तथा लाल दोनो प्रकार की आकृतियाँ साथ-साथ बनती रही। कभी-कभी एक ही पात्र पर दोनो विधियो से चित्र बनाये गये, किन्तु शीघ्र ही नये कलाकारो ने काली आकृति का अ कन छोड दिया। छठी शती ई. पू. के अन्तिम दो दशको मे लाल आकृतियाँ विभिन्न स श्लिष्ट मुद्राओ तथा स्थितियो मे चित्रित की गयी हैं जिनसे स्थिति-जन्य लघुता तथा गतिपूर्ण मुद्राओ मे अगो की स्थिति के बारे ा यूनानी कलाकार के विस्तृत ज्ञान का परिचय मिलता है। बड़े आकार के पात्रो पर बनी आकृतियाँ रेखामात्र ा ही घनत्व का आभास देती हैं।

४८० ई पू. मे यूनान पर ग्जरक्सेस (Xerxes) का आक्रमण हुआ। पारसी आक्रान्ताओ ने समस्त कला-ृतियो को नष्ट कर डाला। जब एथेन्स उनके चगुल से मुक्त हुआ तो नवीन भवन आदि बनाये गये किन्तु प्राचीन लाकृतियो के पुनरुद्धार का कोई प्रयत्न नही किया गया। तत्कालीन खण्डित प्रतिमाओ, स्तम्भो आदि को भवनो ी नींव भरने के काम मे ले लिया गया। उत्खनन मे ये उसी अवस्था मे मिले हैं अत तत्कालीन-मूर्तिकला का पर्याप्त वस्तृत परिचय इनसे मिल जाता है। इस समय यद्यपि पूर्व-विकसित नग्न पुरुष एव आवृत नारी आकृतियो के ादर्श पर ही प्रतिमाओ का निर्माण हुआ तथापि समूह-सयोजन एव मुद्राओ के सम्बन्ध मे अनेक नवीन प्रयोग किये ये। पाँचवी शती के अन्त मे कलाकार बडी सजीव, उन्मुक्त और परम्परा से पूर्णत भिन्न नवीन आकृतियो की चना करने लगे। इस समय तक कांसे की पोलदार प्रतिमाएँ ढालने की विधि ज्ञात की जा चुकी थी किन्तु सम्भवतः न्हें ढालने के हेतु बनायी जाने वाली आरम्भिक प्रतिमाएँ मिट्टी की न होकर किसी कड़ी वस्तु की ही होती थी। ल्के तथा भारी कपडो की सिकुडनो के विभिन्न प्रभाव दिखाने में इस समय के मूर्तिकारो ने कुशलता प्राप्त करना ारम्भ कर दिया था। अश्वारोहियो आदि की प्रतिमाएँ भी बनने लगी। लेटी तथा बैठी हुई स्थिति मे छोटी-बडी ास्य-मूर्तियो का निर्माण हुआ।

एटिका मे जहाँ नग्न पुरुष आकृतियाँ बनती थीं वहाँ आयोनिया मे वस्त्राच्छादित प्रतिमाओ की परम्परा ी। सम्भवतः यहा अधिक मासल आकृति अच्छी समझी जाती थी। भवनो को अलकृत करने के हेतु विचित्र प्रकार ी प्रतिमाएँ निर्मित हुईं जैसे एक त्रिभुजाकार सिरदल मे तीन मानव मुख वाले जीव की कल्पना की गयी है जिसकी ूछ सर्पाकृति है। त्रिभुज के कोणीय क्षेत्र को भरने की दृष्टि से यह बड़ी उपयुक्त आकृति है। कुछ समय पश्चात् ्क ही आकार की प्रतिमाओ को विभिन्न मुद्राओ में अ कित करके इस स्थान को भरा जाने लगा, जैसे युद्ध के दृश्य ी एक कल्पना जिसके केन्द्र मे खडी हुई आकृतियाँ, उनके पश्चात् घुटनो के बल बैठी आकृतियाँ और तत्पश्चात्

लेटी अथवा गिरी हुई आकृतियाँ सयोजित की गयी हैं। सिरदलो आदि पर इस प्रकार बनी प्रतिमाओ तथा उनकी पृष्ठ-भूमि को विभिन्न प्रकार से रंगा भी जाता था। मूर्तिकार धरातलो तथा आकृतियो की सूक्ष्मताओ का भी बहुत सावधानी से अकन करने लगे थे।

इस समय की चित्रकला मे छाया—प्रकाश के प्रभाव देने का प्रयत्न नही किया गया है और दृश्यो मे आकृतियो का सयोजन एक ही दृष्टि-बिन्दु के परिप्रेक्ष्य के विचार से नही हुआ है। पार्श्व मुखाकृति मे सम्मुख नेत्र, सम्मुख शरीर मे पार्श्व पैर आदि मिल जाते हैं अतः कहा जा सकता है कि कलाकार अभी तक पूर्णत परम्परा-मुक्त नही हो पाया था।

नगर-राज्यो की कला—४९० ई० पू०—४८० ई पू मे पारसी आक्रान्ताओ ने एशिया माइनर के यूनानी क्षेत्रो पर अधिकार करने के उपरान्त यूनान की मुख्य भूमि पर आक्रमण किये किन्तु पराजित हुए। इसके परिणाम-स्वरूप एथेन्स का एक विजेता शक्ति के रूप मे उदय हुआ और जनता मे आत्म-विश्वास जागृत हुआ। पेरीक्लीज के नेतृत्व मे यूनानी साम्राज्य को सुदृढ किया गया किन्तु स्पार्टा आदि यूनानी राज्यो के विरोध के कारण पेलोपो-नेशिया के युद्ध मे एथेन्स पराजित होकर दुर्बल हो गया। नगर-राज्यों की सम्पूर्ण व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी। चौथी शती में मकदून मे फिलिप तथा उसके पुत्र सिकन्दर का अभ्युदय हुआ और एथेन्स उसके अधिकार मे चला गया। यूनान के अन्य क्षेत्रों पर अधिकार करने के उपरान्त सिकन्दर ने यूरोप के अनेक प्रदेशो को जीता। उसके संरक्षण मे अनेक कलाकार रहते थे जिन्होंने अपनी प्रतिभा तथा परिश्रम के बल पर कला की ऐसी आधार-शिला रखी जो सम्पूर्ण यूरोपीय महाद्वीप पर छा गयी।

शास्त्रीय कला का आरम्भ—४५० ई० पू० से ३०० ई० पू० तक—पाँचवी शती ई० पू के आरम्भिक वर्ष यूनानी कला मे क्रान्ति का युग माने गये है। अब तक के कलाकार स्थिर मानव-आकृति को विभिन्न मुद्राएँ तथा गति प्रदान कर चुके थे किन्तु अब ऐसी स्थिति आ चुकी थी कि कलाकार प्राचीन खडी हुई प्रतिमा की स्थिर मुद्रा को, जिसमें कि यातुक धारणाये भी चली आ रही थी, पूर्णरूप से छोडने के प्रति आश्वस्त हो गये थे। कला-कारो ने नवीन ढ ग से सतुलन, लय तथा गढनशीलता को प्रस्तुत करना आरम्भ किया। शरीर का बोझ दोनो पैरो के बजाय एक पैर पर आ गया और दूसरा पैर स्वतन्त्र होकर विभिन्न स्थितियो मे प्रस्तुत किया जाने लगा। इससे एक नितम्ब भी उद्वेलित हुआ और दूसरे मे शिथिलता आयी। शिर को एक दिशा मे थोडा मोडकर बनाया जाने लगा। आकृतियाँ केवल बाह्याकार ही नही वरन् अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी पहले से भिन्न होने लगी। मुस्कराते चेहरो का स्थान विचारपूर्ण तथा गम्भीर मुद्रा ने ले लिया। इस प्रकार प्रकृति के अध्ययन से प्राप्त स्वाभाविक शरीर-स्थितियों मे समता, अनुपात एव सन्तुलन का समन्वय करके एक नवीन मानवीय तथा दैवी शारीरिक-सौंदर्य के आदर्श का निर्माण किया गया। यूनानी कला में इस समय से जिस शैली का आरम्भ हुआ उसे शास्त्रीय कला शैली कहा जाता है। इसका प्रारम्भ लगभग ४५० ई पू से माना गया है।

पाँचवी शती मे इस प्रकार का परिवर्तन लाने वाले महान कलाकारो के नाम तो मिलते हैं किन्तु उनकी कृतिया प्रायः नही मिलती। माइरन (Myron) तथा पोलीक्लीटस (Polykleitos) श्रेष्ठ कास्य-मूर्ति-निर्माता थे। उनकी कलाकृतियो की रोमन अनुकृतियो से ही हम उनके विषय मे कुछ जान पाते है। पोलीग्नोटस (Polygnotus) नामक महान् चित्रकार का न तो मूल कार्य अवशिष्ट रहा न उसकी अनुकृतियाँ ही बच पायी। तत्कालीन पात्र चित्र-कारो की कृतियो मे उसका प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। कुछ जानकारी साहित्यिक उल्लेखो से भी मिलती है। केवल ध्वस्त भवनो तथा उन पर उत्कीर्ण प्रतिमाओ से ही उस युग की कुछ झलक मिल पाती है।

ओलम्पिया मे ४७०—४५६ ई पू के मध्य निर्मित शनि के पुत्र ज्यूस (Zeus) नामक देवता के उपासना-गृह की प्रतिमाएँ इस युग की कला मे होने वाली क्राति की प्रथम साक्षी हैं। इनमे युद्ध, आखेट, जुलूस, भोज एव रथारोहियो आदि की अनेक मूर्तियाँ हैं। इनकी रूप योजना तथा शैली मे विशालता और अनुभूति की गहराई

है। इस युग के मूर्तिकार मानवाकृति के आदर्श रूप को और अधिक विकसित करने मे लगे रहे। वस्त्रो की अलंकार-पूर्ण सिकुड़नें तथा चेहरे की मुस्कान, जो प्राचीन युग की मूर्तिकला की विशेषताएं थी, अब न रही। किसी शीघ्रता-पूर्ण क्रिया के पूर्व शरीर की जो क्रिया-हीन स्थिति होती है (जैसे त्रिशूल, भाला अथवा तश्तरी फेंकने के पूर्व की स्थिति) उसे अङ्कित करने का प्रयत्न इन कलाकारो ने किया है। कुछ समय के लिए इन कलाकारों ने भावो का अङ्कन छोड़ कर शारीरिक अनुपातो, गतिपूर्ण मुद्राओ, शरीर के सन्तुलन एव समता (Symmetry) पर ही ध्यान दिया। वास्तव मे ये तत्व ही यूनानी कला के आधार हैं। फीडियास (Pheidias) नामक कलाकार ने देवी-देवताओ की प्रतिमाओ मे मानवता को ही प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया। पोलीक्लीटस (Polykleitos) ने परिश्रम तथा ईमानदारी से ऐसे शारीरिक आदर्शों की कल्पना की है जिनमे इस संसार को अधिकार मे कर लेने की क्षमता है। इन कलाकारो की अनेक कृतियों की नकल परवर्ती रोमन युग मे की गयी। फीडियास ने डोरिक शैली की विश्व-प्रसिद्ध ज्यूस (Zeus), ओलम्पिया (Olympia) तथा ऐथेना (Athena) की प्रतिमाओ का निर्माण किया था। दानवी शक्ति तथा देवताओ के युद्धो के दृश्यों की कल्पना करके उसने प्रतीक-रूप में अन्य बर्बर जातियो की तुलना मे यूनानी मे सभ्यता को श्रेष्ठ घोषित किया। पोलीक्लीटस को यूनानी कला मे सुदृढ़ और सुगठित शरीर के समान प्रतिमाएं (Athletic Sculpture) बनाने वाला कलाकार कहा जाता है। "भाला लिए हुए मल्ल" की जो प्रतिमा उसने बनाई थी, उसकी अनेक अनुकृतियां रोमन युग मे हुई (फलक ५ च)। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मिस्र के आधार पर बनने वाली प्रतिमाओ मे बायां पैर आगे बढा हुआ अङ्कित किया जाता था, किन्तु डोरिक युग के कलाकार बांये के स्थान पर दांया पैर आगे दिखाने लगे थे। उसी एक पैर पर शरीर का समस्त भार प्रस्तुत किया गया था। किन्तु अभी तक विश्राम की स्थिति किसी कलाकार ने अङ्कित नही की थी। पोलीक्लीटस ने इस ओर प्रयत्न किया। उसने दांया पैर आगे बढा हुआ दिखाया और उसी पर शरीर का सम्पूर्ण बोझ डाला। बांया पैर पीछे मुड़ा हुआ दिखाया और उसके अंगूठे-मात्र से ही भूमि का स्पर्श कराया। यह न चलने की स्थिति थी, न खड़े होने की, अपितु दोनों के मध्य की थी। उसने शरीर के अंग-प्रत्यंग का सुस्पष्ट विभाजन और विश्राम तथा घनत्व की स्थितियो का सन्तुलित रूप प्रस्तुत किया। शरीर के अङ्कन मे पोलीक्लीटस गणितीय नियमो का बहुत अधिक विचार करता था, इसीसे उसकी सभी प्रतिमाएं लगभग एक-सी प्रतीत होती हैं। प्राचीन कलाविदों ने उसकी आलोचना भी इस दृष्टि से की है कि उसमे विविधता नही है। उसकी अन्य प्रतिमाओ मे "सिर पर पट्टी बांधते हुए लडका" तथा "अमेजन" को पहचाना जा सकता है। फीडियास द्वारा बनाई गयी 'एथेना' की आकृति को रोमन लेखको ने "आदर्श नारी-आकृति" कहा है।

प्राचीन एटिक सम्प्रदाय—पांचवी शती ई पू के चित्रकारो की कोई भी कृति अवशिष्ट नही है। फारसी युद्धो के पश्चात् पोलीग्नोटस (Polygnotus) प्रसिद्ध चित्रकार हुआ। उसने ऐथेन्स तथा अन्य स्थानो मे ऐतिहासिक-पौराणिक दृश्यो का चित्रण किया। उसके चित्रो के कुछ विवरण प्राचीन पुस्तको मे मिलते हैं। कहा जाता है कि वह निरन्तर नवीन शैली एवं रूपो का आविष्कार करता रहता था। विस्तार (Space) की समस्याओ के साथ-साथ वह चरित्रगत विशेषताओ एव क्रिया-शीलता को भी प्रस्तुत करने मे सिद्धहस्त था। उसकी कला का कुछ अनुमान तत्कालीन पात्रो मे अनुकृत आकृतियो से लगाया जा सकता है। दैनिक जीवन, धर्म तथा पुराणो के आधार पर ये चित्र कुशलता पूर्वक अङ्कित किये गये हैं। पोलिग्नोटस प्राचीन एटिक सम्प्रदाय (Old Attic School) से सम्बन्धित था। उसे यूनानी चित्रकला का जन्मदाता भी कहा जाता है। उसका रेखाकन बहुत उत्तम था और वह पार्श्वगत (Profile) आकृतियां अङ्कित करता था। वह छाया प्रकाश, परिप्रेक्ष्य आदि की अपेक्षा रङ्गो की यथार्थता पर अधिक ध्यान देता था। उसने मुद्राओ आदि की सहायता से वातावरण तथा भाव व्यक्त करने का भी प्रयत्न किया।

पोलीग्नोटस ने सार्वजनिक भवनो की भित्तियो को ही प्राय चित्रालंकृत किया। एथेन्स के स्टोआ (Stoa) के बाहरी द्वार के ऊपर उसने ट्राय का घेरा, ओडिसी की यात्राएँ तथा लूसीप्पीडी (Leucippidae) के बलात्कार से सम्बन्धित चित्र बनाये। इन चित्रो मे उसने अत्यन्त झीने आवरण से युक्त नारी-आकृतियो का चित्रण किया था। उसी से प्रेरित होकर अठारहवी शती मे फ्लीमिश कलाकार पीटर पाल रुबेन्स ने इस विषय को पुन. चित्रित किया और नारी शरीर की मांसलता का मादक प्रभाव उत्पन्न करने के हेतु पुन अनावृत आकृतियो का चित्रण किया।[2] पांचवी शती ई. पू के अन्तिम और चौथी शती ई पू के आरम्भिक दिनो मे एक अन्य कलाकार ऐगेथारकस (Agatharchos) हुआ। वह दृश्य चित्रकार था और उसे प्रकृति, परिप्रेक्ष्य, छाया-प्रकाश एव दृष्टि-विज्ञान के नियमो का अच्छा ज्ञान था। रेखाकन के स्थान पर उसने मासलता के स्थूल प्रभावो पर अधिक ध्यान दिया। अपोलोडोरस नामक चित्रकार ने उसके सिद्धान्तो को आकृति-चित्रण मे भी अपनाया। पोलीग्नोटस के साथ माइकन (Mikon) का नाम भी प्रसिद्ध है।

अब तक यूनानी मे एथेन्स ही चित्रकला का केन्द्र था किन्तु लगभग इसी समय अन्य स्थानो पर भी नये-नये सम्प्रदाय आरम्भ हो गये। इनमे आयोनियन सम्प्रदाय, सीक्योनियन सम्प्रदाय तथा थेबन-एटिक सम्प्रदाय प्रमुख हैं। पात्रों की कला मे विकास के विभिन्न चरण स्पष्ट देखे जा सकते हैं। छठी शती ई पू के अन्तिम दो दशको के लाल आकृति चित्रण करने वाले कलाकारो ने अनेक उलझी हुई शरीर-स्थितियो को चित्रित किया है; फिर भी कहीं-कहीं उनमे प्राचीन रूढियाँ एव असगतियाँ मिल जाती हैं। ५००—४८० ई पू के लगभग की चित्रकारो की पीढी नवीन युग की भावना को समझ सकी। ये कलाकार केवल एक दृष्टि-बिन्दु से दिखायी देने वाली विश्राम अथवा क्रिया-शीलता की स्थितियो को सफलता से प्रस्तुत कर सके। प्राचीन मुखाकृति का स्थान पाँचवी शती ई पू के पार्श्वगत चेहरे ने ले लिया। ट्राय के घेरे को चित्रित करने वाले एक चित्रकार ने अभिव्यक्तिपूर्ण मुद्राओ, निराशा, भयङ्करता आदि को बडी खूबी से प्रस्तुत किया है। केवल रेखाओ के द्वारा ही शक्तिशाली आकृतियो और स्थितिजन्य लघुता आदि को दर्शाया गया है। इस समय पात्र कला के प्रमुख विषय क्लीओफेडोस (Kleopharades), बर्लिन (Berlin), निओब (Niobe), पेन्थेसिलिया (Penthesilea) तथा पिस्टोग्जेनोस (Pistoxenos) आदि के कथानको से सम्बन्धित थे।

१५—क्यूपिड (काम) तथा एफ्रोडाइटी, दर्पण पर उत्कीर्ण आकृति

४३१ ई पू से ४०४ ई पू तक पेलोपोनेशियन युद्ध हुआ। इसमे स्पार्टा की विजय हुई फलत यूनान के नगर राज्य दुर्बल

1 "Polygnotus adorned the walls of public buildings, and the Stoa of Athens (the out-door portico where hemlock-drinkers discussed the vanity of human effort), with large scale representations of The Sack of Troy, Odysseus in Hades and The Rape of the Leucippidae, in which the women involved were no more than transparently draped Centuries later, Rubens treated the same subject in one of his best paintings and the raped women were nude as they undoubtedly were in the historical episode." Thomas Craven, Greek Art, pp. 87-88

हो गये। कलाकार आजीविका के हेतु विदेशो मे आश्रय खोजने को वाध्य हुए। इस सबके परिणामस्वरूप कलाकार का व्यक्तित्व भी स्वतन्त्र हुआ। वह राज्य, धर्म और सम्प्रदाय के स्थान पर व्यक्तिगत रुचि की सन्तुष्टि के हेतु कलाकृतियो का निर्माण करने लगा। प्राचीन देवताओ का प्रभुत्व समाप्त हुआ और कला मे मानवीय पक्ष अधिक महत्वपूर्ण होने लगा। वीनस तथा ऐफ्रोडाइटी की प्रतिमाओ के माध्यम से अनावृत रमणी-सौन्दर्य का साक्षात्कार किया जाने लगा (चित्र १५)। केफीसोडोटस (Kephisodotos), प्रेक्सीटेलीज (Praxiteles), स्कोपास (Scopas), तिमोथूस (Timotheus), ब्राइयैक्सिस (Bryaxis) तथा लिसीपस इस युग के प्रसिद्ध मूर्तिकार हुए। प्रेक्सीटेलीज की प्रसिद्ध प्रतिमा एफ्रोडाइटी है जिसके हेतु उसने फ्राईन (Phryne) को मॉडेल बनाया था। यूनान की कला मे यह मूर्ति नग्न नारी-सौन्दर्य को प्रस्तुत करने की परम्परा का आरम्भ करने मे महत्वपूर्ण एव प्रेरणादायक सिद्ध हुई (फलक ५-ग)।

पाँचवी शती के आरम्भ से ही व्यक्तिगत विशेषताओ के आधार पर प्रतिमाकन होने लगा था। तत्कालीन सैनिको एवम् सम्राटो की प्रतिमाओ की रोमन अनुकृतियो से इसका किंचित् आभास मिल जाता है। ३३० ई पू मे लिसीप्पस ने सिकन्दर की प्रतिमा का निर्माण किया था।

यूनान के प्राचीन विचारक रगीन रेखाचित्रो एवम् रजनकला (Coloured drawing and Painting) मे भेद मानते थे। उनके अनुसार चित्रकला का आरम्भ ४२० ई. पू. के लगभग हुआ। वास्तव मे इस समय अपोलोडोरस (Apollodorus) नामक चित्रकार ने सर्वप्रथम छाया-प्रकाश का प्रयोग करके आकृतियो में गढनशीलता का प्रभाव उत्पन्न किया। प्लुटार्च ने लिखा है कि अपोलोडोरस ही वह प्रथम व्यक्ति था जिसने यूनान में रगो के विभिन्न वलो की खोज की। प्लिनी का कथन है कि उसकी आकृतियाँ बहुत यथार्थ लगती थी। अपोलोडोरस के पश्चात् रगो के माध्यम से आकृतियो मे उभार लाने की समस्या का बड़ी शीघ्रता से समाधान कर लिया गया। इसके साथ ही चित्रगत-विस्तार (Pictorial space) को भी सफलता से प्रस्तुत किया जाने लगा। शरीरागो तथा वस्त्रो की सिकुड़नो मे रगो के द्वारा छाया-प्रकाश एवम् उभार लाने का प्रयत्न भित्ति-चित्रो एवम् पात्रो मे समान रूप से दिखायी देता है। स्थिति-जन्य लघुता तथा रेखात्मक परिप्रेक्ष्य (Linear perspective) के अंकन की भी चेष्टा हुई।

आयोनियन सम्प्रदाय—ज्यूक्सिस (Zeuxis) एक दिखावा करने वाला कलाकार था। उसने चित्रो से बहुत धन अर्जित किया था। पेरेसियस (Parrhasius) नामक एक अन्य कलाकार उसका प्रतिद्वन्दी था। दोनो ने कला मे यथार्थवाद का बहुत विकास किया। पेरेसियस ने एक ओलम्पिक धावक का ऐसा वास्तविक चित्र बनाया था कि दर्शको को उसके रोम-कूपो मे से पसीना निकलता दिखाई देता था। ज्यूक्सिस इससे उत्तेजित हो गया और उसने अगूरों की लता का ऐसा चित्रण किया कि पक्षी आकर उस पर चोच मारने लगे। ज्यूक्सिस ने 'ट्राय की हेलेन' नामक चित्र बनाना भी स्वीकार किया था जिसकी शर्त यह थी कि यूनान की सबसे सुन्दर पाँच स्त्रियाँ उसके हेतु नग्न माडेल बनें जिसके कि वह सबकी विशेषताओ का चयन एवम् सयोजन कर सके। इस सम्प्रदाय का अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ कलाकार तिमान्थीज (Timanthes) था।

सीक्योनियन सम्प्रदाय— पेरेसियस का ही समकालीन यूपोम्पोज (Eupompos) था। वह सीक्योनियन सम्प्रदाय (Sikyonian school) का सस्थापक था। उसके शिष्य पेम्फीलोस (Pamphilos) ने चित्रकला की शिक्षण-विधि पर अधिक ध्यान दिया। इसके शिष्य पौसियास (Pausias) ने स्थिर जीवन तथा परिप्रेक्ष्य के क्षेत्र मे विशेष प्रयोग किए।

थेबन-एटिक सम्प्रदाय—यूनानी चित्रकला का चौथा सम्प्रदाय थेबन-एटिक (Theban-Attic School) कहा जाता है। इसका प्रमुख आचार्य निकोमाचूज (Nikomachus) ३६० ई पू के लगभग हुआ। इनका शिष्य ऐरिस्टाइड्स (Aristides) करुण दृश्यो का चितेरा था।

इस समय की चित्रकला के जो थोड़े-से प्रमाण मिले हैं उनकी तुलना मे सिकन्दर तथा डेरियस के युद्ध को दर्शाने वाले एक यूनानी भित्ति-चित्र की रोमन अनुकृति भी मिली है। यह मणि-कुट्टिम विधि (Mosic) मे है (फलक ६—क)। इसमे अंकित आकृतियो की गतिशीलता, नाटकीय मुद्रायें, शरीर की गढनशीलता, रेखात्मक एवम् किंचित वायवीय (Aerial) परिप्रेक्ष्य आदि के द्वारा निकटता और दूरी का चित्रण—सभी कुछ इतना विकसित है कि देखकर आश्चर्य होता है। यह मणिकुट्टिम चित्र पोम्पिआई मे मिला है और अनुमान किया जाता है कि पोम्पिआई के सभी भित्ति-चित्र प्राय यूनानी प्राचीन भित्ति-चित्रो की अनुकृतियाँ हैं। इनमे से अनेक चित्रो मे पौराणिक गाथाओ का अकन है जिनकी मानवाकृतियाँ प्राकृतिक दृश्यो और भवनो की पृष्ठभूमि मे चित्रित की गई हैं। चित्र मे गहराई का आभास देने का भी अच्छा प्रयत्न हुआ है। यद्यपि इन्हें यूनानी कला की ठीक-ठीक अनुकृति नही माना जा सकता फिर भी इनसे तत्कालीन प्रवृत्तियो का अच्छा परिचय मिल जाता है। फाईन को माडेल बनाकर एफ्रोडाइटी की प्रतिमा की भाँति एक चित्र भी बनाया गया था जिसका चित्रकार एपेलीज था।

समुद्र से निकलती हुई एफ्रोडाइटी का चित्र बनाकर एपेलीज ने यूनानियो का हृदय जीत लिया था और उसे उस युग के प्रसिद्ध मूर्तिकारो के समान ही यश मिला था। उसकी प्रतिभा के सम्बन्ध मे अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं किन्तु सजग इतिहासकारो ने भी यह स्वीकार किया है कि वह सिकन्दर का विशेष कृपापात्र था। सिकन्दर ने अपने दरबार की सुन्दरतम गणिका फाईन एपेलीज को भेंट कर दी थी।[1]

एपेलीज को हैलेनिस्टिक युग का आरम्भिक चित्रकार माना जाता है। इसकी आकृतियो मे जो लावण्य था उसके कारण उसके १७०० वर्ष उपरान्त इटली के चित्रकार बोत्तीचेली (Botticelli) ने भी वैसी ही आकृतियाँ चित्रित करने का प्रयत्न किया। उसने सिकन्दर का व्यक्ति-चित्र भी बनाया था।

हैलेनिस्टिक युग (३२३ ई० पू० से ३१ ई० पू० तक)

सिकन्दर (३५६—३२३ ई० पू०) के समय तक छोटे-छोटे नगर-राज्य यूनानी सामाजिक जीवन का आधार थे। सिकन्दर की विजयो से यूनान का स्वरूप परिवर्तित हुआ और राज्य की सीमाएँ भी विस्तृत हुई। सिकन्दर के उत्तराधिकारियो ने इतिहास को अपनी इच्छानुसार मोडा। ३१ ई० पू० मे सिकन्दर के अन्तिम उत्तराधिकारी-शासन को रोम ने हस्तगत कर लिया। इस बीच के यूनानी इतिहास का समस्त युग "हैलेनिस्टिक" कहा जाता है। यूनान से बाहर के समस्त क्षेत्रो मे हैलेनिक संस्कृति का प्रसार हुआ और ये प्रभाव भारत तक आये। स्थान-भेद से ये प्रभाव न्यूनाधिक रूप मिलते हैं। सर्वत्र यूनानी तथा पूर्वी तत्वो का समन्वय हुआ। इससे रोमन लोगो को भी अपने साम्राज्य का विस्तार करने मे सफलता मिली।

हैलेनिस्टिक कला में विविधता होने के कारण उसका स्वरूप समझना कुछ कठिन है। अब तक यूनानी लोग कला के अनुरजनकारी तत्व को नही समझे थे किन्तु इस युग मे वे इस ओर भी सजग हुए। अब कलाकार नये-नये दरबारो का आश्रय-ग्रहण करने लगे। व्यक्तिगत आश्रयदाताओ की रुचि के अनुसार भी उन्होंने चित्रांकन आरम्भ कर दिया। हैलेनिस्टिक युग कला तथा विज्ञान की सभी शाखाओ में निरन्तर अन्वेषण करने की प्रवृत्ति लेकर आया फलतः मानव तथा प्रकृति के सभी पक्षो के उद्घाटन का प्रयत्न हुआ। इससे जहाँ एक ओर चित्रकला को नये-नये विषय मिले वहाँ मूर्तिकला एव यथार्थता के विचार से अधिकाधिक भ्रम उत्पन्न करने की चेष्टा भी

---

1 "Painting, as parcticed by the masters, was on the same plane as the greatest Sculpture And we know that the picture of Aphrodite by Apelles was admired in the same terms as those chosen to praise the Aphrodite of Praxiteles The courtesan Phryne, proclaimed to be the most beautiful woman in the world by artists and intellectuals, posed for both conceptions, if we can believe the chroniclers,"
—Greek Art—Thomas Craven, P 87

होने लगी। टेक्नीक की नवीनता और विषयो की विविधता के होते हुए भी हैलेनिस्टिक कला मे किसी सुनिश्चित धारणा का अभाव है, इसी से इसमे प्राचीन आदर्शों जैसी सरलता एवम् स्पष्टता नही है। इसमे लयात्मकता भी है और विशालता भी, इसमे सौन्दर्य भी है और आलकारिता भी, इसमे सयम भी है और अश्लीलता भी—साथ ही इसमे इतनी विविधता है कि दर्शक उसके कारण थकान महसूस करने लगता है।[1]

हैलेनिस्टिक युग में निर्मित अनेक मौलिक एवं अनुकृत प्रतिमाओ की प्रभूत सख्या आज उपलब्ध है किन्तु एक भी मौलिक चित्र उपलब्ध नही है। मूर्तियो को शैलियो अथवा निर्माण के विभिन्न क्षेत्रो के अनुसार वर्गीकृत करना कठिन है। कुछ स्थानो का महत्व मानने मे कही-कही अतिशयोक्ति भी हो गयी है जैसे सिकन्दरिया को प्रेक्सीटेलियन शैली एव कोमलता की प्रवृत्ति का सबसे बड़ा केन्द्र माना जाता है, किन्तु वास्तव मे यह प्रवृत्ति केवल सिकन्दरिया मे ही थी—इसका कोई प्रमाण नही है। इस युग मे आवागमन के साधनो एव सचार-व्यवस्था की सुविधा के कारण साम्राज्य के एक कोने मे जिस प्रकार की कलाकृति का निर्माण होता था, उसी प्रकार की कलाकृतियो की रचना साम्राज्य के दूसरे छोर पर भी होने लगती थी।

हैलेनिस्टिक कला तथा रोमन कला मे बहुत स्पष्ट भेद भी नही है, अनेक दृष्टियो से दोनो समान हैं। रोमन-परम्पराएँ विकसित होकर स्वयं हैलेनिस्टिक कला के विकास मे सहायक सिद्ध हुई। दूसरी शताब्दी से हैलेनिस्टिक साम्राज्य के क्रिया-कलापो मे रोमवासी अधिकाधिक भाग लेने लगे थे और धीरे-धीरे समस्त साम्राज्य उनके अधीन हो गया था। कला के प्रति उनकी अभिरुचि भी हैलेनिस्टिक शासको के समान थी। उन्होंने तत्कालीन कला को अपने घरो एव सार्वजनिक भवनो के अलकरण मे प्रयुक्त किया। पाँचवी और चौथी शती ई. पू की प्रतिमाओ एव चित्रो की अनुकृति एव उनके रूप तथा शिल्प के विकास के प्रति भी उनमे पर्याप्त उत्साह था। यूनानी कला के रोमन-सरक्षण के कारण प्रथम शती ई. पू की कला को ग्रेको-रोमन शैली भी कहा जाता है। इसके पश्चात् आगस्टस ने रोमन-साम्राज्य की नीव डाली।

इस युग की प्रतिमाकला मे कोई नवीनता नही मिलती। लिसीप्पस के शिष्य ने सूर्य की विशालकाय प्रतिमा का निर्माण किया था जो अपने युग के सात आश्चर्यों मे से एक मानी जाती थी। प्रेक्सीटेलीज के शिष्यो तथा अनुयायियो ने नग्न नारी-आकृति (Female Nude) का कोई विकास नही किया। १०० ई पू मे मिलो ने जिस वीनस की प्रतिमा का निर्माण किया उसमे केवल शारीरिक स्थिति की जटिलता के अतिरिक्त और कोई नवीनता नही है (फलक ५-ख)। उसमे प्रेक्सीटेलीज जैसी सरलता नही है। इस युग के कलाकारो ने अधिक उलझनपूर्ण मुद्राओ का आविष्कार किया, किन्तु इनमे अस्वाभाविकता एवं अतिशयता है। कही-कही प्रदर्शन-भावना भी है। केवल महान कलाकारो की प्रतिमाओ मे ही सजीवता है, अन्यथा अनेक मूर्तियाँ कृत्रिम जडता से युक्त हैं।

अन्तिम हैलेनिक युग मे प्राचीन आदर्शों के बजाय उपलब्ध सुन्दर स्त्री-पुरुषो के आधार पर आदर्श आकृतियो की रचना का प्रयत्न हुआ। इन आकृतियो मे भारीपन तथा अनुपातहीनता है। नग्न आकृति के यथार्थवाद की यह प्रवृत्ति अधिक समय तक नहीं चल सकी और कलाकार एक प्रकार के समन्वयवाद की ओर झुक गये, जिसमे या तो प्राचीन कलाकृतियो के अच्छे-अच्छे अ शो को लेकर या किसी प्रतिमा का शिर एवं किसी का शरीर लेकर एक नवीन प्रतिमा बना दी जाती थी।

यह सब होते हुए भी हैलेनिस्टिक युग की कुछ कृतियाँ निश्चित रूप से मौलिक तथा महान् हैं। सेमोथ्रेस द्वीप में मिली विजयश्री की प्रतिमा (the Victory of Samothrace), जो किसी सैनिक-विजय के उपलक्ष मे लगभग २०० ई पू मे निर्मित की गयी थी, इसी प्रकार की है। इस प्रतिमा की मुद्रा उत्कृष्ट है, किन्तु इसका सबसे

---

1 Hellenistic art can be all things—bombastic and rhetorical, pretty and decorative, vulgar or restranied—and in the end one tires of its variety and virtuosity."

—Donald E Strong . The Classical World, P.76

बड़ा गुण गति तथा परिधान का सुन्दर सयोजन है जो इस रूप मे पहले कभी नही हुआ। एक ऐसे युग मे जब कि कलाकारों ने अभिव्य जना के हेतु परिधानो का अ कन छोड दिया था, इम प्रतिमा के स्रष्टा ने अनोखी सूझ-बूझ का परिचय दिया है (फलक ५-ङ)।

हैलेनिस्टिक युग की एक अन्य उपलब्धि समूहात्मक प्रतिमाओ का निर्माण है। यद्यपि इससे पूर्व ही स्वतन्त्र प्रतिमाओ की सृष्टि आरम्भ हो चुकी थी किन्तु समूहात्मक दृश्य केवल उत्कीर्ण-आकृतियो तक सीमित थे। नये युग मे पृष्ठभूमि के धरातल से पूर्णत मुक्त समूह-प्रतिमाओ का निर्माण हुआ। इनमे ऐतिहासिक-पौराणिक कथानको से लेकर मात्र मनोरजनात्मक विषयो तक का चित्रण हुआ है। इस प्रकार की रचनाओ मे लाकून (Laocoon) सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसमे शरीर की मास-पेशियो, मुखाकृति एव सयोजन की लय द्वारा भावाभिव्यक्ति का सफल प्रयत्न किया गया है। एक अन्य प्रतिमा-समूह मे पान नामक दैत्य अफ्रोडाइटी को छेड रहा है। अफ्रोडाइटी अपनी चप्पल से उसकी पिटाई करने की मुद्रा मे है। ऊपर काम (Eros) पान का सीग पकड कर धक्का दे रहा है। इस दृश्य से हैलेनिस्टिक कला के मनोरजनात्मक पक्ष का उद्घाटन होता है। यह प्रतिमा-समूह किसी धनी व्यापारी के हेतु बनाया गया था।

व्यक्ति-प्रतिमाओं का यथार्थवाद—हैलेनिस्टिक शैली की मानव-प्रतिमाओ में यथार्थवाद के प्रति विशेष आग्रह दिखायी देता है। बालको, युवको तथा वृद्धो की प्रतिमाएँ प्रत्येक वर्ग की आयु के अनुकूल सादृश्य के पर्याप्त निकट हैं। एक तत्कालीन कवि के अनुसार ये प्रतिमाएँ बोलती-सी प्रतीत होती हैं। विविधता की खोज में इन मूर्तिकारो ने विकलांगो तथा रोगियों की प्रतिमाएँ भी बनायी हैं। आदर्श आकृतियो मे भी सादृश्य की उपेक्षा नहीं की गयी है। मुखाकृति तथा अभिव्यक्ति को सरल नही किया गया। उनमे अधिक से अधिक सुन्दर रूप अ कित करने की प्रवृत्ति नही है। इसके हेतु परम्परागत शारीरिक मुद्राओ मे वास्तविक मुखाकृतियो की योजना की गयी है। इन्ही कलाकारो ने ई पू की अन्तिम शताब्दियो मे रोमन शासको के सरक्षण मे कार्य किया।

इस युग के उत्कीर्ण चित्रो मे भी पर्याप्त विविधता है। यथार्थवाद का भ्रम उत्पन्न करने के हेतु जो प्रयत्न किये गये उनका भी उपयोग इनमे किया गया। गतिपूर्ण आकृतियो को सशक्त रूपो के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। प्राकृतिक दृश्यो की पृष्ठभूमि मे ग्रामीण-जीवन के चित्र भी उत्कीर्ण किये गये हैं।

प्रथम शती ई. पू में रोमन शासकों के सरक्षण मे एक नवीन शैली पनपी जिसमे सरलता, विशालता और भव्यता थी। इसे यथार्थवाद के प्रति प्रतिक्रिया समझनी चाहिये। यह शैली नव-एटिक सम्प्रदाय (Neo-Attic School) कही जाती है और इसकी उत्पत्ति एथेन्स मे मानी जाती है। सम्पूर्ण हैलेनिस्टिक युग मे आलंकारिक कलाकृतियों की बहुत माँग थी और रोमन शासको के समय यह माँग बहुत बढ गयी। प्राचीन श्रेष्ठ कलाकृतियो के अनुकरण की भी प्रवृत्ति सदैव की रही है और इन नव-एटिक कलाकारो ने इससे लाभ उठाने का प्रयत्न किया। इन्होने शास्त्रीय आकृतियों एवं विषयों को आलकारिक अभिप्रायों के रूप मे प्रयुक्त किया। सगमरमर के फर्नीचर तथा उद्यान-स्तम्भो के ऐसे असख्य उदाहरण मिलते हैं जिनमें प्राचीन आदर्शो की अनुकृतियाँ की गयी हैं। समस्त रोमन-युग पर इस शैली का व्यापक प्रभाव रहा है। इसकी उत्कृष्ट कारीगरी, शैली की स्पष्टता एव सरलता ने सभी सरक्षको को आकर्षित किया।

इस युग के शिल्पियो ने पत्थर, हाथी दाँत, काँस्य, सुवर्ण तथा रजत आदि अनेक माध्यमो मे कार्य किया। मूर्तिकारो ने दर्पण भी बनाये। स्वर्णकारो ने मणियो को काटकर सुन्दर आकृतियां निर्मित की। कला में रुचि लेने वाले स रक्षक इन सभी वस्तुओ को भारी मूल्य पर खरीदते थे। उनके अनेक सग्रह आज उपलब्ध हैं।

हैलेनिस्टिक चित्रकला

हैलेनिस्टिक चित्रकला के प्रत्यक्ष प्रमाण बहुत कम मिले हैं। पात्रो के चित्रण की शैली चौथी शती ई पू से ह्रासोन्मुख दिखायी देती है। इस युग की एक विशिष्ट कृति सिकन्दर का मणिकुट्टिम चित्र (The Alexander

Mosaic) है जिसका उल्लेख हैलेनिस्टिक युग आरम्भ होने के पूर्व किया जा चुका है। इस चित्र मे प्रयुक्त सीमित रंग योजनाओ, रंगो द्वारा गढ़नशीलता उत्पन्न करने, रेखीय एवं वायवीय परिप्रेक्ष्य के नियमो के माध्यम से विस्तार को समझने आदि की प्रवृत्तियो का हैलेनिस्टिक युग में आगे विकास हुआ। विषयो की दृष्टि से पर्याप्त व्यापकता आयी। धीरे-धीरे परवर्ती कलाकारो ने परिप्रेक्ष्य के नियमो का वैज्ञानिक विश्लेषण भी किया।

सिकन्दर के जन्मस्थान पेल्ला (Pella) मे जो मणिकुट्टिम भूमिक चित्र प्राप्त हुए हैं वे लगभग चतुर्थ शती ई पू के हैं। इनमे सिंह-आखेट का दृश्य बहुत सुन्दर है। ये चित्र प्राकृतिक आकारो के छोटे-छोटे रंगीन पत्थर के टुकड़ों से बनाये गये है। सिकन्दर तथा डेरियस के युद्ध का मणिकुट्टिम चित्र चतुर्थ शती ई पू. के एक चित्र की प्रथम शती ई. पू मे की गयी अनुकृति है जिसमें पत्थरो को इच्छित आकारो मे काट-काट कर भित्ति पर लगाया गया है (फलक ६-क)। प्रतीत होता है कि पत्थरो को इच्छित आकारो मे काटने की विधि तृतीय शती ई. पू. मे प्रचलित हुई थी और इसके पूर्व प्राकृतिक आकार के छोटे-छोटे खण्ड ही इस कार्य मे प्रयुक्त किये जाते थे। यद्यपि इनमे रगो के माध्यम से गढनशीलता दर्शाने का प्रयत्न किया गया है तथापि जो विकास इस युग की चित्रकला में हो चुका था उसकी बहुत कम कल्पना इन मणिकुट्टिम आकृतियो से की जा सकती है। रगो के मिश्रण, स्थान के विस्तार तथा गहराई आदि का आभास जितना रगो के द्वारा सम्भव है उतना मणि-कुट्टिम मे नही है। प्रथम शती ई. पू. तथा प्रथम शती ईसवी की कला-कृतियो को देख कर ही हम हैलेनिस्टिक युग की चित्रकला के विषय मे कुछ अनुमान लगा सकते हैं। नेपिल्स की खाडी तथा पोम्पिआई के रोमन-गृहो में जो भित्ति-चित्र अंकित किये गये थे वे ही इस कला के उपलब्ध प्रमाण हैं। सन् ७६ ई० मे विसूवियस नामक ज्वालामुखी के फटने से ये भवन लावा मे दब गये थे। अब इनको लावा मे से खोदकर साफ किया गया है।

हैलेनिस्टिक चित्रों की रोमन अनुकृतियाँ—ये अनुकृतिया प्राय भित्ति-अलंकरणो के रूप मे हैं। आरम्भिक शैली के चित्रो मे रगीन सगमरमर के धरातल की अनुकृति दीवार पर रगो द्वारा की गयी है। दूर से देखने पर प्रतीत होता है कि भित्ति रगीन सगमरमर द्वारा निर्मित है। हैलेनिस्टिक-युग मे यह शैली बहुत लोकप्रिय थी और इटली मे यह दूसरी शती ई. पू. में पहुंची। पोम्पिआई मे यह लगभग ८० ई. पू तक चलती रही। इसमे रंगो के साथ-साथ भित्ति पर चूने की गच का रिलीफ कार्य भी किया गया है। इस शैली के चित्रो की अग्रभूमि में भवनो के खम्भे यथार्थ-वादी पद्धति से अंकित किये गये हैं। इनके पीछे किसी भवन, प्राकृतिक दृश्य अथवा अन्य किसी भी प्रकार के दृश्य का सयोजन किया गया है। इस शैली का विधान आरम्भ मे तो रिलीफ एवं रंगो द्वारा चित्रण के मिश्रित रूप मे रहा किन्तु पीछे से केवल चित्रण ही होने लगा, रिलीफ का कार्य बन्द हो गया। इस दूसरी विधि के चित्रो के विषय पर्याप्त विविध हैं। इनमे स्थिर-जीवन, व्यक्ति-चित्रण, दृश्यांकन, प्रकृति-चित्रण, दैनिक-जीवन आदि का समावेश हुआ है। ऐतिहासिक तथा पौराणिक परम्परागत विषय तो इनके अतिरिक्त सदैव ही चलते रहे। अनुमान किया जाता है कि पोम्पिआई के समस्त चित्र हैलेनिस्टिक चित्रो की ही अनुकृतियाँ हैं। इनमें एक ही विषय को किंचित् परिवर्तित करके बार-बार प्रस्तुत किया गया है। इनमे ओडिसी दृश्य-चित्र (The Odyssey landscape) विशेष प्रसिद्ध है। यह रोम के एक पहाडी घर की भित्ति पर अंकित है। इस चित्र मे यूनान के प्रसिद्ध कवि होमर द्वारा रचित ओडिसस के वृत्तान्त का आधार लिया गया है और इसका चित्रण लगभग ५० ई पू में हुआ है। प्राचीन यूनानी कला मे प्राकृतिक दृश्य-चित्र का कोई महत्व नही था और इस प्रकार की पृष्ठ-भूमि का केवल प्रतीकात्मक विधि से आभास मात्र दिया जाता था। दृश्य मे मानवाकृतियाँ ही प्रायः समस्त स्थान घेरे रहती थी। चतुर्थ शती ई पू मे यद्यपि दृश्य को अधिक विवरणात्मक रूप दिया गया तथापि चित्र मे उसका स्थान गौण ही रहा। ओडिसी-चित्र मे प्राकृतिक दृश्य की प्रमुखता है, आकृतियाँ गौण हैं और कलाकार ने प्राकृतिक पृष्ठ-भूमि के चित्रण मे पर्याप्त रुचि प्रदर्शित की है। इसी से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हैलेनिस्टिक युग में कलाकार ने कितनी प्रगति की। यद्यपि इस युग तक दृश्य मे एक प्रकाश-बिन्दु (single source of light) तथा एक दृष्टि-बिन्दु (single view-

point) के नियमो का पूर्णत पालन नही हुआ और परिप्रेक्ष्य मे किसी एक सिद्धान्त के भी दर्शन नही होते तथापि, चित्रकारो ने वातावरण का प्रभाव बडी सफलता से प्रस्तुत किया है। आकृतियो को बडी चतुराई से दृश्य के साथ सम्बन्धित किया है और दूर की आकृतियो के रग मे भी अन्तर कर दिया है।

एक अन्य चित्र मे आगे खम्भो सहित बरामदा अकित करके दूरी पर भवन का सम्मुख दृश्य दिखाया गया है। इस प्रकार के चित्रो पर सम्भवत नाटक के परदो का प्रभाव है। नाटको में प्राय राज-भवन, घर अथवा ग्रामीण दृश्यो के परदो का प्रयोग क्रमश त्रासदी, कामदी एव हास्य-व्यग के कथानको के हेतु किया जाता था अत चित्रकार इस दृश्य को अधिकाधिक यथार्थ बनाने की चेष्टा करते थे। इस चित्र मे, जो कि बोस्कोरिएल के एक घर मे सुरक्षित है, इसी प्रकार का दृश्य अकित है। दृश्य की समस्त रेखाए क्षितिज के एक बिन्दु पर मिल रही हैं। यह नि सन्देह कहा जा सकता है कि निरन्तर प्रयोगो के द्वारा हैलेनिस्टिक चित्रकारो ने परिप्रेक्ष्य की उत्तम विधि का विकास कर लिया था। पोम्पिआई आदि के द्वितीय शैली के चित्रो मे इस विधि का प्रयोग हुआ है। किन्तु परवर्ती कलाकारो ने इसे शीघ्र ही छोड दिया प्रतीत होता है। पीछे बने रोमन भित्ति-चित्रो मे इसका अभाव है। एक ही सयोजन मे अनेक मिलन-बिन्दुओ का प्रयोग है। प्रत्येक वस्तु का चित्र की अन्य वस्तुओ से पृथक् अपना परिप्रेक्ष्य है। पुनरुत्थान युग मे ही इस समस्या पर पुन गम्भीरता पूर्वक विचार हो सका।

एक तीसरे चित्र मे, जो कि तथाकथित रहस्यो के घर (Villa of mysteries) मे उपलब्ध हुआ है, डायोनीसस सम्प्रदाय का दीक्षा-कर्म चित्रित है। पोम्पिआई के इस भित्ति-चित्र का केन्द्रीय-अश स्तम्भो की पृष्ठ-भूमि के रूप मे चित्रित है जिसके आगे एक स्त्री को रहस्यात्मक विधि से दीक्षित किया जा रहा है। यहाँ परिप्रेक्ष्य के द्वारा भ्रम उत्पन्न करने का प्रयत्न नही हुआ। लाल पृष्ठ-भूमि पर अकित आकृतियो मे गति तथा अभिव्यजना प्रस्तुत करने की चेष्टा हुई है। रग के माध्यम से ही गढन-शीलता उत्पन्न की गयी है। इसी पद्धति के कुछ अन्य चित्र भी उपलब्ध हुए हैं। अनुमान है कि ये सब चित्र तृतीय शती ईसवी पूर्व मे अकित कलाकृतियो की अनुकृतियाँ हैं।

द्वितीय तथा प्रथम शती ई पू मे अकित पोम्पिआई के कतिपय मणि-कुट्टिम भूमिक चित्रो मे विषयो की विविधता के दर्शन होते हैं। ये चित्र यथेष्ट सुरक्षित दशा मे उपलब्ध हुए हैं। इनमे रगीन पत्थर के छोटे-छोटे टुकडों से चित्र बनाये गये है। रगो की पर्याप्त विविधता होने से इनमे चित्रो की बडी यथार्थ अनुकृति की गयी प्रतीत होती है। फॉन के घर मे प्राप्त सिकन्दर के मणि-कुट्टिम चित्र से चतुर्थ शती ई पू मे अकित मूलचित्र की उत्कृष्टता का अनुमान किया जा सकता है। अन्य विषयो मे प्राय प्राकृतिक दृश्य, समुद्री-जीवन, दैनिक जन-जीवन, सगीत तथा आमोद-प्रमोद आदि का चित्रण हुआ है। परगामीन शैली (Pergamene school) के एक भित्ति-चित्र मे एक कमरे के फर्श का अकन है जिसे साफ नही किया गया है। इसमे भोज मे सम्मिलित होने वाले अतिथियो द्वारा फर्श पर फैलाई गयी जूँठन भी चित्रित गयी है। इस चित्र की एक अनुकृति रोम मे भी मिली है। कटोरे मे पानी पीते दो कपोतो का चित्र भी यथार्थवादी प्रभावो के हेतु बहुत विख्यात है।

इस प्रकार हैलेनिस्टिक युग मे उन्ही नियमो का अनुकरण हुआ जिनकी स्थापना पाँचवी तथा चौथी शती ई. पू मे यूनानियो ने की थी। इस युग ने कला को जीवन के समस्त पक्षो एव विषयो से सम्बन्धित माना और इस प्रकार कला ओलम्पियन ऊँचाइयो से उतर कर सामान्य जीवन के धरातल पर प्रतिष्ठित हुई। प्राचीन कला मे जो महान् एव सीमित गुण थे उनको खोकर ही कला इस युग मे सौन्दर्य, विविधता, मुखरता, आकर्षण आदि को प्राप्त कर सकी। यह स्वय महान् तो नही बन सकी किन्तु महत्ता के निकट अवश्य पहुँच गयी। इस युग मे पहली बार आकर मनुष्य ने यह देखा कि कला उसके जीवन के समस्त पक्षो मे सम्बधित है।

चित्रकला के माध्यम से यूनानी कलाकार क्या अकित करना चाहते थे, यह ज्ञात करना कठिन है। मूर्तियो के द्वारा उन्होंने शारीरिक पूर्णता के आदर्श रूपो की रचना की। प्राकृतिकतावाद की उन्हे चिन्ता नही थी। दौडते हुये पुरुष के चित्र मे पसीने का आभास और अगूरो के गुच्छों मे पक्षियो को भ्रम हो जाने आदि की

कथाएं केवल अतिशयोक्ति मात्र प्रतीत होती है। इस प्रकार के यथार्थवादी प्रयोग कला मे पहली बार किए गये थे। सम्भवत. इसी से दर्शको मे इतनी अतिशयोक्तिपूर्ण कथाएं प्रचलित हो गयीं। प्रतिमाओ मे पृष्ठ-भूमि के अभाव की पूर्ति जब चित्रों मे की जाने लगी और परिप्रेक्ष्य, गहराई, उभार आदि से उनमे यथार्थता का आभास दिया जाने लगा तो दर्शको का उत्तेजित होना स्वाभाविक ही था। फिर भी यह सच है कि यूनानी मूर्तिकला का अतिक्रमण सम्पूर्ण यूरोपीय इतिहास मे कोई भी युग अथवा कोई भी कलाकार नही कर सका। इसके विपरीत लियोनार्डो, माइकेल एंजिलो, टिंटोरैट्टो रेम्ब्रां, रूबेन्स, गोया तथा देलोक्रा आदि अनेक चित्रकार ऐसे हो गये है जिन्होंने यूनानी चित्रकला की तुलना में बहुत अधिक उपलब्धियाँ की हैं। रूप और विस्तार की तकनीकी समस्याओ को यूनानी कलाकार इटालियन चित्रकारो से हजारो वर्ष पहले ही सुलझा चुके थे। उनके आकृति सम्बन्धी सिद्धान्तो के आधार पर ही भावपूर्ण ईसाई कला विकसित हुई।

इस्ट्रूकन कला

पिछले पृष्ठो मे यह बताया जा चुका है कि यूनानी कला पर बाहरी संस्कृतियो का प्रभाव पड़ा था। प्रस्तुत प्रसग मे यह देखा जायगा कि किन सीमावर्ती देशो मे यूनान का प्रभाव पहुँचा। केन्द्रीय इटली की इट्रस्कन सस्कृति इसके द्वारा सर्वाधिक प्रभावित हुई थी। इसका महत्व इसलिये भी है कि आगे चलकर रोमन सस्कृति में इट्रस्कन कला की पृष्ठभूमि ही कार्य करती रही। छठी शती ई० पू० मे रोम भी एक इट्रस्कन नगर था। यदि इट्रिया के नगरो पर यूनान का प्रभाव न पडा होता तो रोमन साम्राज्य भी यूनानी कला को स्वीकार नही करता और सम्भवत उसका रूप कुछ और ही होता। सातवी शती ई०पू० से ही यूनानी कलाकृतियो का भूमध्य सागरीय प्रदेशो को निर्यात होने लगा था। छठी शती ई० पू० मे यह व्यापार बहुत उन्नत हुआ और केन्द्रीय यूरोप-वासी यूनानी पात्रो एव धातु के उपकरणो की कला का महत्व समझने लगे।

ग्रीक कलाकृतियो की ही भाँति अन्य देशो में यूनानी कलाकारो का भी बहुत सम्मान होने लगा। इन कलाकारो के द्वारा अन्य देशो मे बने भित्ति चित्रो के अ श भी उपलब्ध हुए हैं। इट्रूरिया, फ्राइजिआ, परसीपोलिस, सीरिया तथा एशिया माइनर आदि के भित्ति-चित्र तथा अन्य कलात्मक उपकरण इसके प्रमाण हैं जिनमें पूर्ण अथवा आशिक रूप मे यूनानी परम्पराओ का पालन हुआ है। परसीपोलिस मे डेरियस तथा ज्यरक्सेस के विशालकाय भवनो के निर्माण मे फारसी शासको ने यूनानी शिल्पियो से सहायता ली थी। इन भवनो के अलकरणो मे जहाँ फारसी भावना है वहाँ अनेक यूनानी परम्पराओं का भी पालन हुआ है। एशिया माइनर के फारसी क्षत्रपो के सरक्षण मे सम्पूर्ण पाँचवी तथा चौथी शती मे यूनानी कलाकार कार्य करते रहे थे। कारिआ (Caria) के राजा मौसोलस (Mausolus) की समाधि के निर्माण मे तत्कालीन समस्त उत्कृष्ट शिल्पियो ने कार्य किया था और उसे ससार के सात आश्चर्यों मे से एक माना जाता था।

इस प्रकार सिकन्दर की विजय के बहुत पूर्व ही यूनानी कला दूर-दूर तक फैल चुकी थी। कहीं-कहीं इस कला का प्रभाव स्थायी रूप से स्थानीय शैलियो पर पड़ा। यह प्रभाव एक ओर यूनानी कला की भद्दी अनुकृतियो के रूप मे दिखायी देता है तो दूसरी ओर इन परम्पराओ को आत्मसात् करके आगे विकास मे भी सहायक हुआ है। इसका ठीक-ठीक स्वरूप अभी तक निश्चित नहीं हो सका है कि किस देश की कला मे यूनान का कितना प्रभाव है क्योकि अभी तक कला-कृतियो की सर्वमान्य तिथियाँ निश्चित नही की जा सकी है। बुद्ध की खडी तथा बैठी भारतीय प्रतिमाओ एव यूनान की छठी शती ई०पू० की मानवाकृतियो मे पर्याप्त साम्य है, प्राचीन युग की यूनानी प्रतिमाओ तथा केल्टिक-लिगुरियन मूर्तियो मे भी पर्याप्त सादृश्य है। फिर भी इनमे किसी सम्बन्ध का स्थिरीकरण बहुत कठिन है। स्पेन की आइबेरियन कांस्य-प्रतिमाओ मे किंचित् यूनानी झलक मिल जाती है।

सर्वाधिक स्पष्ट और प्रबल यूनानी प्रभाव इट्रूरिया की कला मे दिखायी देता है। यहाँ की कला मे जहाँ यूनान का ऋण है वहाँ आश्चर्यजनक मौलिकता भी है। कहीं-कहीं उसमे यूनान की दुर्बल अनुकृति भी है।

इट्रस्कन लोग यूनान से धड़ाधड़ कलाकृतियां आयातित करते थे। सातवीं शती ई० पू० से ये लोग इस कला से बहुत प्रेरित होने लगे।

इट्रस्कनो को कुछ लोग इटली का मूल निवासी मानते हैं और कुछ अन्य विद्वान् एशिया माइनर से ट्राय के युद्ध (Trojan war) के पश्चात् इटली मे आये आव्रजक मानते हैं। उनकी कला मे जो पूर्वी तत्व हैं केवल उन्ही के आधार पर उन्हे पूर्व का निवासी नही माना जा सकता। फिर भी एक निश्चित परम्परा पात्रों की कला मे निरन्तर जीवित दिखायी देती है तथा मिट्टी के पात्रो से लेकर समाधि-गृहो तक विचारो की एक सूत्रता मिलती है।

इट्रस्कन सस्कृति का स्वतन्त्र विकास इटली मे आठवी शती ई० पू० से स्पष्ट दिखायी देने लगता है। इस सस्कृति का बडी शीघ्रता से विकास हुआ और ५०० ई० पू० के आसपास यह उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच गयी। ४७४ ई० पू० मे क्यूमे (Cumae) के युद्ध में पराजय के पश्चात् इस शक्ति का ह्रास होने लगा। तृतीय शती ई० पू० मे रोम की बढती हुई शक्ति के आगे इट्रस्कन शासन ने अन्तिम रूप से घुटने टेक दिये। कलाकृतियो को प्राप्त करने के लिये रोम-वासियो ने इट्रस्कन नगरो को खूब लूटा।

आठवी शती ई० पू० के इट्रस्कन शैली के पात्र दो शकुओ के आधार वाले हैं। इन पर त्रिभुज एव प्रहेलिका के ज्यामितीय अलकरण खुदे हुए हैं। इस शैली का सम्बन्ध यूनान की तत्कालीन ज्यामितीय शैली से है किन्तु इसमे सफाई और व्यवस्था का अभाव है। इस युग की इट्रस्कन कला मे मानवाकृति का अकन बिल्कुल नही मिलता।

७५० ई पू मे दक्षिणी इटली के क्यूमे नामक स्थान पर यूनानी उपनिवेश स्थापित हुआ। यही से यूनानी कलाकृतियाँ इट्रस्कन शासन मे पहुँची। ७०० ई पू मे इनके अनुकरण पर इट्रस्कन क्षेत्रो में कलाकृतियां बनने लगी। इनमे ज्यामितीय अभिप्रायो के अतिरिक्त नर्तकियो आदि की आकृतियाँ भी अकित हुई। यूनान की ही भांति ये आकृतियाँ छोटी तथा ज्यामितीय रूपो के समान सरल हैं। पशु-आकृतियाँ इन पात्रो को उठाती हुई बनायी गयी हैं।

सातवी शती ई० पू० मे इट्रस्कन शासको की कलात्मक समाधियो का निर्माण आरम्भ हुआ। इन समाधियो मे सुन्दर चित्रित पात्र, कास्य उपकरण, मणि-रत्न आदि के आभूषण, तथा स्वर्ण, रजत, हाथी दांत एव अम्बर (दारू-हल्दी) आदि की अनेक वस्तुएँ मिली है। इस समय यूनान, मिस्र, उत्तरी सीरिया, फीनिशिया और यूनानी कला की अनुकृतियाँ बनाने वाले स्थानो से इट्रस्कन नगरो का व्यापार बहुत उन्नति पर था। इस युग की समस्त कलाकृतियो मे पूर्वी प्रेरणा दिखायी देती है। सातवी शती ई० पू० से ही इट्रस्कन मूर्ति-कला मे सरलता एव स्थायित्व की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। प्राचीन कोणात्मकता के स्थान पर वर्तुलता का आभास देने का प्रयत्न यहाँ भी यूनान की ही भांति मिलता है, फिर भी शारीरिक अनुपात, अगो की गढनशीलता एव वस्त्रो की सिकुडनो का आभास उतना उत्कृष्ट नही है जितना यूनानी कला मे है।

पाँचवी शती ई पू के इट्रस्कन मूर्तिकारो ने इन कमियो को दूर करने का प्रयत्न किया। उनकी कृतियो मे आकृति-सौष्ठव तथा अभिव्यक्ति की गरिमा परिलक्षित होती है। वस्त्रो की सिकुडनो की भी बडी समृद्ध योजना की गयी है। अरेज्जो (Arezzo) से प्राप्त किमीरा (Chimaera) की कांस्य-मूर्ति पशु-आकृति का श्रेष्ठ उदाहरण है। धीरे-धीरे इट्रस्कन मूर्तिकला मे यथार्थता और व्यक्तिगत वैशिष्ट्य के अकन की रुचि उत्पन्न हुई।

जहाँ प्राचीन यूनानी चित्रकला के उदाहरण पूर्णत लुप्त हो गये हैं वहाँ छठी शती ई० पू० तक प्राचीन इट्रस्कन भित्ति-चित्र सुरक्षित रह सके है। ये चित्र तरकीनिया (Tarquinia) के समाधिगृह मे है। चूने की भित्ति पर फ्रेस्को पद्धति मे अकित इन विशाल आकार के चित्रो मे भोजन, क्रीडा, आखेट आदि दैनिक जीवन के विषयो का चित्रण है। इस समाधि-गृह मे प्रथम शती ई० पू० तक चित्र अकित होते रहे हैं। परवर्ती युग की समाधियो मे भयानक दैत्याकृतियो आदि का अकन होने लगा। इनसे मृत्यु के प्रति इन लोगो के परिवर्तित दृष्टि-कोण का सकेत मिलता है। यहाँ तक कि भोज-सम्बन्धी दृश्यो मे भी एक प्रकार का सन्नाटा है।

इट्रस्कन कलाकार यूनानी पात्रो की ज्यामितीय शैली के अनुकरण पर भी चित्र-रचना कर रहे थे । छठी शती ई० पू० के पात्रो पर आयोनियन-ग्रीस का प्रभाव है । यूनान के विपरीत यहा के दृश्यो मे पेड-पौधो का अंकन, युद्ध का सशक्त अंकन तथा पृथक्-पृथक् आकृतियो मे पृथक्-पृथक् ताल-मान का आश्रय लिया गया है ।

तरकीनिया के समाधि-चित्रो मे आकृतियो की सीमा-रेखाए बना कर लाल, नीले, हरे तथा पीले रगो के पतले वाश का प्रयोग किया गया है । पुरुषो को भूरे बादामी तथा स्त्रियों को किंचित् पीलापन लिये हुये उजले वर्ण के द्वारा प्रस्तुत किया गया है । पेड पौधे केवल आलकारिक उद्देश्यो से अंकित हुए हैं । आकृतियो की मुद्राएँ पर्याप्त सजीव एव गतिशील हैं । मछली पकडने तथा आखेट के दृश्यो वाले समाधि-गृह मे कलाकार ने प्रकृति का अंकन उत्साह-पूर्वक यथार्थात्मक विधि से किया है । मानवाकृतियो का वातावरण पर प्रभुत्व नही है । रगीन चित्रो के आधार पर लुप्त यूनानी भित्ति-चित्रो का भी कुछ अनुमान लगाया जा सकता है ।

प्राचीन इट्रस्कन समाधि-चित्र प्राय पाँचवी शती ई पू तक फैले हुए हैं । आगर्स (Augurs), ट्राइक्लिनियम (Triclinium) तथा ल्योपार्डस (Leopards) के समाधिगृहो के चित्र विशेष प्रसिद्ध है । इस युग तक इस कला मे परिप्रेक्ष्य एव स्थितिजन्य लघुता का कोई विचार नही हुआ है ।

चतुर्थ शती ई पू के समाधिगृहो की कला मे एक नया मोड आया । इस युग की कला मे छाया-प्रकाश तथा स्थिति-जन्य लघुता के प्रभाव चित्रित किये गये । रथारोहण आदि विषयो मे भी यूनानी भावना का परिचय मिलता है । यूनानी कलाकारो ने दैत्यो का अंकन छोड दिया था किन्तु इट्रस्कन कलाकार नही छोड सके । व्यक्ति-चित्रो मे विवरणो की बारीकी और मुखाकृति-सादृश्य अंकित करने की चेष्टा की गयी है । यूनानी पौराणिक विषयो के अतिरिक्त स्थानीय इतिहास का भी चित्रण किया गया । रोमन युग की स्मरणीय घटनाओ को अंकित करने की परम्परा यही से आरम्भ होती है ।

चतुर्थ शती ई. पू. मे केन्द्रीय इटली में पात्र-चित्रण की स्वतन्त्र शैली का विकास हुआ । आकृतियो को लाल रग से चित्रित किया गया । दूर की आकृतियां छोटी बनायी गयी और अधिकाधिक विवरण चित्रित करने का प्रयत्न किया गया । स्थितिजन्य लघुता का भी इनमे अच्छा निर्वाह हुआ है । (फलक ४-ग)

रोमन कला

रोमन कला प्राचीन शास्त्रीय जगत् (The Classical world) के अन्तिम युग की कला है । इट्रस्कन शासन के अधीन एक छोटे से नगर राज्य के रूप मे रहने के उपरान्त तृतीय शती ई. पू के अन्त तक रोम ने लगभग सम्पूर्ण इटली पर अधिकार कर लिया और अन्य देशो मे भी अपने शासन की नीव डाली । ससार के जिन भागो मे यूनानी प्रभाव था वहाँ प्रथम शती ई. पू. के अन्त तक रोमन सस्कृति की चर्चा होने लगी । स्पेन, गाल तथा उत्तरी अफ्रीका मे रोम का शासन स्थापित हो गया । ब्रिटेन पर सीजर ने दो बार आक्रमण किया । सन् ३१ ई. पू में सीजर के उत्तराधिकारी आक्टेवियन (Octavian) ने सुदृढ रोमन साम्राज्य की स्थापना की ।

नवीन शासन ने प्राचीन यूनानी कला-परम्पराओ को बहुत प्रोत्साहित किया । समस्त रोमन साम्राज्य मे इस समय जो कला-शैली प्रचलित हुई उसे ग्रेको-रोमन (Greco-Roman) कहा जाता है । इस कला मे यद्यपि यूनानी तत्व बहुत अधिक हैं तथापि रोमन मौलिकता भी है । तृतीय शती ई पू तक साम्राज्य का दक्षिणी इटली के हैलेनिस्टिक क्षेत्रो तथा यूनान की मुख्य भूमि से सम्पर्क हुआ । रोमन सेना की विजय से उसे लूट मे अनेक कला-कृतियाँ मिली । इट्रस्कन लोग पहले से ही यूनानी कला के प्रशसक थे, फलत रोमन शासको मे यूनानी कला और सस्कृति के प्रति पर्याप्त रुचि उत्पन्न हो गयी । इसका परिणाम यह हुआ कि उन्हे यूनानी कला-कृतियो के संग्रह का शौक बढा । प्रथम शती ई पू मे रोमन लोग यूनानी कला के प्रति इतने आकर्षित हुए कि समस्त हैलेनिक जगत् के कलाकार रोमन शासको तथा धनी वर्ग के सरक्षण में पहुँचने लगे । इनमे से अधिकाश कलाकारो ने प्राचीन यूनानी

कला की अनुकृति को अपना लक्ष्य बनाया। कुछ यूनानी श्रेष्ठ कलाचार्य ऐसे भी थे जिन्होंने रोमन परम्पराओ का आदर करते हुए अपनी कृतियो मे उनका समन्वय किया। ऐसी कृतियाँ ही भावी रोमन कला का स्वरूप स्थिर करने मे महत्व-पूर्ण सिद्ध हुई। रोम के शासक अपने तथा पूर्वजो के व्यक्ति-चित्र एव प्रतिमाए निर्मित कराते थे, ऐतिहासिक घटनाओ की स्मृति में भवन बनवाते थे और अपने पूजागृहो को चित्रो से अलकृत कराते थे। इन सब कार्यों के लिये उन्हें उत्तम यूनानी कलाकार उपलब्ध थे।

रोमन परम्पराओ का प्रभाव प्रधानत व्यक्ति-चित्रो और प्रतिमाओ मे मिलता है। रोम मे मोम तथा मिट्टी के मुखौटे बनाकर पूर्वजो की स्मृति बनाये रखने और दाह-सस्कार आदि के समय उनका उपयोग करने की प्रथा थी। इट्रस्कन परम्परा मे महापुरुषो तथा प्रसिद्ध व्यक्तियो के सादृश्य-चित्र एव मूर्तियाँ बनाने की प्रथा थी। यूनानी कलाकारो ने प्रथम शती ई पू में इन परम्पराओं को नव-जीवन प्रदान किया। सीजर आदि की प्रतिमाओ मे इस सुन्दर समन्वय के दर्शन होते हैं। शारीरिक सौन्दर्य का आदर्श नग्न मूर्तियो तथा सैनिक वीरता का आदर्श गणवेश युक्त योद्धा की आकृतियो के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इनके साथ-साथ रोम-वासियो के दैनिक जीवन के विषयो का भी चित्रण निरन्तर होता रहा है।

रोमन समाधियो मे किसी विशेष घटना की स्मृति-स्वरूप अकित ऐसे अनेक चित्र उत्कीर्ण है जिनमे रोमन, इटैलिक तथा ग्रीक तत्वो का सम्मिश्रण है। ऐस्क्विलाइन पहाडी के समाधि-चित्रो मे सैनिक प्रयाण भी अंकित है। यह चित्र प्रथम शती ई. पू का है। इस प्रकार के चित्रो का आरम्भ १६८ ई पू माना जाता है जबकि पौलस (Paullus) नामक रोमन जनरल ने पिदना (Pydna) की विजय के उपलक्ष मे इस प्रकार की भद्रिका का निर्माण कराया था। रोमन कला मे युद्ध के यथार्थात्मक चित्रो के अकन की परम्परा रही है।

आगस्टस ने जिस रोमन साम्राज्य की स्थापना की थी उसके कारण रोमन कला में कोई आधारभूत परिवर्तन नही आया। इस समय से रोमन शासन कलाओ का मुख्य सरक्षक हो गया और सुप्रसिद्ध कलाकारो को प्रचार के कार्य मे लगा दिया गया। सम्पूर्ण साम्राज्य मे अनेक नवीन नगरो का निर्माण हुआ जिसने कलाओ को बहुत प्रेरणा दी। इनकी रचना मे यूनानी कलाकारो ने रोमन परम्पराओ तथा आदर्शो को भी महत्व दिया। इस युग के अज्ञातनामा कलाकार केवल एक शिल्पी की भाँति थे और उनका कार्य रोमवासियो की रुचि के अनुकूल कलाकृतियाँ निर्मित करना था। ये कृतियाँ शास्त्रीय अनुकरण पर निर्मित की जाती रही। केवल तृतीय शती ई पू से ही प्राचीन परम्पराओ का किंचित् विरोध आरम्भ हुआ। यह विरोध उस युग की विभिन्न परिस्थितियो का परिणाम है। साम्राज्य की अवनति, धार्मिक विश्वासो मे परिवर्तन आदि इनमे से प्रमुख है जिन्होने आगे चलकर विजेण्टाइन कला को एक दूसरे ही आदर्श पर आधारित होने मे सहायता पहुँचाई।

प्रथम शती ई पू की मूर्ति कला मे प्रतीकाकृतियो, रोमन पौराणिक गाथाओ, पुष्पहारो, फल-फूलो एव धार्मिक क्रिया-कलापो का अकन हुआ है। इस युग की मानवकृतियो मे व्यक्तिचित्रण का तत्व बहुत अधिक है जिससे इनका ऐतिहासिक महत्व है। स्मारकों पर तत्कालीन घटनाओ को उत्कीर्ण किया गया। अधिकारियो ने अपनी प्रतिमाएँ निर्मित कराई और सिक्को पर अपनी आकृतियाँ बनाने की आज्ञा दी। इस प्रकार जनता मे अपने शासको के प्रति सम्मान की भावना जागृत हुई। स्थान-स्थान पर सम्राटो की कही धार्मिक, कहीं सैनिक, कही दैवी तेज युक्त प्रतिमाएँ स्थापित की गयी। यद्यपि सभी शासको ने इस प्रकार के प्रचार मे रुचि नही ली तथापि इससे मूर्तिकला मे व्यक्ति-चित्रण की एक उत्कृष्ट परम्परा की स्थापना हुई। शरीर की रचना में शास्त्रीय नियमो का भी ध्यान रखा गया। मुखाकृति के अकन में जहाँ बारीकी और सफाई है वहाँ इधर-उधर बिखरे केशो मे रुक्षता का आभास देकर विरोधी प्रभाव उत्पन्न किया गया है।

इस युग मे कला के धनी सरक्षको ने प्राचीन यूनान की अनुकृति को प्रोत्साहित किया। भवनो की आन्तरिक सज्जा मे भी यूनानी चित्रकला से प्रेरणा ली गयी। रोमन भित्तिचित्रो का उल्लेख यूनानी चित्रशैली के अन्तिम

युग के सन्दर्भ मे किया जा चुका है। इस युग मे आकर भवनो में विशाल पैनल चित्र बनाये जाने लगे। आकृतियो में गठन-शीलता तथा गहराई के भ्रम को उत्पन्न करने की प्रवृत्ति भी छोड़ दी गयी और आकृतियो को सपाट बनाया जाने लगा। भवनो के अनुरूप ही अलकरण चुने गये। प्रायः फूलो के आलकारिक अभिप्राय बहुत चित्रित किये गये। चित्रो के चारो ओर हाशियो के स्थान पर स्तम्भ आदि के वास्तु-अलकरण अकित हुए। आगे चलकर पोम्पियाई की चित्र-शैली मे मानवाकृतियो एव वास्तु की पृष्ठभूमि का सुन्दर समन्वय हुआ। ७९ ई. में रोमन भित्ति-चित्रण की विषय वस्तु अथवा पृष्ठभूमि मे वास्तु का उपयोग अनिवार्य रूप मे किया गया। इनमे यूनानी विषयो की भी प्रेरणा है। प्राचीन महाकाव्यो, प्राकृतिक दृश्यो, स्थिर जीवन, दैनिक जीवन आदि का चित्रण यूनानी शिल्प विधान के अनुसार होने लगा था (फलक ४-घ)। यह कहना कठिन है कि विषय वस्तु की दृष्टि से रोमन कलाकारो ने क्या नवीनताएँ प्रस्तुत की। आगस्टस के समय बरामदे की दीवार के पीछे झाँकते उद्यान का चित्रण बहुत लोकप्रिय रहा था। इसमे प्रकाश तथा वातावरण के प्राकृतिक प्रभावो का अकन किया जाता था। बड़े-बड़े पैनल-चित्र यूनानी परम्पराओ से प्रभावित थे।

रोमन युग मे टेक्नीक का भी कोई उल्लेखनीय विकास नही हुआ। गठन-शीलता के स्थानो पर रगो के प्रभाव उत्पन्न करने की दृष्टि से इस युग के अनेक चित्रो का टेक्नीक प्रभाववादी शैली के निकट है। ट्राय नगर का रात्रि का दृश्य इसी प्रकार का है जिसमें सम्पूर्ण नगर पर एक रहस्यमय प्रकाश पड रहा है। अग्रभूमि की आकृतियो का तेज प्रकाश-युक्त वातावरण चित्र मे नाटकीय प्रभाव उत्पन्न कर रहा है। यह प्रभाववादी टेक्नीक आरम्भ मे एक प्रयोग मात्र था, शास्त्रीय कला का विरोध नही। परवर्ती रोमन युग मे जब यूनानी परम्पराओ को अस्वीकार किया जाने लगा तो यह टेक्नीक व्यापक रूप से लोकप्रिय हुआ।

अन्य क्षेत्रों मे जहा रोमन प्रभाव पहुँचा वहाँ भारतीय आदि पूर्वी प्रभाव भी पहुँचे। पालमीरा आदि की कलाकृतियों में रोमन एव भारतीय दोनो प्रभाव स्पष्ट हैं। रोमन कला पर सामान्य रूप मे कौन-कौन से विदेशी प्रभाव पड़े, यह बताना कठिन है। पूर्वी साम्राज्य की राजधानियो मे पूर्वी देशो का प्रभाव अधिक पड़ा और ये क्षेत्र ही रोमन कला मे पूर्वी देशो की कला के तत्वों का समन्वय करने मे समर्थ हुए। फिर भी सम्पूर्ण रोमन कला मे बहुत अधिक भिन्नता नही है।

तीसरी तथा चौथी शती ई मे रोमन कला की शास्त्रीय परम्पराएँ पूर्णतः नष्ट हो गयी। इसका प्रधान कारण रोमन साम्राज्य का पतन था। प्राचीन यूनानी सस्कृति की अस्वीकृति भी इसका एक कारण थी। प्राचीन आदर्शों से अब रोमवासी सन्तुष्ट नही हो पाते थे। अन्त मे ईसाई कला ने एक पूर्णतः भिन्न भावना लेकर कला को नयी दिशा मे मोड़ दिया।

रोमन भित्ति चित्रो को प्रायः चार वर्गों मे रखा जाता है :

१—वे चित्र जो किसी कमरे की सम्पूर्ण दीवारो को घेर लेते थे। इनमे आकृतियो के पीछे पृष्ठभूमि मे वृक्षो तथा घरो का दृश्य बनाया जाता था।

२—छोटे चित्र जिन्हें किसी चौखटेनुमा स्थान के बीच में बनाया जाता था।

३—पैनलो मे बनाये गये चित्र।

४—अकेली आकृतियो के चित्र, जिनके पीछे स्थापत्य की कारीगरी ही पृष्ठभूमि का कार्य करती थी।

इनमे चौथे प्रकार के चित्र ही सम्भवत सर्वश्रेष्ठ बन पड़े हैं। इनके चारो ओर के रिक्त स्थान मे प्राय हल्का लाल या काला रग भरा गया है। प्रसिद्ध रोमन चित्रकारो में गोरगैसोस, डैमैफिलोस, फेबियस पिक्टर, पेक्यूवियस, मेट्रोडोरस, सेरापियन, सोपोलिस, डायोनीसियस तथा एण्टियोकस गेबीनियस के नाम प्रमुख हैं।

आरम्भिक ईसाई तथा बिज़ेण्टाइन कला

प्राचीन यूनानी-रोमन धार्मिक भावना प्राचीन सभ्यता के साथ ही धीरे-धीरे लुप्त होने लगी और पूर्वी देशो के धार्मिक विश्वास उसका स्थान लेने का प्रयत्न करने लगे। प्राचीन विचारधारा मे जहा मानव एव ईश्वर का सम्बन्ध तर्क पर आधारित करने का प्रयत्न किया गया था वहाँ पूर्वी धर्मों मे श्रद्धा और विश्वास के आधार पर सासारिक बन्धनो से मुक्ति का मार्ग खोजा गया था। सम्प्रदाय-गत आचार्यों द्वारा दीक्षा प्राप्त करने से साधक स्वय को ईश्वर के अधिक निकट समझने लगे और इस प्रकार धर्म मे रहस्यात्मकता का समावेश हुआ। इस समय सर्वाधिक प्रबल ईसाई धर्म सिद्ध हुआ जिसने यूरोप की जनता मे शीघ्र ही बहुत अधिक आदर-भाव प्राप्त कर लिया। ईसाई धर्म का आध्यात्मिक तत्व पारलौकिक जीवन को अधिक महत्व देता है और वर्तमान जीवन के समस्त कार्य उसी के आधार पर निश्चित एव नियमित किये जाते हैं। इस पर आरम्भ मे मिस्र के प्राचीन धर्म का भी पर्याप्त प्रभाव रहा है। विद्वानों का विचार है कि भारतीय सस्कृति, विशेषतः बौद्ध धर्म की करुणा भावना ने ईसा मसीह और ईसाई धर्म के आरम्भिक स्वरूप को बहुत प्रेरणा दी है।

रोम की लुप्त होती हुई सभ्यता मे से ईसाईयत का प्रादुर्भाव हुआ था। ईसाई धर्म के मानने वाले रोमवासी धर्म के अतिरिक्त अन्य सब बातो मे रोमन थे और उनके पूर्वजो की एक महान परम्परा थी। किन्तु इस समय सब कुछ अव्यवस्थित-सा हो गया था। चर्च का प्रभाव बढ रहा था। राजा प्राय युद्धो में लगे रहते थे। पाँचवी शती मे गोथ एव हूणो के आक्रमण और लूटमार आरम्भ हो गयी। लगभग पाँच शताब्दियो तक सम्पूर्ण इटली मे सस्कृति और कलाओ के क्षेत्र मे अन्धकार छाया रहा। इस सारे समय मे ईसाई कला अपनी अभिव्यक्ति का मार्ग खोजती रही। आरम्भ मे इसका स्वरूप रोमन था पर इसका अन्त ईसाईयत मे हुआ। इसके विकास मे भी बहुत समय लगा। यूनानी कला मे प्रकृति की उपासना, मानव की महत्ता तथा शारीरिक एव नैतिक पूर्णता का प्रयास था, किन्तु ईसाई विश्वास कुछ दूसरे प्रकार के ही थे। इनमे इस जीवन की समस्त भौतिकता की उपेक्षा की गयी थी। शारीरिक सौन्दर्य का इसमे कोई महत्व नही था अत आरम्भिक ईसाई धर्म-प्रचारको ने मूर्तियो का विरोध किया। यद्यपि मूर्तियो के स्थान पर प्रतीक प्रयुक्त किये गये पर केवल वे ही पर्याप्त न थे। चर्च के ही कुछ तत्वो ने इस बात पर जोर दिया कि धर्म का प्रचार कला के माध्यम से अच्छी तरह हो सकता है। इस प्रकार यद्यपि कलाओ को धर्म का आश्रय प्राप्त हो गया था किन्तु प्राचीन नियमो से विमुख होने के कारण इस समय की कला मे शरीर-रचना, टेक्नीक एवं परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित अनेक कमजोरियाँ आ गयी। धार्मिक प्रभाव के कारण भौतिकता की जो उपेक्षा की गयी उसने कलाओ का स्वरूप भी विकृत कर दिया। वृक्ष, पर्वत एव भवन बहुत छोटे-छोटे बनने लगे। सुनहरी पृष्ठभूमि पर सारहीन आकृतियो का चित्रण होने लगा। क्षितिज रेखा का अङ्कन बन्द हो गया; फलस्वरूप आकाश एव पृथ्वी के बजाय सभी घटनाएँ एक प्रकार के स्वप्न-लोक मे कल्पित की जाने लगी। आकृतियो के अनुपात यथार्थता के आधार पर न होकर धार्मिक महत्व के अनुरूप होने लगे। प्रधान आकृति बडी बनने लगी और अन्य आकृतियाँ बौनी जैसी चित्रित की गयी। आरम्भिक ईसाई कलाकारो ने रोमन आकृतियो तथा वेश-भूषा का ही आधार लिया किन्तु इस समय की आकृति छोटी, नाटी, भद्दी और भावहीन होती थी। यह कैसी विडम्बना की बात है कि उस आरम्भिक समय में, जबकि ईसाई धर्म के प्रचारको मे अपार उत्साह था, तत्कालीन चित्रो की आकृतियाँ एकदम निर्जीव और भावहीन-सी चित्रित हुई हैं। पोम्पिआई अथवा अन्य स्थानो की रोमन कला के सुन्दर रेखाकन की भाँति इनकी रेखाओ मे आकर्षण नही था। प्राचीन चित्रो की अनुकृति करते समय ये कलाकार रेखाओ द्वारा बनने वाले रूपो के सौन्दर्य को नही पहचान सके। रङ्गो मे भी बहुत विकृति आ गयी थी।

लाली लिये हुए बादामी रग और नीलापन लिए हुए हरे रग को सपाट रूप मे भरकर भूरे रग से सीमा रेखा बनादी गयी। परिप्रेक्ष्य एव पृष्ठ-भूमि का कोई विचार नहीं किया गया और छाया-प्रकाश भी उचित ढग से नहीं दिखाया गया। इस प्रकार यूनानी कला मे मासलता, भारीपन, गढ़नशीलता आदि के जो तत्व थे उनका पूर्णत: बहिष्कार हो गया। त्रि-विस्तारात्मक शून्य मे कोई वस्तु ठोस अथवा घन की भाँति अनुभव करने की जो शास्त्रीय प्रवृत्ति थी उस पर कोई ध्यान नही दिया गया। ईसाई सौन्दर्य-भावना मे अनुकृतियाँ समतल हो गयी। केवल सम्मुख तथा पार्श्वगत आकृतियाँ ही चित्रित की जाने लगी। पौने दो चश्म चेहरो का अकन क्रमश समाप्त हो गया। आकृतियाँ जानबूझ कर क्रियाहीन बनाई जाने लगी। आदिम कला के समान ही केन्द्रीय सयोजन का व्यापक प्रयोग हुआ जिसने एकेश्वरवादी धारणा को बल दिया। चित्रकला एवं स्थापत्य दोनो मे ही इसका प्रभाव दिखाई देता है। भवनो के केन्द्रीय गुम्बदो मे भी यही भाव है। मूछ-दाढी तथा वस्त्र आलकारिक विधि से बनाये जाने लगे।

पाँचवी शती के लगभग बनी मानवाकृतियाँ भारी और कठोर हो गयी। प्राचीन रोमन वस्त्र के स्थान पर अब एक ऐसा लम्बा वस्त्र पहनाया जाने लगा जिसकी मोटी-सिकुडनो मे सम्पूर्ण शरीर छिप जाता था। चेहरे के चारो ओर सुनहरी आभा-मण्डल दिखाया जाता था। अब तक ईसा को युवक बनाया जाता था किन्तु इस समय से गम्भीर, बड़ी-बडी आँखों एव दाढी से युक्त मुखाकृति का अकन होने लगा। इस समय तक अधिकांश कार्य भित्ति-चित्रण की रोमन पद्धति के अनुकरण पर हुआ। कुछ मणि-कुट्टिम तथा काँच पर भी चित्रण हुआ। पुस्तकों को भी अलकृत किया गया।

आरम्भिक ईसाई चित्र—आरम्भिक ईसाई कला की ऊपर बतायी गयी समस्त विशेषताएँ उसके प्रसार से सम्बन्धित सभी क्षेत्रों की हैं। उनमे पूर्वी प्रभाव प्रमुख है। ईसाई धर्म के सर्वप्रथम चित्र रोम की समाधि गुफाओ (Catacombs) की भित्तियो पर मिले हैं। इनमे अगूरो के गुच्छो, पत्तियो, फलो, फूलो, पक्षियो एव क्यूपिड की मोहक आकृतियो के पेनल-डिजाइनो द्वारा एक चित्र को दूसरे चित्र से पृथक किया गया है। इन आरम्भिक कृतियो मे ईसाई विषयो के चित्र नही हैं किन्तु यदा-कदा पारलौकिक जीवन की कल्पना करली गयी है। धार्मिक ग्रन्थो के विषय बहुत कम चित्रित किये गये। प्राय: प्राचीन कथा-कहानियो को ही नवीन - विश्वासो और अर्थो के परिप्रेक्ष्य मे अंकित किया गया। उद्यानो के प्राचीन यूनानी देवता ऐरिस्टीअस (Aristaeus) को कन्धे पर भेड़ रखे हुए एक अच्छे गडरिये को ईसा-मसीह के प्रतीक के रूप मे कल्पित कर लिया गया। प्राय सभी प्राचीन आकृतियो को नवीन प्रतीकार्थ दिया जाने लगा। चू कि आरम्भिक ईसाई धर्म मे धार्मिक पुरुषो की आकृतियाँ अकित करना निषिद्ध था अत. इस प्रकार की प्रतीकता से ही काम चलाया गया। चित्रकार प्राचीन रोमन कला की अनुकृति कर रहे थे। उनमें नवीन विचार प्रस्तुत करने की मौलिकता नही आयी थी। धीरे-धीरे प्राचीन रोमन आकृतियाँ बाइबिल की कथा प्रस्तुत करने के काम मे लायी जाने लगी। औरफ्यूज (Orpheus) नामक यूनानी आकृति को ही ईसा के लिये चुन लिया गया। इस प्रकार बाइबिल का चित्रण आरम्भ हुआ। पोम्पिआई मे जिन गडरियो, खेतिहरो आदि का शृ गार-परक चित्रण हुआ था वे अब स्वर्ग और धर्म के प्रतीक के रूप मे व्यवहृत होने लगे। काम भावना तथा मन (Eros and Psyche) से सम्बन्धित प्राचीन कथानक मानवीय आत्मा की परीक्षा का प्रतीक माना जाने लगा। इस प्रकार ईसाई कलाकारो ने अनेक नवीन अर्थो का आरोप करके परम्परागत आकृतियों को रहस्यपूर्ण ही नही अपितु कही-कही दुर्बोध भी बना दिया। समाधि-गुफाओ मे बने भित्ति-चित्रो के अतिरिक्त अन्य उपकरणो पर भी सन्तो आदि के व्यक्ति चित्र तथा अनेक अलंकरण प्राप्त हुए हैं। दामितिल्ला (Domitilla) की समाधि-गुफा में मिले एक वर्तु ल ताम्र-पत्र पर द्वितीय शती ईसवी मे अकित सन्त पीटर तथा सन्त पाल के व्यक्ति-चित्र उपलब्ध हुए हैं। मध्यकालीन सन्त प्रतिमाओ की आदर्श रूप-कल्पना में इन्ही की प्रेरणा रही है।

आरम्भिक ईसाई कलाकारो ने आकृति-सौंदर्य मे किसी प्रकार की रुचि नही ली और हैलेनिस्टिक आदर्शों के अनुकरण से ही वे सन्तुष्ट रहे। वे केवल ईसाई भावना की चिन्ता करते थे। ३१३ ई० मे ईसाई धर्म रोमन

साम्राज्य का राजकीय धर्म बन गया। इसका सर्व-प्रथम परिणाम धार्मिक भवनो की निर्माण-शैली में दिखाई देता है। प्राचीन उपासना-गृह बाहर से देखने मे सुन्दर बनाये जाते थे। उनमे केवल पुरोहितो को ही प्रवेश का अधिकार था। नवीन धर्म मे साधारण भक्तो को भी पूजागृह मे प्रवेश का अधिकार दे दिया गया अत उनको भीतर से सुन्दर बनाया गया। इनके आन्तरिक कक्ष का पर्याप्त विस्तृत होना भी आवश्यक था जिससे कि अधिक से अधिक श्रद्धालु इसमे प्रविष्ट हो सके। प्राचीन सभागृह (Basilica) की आकृति से इसके हेतु प्रेरणा ली गयी। इसमे किंचित परिवर्तन करके इसके गर्भ-गृह को 'क्रास' का आकार दे दिया गया। इसके निकट अर्धगुम्बद से ढकी एक बारहद्वारी (Apse) बनायी गयी जहा पादरी बैठते थे। साथ ही एक फव्वारा भी लगाया गया जिसमे से 'पवित्र-जल' फुहारे लेता था। भवन मे चारो ओर अनेक स्तम्भ होते थे जिनके शीर्ष महराब का भार वहन करते थे।

ईसाई भावना के अनुरूप ही, ईटो से बना यह चर्च बाहर से अनलकृत लगता था किन्तु अन्दर बहुत अधिक रंगीन और अलकृत रहता था। इसके द्वारा अलौकिकता का प्रभाव उत्पन्न करने की चेष्टा की जाती थी। स्तम्भ सगमरमर के बनाये जाते थे। निचली दीवारो पर बहुमूल्य पत्थरो से मणि-कुट्टिम की रचना की जाती थी। स्तम्भो के ऊपर की दीवारो आदि पर धार्मिक दृश्यो को मणिकुट्टिम मे प्रस्तुत किया था। क्रास से चिन्हित वेदी के ऊपर स्वर्ण अथवा स्फटिक का आच्छादन रहता था और धर्म-ग्रन्थो के पाठ के हेतु स्फटिक आदि के ऊँचे-ऊँचे आधार निर्मित किये जाते थे। रोम मे इस प्रकार के बेसिलिका चर्चों मे चतुर्थ शती मे निर्मित सन्त पाओलो का चर्च, चतुर्थ से छठी शती तक निर्मित सन्त लोरेन्जो का चर्च, चतुर्थ शती का सन्त जिओवानी का चर्च, चतुर्थ एवं पंचम शती मे निर्मित सन्त मेरिआ मेग्गोरी का चर्च, चतुर्थ से सप्तम शती तक निर्मित सन्त एगनीज का चर्च, सन्त सबीना का चर्च तथा मेरिया का चर्च प्रमुख है। सम्राट कोन्स्टेण्टाइन द्वारा निर्मित सन्त पीटर के चर्च का अब कुछ भी शेष नही है। केवल प्राचीन चित्रो से ही उसके स्वरूप का अनुमान लगाया जा सकता है।

इन पूजागृहो मे जो प्रतिमाएँ हैं वे अन्तिम हैलेनिस्टक शैली की परम्परा मे हैं किन्तु पूर्वी प्रभाव से उनकी गढनशीलता एव स्वाभाविकता निरन्तर कम होती गयी है। ईसामसीह को प्राय यूनानी युवक के रूप मे दिखाया गया है। रोम के राजकीय धर्म के रूप में प्रतिष्ठित होने के उपरान्त ईसाई धर्म ने प्राचीन मणिकुट्टिम विधि का बहुत प्रयोग किया। विशाल भित्तियो पर अपार जन-समूहो का संयोजन किया गया। इन आरम्भिक मणि-कुट्टिम चित्रो मे प्राचीन शास्त्रीय शैली के छाया-प्रकाश द्वारा गढनशीलता आदि दिखाने का प्रयत्न हुआ है। पृष्ठ-भूमि में प्राकृतिक दृश्य भी हैं तथा पात्रो को यूनानी अथवा रोमन परिधान पहिनाये गये हैं, फिर भी दृष्टिकोण बदला हुआ है। परिप्रेक्ष्य का विचार छूट गया है और पृष्ठ-भूमि का आकाश सुनहरी बनने लगा है। इस कला पर प्रायः छठी शती ईसवी से पूर्वी सौंदर्य-भावना का व्यापक प्रभाव पडने लगा।

समाधि-गुफाओ के चित्रकार आरम्भ मे दो भिन्न शैलियो मे कार्य करते थे—एक रेखा-प्रधान तथा दूसरी भ्रमात्मक। इस दूसरी शैली मे आकृतियाँ शीघ्रता से बनाई जाती थी तथा रंगो एव छाया प्रकाश के द्वारा दृश्यात्मक प्रभाव उत्पन्न किया जाता था। कही-कही दोनो शैलियो के समन्वय का भी प्रयत्न किया गया। भित्ति-चित्र प्राय दूसरी शैली मे ही बने हैं। इनका समय प्राय ईसा की प्रथम शती से आरम्भ होता है। दामितिल्ला की पूर्वोक्त समाधि गुहा के चित्र सम्भवत सर्वाधिक प्राचीन है। दीवारो पर अत्यन्त चिकना पलस्तर करके स्तम्भो से भूमि का विभाजन किया गया है। ये स्तम्भ बहुत पतले बनाये गये हैं तथा पोम्पिआई की 'चतुर्थ-शैली' से सम्बन्धित हैं जिसका अनुकरण दूसरी शती ईसवी तक होता रहा था। दामितिल्ला की मेहराबो के चित्र कोई एक दशाब्दी बाद के हैं। यहाँ सपाट पृष्ठभूमि पर ज्यामितीय क्षेत्र बनाकर उनमे पुष्प, पक्षी एव छोटे-छोटे पंखदार पशु-चित्रित हैं। एक स्थान पर वृक्ष-कुञ्ज चित्रित है जिसमे अनेक अंगूर लताएं वृक्षो से लिपटी दिखाई गयी हैं। २०० ई० के लगभग बने एक पूजागृह (Basilica) के गुम्बद मे भी इसी अभिप्राय का अंकन हुआ है। इन्हें हम ईसाई अभिप्राय नही कह सकते।

परवर्ती चित्रों में ईसाई विषयो के साथ-साथ शैलीगत विकास भी मिलता है। प्रीटेक्सटेटस की समाधि-गुफा के चित्रों मे, विशेषतः काँटो का ताज पहने ईसा के चित्र मे, आकृति को रंगो के विभिन्न बलों के द्वारा चित्रित किया गया है और पीले तथा श्वेत रंग के स्पर्शो से अति-प्रकाश का भी आभास दिया गया है। तृतीय शती ईसवी से अनेक धार्मिक कथानको का चित्रण मिलने लगता है।

प्राइसिल्ला (Priscilla) के एक मेहराब में तृतीय शती का "कुमारी तथा शिशु" (Virgin and the Child) का अत्यन्त क्षत-विक्षत चित्र उपलब्ध हुआ है। कुमारी के अब तक उपलब्ध चित्रो मे यह सबसे प्राचीन है। यह "ऐरेनैरिया" (Arenaria) के नाम से विख्यात है। इस समय के अन्य चित्र रेखात्मक शैली मे हैं और उत्तम कलाकृतियों मे गिने जाते हैं। सन्तो की आकृतियो मे कोमल गढनशीलता का प्रभाव उत्पन्न किया गया है। तीसरी शती मे भित्ति-चित्रो की दूसरी शैली अधिक लोकप्रिय हुई। धार्मिक कथानको, ऋतुओ के प्रतीक चित्रो, मूसा एवं अन्य सन्तो की आकृतियो से सम्बन्धित भित्ति-चित्रो मे इसके प्रमाण देखे जा सकते हैं।

तृतीय शती के अन्त मे बने चित्रो मे शास्त्रीय कला की प्रेरणा से आकृतियो को अधिक ठोस, गढनयुक्त एवं निश्चित् रूप देने का प्रयत्न किया गया। केलीक्सटस (Callixtus) की समाधि-गुफा मे बने पाच सन्तो के चित्र इसके उदाहरण हैं। इनमे ठोस सयोजन की भी प्रवृत्ति मिलती है। इनकी दृष्टि पैनी तथा नेत्र उज्ज्वल बनाये गये हैं। रेखाओं के माध्यम से गढ़नशीलता को प्रस्तुत करने की यह प्रवृत्ति ३४० ई तक चली। इस समय इसका चरमोत्कृष्ट रूप थारसो की समाधि-गुफा (Catacomb of Tharso) के चित्रो मे मिलता है। यहाँ की मुखाकृतियाँ भी "अभिव्यजनापूर्ण" हैं।

पाँचवी शती मे बने भित्ति-चित्रों की आकृतियो मे गढनशीलता के स्थान पर रेखात्मक प्रभाव प्रबल होने लगा। मुद्राओ मे कुछ कठोरता आने लगी। हाथ की सीमा-रेखाएं विशेष कठोर हैं। पांचवी शती के मध्य तक आकृतियो मे पर्याप्त परिवर्तन हो गया। यहीं से ईसाई कला एक निश्चित् शैली मे ढलने लगी और सम्पूर्ण विजेण्टाइन युग को प्रभावित करने मे समर्थ हुई।

जिस क्षेत्र मे ईसाई धर्म का उदय हुआ वहाँ यूनानी तथा रोमन देवी-देवताओ, वीनस, अपोलो, जुपिटर, हरक्यूलीज तथा सूर्य आदि के मन्दिर बनाये जाते थे, नगरो के रक्षक देवता भी होते थे और दिवगत सम्राटो को भी परिवारो का रक्षक समझ कर पूजा जाता था। राजाओ और देवताओ की प्रतिमाएं नगरो मे स्थान-स्थान पर स्थापित रहती थी। प्रत्येक अधिकारी और सैनिक इन देवताओ और राजाओ का प्रतिनिधि होता था और उसे पुजारी जैसा सम्मान प्राप्त था। ऐसे ही धार्मिक वातावरण मे ईसाई धर्म और कला का आरम्भ हुआ था। इसके अनुयायी प्रायः यहूदी, सीरियाई आदि थे और गुलाम, स्त्रियाँ तथा निर्धन लोग सर्वप्रथम इस धर्म की ओर आकर्षित हुए थे। अतः आरम्भ में कला-कृतियो की रचना के हेतु बहुत अधिक धनाभाव था। तीसरी शती के अन्त तक अनेक धनिक लोगो ने ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया अतः इस समय कुछ समृद्ध प्रार्थनागृह निर्मित होने लगे थे।

तीसरी शती की कला को अब तक पार्थियन शैली के अन्तर्गत समझा जाता था क्योंकि इस समय की ईसाई कला के जो उदाहरण मिले थे वे यूनानी कला से ही साम्य रखते थे किन्तु सीरिया आदि मे सुरक्षित भवनो से यह स्पष्ट हो गया है कि इस समय की ईसाई कला पर पूर्वी शैलियो का पर्याप्त प्रभाव पड चुका था। मुखाकृतियाँ प्रायः सम्मुख मुद्रा मे अकित की जाने लगी थीं। स्थानीय कलाकारो को ही धार्मिक भवन चित्रित करने का कार्य सौंपा जाता था।

आरम्भ से ही ईसाईयो मे यह विश्वास उत्पन्न हुआ कि ईसा पुन. बादलो मे से अवतरित होंगे। उस समय सभी मुर्दे जीवित हो जायेंगे और ईसा मसीह जीवित और मृत सभी लोगों से उनके कार्यों का हिसाब-किताब पूछेंगे। ससार के अनेक देशो मे इस समय मुर्दों को गाडने की प्रथा प्रचलित थी। रोमवासी अपने मुर्दों को जलाते थे और

उनकी राख को कलशो मे भर कर गाड देते थे। ईसाई धर्म को स्वीकार करने के उपरान्त उन्होंने भी मुर्दे गाड़ना आरम्भ कर दिया। इनके हेतु भूमि मे गहरी खाई खोदकर उसकी दोनो ओर की दीवारो मे ऊपर-नीचे अनेक छोटे-छोटे कोष्ठ बना दिये जाते थे जिनमे शवो को रखा जाता था। इस प्रकार थोड़े से ही स्थान मे अनेक शव रखे जा सकते थे। ये समाधि-गुफाएँ (Catacombs) कहे जाते थे। इन समाधि गुफाओ अथवा शवगृहो की दीवारो आदि पर बने चित्र उत्तम कोटि के नही हैं। इनमें प्राय. घरो की दीवारो के रोमन अलकरणो की परम्परा का ही निर्वाह हुआ है। कही-कही इनके बीच-बीच में ईसाई विषयो का चित्रण अवश्य कर दिया गया है। इनके साथ ही क्यूपिड, ऋतुओं तथा पशुओ के परम्परागत विषय भी चित्रित किये गये हैं।

आरम्भिक चित्रो में विषय-वस्तु बहुत सरलता से प्रस्तुत की गयी है, प्रायः प्रतीकात्मक विधि से लगर, मछली, रोटियो से भरी टोकरी तथा पक्षियो से सकुल अगूर-लता आदि का ही अकन हुआ है। ईसा को प्रायः गडरिये के रूप में कभी भेड़ो से घिरे वशी बजाते और कभी भेड को गोद में अथवा कन्धे पर लिये यूनानी मानव चित्रण शैली की परम्परा में अकित किया गया है। इस समय की कला में एक स्त्री की आकृति ऊपर हाथ उठाये प्रार्थना करती चित्रित है। यह मृत व्यक्ति की आत्मा है। कही-कही से इसे फूलो से घिरे हुए ईडन उद्यान मे भी दिखाया गया है।

शव-गृहो की दीवारो पर पुराने तथा नये टेस्टामेण्ट के आधार पर अनेक दृश्य चित्रित हैं पर ये इतने प्रतीकात्मक और नियमबद्ध हैं कि इनके विषय पहचानना भी कठिन है। धर्म को गुप्त रखने की दृष्टि से भी ऐसा किया गया है। विवरणात्मक चित्रो में भी अनेक स्थानो पर गूढ तत्व मिल जाते हैं जो किसी असम्बन्धित दर्शक की समझ में नही आ पाते। फिर भी इन चित्रो के विषय सीमित हैं। जन-जीवन का भी अकन हुआ है।

शैली—इन चित्रो की शैली प्रवाहपूर्ण किन्तु तनाव रहित है, रग चमकीले तथा उत्फुल्लतादायक हैं, कही कहीं हल्के रग के स्पर्श भी लगाये गये है। मुद्राएँ तथा स्थितियाँ ओजपूर्ण हैं। मुखाकृतियाँ सामान्य पद्धति की हैं, कहीं-कहीं उनमें व्यक्ति-चित्रण का भी प्रयत्न हुआ है। ये चित्र धार्मिक और ऐतिहासिक अधिक हैं, कलात्मक कम।

ईसाई धर्म के अनुसार गाडे जाने वाले अमीर लोगो के शवो को कलात्मक तथा अलकृत ताबूतो में रखा जाता था। ये ताबूत पत्थर (प्राय सगमरमर की शिला) को खोखला करके निर्मित किये जाते थे और पत्थर से ही निर्मित एक ढक्कन इनके ऊपर ढक दिया जाता था। इन ताबूतों पर विभिन्न दृश्यो का अकन बड़ी सुन्दरता से किया जाता था। इन पर प्राय ईसाई धर्म अथवा बाइबिल के दृश्यो का अकन होता था। पूर्वजो के कुछ प्राचीन कथानको को भी इसमे समाविष्ट कर लिया गया। पुराने टेस्टामेण्ट के दृश्यो मे आदम और हव्वा, इब्राहीम का बलिदान, जोना, हिब्रू, मूसा के जीवन की प्रमुख घटनाएँ, सिंहो के मध्य दानियाल आदि का अकन अधिक हुआ है। नये टेस्टामेण्ट के आधार पर ईसा के बचपन की घटनाएँ, ईसा के चमत्कार की कथाएँ, यरुसलेम-प्रवेश, ईसा का पकडा जाना, पाइलेट का न्याय, सूली तथा पुन जीवित होना आदि का अकन किया जाता रहा।

आरम्भिक ईसाई कला राज्याश्रित न थी अत उत्तम और बहुमूल्य कलाकृतियो का निर्माण नही हो सका था। राज्याश्रय मिलने के पश्चात् यह कला बहुत समृद्ध हो गयी। ईसाई धर्म के अनुयायियो को अपनी भावनाओ को स्पष्टता और निर्भयता से व्यक्त करने का अवसर मिला।

बिज़ेण्टाइन कला का आरम्भ

रोमन क्षेत्र मे ईसाई धर्म की विजय के पश्चात् जो स्थिति उत्पन्न हुई उसका पूर्ण अनुमान करना अ कठिन है। आज भी कुछ ऐसा होता है कि भूमिगत आन्दोलनो के नेता सहसा सत्ता पर अधिकार कर लेते हैं, उनके साथी जेलो से मुक्त कर दिये जाते हैं और उनके आदर्श ही देश का कानून बन जाते हैं। जो विचारधाराएँ प्रति-क्रियावादी समझी जाती थी वे ही विकासवादी मानी जाने लगती हैं। ३०५ ई० मे डायोक्लेटियन ने ईसाई धार्मिक

ग्रन्थों की होली जलाई थी, चर्चों को नष्ट किया था और पादरियों को फाँसी दी थी। वह चाहता था कि हरक्यूलीस तथा जुपीटर के आदर्शों पर आधारित सम्राटों की यूनानी-रोमन पद्धति की राज्य सत्ता समाप्त न हो, चाहे इसकी कितनी भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े। सहसा ईसाई धर्म जो अब तक अवैध सम्प्रदाय माना जाता था, अब वैध माना जाने लगा और इसके अनुयायियों को पूर्ण नागरिक अधिकार प्रदान किये गये। इन्हें वरीयता भी दी जाने लगी और सम्पूर्ण रोमन साम्राज्य के निवासी ईसाइयों को राज्य की सुदृढ़ता एवं सुरक्षा की दृष्टि से संगठित भी किया गया। सम्राट कोन्स्टेण्टाइन प्रथम (जन्म २७४ ई०—मृत्यु ३३७ ई०) ३०६ ई० में गद्दी पर बैठा। ३२५ ई० में नाइसिया में ईसाई धर्म की प्रथम महासभा हुई जिसमें मूर्ति-विरोध की निन्दा की गयी और ईसाई धर्म राजधर्म घोषित हुआ। इस महासभा की अध्यक्षता स्वयं सम्राट कोन्स्टेण्टाइन ने की। यहीं से ईसाई धर्म का व्यापक प्रचार आरम्भ हुआ और इस प्रचार में राज्य ने पूर्ण सहयोग दिया जिसमें कलाओं से भी धर्म-प्रचार का कार्य लिया गया। ईसाई धर्म से सम्बन्धित इसी कला को बिजेण्टाइन कला कहते हैं। यद्यपि यह यूरोप में ही विशेष प्रचलित हुई थी तथापि इसे पश्चिमी शैली न मानी जाकर पूर्वी कला-शैली माना जाता है। इसका प्रधान कारण यह है कि इसका मुख्य सम्बन्ध बिजेण्टियम से रहा है जिसे सम्राट कोन्स्टेण्टाइन प्रथम ने ३३० ई० में अपनी राजधानी बनाया था। इससे पहले बिजेण्टियम को ग्रीक साम्राज्य की पूर्वी राजधानी माना जाता था। दूसरा कारण यह है कि इस शैली पर एशिया माइनर, ईरान, ईराक, सेमेटिक आदि पूर्वी सभ्यताओं और देशों का बहुत प्रभाव पड़ा था। इसी से चित्रकला के समीक्षक इसे ईसाई धर्म से सम्बन्धित पूर्वी कला-शैली मानते हैं। लगभग १४५३ ई० तक इसका काल-विस्तार रहा है।

आरम्भ में प्राचीन यूनानी-रोमन धर्म के अनुयायियों के प्रति भी राज्य सहिष्णु रहा। सम्पूर्ण चौथी शताब्दी में यही स्थिति रही। सम्राट कोन्स्टेण्टाइन की समाधि पर ही विशेष रूप से निर्मित चर्च इस समय का ईसाई धर्म का सबसे बड़ा केन्द्र था।

सम्राट कोन्स्टेण्टाइन के आदेश से ईसा के मकबरे की खोज के लिये उत्खनन कार्य आरम्भ हुआ। सूली के वास्तविक स्थान का पता लगने पर सूली तथा पुनर्जन्म के स्मरण में विशेष भवनों का निर्माण हुआ। बैथलहैम में ईसा के जन्म का स्थान भी खोज लिया गया और वहाँ भी सुन्दर स्मारक बनाया गया। ओलिव्ज पहाड़ी पर सूली से उतरने के पश्चात् ईसा के जो पद चिन्ह मिले थे वहाँ भी एक स्मारक बनाया गया। अनेक अन्य पूजा-गृहों का निर्माण हुआ जिनकी दीवारों पर ईसा और उनके अनुयायियों के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का चित्रण किया गया।

रोम में सेण्ट पीटर तथा सेण्ट पाल नामक ईसा के दो प्रमुख शिष्यों के अवशिष्ट चिन्ह खोजने के प्रयत्न आरम्भ हुए और वेटीकन नामक पहाड़ी पर भूमि को समतल करके एक विशाल मण्डप का निर्माण किया गया। ईसाई धर्म से सम्बन्धित सभी आरम्भिक स्थानों की ऐतिहासिक और पुरातात्विक प्रामाणिकता आज हमें संदिग्ध प्रतीत हो सकती है किन्तु इन सबके द्वारा सम्राट कोन्स्टेण्टाइन ने ईसा मसीह के भौतिक जीवन के घटना-चक्र को स्मारकों के रूप में व्यवस्थित करने का सराहनीय प्रयत्न किया।

चतुर्थ शती के पूजा-गृहों का निर्माण प्रायः आबादी के निकटवर्ती खुले एवं बाहरी स्थानों में हुआ। केवल कुछ ही नगरों में राजकीय भवनों अथवा चौराहों और मुख्य बाजारों में पूजा-गृहों अथवा प्रार्थना-गृहों के हेतु भूमि प्राप्त हो सकी थी। प्राय. सभी स्थानों पर प्रचलित स्थानीय शैलियों के आधार पर भवनों का निर्माण हुआ।

आरम्भिक बिज़ेण्टाइन कला के आलंकारिक अभिप्राय—

आरम्भिक युग के ये ईसाई स्मारक आज लुप्त हो गये हैं अत. इनके अलंकरणों का अनुमान लगाना कठिन है। अवशिष्ट चिन्हों के आधार पर कहा जा सकता है कि इनमें बहुभुजों एवं वृत्तों के ज्यामितीय अलंकरणों के मध्य पक्षियों, पशुओं, क्यूपिड अथवा नृत्य-बालाओं को अंकित किया गया था। अंगूर की बेल और अंगूर की खेती के भी

दृश्य अंकित किये गये थे। यह समस्त अलंकरण यूनानी-रोमन परम्परा से लिया गया था। कुछ पूजा-गृहो मे विचित्र पशु-पक्षी, आवक्ष शवीहो, मछली, गडरिया, मुर्गा तथा कछुआ भी अंकित हुए हैं। मछलियो से भरा समुद्र, मछलियो का शिकार करते क्यूपिड, जोना का जीवन चरित्र आदि का भी चित्रण हुआ है।

लगभग इसी समय ईसाई आकृति-विधान का समुचित विकास हुआ। आकाश मे ग्लोब पर बैठे ईसा अथवा चार स्वर्गीय नदियो सहित पर्वत पर खडे ईसा, सेण्ट पीटर तथा पाल को उपदेश देते हुए, ईसा के जीवन के कुछ अन्य दृश्य इस समय के पूजा एव प्रार्थना-गृहो तथा शव-गृहो मे चित्रित मिल जाते हैं। ईसा का पुनः जीवित होना, पवित्र महिलाओ के साथ मकबरे पर आना और फरिश्ते से मिलना आदि घटनाओ का समूहात्मक तथा एकान्तिक आकृतियो के साथ भी अकन हुआ। स्वर्गारोहण, सूली, भविष्यवाणी, भक्तो को दर्शन, जन्म और दीक्षा आदि के दृश्य भी चित्रित किये गये।

प्यूदें जियाना के चर्च मे एक मणिकुट्टिम चित्र है जिसमे दो प्रतीक नारी-आकृतियो के मध्य सिंहासनासीन ईसा चित्रित हैं। पीछे पहाडी है जिसके शिखर पर क्रास गडा है। पृष्ठ भूमि मे यरूसलेम के स्मारको का दृश्य है। आकाश मे अन्य प्रतीक आकृतियाँ हैं।

इस प्रकार आरम्भिक बिजेण्टाइन कला मे ईसा के स्वर्ग और पृथ्वी के जीवन से सम्बन्धित दृश्य मिले-जुले रूपो मे ज्यामितीय अलकरणो के साथ-साथ अंकित हुए है। सम्भवत इनसे यह व्याख्या की गयी है कि ईसा के स्वर्ग और पृथ्वी के जीवन अलग-अलग नही हैं। वे सभी जगह हैं और पृथ्वी पर मनुष्यो के महान् उद्धारक और रक्षक के रूप मे अवतरित हुए थे। इस समय से जो चित्र बनने आरम्भ हुए उनमे ईसा की सत्ता सर्वोपरि दिखाई गयी। उन्हे सन्तो से घिरे हुए उसी प्रकार चित्रित किया जाने लगा जैसे, किसी सम्राट को राज-सभा मे अंकित किया जाता है। सूली का चिन्ह ही उनकी विजय का प्रतीक बन गया।

रैवेन्ना और मणिकुट्टिम (Mosaics)

पाँचवी तथा छठी शती की ईसाई कला को समझने के हेतु रैवेन्ना के चर्च सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। सम्राट ओनोरियस की बहिन गाला प्लेसिडिया ने ४२५-४५० ई० के मध्य अपने पुत्र के हेतु राज्य करते हुए रैवेन्ना को राजधानी जैसा आकर्षक बनाया। गोथिक सरदार थियोडोरिक, कुस्तुन्तुनिया की सहायता से इटली का शासक हो गया और वह भी रैवेन्ना मे रहने लगा। उसने भी इसे पर्याप्त अलकृत कराया। यहाँ के भवनो के मणिकुट्टिम चित्रो मे इटालियन कला-परम्पराओ के साथ ही पूर्वी प्रभाव भी मिश्रित है।

लगभग दस शताब्दियो तक पूर्वी पूजागृहो की सज्जा मणिकुट्टिम चित्रो के द्वारा हुई थी। रैवेन्ना के मणिकुट्टिम चित्र इस युग की ईसाई कला के विषयो, अलकरणो, आकृतियो तथा प्रतिमा-विधान की समस्त आवश्यकताओ की पूर्ति करते हैं। मणिकुट्टिम चित्रो की परम्परा ग्रीक कला से आरम्भ होकर रोमन युग मे बहुत लोकप्रिय हुई। पोम्पिआई की आरम्भिक ईसाई कला मे मणिकुट्टिम कार्य केवल भवनो के फर्श तथा फव्वारो आदि पर विशेष रूप से मिलता है यद्यपि भित्ति-चित्रो मे भी इस पद्धति के प्रयोग की सामान्य परम्परा प्रचलित थी। चौथी शती के समाधिगृहो आदि में मणिकुट्टिम का कार्य मिल जाता है, दीवारो पर भी और मेहराबो मे भी।

पाँचवी शती मे मणिकुट्टिम के कार्य मे रंगीन काँच के चौकोर टुकडो का प्रयोग बहुत बढ गया। प्रायः सुनहरी टुकडे मणियो के लिये, लाल तथा नीले टुकडे पक्षियों के पखो के लिये और नीले तथा हरे टुकडे समुद्र के लिये प्रयुक्त किये जाते थे। स्थायित्व न होने के कारण इनमे से अधिकाश चित्र नष्ट हो गये हैं। आरम्भ में इनके हेतु चूना पत्थर अथवा सगमरमर की श्वेत पृष्ठ-भूमि का प्रयोग किया जाता था। इसके स्थान पर पहले नीले और फिर सुनहरी रंग का प्रयोग हुआ। इससे चित्रो की चमक बहुत बढ गयी और भवनो का आन्तरिक प्रकाश भी परिवर्तित हुआ। गैला प्लेसीडिया के भवन की नीली आभा के साथ इन मणिकुट्टिम चित्रो की सुनहरी आभा मिलकर

एक विचित्र सौंदर्य उत्पन्न करती है। रंगो के इस प्रकार के प्रभाव इसके पूर्व कहीं भी प्रयुक्त नहीं किये गये थे अतः इस नये अनुभव ने दर्शकों को अभिभूत कर दिया। रोमन कला से इस कला मे बहुत अधिक रंगीनी थी।

इस कला की चरम उन्नति रैवेन्ना के सान वाइटेल नामक अष्टभुजी विजेण्टाइन भवन मे दिखायी देती है जिसकी रचना ५४६-५४८ ई० के मध्य हुई थी। इसकी दीवारो मे स्थान-स्थान पर खिडकियाँ, मेहराब, गुम्बद, अर्द्ध-वृत्ताकार गर्भगृह आदि निर्मित हैं और उन्हें विविध प्रकार से मणि-कुट्टिम चित्रो के द्वारा अलकृत किया गया है। इसमे जिस कुशलता से अलकरण की विभिन्न पद्धतियो को अपनाया गया है उनके प्रयोग इससे पहले के अन्य भवनो मे भी किये जा चुके थे। भवनो की दावारो पर जुलूसो की आकृतियाँ मुख्य आकृति अथवा केन्द्रीय सिंहासन की ओर अभिमुख अंकित की गयी हैं। इसकी प्रेरणा पर्सीपोलिस से ली गयी है। वहाँ के चित्रों मे धनुर्धरों की जो पंक्तियाँ अकित हैं उनकी आकृतियो तथा रंग-योजनाओं की पुनरावृत्ति का इन चित्रो पर पर्याप्त प्रभाव है। इसी प्रकार दीवारो के मेहराबो के नीचे सन्तो की आकृतियाँ अकित है जो आलो में अंकित यूनानी प्रतिमाओं की परम्परा का स्मरण दिलाती हैं। प्राय केन्द्रीय गुम्बद मे सम्मुख स्थिति मे ईसा और उसके दोनो ओर सन्तों अथवा भक्तो की आकृतियाँ अकित की गयी हैं। इस प्रकार की समूहयोजना से चित्र मे सम्मात्रा (Symmetry) उत्पन्न हो गयी है जिसकी परम्परा सम्पूर्ण विजेण्टाइन कला मे दिखाई देती है।

प्राचीन भवनों की छतो का प्राय. दीवारों आदि की चित्रकारी से कोई सम्बन्ध नही था क्योंकि छतें प्रायः समतल होती थी। ईसाई भवनो की छतें जब मेहराबदार अथवा अर्द्धवृत्ताकार बनने लगी तो दीवारो को ही मानो गोल करते हुये छतो का निर्माण होने लगा। इससे अलंकरण भी प्रभावित हुआ। मेहराबदार छतो तथा अर्द्ध गुम्बदो की सजावट भी अनिवार्य हो गयी। दीवारो तथा छतो मे सम्बन्ध स्थापित हुआ। नये भवनो की खिड़कियो, खम्भो, मेहराबो और छतो के अलकरणों तथा चित्रो मे एकता आयी। अकेली आकृतियो का महत्त्व कम हो गया और समूह-चित्रो तथा अलग-अलग स्थानो में बने चित्रों मे पारस्परिक सम्बन्ध का विचार किया जाने लगा। आकृतियो को फूल-पत्तियो आदि के अलकरणों के बीच-बीच मे बनाना बन्द हुआ और पृष्ठ भूमियो मे निश्चित दृश्यो का अकन करके उन्ही मे आकृतियो को स्थित किया गया।

मणिकुट्टिम चित्रो की आकृतियाँ—

मानवाकृति के प्रस्तुतीकरण मे रैवेन्ना के ईसाई भवनो का विशेष महत्व है। पाचवी शती की मुखाकृतियो में छाया-प्रकाश तथा गढन-शीलता के प्रभाव बहुत सावधानी पूर्वक अकित किये गये हैं जैसे कि व्यक्ति-चित्रो मे किये जाते हैं। एक-एक कांच के टुकड़े को रग, बल, प्रकाश तथा आकृति के विचार से बहुत सोच-समझ कर लगाया गया है। किन्तु छठी शती के चित्रो के वस्त्रों की फहरान मे रंगीन छाया अथवा गढनशीलता का कोई प्रयत्न नहीं किया गया है। वस्त्र की फहरान तथा नीचे छिपे शरीर की गढनशीलता को केवल रेखाओ से ही व्यजित किया गया है। प्राय. हल्के रग के धरातल पर गहरे रगो से आकृतियाँ अकित की गयी हैं। वस्त्रो की सिकुडनो को आगे चल कर और भी कम अकित किया जाने लगा क्योंकि इनके अकन से वस्त्रो के अलकरण के अभिप्रायो का सौंदर्य नष्ट हो जाने का भय था। इस प्रकार के चित्रो मे मुखाकृतियाँ बहुत यथार्थवादी हैं फिर भी दर्शक का ध्यान सबसे पहले मुखाकृति पर न जाकर वस्त्रो के चमकीले डिजाइनो पर जाता है। यह होते हुए भी आकृतियो की मुद्राओं मे गति है, जडता नही। इस कला पर पूर्वी देशो का बहुत प्रभाव है।

इन चित्रो की मुखाकृतियो मे शनैः शनैः परिवर्तन भी आया। चेहरे सम्मुख स्थिति मे अकित किये गये जिनमे नासिका के दोनो ओर एक समान छाया दिखायी गयी है। सर्वाधिक प्रभाव आखो मे दिखाया गया है। वे बड़ी, समतायुक्त, सामने देखते हुए तथा गहरी भ्रूचाप सहित अकित हैं। वे मानो तीखी दृष्टि मे दर्शको की ओर देखती हैं (फलक ६-ख)। पूर्वी कला के प्रभाव से मानवाकृतियो मे आदर्शवादिता आयी है। विजेण्टाइन मणिकुट्टिम चित्रो पर पार्थियन कला का निर्णायक प्रभाव पड़ा है। मुखाकृतियाँ सम्मुख मुद्रा के अतिरिक्त पार्श्वगत तथा अन्य प्रकार से भी

चित्रित की गयी हैं किन्तु छठी शती के आते-आते सम्मुख चेहरो के प्रति आग्रह बढ गया। आकृतियो की गतिमत्ता दिखाने के हेतु पैरो मे गतिशीलता और वस्त्रो मे फहरान का अकन किया गया। आकृतियो के रूप और घनत्व के बजाय रगो और दृश्य-सौंदर्य पर अधिक बल दिया जाने लगा। तृतीय आयाम की समाप्ति तथा द्विविस्तारात्मक प्रभाव उत्पन्न करके प्रतीकता के लिये अनुकूल वातावरण बना। सभी आकृतियो की आँखों मे एक नई चमक है, जो एक नये उत्साह का सकेत देती है।

पश्चिम और पूर्व के समन्वय से विकसित इस नवीन शैली में ईसाई धर्म विषयक मणिकुट्टिम चित्रो की रचना हुई। रैवेन्ना की कला मे पुराने तथा नये टेस्टामेण्ट के बजाय ईसा मसीह के जीवन से सम्बन्धित छोटे-छोटी घटनाओ का विशेष अकन हुआ। आरम्भ में ईसा की सूली आदि के कारुणिक दृश्यो को कोई स्थान नही मिला।

मणिकुट्टिम चित्रों की प्रतीकता—इन चित्रो में जिन घटनाओ का अकन हुआ है उनसे प्रतीक की भी व्यंजना होती है जैसे ईसा का बपतिस्मा ईसा के ईश्वरीय शक्ति होने का प्रतीक है। इसी प्रकार धर्म पर बलिदान हो जाने वाले शहीदो, मागी तथा फरिश्तो आदि के द्वारा स्वर्गीय नगर का सकेत दिया गया है जहां कि वे अब निवास करते हैं। भेडें तथा मैमने सन्तो तथा भक्तों की प्रतीक हैं। स्वर्ग को भी सुन्दर उद्यान के द्वारा दिखाया गया है जहाँ फरिश्तो द्वारा घिरे हुये सिंहासनासीन ईसा और मरियम सन्तो और भक्तो को अपनी शरण मे स्वीकार करते हैं। गैला प्लेसीडिया के चर्च मे चार सन्तो को चार प्रतीको के द्वारा एक क्रास के चारों ओर चित्रित किया गया है— वृषभ (मैथ्यू), गिद्ध (ल्यूक), सिंह (मार्क) तथा मनुष्य (जोन)। सान वाइटेल के अर्द्धगुम्बद की ग्लोब पर बैठी ईसा की आकृति ससार के स्वामी ईसा मसीह की प्रतीक है। आकाश का नीलापन और सूर्य का सुनहरीपन स्वर्गीय तथा अलौकिक भावो की ओर सकेत करता है। दूतो, पैगम्बरो, सन्तो, शहीदो तथा फरिश्तो की आकृतियाँ ईसा के देवत्व को ही प्रमाणित करती हैं। इस प्रकार रगो तथा प्रतीको के माध्यम से रैवेन्ना के चर्च उद्धार की एक नयी आशा का सचार करते हैं। नरक, राक्षसो, पापियो को मिलने वाली यातनाओ आदि के भयावह दृश्यो का अङ्कन शव-गुहो के समय से ही बन्द हो गया था। इन मणिकुट्टिम चित्रो मे भी इन भयप्रद दृश्यो का चित्रण नही हुआ है। इनमे राजसी भवनो के समान चमक-दमक है, कही भी परछाइयाँ नही हैं, कोई उदासी नही है तथा कोई दुष्कर्म-भोग नही है। ईसाई सन्तो के साथ जो कुछ भी हुआ था वह वही था जिसकी पहले भविष्यवाणी हो चुकी थी। ईसा मसीह उस स्थान के अधिकारी हैं जहाँ सम्राट भी उनके सेवक हैं और फरिश्तो तथा सन्तो के मध्य सिंहासनासीन ईसा श्रद्धालुओ और भक्तो के स्वर्ग-आगमन की प्रतीक्षा मे है।

रूप-योजना (Iconography)

(क) **पुस्तक चित्र**—ईसाई धर्म पुस्तक का धर्म है। न्यू टेस्टामेण्ट तथा ओल्ड टेस्टामेण्ट नामक दो भागो में विभक्त ईसाई धर्म की पुस्तक 'बाइबिल' मुख्यत इतिहास ग्रन्थ है जिसमे यहूदी लोगो का इतिहास तथा ईसा मसीह का जीवन-वृत्त वर्णित है। इसके कुछ अध्याय गीतात्मक, धार्मिक तथा भविष्यवाणी मूलक हैं अन्यथा अधिकाश अध्यायो मे और समग्रत. वर्णनात्मकता की प्रधानता है।

इस धर्म-ग्रन्थ के पात्रो का चरित्र प्रकाश मे लाने तथा लोगो को धर्म की शिक्षा देने के हेतु पुस्तक चित्रण की आवश्यकता अनुभव की गयी। यद्यपि आज ईसाई धर्म के प्राचीनतम चित्रित ग्रन्थ दसवीं-ग्यारहवीं शती से पुराने नहीं हैं तथापि इनके पीछे शताब्दियो पुरानी पुस्तक-चित्रण की परम्परा झलकती है। आज यह कहना कठिन है कि ईसाई धर्म की चित्रण पहले पुस्तको मे हुआ या दीवारो पर। प्रतीत होता है कि कही तो भित्ति-चित्रकारों ने पुस्तक-चित्रो से प्रेरणा ली है और कही पुस्तक चित्रकारो ने भित्ति चित्रो से प्रेरणा ली है। कही-कही दोनो माध्यमो मे अद्भुत साम्य है।

सदेश वचनामृत (Gospel) तथा अष्टाध्यायी पुस्तको (Octateuchs) के प्राय प्रत्येक अश अथवा पद्य का चित्रण करने की परम्परा आरम्भ हुई जिसमे सम्पूर्ण घटनाचक्र चित्रो के द्वारा क्रमश उसी भाँति प्रस्तुत किया

जाने लगा जिस प्रकार आजकल व्यंग्य-चित्रों की पट्टियो (Strip-Cartoons) के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इस पद्धति के जन्म और आरम्भ के विषय मे निश्चय पूर्वक कुछ भी नही कहा जा सकता। यूनानी रोमन युग मे पेपीरस की कुण्डलियाँ प्रचलित थी। इनमे प्राय: लिखित कालमो की चौडाई की सीमा मे ही छोटे-छोटे चित्र बनाये जाते थे। जोशुआ कुण्डली, जो खाल की है, ग्यारहवी शती की मानी जाती है। इसमे लम्बी-लम्बी पट्टियो मे धार्मिक रूपो का अकन क्रमश निरन्तर किया गया है। परवर्ती ग्रन्थो मे आकृतियों के समूह नये ढग से सयोजित किये गये हैं। चौथी शती से ही खाल के ग्रन्थ बनने लगे थे। इनमें भी कालमो मे छोटे-छोटे चित्र अकित हैं। कही-कही पूरे पृष्ठो के चित्र भी है। चित्रो का आकार बढ जाने से कलाकार को अपनी प्रतिभा दिखाने का अच्छा अवसर मिल गया है।

विभिन्न पुस्तक चित्रो मे घटनाओ और दृश्यो को प्रायः एक समान विधि से प्रस्तुत किया गया है। सम्भवत. एक ग्रन्थ से दूसरे ग्रन्थ की नकल करते समय चित्रो की भी अनुकृति की जाती थी। इन अनुकृतियो मे जो अन्तर हैं वे बडे ही सूक्ष्म हैं। सम्भवत आरम्भ मे कुछ निश्चित रूपो के आदर्श थे जो यहूदी अथवा यूनानी-रोमन आकृतियो पर आधारित थे। इन्ही मे किंचित् परिवर्तन करके अनेक सन्तो तथा ईसा मसीह की आकृति का विकास किया गया। किन्तु इसका यह तात्पर्य नही है कि चित्रकारों में कोई मौलिकता अथवा नवीनता नही थी। अनेक आकृतियाँ इन कलाकारो की आश्चर्यजनक कल्पना शक्ति तथा नैसर्गिक आकृति-रचना की प्रमाण है। कलाकार को यद्यपि पवित्र आकृतियो की रचना मे परम्परागत रूपो तथा आदर्शों का ध्यान रखना पडता था परन्तु वह उनका कठोरता से पालन नही करता था।

(ख) भित्ति-चित्र—बहुत समय तक बिजेण्टाइन कला को एकरस, कठोर तथा कुरुचिपूर्ण भडकीली समझा जाता था। किन्तु इसके गम्भीर अध्ययन तथा विश्लेषण से इसकी विशेषताएँ ज्ञात हुई हैं और विकास के विभिन्न चरण भी सुनिश्चित हुए हैं। प्रायः कुस्तुन्तुनिया से ही इसका आरम्भ किया जाता है और राजधानी की कला का ही मुख्य रूप से अध्ययन करके विभिन्न प्रान्तो मे उसके प्रभाव का मूल्याकन किया जाता है।

आरम्भिक ईसाई कला पर मेसोपोटामिया तथा सासानी ईरान के प्रभाव पड चुके थे। ये प्रभाव चौथी शती के मणिकुट्टिम चित्रों के अवशेषो मे स्पष्ट है और धीरे-धीरे बढ़ते गये हैं। हैलेनिस्टिक तत्वो के साथ मिल कर इन प्रभावो ने ईसाई चित्रकला का विकास किया। रैवेन्ना मे यह समन्वय सर्वप्रथम परिलक्षित होता है। हैलेनिस्टिक शैली मे स्थानगत विस्तार, प्रकाश, लोच तथा लावण्य था और आकृतियाँ गढनशील थी जिनमें छाया-तप का प्रयोग किया जाता था। आकृतियो के रेखाकन मे गोलाई तथा गहरे रंगो से गहराई के प्रभाव उत्पन्न किये जाते थे। वस्त्र, वायु तथा सूर्य के प्रकाश से प्रभावित, मुखाकृतियाँ आन्तरिक भाव की व्यजक, पृष्ठ भूमि के भवन ठोस तथा वृक्ष वायु से हिलते हुए अकित किये जाते थे। पूर्वाकला मे आकृतियाँ समतल और द्विविस्तारात्मक हैं। स्थानगत विस्तार का कोई विचार नही है और पृष्ठ भूमियाँ प्राय. इकरगी पट्टियों के रूप मे प्रायः गहरी नीली अथवा चमकदार सुनहरी हैं। जहाँ पृष्ठ-भूमि मे कोई दृश्य अकित है वहाँ भवनो अथवा वृक्षो आदि को केवल प्रतीक विधि से प्रस्तुत किया गया है जिसमे न दूरी का भ्रम है और न परिप्रेक्ष्य के नियमों का प्रयोग। मुखाकृतियाँ एव शरीर सम्मुख स्थिति मे हैं। बार्डर आदि समतल है और वस्त्रो की सिकुड़नें ज्यामितीय रेखा मात्र हैं। आकृतियो मे शरीर की कोई अनुभूति नही है और वे सम्मुख स्थिति मे अकित सीमा रेखा मात्र प्रतीत होती हैं। रग-योजनाएँ और सूक्ष्म अलकरणो के प्रभाव प्रमुख हैं। मुखाकृति सम्मात्रायुक्त है जिसमे नेत्र बड़े और चमकदार बनाये गये हैं। यह शैली यथार्थ जगत् मे से हमे किसी अतीन्द्रिय धार्मिक लोक मे ले जाती है।

ये दोनो शैलियाँ ईसाई कला में मिश्रित हुई। बिजेण्टाइन कला मे चार मुख्य तकनीक आरम्भ हुए—(१) लकड़ी के छोटे पटरो पर सन्तो आदि की आकृतिया मोम से बनायी गयी, (२) खाल की पाण्डुलिपियो पर लघु चित्र अकित किये गये, इनमे छोटे चित्र प्रथम टेक्नीक के समान हैं और बड़े चित्र भित्ति चित्रो से प्रेरित

हैं, (३) भित्ति पर बनने वाले मणिकुट्टिम चित्र तथा (४) फ्रेस्को चित्र। इनमे से प्रत्येक टेकनीक की अपनी-अपनी विशेषताएं और सीमाएं हैं। मणिकुट्टिम की शैली मे फ्रेस्को जैसी लोच अथवा मोमचित्रण जैसी बारीकी नही आ सकती। खाल पर चित्रण मे स्वतन्त्रता और चटकीले रगो का प्रयोग सुविधा से किया जा सकता है। फ्रेस्को मे सुनहरी पृष्ठभूमि कठिन होती है जबकि मणि-कुट्टिम तथा ग्रथ चित्रण मे इसका अकन सरलता से किया जा सकता है। कुछ ऐसे प्रभाव हैं जो मणिकुट्टिम मे स्वय ही उत्पन्न हो जाते है और वे मणिकुट्टिम की सामग्री पर निर्भर रहते है। फ्रेस्को चित्रो मे प्राकृतिक वातावरण का जो प्रभाव उत्पन्न हो सकता है वह मणिकुट्टिम मे कदापि सम्भव नही है।

बिजेण्टाइन चित्रो की शैली टेकनीक की विभिन्नता पर आधारित है। मोम से बने पट्टिका चित्र और मणिकुट्टिम चित्र अपनी रूप तथा रग-योजनाओ मे पूर्वी कला के अधिक निकट हैं। फ्रेस्को तथा लघु-चित्र हेले-निस्टिक प्रभावो के समीप हैं। कलाकृतियो पर स्थानीय परम्पराओ, सम्प्रदायो, कलाकारो की व्यक्तिगत रुचियो तथा धार्मिक विश्वासो आदि का भी प्रभाव है।

आकृति-विरोधी प्रवृत्ति—बिजेण्टाइन कला मे लगभग एक सौ वर्ष का युग ऐसा रहा है जब आकृति-चित्रण का निषेध कर दिया गया था। इसे आकृति विरोधी सकट का युग कहा जा सकता है। जब यह सकट समाप्त हो गया और आकृति-चित्रण के समर्थक पुन सत्ता मे आ गये तो उन्होने आकृति-विरोधी सम्राटो के राजकीय विवरणो को ही नष्ट नही किया बल्कि उस युग के सिद्धान्तो के अनुसार जिन कलाकृतियो की रचना हुई थी उन्हे भी नष्ट कर दिया। इस सकटपूर्ण युग का आरम्भ लियो तृतीय के समय मे हुआ जब ७२६ ई मे उसने कुस्तुन्तुनियाँ के राजकीय प्रासाद के कास्य द्वार पर स्थित ईसा की प्रतिमा को नष्ट करके उसके स्थान पर क्रास खडा कर दिया था। इस क्रास के नीचे लिखा था कि सम्राट ईसा को ऐसी प्रतिमा मे अकित देखना नही सहन कर सका जो न बोल सकती हो न साँस ले सकती हो। अत उसने इस प्रतिमा के स्थान पर क्रास का चिन्ह अकित करना ही श्रेयस्कर समझा। इसी समय चर्च मे आकृति के विरोधियो तथा समर्थको मे सघर्ष आरम्भ हो गया। यहूदियो तथा मुसलमानो के प्रभाव के कारण ईसाई धर्म की आकृतियो का चित्रण मूर्तिपूजा की प्रवृत्ति के भय से छोड़ दिया गया। भवनो मे सुन्दर नक्काशी का कार्य किया गया। याजिद द्वितीय ने बहुत बडी सख्या मे ईसाई चित्रो तथा मूर्तियो को नष्ट कराया। यह परिस्थिति लगभग एक सौ वर्ष से अधिक तक रही और यही कारण है कि ६वी शती से पूर्व की ईसाई कलाकृतियाँ दुर्लभ हैं। ८४३ ई मे मूर्ति-विरोधी सम्राट थियोफाइलस की पत्नी थियो-डोरा ने अपने पुत्र और साम्राज्य के उत्तराधिकारी माइकेल तृतीय की सरक्षिका के रूप मे आकृति रचना को फिर से वैध घोषित कर दिया और राजभवन के द्वार पर से क्रास हटा कर ईसा की प्रतिमा को पुन स्थापित कर दिया। इस प्रकार आकृति-विरोध जिस स्थान से आरम्भ हुआ था वही उसकी समाप्ति भी हुई। धीरे-धीरे पूजागृहो मे भी आकृति-चित्रण पुन प्रारम्भ हुआ।

इस युग के पश्चात् ईसाई कला मे दो प्रकार की आकृतियाँ चित्रित हुई। प्रथम प्रकार मे सम्राटो को ईश्वर से सीधी वश-परम्परा मे दिखाया जाने लगा और दूसरे प्रकार मे धार्मिक चित्र पुरानी पद्धतियो पर ही बनने आरम्भ हुए।

पश्चिमी देशो मे भी ईसाई कला का स्वरूप पूर्वी देशो की भाँति रहा है। तीसरी शती के अन्त तथा चतुर्थ शती के सम्पूर्ण विस्तार मे जिन भवनों और कलाकृतियो की रचना हुई उनमे पूर्वी बिजेण्टाइन कला से बहुत अधिक अन्तर नही है क्योकि सभी स्थानो की कलाकृतियो की रचना कुछ सार्वभौमिक तथा सुनिश्चित सिद्धान्तो के आधार पर की गयी है। प्राय रोमन पद्धति की कला पर सीरियन प्रभाव देखे जा सकते हैं जो वस्त्रो तथा अलकरणो आदि के आलेखनो और अभिप्रायो मे स्पष्ट है। पश्चिमी जगत में निरन्तर युद्धो और आक्रमणो की

परिस्थिति के कारण वहाँ की कला में अधिक रूढिवादिता आ गयी है। पाँचवी तथा छठी शताब्दियो मे बर्बरो ने रैवेन्ना आदि के अनुकरण पर विशाल तथा अलकृत चर्चो का निर्माण कराया। तूलूज, पेरिस, लोम्बार्डी क्षेत्र, जर्मनी, स्पेन एवं अफ्रीका आदि मे रोमन परम्पराओ की कला कृतियो का निरन्तर निर्माण होता रहा। प्राय: अप्रतिनिधानक आलंकारिक, ज्यामितीय एवं अत्यधिक कलात्मक आलेखनो का ही आधिक्य है जो रेखात्मक अधिक हैं। कही-कही फूल-पत्तियो आदि की आकृतियाँ पहचानी जा सकती हैं। किन्तु इसमे किसी प्रकार की यथार्थ-वादिता नही है। प्रत्येक अलकरण रेखाओ की सूक्ष्म लय से बँधा हुआ है। यह कला कास्य-पात्रो तथा पुस्तक चित्रो पर ही अधिक व्यवहृत हुई है। पेरीनीज क्षेत्र में सगमरमर के अलकरणो मे कोरिन्थियन एकेन्थस बेल की प्रेरणा है।

सातवी शती मे ब्रिटिश द्वीप समूहो से कला की एक नई विधा का आरम्भ हुआ। इसका पूर्ण विकास पुस्तको के अलकरण मे हुआ। इसका उद्भव आइरिश है। इसमे अरूपात्मक तथा ज्यामितीय आकृतियो का समन्वय हुआ है। इसकी अरूपात्मकता और सूक्ष्म ज्यामितीयता ही सम्पूर्ण चित्र पर छायी रहती है। प्राय. सीधी रेखाओ का अभाव और फीतो के समान अलंकरण इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। किसी लेख अथवा कविता अथवा धार्मिक सवाद के प्रारम्भिक अक्षर को बहुत अलकृत बनाकर लिखना इस कला का प्रधान साध्य रहा है। कभी-कभी यह अक्षर सम्पूर्ण पृष्ठ को घेर लेता है। रग बहुत चमकदार हैं।

कैरोलिजियन पुनरुत्थान—सम्राट चार्लमेन ने ७८६ ई० मे रैवेन्ना तथा ८०० ई० में रोम का भ्रमण किया और अन्त मे आशेन को अपनी राजधानी बनाया। उसने एलक्युइन (Alcuin) नामक विद्वान को कलाओ के पुनरुत्थान का कार्य सौंपा जिसने विभिन्न कला-सम्प्रदायो, एकेडमी, तथा पुस्तक-चित्रण को एक नई दिशा प्रदान की। उसने पुस्तक-चित्रण की आइरिश विधि को जीवित ही नही रखा बल्कि आगे भी बढाया। सम्राट चार्लमेन के दरबार मे अनेक देशो और जातियो के कलाकार थे जिन्होंने कला की एक समन्वयात्मक शैली का विकास किया। इस समय तक निर्मित भवनो के मणिकुट्टिम तथा भित्ति-चित्रों मे से अधिकाश नष्ट हो चुके हैं। इनमें स्थानीय परम्पराओ का आधिपत्य था। उदाहरणार्थ इटली मे रोमन परम्पराएँ थी जिनमे दृश्यो मे गतिमत्ता, भीडभाड़ तथा सयोजनो की जटिलता आदि का समावेश था जिसके कारण ऐसे चित्र बहुत लोकप्रिय माने जाते थे। आकृतियों का भार और उभार समाप्त हो गया था किन्तु मुखाकृतियाँ व्यजनापूर्ण बनती थीं। समस्त धार्मिक कला मे छठी से आठवी शती तक रोमन प्रभाव इसी प्रकार उपलब्ध हैं।

नवी शती मे बिजेण्टाइन प्रभाव युक्त अनेक चित्र निर्मित हुए है। लोम्बार्डी के चित्र इसके उदाहरण हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कैरोलिजियन पुनरुत्थान के समय निर्मित कलाकृतियो मे भी विविधता रही है। जर्मनी तथा स्पेन के पादरी आकृति-चित्रण के विरुद्ध थे अत. वहा प्राय: ज्यामितीय अलकरण की ही प्रधानता रही। भित्ति-अलकरण मे उभरे हुए रोमन पद्धति के नक्काशी के काम का भी उपयोग रहा है। अन्य स्थानो की मणि-कुट्टिम कला मे मानवाकृति का चित्रण होता रहा। इस्लामी प्रभाव से खजूर की पत्तियो तथा पुष्पो आदि से युक्त आलेखनो का भी अंकन हुआ। पंखयुक्त फरिश्ते भी चित्रित हुए। धार्मिक अधिकारियो (पोप तथा बिशप) आदि को चौकियो पर खडे हुए अंकित किया गया। इस प्रकार इस युग मे कैरोलिजियन पुस्तक-चित्रण के साथ-साथ भित्ति-चित्रण और मणिकुट्टिम मे रोमन आदि पश्चिमी तथा बिजेण्टाइन एव फारसी आदि पूर्वी प्रभावो का सम्मिश्रण चलता रहा।

ये सभी प्रभाव अबाध रूप मे रोमनस्क कला मे भी चलते रहे तथापि रोमनस्क शैली की सशक्त व्यजना-पद्धति ने इन सबके समन्वय से एक सुसम्बद्ध कला-शैली का विकास किया।

लघुचित्र एव पुस्तक चित्र—भित्ति तथा मणिकुट्टिम चित्रकारो ने जहाँ पश्चिमी पद्धति को प्रमुखता दी वहाँ पुस्तक चित्रकारो ने आठवी शती से ही आयरलैण्ड की कला से प्रभावित होना आरम्भ कर दिया था। इस

पद्धति मे मानवकृतियाँ गौण हो गयी और घुमावदार रेखाओ की आलकारिकता महत्वपूर्ण हो गयी । इ जील के पात्रों को लहराते हुए फीतो के समान सजावट के मध्य अ कित किया गया है। कही-कही पशुओ की आकृतियाँ भी चित्रित हैं। इनकी रचना भी बहुत अलकृत है। चार्लमेन के दरबार मे विभिन्न क्षेत्रो तथा देशो के कलाकार थे उन सबने इस शैली में कुछ न कुछ निजी विशेषताएँ भी सुरक्षित रखी। कुछ पुस्तके गैंगनी र ग के चमडे पर चित्रित हैं। इनमे ईसा तथा ईवाजलिस्ट सन्तो को शाही शान-शौकत के साथ दिखाया गया है और र गो मे विविधता है। अनेक राजकीय पुरुषो के व्यक्ति चित्र तथा दरबारी दृश्यो के भी चित्र अ कित हैं जिनमें प्राचीन शास्त्रीय कला का प्रभाव है। यूट्रेक्ट साल्टर (Utrecht Psalter) की आकृतियाँ बहुत यथार्थवादी हैं और उन्हें पर्वतो अथवा काल्पनिक भवनो की पृष्ठभूमि मे चित्रित किया गया है। रूपकाकृतियाँ भी चित्रित की गयी हैं। कही-कहीं प्राचीन ईसाई ग्र थो की आकृतियो का भी प्रभाव है।

बिजेण्टाइन कला का प्रसार—

नवी शती मे प्रतिमा विरोधी अभियान की समाप्ति पर पूर्वी देशो मे कला का पुन उत्थान होना आरम्भ हुआ। बिजेण्टियम की शक्ति भी बढ गयी जो ग्यारहवी शती तक अक्षुण्ण रही। इस समय कला की भी उन्नति हुई। ईसाई धर्म का प्रभाव अनेक देशो मे फैला और जहाँ अरबो अथवा अन्य जातियो एव धर्मो का प्रभाव था वहाँ भी ईसाई धर्म से सम्बन्धित चर्चो का निर्माण हुआ। प्राय. पश्चिमी पद्धति के भवनो मे बिजेण्टाइन शैली के मणिकुट्टिम चित्रो की रचना यूनानी कलाकारो ने की।

इस प्रक्रिया का आरम्भ कुस्तुन्तुनिया के हेगिया सोफिया नामक चर्च से हुआ। राजाओ, धर्म के स रक्षको तथा सन्तो आदि के चित्र राजसी ठाठ बाट सहित अ कित किये गये। अनेक राजकीय व्यक्ति-चित्रो की भी रचना हुई। इस समय के पुस्तक चित्रो मे भी ये ही विशेषताएँ उपलब्ध हैं। इनमे राजसी प्रभाव की प्रमुखता, आकृतियो मे कुछ जडता और ईसाई धार्मिक भावना की कमी है। राजसी भव्यता के कारण इस समय की कला को मकदूनिया के पुनरुत्थान की कला कहा जाता है क्योकि ईसाई धर्म के सरक्षक अधिकाश सम्राट मकदूनियाई ही थे।

यूनान—इस समय की यूनानी कला पर भी मकदूनियाई पुनरुत्थान का प्रभाव दिखाई दे जाता है। इनका सबसे अच्छा उदाहरण एथेन्स के मार्ग मे निर्मित डेफनी के मठ की आकृतियाँ हैं। इन पर दरबारी कला का प्रभाव बहुत कम है और ये आरम्भिक बिजेण्टाइन शैली से प्रेरित है। यूनानी मणिकुट्टिम चित्रो मे ईसा की भव्य आकृति को अनेक सन्तो तथा देवदूतों सहित अ कित किया गया है। गुम्बद के मध्य प्राय ईसा अथवा कुमारी को भव्यता से चित्रित किया गया है तथा आलो मे ईसा के जन्म से लेकर पुन जीवित होने तक की अनेक घटनाओ और ऐतिहासिक दृश्यो का अ कन हुआ है।

दिव्य सन्देश (gospel) दृश्यो मे ईसा की भव्यता और भी बढ गयी है। आकृति मे दृढता और स्थिरता है। न्या मोनी के मठ मे अ कित कुमारी के लाल पलक और हरी छाया दृष्टव्य हैं। कुमारी ने अपना कपोल ईसा की हथेली पर रख दिया है जो सूली से उतारे गये हैं। चित्र सयोजन मे समता नही है अत अवसाद के भाव मे वृद्धि होती है। ईसा तथा सन्त जोन की आकृतियाँ मनोविकार रहित हैं जो धार्मिक उच्चता की परिचायक हैं।

डेफनी की आकृतियाँ बहुत अच्छी हैं। मणिकुट्टिम का कार्य बहुत चमकदार है यद्यपि र ग शीतल तथा भूरे हैं। विषयो एव सयोजनो मे गम्भीरता है। कही-कही ईसा की आकृति अन्य आकृतियो की तुलना मे बहुत लम्बी बनाई गई है। कुछ पात्रो की शरीर-रचना मे ग्रीक मूर्तियो जैसी स्थिरता एव गठन है। मुखाकृतियाँ सुन्दर है, वेश-भूषा तथा भाव सयत हैं, टेकनीक त्रुटि-रहित है और कुल मिलाकर डेफनी की कला किसी सुप्रतिष्ठित सभ्यता का सकेत देती है।[1] डेफनी के धार्मिक अथवा राजकीय, सभी स्मारक भव्यता, चयन एव महत्ता के उदाहरण हैं।

1 "At Daphni, Byzantine art is revealed as the expression of an accomplished civilisation" —Jean Lassus, The Early Christian and Byzantine world, P 131.

प्राय: दरबारी प्रभाव सुदूर स्थानो की कला तक मे मिल जाता है। इस समय की पेरिस साल्टर, वेनिस साल्टर तथा होमिलीज आफ ज्यार्जी नाजियान्जुस आदि पुस्तको के चित्रो मे भी ये ही विशेषताएं हैं। रात्रि अथवा नदी की मानवीकृत आकृतियो आदि मे शास्त्रीय यूनानी कला का प्रभाव भी है।

तुर्की—तुर्की के चट्टानी क्षेत्र मे एक बिल्कुल ही नयी शैली के ईसाई पूजागृहो का निर्माण हुआ। प्राय: चट्टानो को शकु के आकार के भवनो का स्वरूप देकर उनमे बडे-बडे कक्ष बनाये गये और फिर उनकी दीवारो, गुम्बदो तथा पाटनो (महराबो) को चित्रित किया गया। इन्हें कैप्पाडोसिया के पूजागृहो की कला कहा जाता है। यहाँ कुछ दीवारो पर केवल सूक्ष्म अभिप्राय अ कित हैं, जैसे ज्यामितीय अलकरण अथवा पत्रावली के समान बेलें। इनका सम्बन्ध आकृति-विरोधी युग से माना जाता है। सम्भवत मकदूनियाई युग से यहाँ पुन. रूप-चित्रण आरम्भ हुआ जो दसवी से तेरहवी शती तक विस्तृत रहा है। ग्यारहवी शती मे विजेण्टाइन प्रभाव प्रमुख रहा। बारहवी शती मे कलाकृतियो की सख्या कम होने लगी किन्तु तेरहवी शती मे पुन अनेक भव्य चित्रो की रचना हुई। इन सभी चित्रो मे कुस्तुन्तुनिया की आकृतियो का प्रभाव है। रगो की तडक-भडक, ओजपूर्ण आकृतियो तथा शीघ्र रचना के कारण स्थानीय शैली का भी सकेत मिलता है। आकृतियाँ सामान्यत: बहुत लम्बी हैं और चित्र के प्राय समस्त धरातल पर छायी रहती हैं। रिक्त स्थानो में स्थापत्य का अ कन रहता है। परिष्कार, छाया-प्रकाश के कोमल प्रभावो अथवा अभिव्यक्ति की मौलिकता का कोई विचार नही किया गया है। कही-कही तो इनमें बचकानापन भी है। प्राय देवदूतो के साथ ईसा, सन्तो, कुमारी आदि के चित्र गुम्बदो में एव दीवारो पर अकित हैं तथा पट्टियो अथवा बार्डरो आदि मे ईसा, सन्तो अथवा कुमारी के सम्पूर्ण जीवन-वृत्त का अकन किया गया है। सरक्षको, सन्तो, बिशपो, पैगम्बरो अथवा देवदूतो आदि के चित्र भी स्थान-स्थान पर चित्रित हैं। धर्म पर बलिदान होने वाले शहीदो को भी चित्रित किया गया है।

यहाँ की कला की सबसे बडी विशेषता आलेखनो का स्थान-स्थान पर समावेश, भवनो मे विभिन्न प्रकार के अलकरण, अनेक चित्रो के निरन्तर बने पेनल तथा प्रत्येक चित्र मे आकृतियो का जमघट है जिससे दर्शक प्रभावित हुये बिना नही रहता।

इटली—यहाँ का शासन शक्तिशाली होते हुए भी विजेण्टियम से सदैव शकित रहता था और उससे इसने संधि करना ही उचित समझा था। इस प्रकार इटली में विजेण्टाइन कला शैली को प्रचार का अवसर मिल गया। वेनिस का सेण्ट मारको नामक चर्च इस समय का प्रसिद्ध धार्मिक एव कलापूर्ण स्थल है। इस भवन की रूप-रेखा सम्राट जस्टीनियन द्वारा पुन' निर्मित कुस्तुन्तुनिया के "चर्च आफ द होली एपोसिल्स" से प्रेरित है। इसमें बड़े सुन्दर मणिकुट्टिम चित्र अकित है। इनकी पृष्ठ-भूमि सुनहरी है किन्तु शैली स्पष्टत: भिन्न है जिससे यह सकेत मिलता है कि वेनिस मे मणि-कुट्टिम चित्रण शैली का एक पृथक् सम्प्रदाय था। कुछ चित्र सरल और महान् हैं, कुछ अन्य चित्रो मे शक्ति और गति है। टोरसेल्लो नामक स्थान पर अकित एक गुम्बद के मध्य नीले वस्त्र पहने तथा गोद मे शिशु ईसा को लिये हुये कुमारी की एक आकर्षक आकृति अकित है। इसे टोरसेल्लो की कुमारी (Virgin of Torcello) कहा जाता है। यहाँ की दीवारो तथा पेनलो मे अन्तिम न्याय, ईसा का पुन. जीवित होना, ईसा का सूली से उतरना, सन्तो तथा अनुयायियो के मध्य सिंहासनासीन ईसा तथा देवदूतो आदि के भी अनेक चित्र हैं।

सिसली—ग्यारहवी शती मे सिसली पर इटली का अधिकार हो गया। यहाँ की कला मे पश्चिमी, विजेण्टाइन तथा इस्लामी देशों की कला का समन्वय हुआ। अरब कला से पर्याप्त प्रेरणा ली गयी और वृक्षो के मध्य पशुओ तथा आखेट के दृश्यो का अकन किया गया। इसी प्रकार के कुछ सासानी प्रभाव जस्टीनियन के समय कुस्तुन्तुनिया की कला मे भी आ चुके थे। वस्त्रो तथा अलकरणों पर बहुत अधिक फारसी प्रभाव है।

विजेण्टाइन कला शैली का प्रभाव स्लावी देशो, सर्बिया, रूस तथा बल्गारिया आदि मे भी पहुँचा और वहाँ भी अनेक सुन्दर मणिकुट्टिम एव भित्ति-चित्र अंकित किये गये। तथापि इन देशो की कला मे सरलता और परम्परा

का अनुकरण पर्याप्त है। प्राय सभी स्थानो पर सरल, रूढ तथा निश्चित मुद्राओ एव स्थितियो मे धार्मिक आकृतियो तथा घटनाओ का अकन होता रहा है ।

क्रीटन-बिजेण्टाइन चित्रकला—

ईसाई उपासना के हेतु धार्मिक आकृतियाँ निर्मित करने वाले १५वी से १८वी शती तक के पश्चिमी एजियन, आयोनियन तथा क्रीट नामक यूनानी द्वीपो के समस्त कलाकारो को क्रीटन-बिजेण्टाइन नाम दिया गया है। यूनान की मुख्य-भूमि, एड्रियाटिक सागरतट तथा बालकन-प्रदेश मे भी इसी शैली मे कार्य होता था। इस शैली की प्रधान विशेषता इसका बिजेण्टाइन कला द्वारा प्रेरित होना है।

इस कला का स्वरूप समझने के हेतु बिजेण्टाइन कला के अन्तिम चरण को देखना होगा। इस युग की कला अब तक बहुत कम समझी गयी है। अब यह सिद्धान्त प्रायः अस्वीकार कर दिया गया है कि परवर्ती बिजेण्टाइन कला अपनी पूर्ववर्ती उन्नत शैली का पतित स्वरूप थी। अब यह माना जाता है कि १३वी तथा १४वी शती मे इस का पुनरुत्थान हुआ था। पुनरुत्थान के मूल स्रोत के विषय मे विद्वान एकमत नही है । ११३० ई० के लगभग बिजेण्टाइन क्षेत्र मे ही "आवर लेडी ऑफ व्लादिमीर" की रचना हुई थी जिसमे कोमलता की मानवीय अनुभूति को बडी गहराई के साथ प्रस्तुत किया गया है। ११६४ ई० मे युगोस्लाविया मे भी लगभग इसी प्रकार की अनुभूति व्यञ्जित करने वाली आकृतियाँ निर्मित हुई । १२०० ई० के पूर्व ही इस प्रकार की मानवीय भावना युक्त अनेक चित्रो की रचना विभिन्न स्थानो पर हो चुकी थी और तेरहवी शती के आरम्भ होते ही ऐसी कलाकृतियाँ व्यापक रूप मे बनने लगी। इटली की परस्थिति इससे कुछ भिन्न थी। वहाँ १३वी शती के उत्तरार्ध मे केवेलिनी, दूशियो, सिमाबुए तथा जियोत्तो के पदार्पण के पूर्व प्राचीन पद्धति पर रूढ आकृतियो का अकन होता रहा। इस प्रकार इतना तो निस्सन्देह सिद्ध हो जाता है कि यह पुनरुत्थान आन्तरिक प्रेरणा से बिजेण्टाइन प्रभाव क्षेत्र मे ही आरम्भ हुआ था, किसी बाहरी प्रेरणा से नही ।

इस प्रकार नये विचारो का प्रधान केन्द्र कुस्तुन्तुनिया मे ही माना जाता है। १२०४ ई मे लातीनी क्षेत्र को जीत लेने मे ये विचार तथा शैली बाहर फैलने आरम्भ हुए। अनेक नवीन प्रासादो का निर्माण आरम्भ हुआ। चौदहवी शती तक आते-आते इस की शैली अपने प्रेरणा केन्द्र की शैली से पृथक् दिखायी देने लगी। इसके अनेक सूक्ष्म वर्ग सम्भव हैं किन्तु अब तक प्रायः तीन प्रधान सम्प्रदाय पहचाने जा सके हैं।

प्रथम सम्प्रदाय कोरा द्वितीय के चर्च की कला से सम्बन्धित है। कुस्तुन्तुनिया से यह सम्पृक्त था । शानदार मुद्राएँ, परिष्कृत रुचि, सूक्ष्म एव कोमल वर्ण-विधान तथा सम्पूर्ण-अलकृत पृष्ठ-भूमि इस शैली की विशेषताएँ हैं। दूसरा सम्प्रदाय मकदूनिया के सैलोनिका नामक स्थान पर था। अपेक्षाकृत अधिक नाटकीयता, आकृतियो मे अत्य-धिक उत्साह, आकृति वैविध्य, भावुकता, गहरे तथा भारी रंग तथा आलकारिकता के स्थान पर व्यजनात्मकता का महत्त्व इस शैली की विशेषताए हैं। तीसरी शैली के दर्शन युगोस्लाविया के सरबिया नामक स्थान के चित्रो मे होते हैं। यहाँ के संयोजन खूब भरे हुए हैं बल्कि कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक भीड-भाड, अनेक नये विषयो तथा विचारो का समावेश किया गया है, रङ्गो के कुछ नवीन बल बनाये गये हैं, शैली मे मकदूनिया की तुलना मे अधिक प्रेरणापूर्ण सामञ्जस्य है तथा कुस्तुन्तुनिया की अपेक्षा कम आलकारिकता है।

सरबियन स्कूल केवल स्थानीय रूप मे ही कार्यरत रहा। मकदूनिया की शैली का प्रभाव १४ वी शती मे दक्षिण यूनान तथा क्रीट की कला पर पडा। यूनान की मुख्य भूमि, एथोस पर्वत, पश्चिमी द्वीपो तथा क्रीट मे इस समय कला शैली का जो समान स्वरूप विकसित हुआ वह सोलहवी शती तक परिव्याप्त दिखाई देता है। इसके पश्चात् कुस्तुन्तुनिया तथा मकदूनिया के अतिरिक्त अन्य प्रभाव भी—जैसे कि प्राचीन यूनानी घट-शैली तथा लघु एशिया (asia minor) की कला आदि—यहाँ आने लगे।

१५वी तथा १६वी शती के ईसाई धार्मिक आकृतियाँ चित्रित करने वाले कलाकार क्रीट तथा मकदूनिया दोनों स्थानो से ही प्रभावित थे, यह सकेत किया जा चुका है। जब उनकी कला में क्रीट का प्रभाव अधिक होता तो वे चमकदार, आलंकारिक, परिष्कृत एव अधिक अमूर्त चित्रण करते थे किन्तु जब मकदूनिया की ओर उन्मुख होते तो वे विविध विषयो, तेज वर्णिका एव व्यजनात्मकता को अधिक महत्व देते थे। कलाकार चाहे किसी स्थान के हो, उनकी कला मे ये दोनो प्रभाव देखने को मिल जाते है।

इन शैलियो के कलाकार परस्पर प्रभावित होते हुए वेनिस की ओर उन्मुख हुए फलत उनकी कला मे इटली के तत्वो का समावेश आरम्भ हुआ। इसी कला को कला-विदो ने "इटैलो-ग्रीक" अथवा "इटैलो क्रीटन" कहा है।

इन दोनो शैलियो मे बनी आकृतियो को पहचानना सरल नही है क्योकि ये परस्पर प्रभावित भी रही है, इसी से कलाविद इन दोनो मे कोई स्पष्ट रेखा नही खीच पाये हैं। वर्तमान उपलब्ध सामग्री के आधार पर इसके क्षेत्रीय भेद निम्नाकित रूप में माने जाते हैं—

मकदूनिया की शैली के आरम्भिक उदाहरण सर्वोत्तम रूप मे सेलकिया स्थित "द चर्च आफ होली एपोसिल्स" (The church of holy apostles) के मणिकुट्टिम (Mosaics) चित्रो मे मिलते है। ईसा के जन्म (The Nativity) नामक चित्र मे गडरियो की नाटकीय मुद्राएँ दर्शनीय हैं। मकदूनिया के ही उहरीद तथा अन्य स्थानो के पूजागृहों की आरम्भिक चौदहवी शती की मिहैलो तथा यूतिहिजे नामक कलाकारों की कला अपने ढग की अनोखी है। एथेन्स की १६वी शती की दिव्य-परिवर्तन (The Transfiguration) नामक आकृति मे धर्म-दूतो की कोणात्मक-व्यजनात्मक मुद्राएँ और अग्रभूमि मे अकित सन्तो के भाव दर्शनीय है।

क्रीटन शैली के उदाहरण अनेक चित्राकृतियो मे उपलब्ध हैं। एथेन्स के बिजेण्टाइन सग्रहालय मे ईसा की सूली (Crucifixion) का चौदहवी शती का एक पैनल चित्र इस शैली का आरम्भिक स्वरूप प्रदर्शित करता है। इस समय यह कुस्तुन्तुनिया की कला के बहुत अधिक निकट थी। लम्बी आकृतियाँ, सयम और लयपूर्ण सयोजन इसकी विशेषताएँ है। अधिकाश पृष्ठ-भूमि सुनहरी सपाट रंग से चित्रित है और नीचे छोटी-छोटी अट्टालिकाएँ आदि सुन्दर दृश्य के रूप मे बनाई गयी है। चमकदार लाल, नीले, गुलाबी तथा हरे रगो की प्रफुल्लता पूर्ण योजना इस सम्प्रदाय की विशेषता है। आगे चलकर इस शैली मे सूक्ष्म विवरण भी अकित किये जाने लगे। अति प्रकाश (High lights) अधिक स्पष्टता मे प्रदर्शित हुआ और सयोजन अधिकाधिक लयपूर्ण होते गये। ये सभी तत्व सोलहवी शती की कला मे स्पष्ट देखे जा सकते है। एथेन्स मे सुरक्षित देवदूतो की सभा (The Assembly of Angels) नामक चित्र इसका प्रमाण है। इसमे अति-प्रकाश कही-कही ऐसा है मानो ऊपर से हल्का सपाट रग लगा दिया गया हो। कही-कही यह पतली समान्तर रेखाओ के रूप मे भी मिलता है। माइकेल डैमास्केनास (Michael Damaskenos) नामक कलाकार मे यह प्रवृत्ति बहुत अधिक रही है।

सोलहवी शती के उपरान्त इस शैली पर पश्चिमी प्रभाव बहुत अधिक पडने लगा, अत इसे "इटैलो-ग्रीक" कहा गया है। कुछ चित्रो मे आकृतियाँ तो पूर्ववत् निश्चित प्रतिमाओ (icons) के ढग की हैं किन्तु उनके आल-कारिक विवरण पश्चिमी ढग से अकित किये गये हैं। इनमे ग्रीक तत्व प्रबल है। सोलहवी शती के अन्त तथा सत्रहवी शती के अनेक कलाकार इस शैली मे कार्य कर रहे थे जिनमे मेनुएल जानफर्नरी (Manuel Zanfurnari), एलियास मास्कस (Elias Moschos) तथा त्साने (Tsane) आदि उल्लेखनीय हैं।

कलाकारों का एक तीसरा वर्ग इटली के तत्वो को प्रमुख रूप मे तथा ग्रीक तत्वो को गौण रूप मे अपनाए हुए था। सम्भवत ये इटली के कलाकार थे। पिएटा, सन्त जैरोम, जोन बैप्टिस्ट, एण्ड्रू तथा आगस्टाइन के साथ माँ और शिशु आदि चित्र इस शैली मे बने हैं। इन चित्रो मे प्रतिमाविधान एव दृश्य योजना तो पश्चिमी है

किन्तु खुला सुनहरी आकाश एव सन्तो की मुखाकृतियो की कठोरता और हल्का अति प्रकाश बिजेण्टाइन परम्परा मे है। वेनिस तथा एड्रियाटिक प्रदेश के अनेक चित्र इसी तकनीक तथा ऐसे ही विषयो को प्रस्तुत करते हैं।

इस शैली का एक और वर्गीकरण भी टेक्नीक की दृष्टि से किया जा सकता है। इनमे प्राय मैडोन्ना को चित्रित किया गया है। इनमे आभामण्डल तथा परिधान या तो उत्कीर्ण हुए हैं या बहुत अधिक सुवर्णमय हैं। सुवर्ण के ये अलकरण प्राय चौडे तथा बडे हैं तथा वस्त्रो के अतिरिक्त पृष्ठभूमि मे भी अकित हैं। प्राय. वानस्पितक आलकारिक रूपो का ही अकन हुआ है। ये चित्र सम्भवत' वेनिस तथा पश्चिमी यूनानी द्वीपो मे बनाये गये है जिनमे इटली की प्रेरणा रही होगी। इनका छोटा आकार यह सकेत करता है कि सम्भवत इनका प्रयोग घरो मे होता होगा, चर्च मे नही।

इस शैली के लगभग २५० चित्रकारो की कृतियाँ उपलब्ध हैं किन्तु अभी उनका विस्तृत वर्गीकरण एव अध्ययन नही हो पाया है। पन्द्रहवी शती से ये कलाकार अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को भी प्रदर्शित करने लगे थे फिर भी इनमे से कोई महान चित्रकार नहीं बन सका।

मध्य युग की कला

रोमनस्क शैली

इटली में पन्द्रहवी शती मे रिनेसा (पुनरुत्थान) का आरम्भ माना जाता है पर वास्तव मे फ्रांस में ग्यारहवी शती मे ही रिनेसाँ का आरम्भ हो गया था। छठी से दसवी शती तक पश्चिमी शैली नाम की कोई चीज नही थी। प्राचीन और नष्ट सभ्यता का आधार लेकर ईसाई धर्म की शिक्षा से बर्बर लोगो ने अपने जातिगत अलकरणो के योग से ही बिजेण्टाइन कला का निर्माण किया था पर वे शैली के तत्व को न समझ सके। ११ वी शती मे सहसा परिवर्तन हुआ। भवनो मे एकता और व्यवस्था आयी। भवनो के प्रमुख स्थानो मे अलंकरण हुए और रिलीफ का काम पुन आरम्भ हुआ। प्रकृति का विश्लेषण करके नियम बनाये गये। प्राय प्राचीन पैगन मिथक, ईसाई दृश्यो, यूनानी कथानको आदि के साथ बर्बरो के अलकरणो, बिजेण्टाइन, सासानी, असुर तथा सुमेरियन पशु आकृतियो एव प्रतीको का भी प्रयोग हुआ। इस प्रकार पूर्व और पश्चिम, पुरातन और नवीन का समन्वय हुआ।

वास्तुकला की शैली मे रोमन प्रवृत्तियो के स्थान पर नवीन प्रयोग किये गये जिनसे गोथिक शैली का विकास हुआ। दोनो के मध्य के सक्रमण काल की कला, जिसमे गोल मेहरावो का प्रयोग रोमन स्थापत्य की भाँति ही हुआ था, रोमनस्क शैली कहा जाता है। इस शैली के भवनो के निर्माण के साथ-साथ इस युग मे जो चित्र-शैली प्रचलित हुई उसे रोमनस्क चित्रशैली कहा जाता है। रोमनस्क कला प्रधानत ११वी तथा १२वी शती में फली-फूली किन्तु कुछ क्षेत्रो मे यह तेरहवी शती मे भी चलती रही। यह कला प्रायः किसी अनिवार्य उपयोग को ध्यान मे रख कर विकसित की गयी थी। यह प्रवृत्ति आगे चलकर गोथिक कला मे और भी बलवती हो गयी। इस कला का स्वरूप बहुत अधिक विभिन्नताएँ लिये हुए है। प्रत्येक क्षेत्र मे स्थानीय अभिप्रायो के समावेश से इसमे पर्याप्त समृद्धि भी हुई है।

दसवी शती के अन्त में जब नार्मन तथा मैग्यार आक्रान्ताओ के आक्रमण बन्द हो गये तो समस्त यूरोप मे कलाओ का पुनरुत्थान आरम्भ हुआ। शान्ति और समृद्धि के इस युग मे धर्म का प्रभाव बढ़ा और इटली, फ्रास, फ्लाण्डर्स आदि देशो में अनेक नवीन भवनो, मुख्यत. गिर्जाघरो का निर्माण हुआ। इन्हे विशाल प्रतिमाओ तथा चित्रो से अलंकृत किया गया। इस कला मे रोमन, कैरोलिजियन तथा ओटोनियन पृष्ठभूमि के साथ पूर्वी, ग्राम्य एव मुस्लिम प्रभाव भी पडे। रोमनस्क कला धार्मिक, सैद्धान्तिक एव नैतिक शिक्षाओ से युक्त है। इसमें प्रस्तुत दृश्यो मे प्रतीक अर्थ भी छिपा रहता है। प्राय. विचित्र प्रकार के रहस्यात्मक पशु, पक्षी एवं वनस्पतियो के प्रत्येक देश मे प्रचलित रूपो तथा अर्थो का समावेश करके इस कला को व्यापकता प्रदान की गयी है।

रोमनस्क प्रतिमाएँ भवनो की, अलकरण के साथ-साथ, अभिन्न अंग भी हैं। अनेक स्तम्भो आदि को प्रतिमाओं का बाहरी रूप दे कर उन्हे आकर्षण का केन्द्र बना दिया गया है। रोमनस्क प्रतिमाओं तथा चित्रो मे मानव का ईश्वर एव ईश्वरीय सृष्टि से जो सम्बन्ध दिखाया गया है उसे यूरोपीय प्राचीन परम्पराओं के आधार पर समझने की चेष्टा की गयी है।

भव्य कल्पना, साधनो की विविधता और अभिव्यजना की श्रेष्ठता इस कला की प्रमुख विशेषताएँ हैं। शक्ति और प्रभावशालिता होते हुए भी इसमे बहुत सरलता है। रहस्यो से परिपूर्ण इस कला का सृजन धार्मिक चिन्तन के लक्ष्य से हुआ है। इसकी चरम परिणति आगे चल कर गोथिक शैली मे हुई।

रोमनस्क कला के प्रमुख केन्द्र

फ्रांस—यहाँ के आरम्भिक रोमनस्क चित्र साधारण श्रेणी के हैं जिनकी रचना लगभग १००० ई. मे हुई थी। ऐलिस की चर्च की बारहद्वारी के जो चित्र अवशिष्ट हैं उनमे ईसा और कुमारी, सन्त जोन, कुछ अन्य भक्त-

गण तथा नीचे की पंक्ति मे मानवीय गुणो की चार प्रतीक आकृतिया आदि चित्र आयतो मे अंकित है। ग्यारहवीं शती की कोर्ट्रंट की चर्च मे भी मैमने की छवि से विभूषित एक पदक लिये दो देवदूत चित्रित हैं। सन्त जोन बैप्टिस्ट के चर्च मे मागी की वन्दना तथा ईसा की सूली का अंकन है। यहाँ ईसा मसीह के जीवन से सम्बन्धित अन्य दृश्य भी हैं। इनकी विशाल आखे तथा नीचे की बडी पलक मिस्री कोप्टिक कला का स्मरण कराती हैं।

ग्यारहवी शती के सर्वाधिक अवशिष्ट चित्र ली पाई कैथेड्रल (Le Puy Cathedral) मे हैं। यहाँ गैलरी की तीन दीवारो के चित्र बहुत अच्छी दशा मे है जिनमे एक चित्र सन्त माइकेल का है। मध्य युग मे चित्रित यह सबसे विशाल आकृति है। सन्त को बिजेण्टाइन धार्मिक परिधान पहनाये गये है जिन पर बहुमूल्य कशीदाकारी हो रही है। वे एक ड्रैगन को अपने भाले से मारते हुए चित्रित हैं। यहाँ एक मयूर तथा हरिणो का एक युग्म भी सुन्दरता से चित्रित हैं। दक्षिणी गैलरी मे पर्वतो पर प्रहार करते हुए मूसा की एक भव्य आकृति बनी थी जो नष्ट हो चुकी है। ईसा का यरूसलम मे पवेश तथा ईसा का अन्तिम भोजन नामक दृश्य भी किसी समय यहाँ चित्रित थे।

सन्त चेफ चर्च मे स्वर्ग के न्यायालय के चित्र अंकित है। सबसे ऊपर ईसा को अण्डाकार आभामण्डल के मध्य सिंहासनासीन दिखाया गया है। निकट ही देवदूतो से घिरी कुमारी है तथा यरुसलम का प्रतीक भवन के मध्य एक मेमना है। इसमे पुण्यात्मा श्वेत वस्त्र पहने प्रवेश कर रहे हैं। एक अन्य स्थान पर अश्वारूढ ईसा चार देवदूतो के मध्य दिखाये गये है। ये सभी चित्र आरम्भिक रोमनस्क शैली के उदाहरण हैं जिनमे प्राय लाल, पीले, भूरे, काले तथा श्वेत रंगो का प्रयोग है। कुछ समय पश्चात गहरे हरे रंग का प्रयोग भी आरम्भ हो गया था।

फ्रैंच रोमनस्क कला के सर्वश्रेष्ट उदाहरण पोइतू (Poitou) के एक चर्च मे सुरक्षित है। इस भवन के समस्त भाग सुन्दर चित्रो तथा आलेखनो द्वारा अलंकृत हैं। आरम्भिक फ्रैंच कला के इतिहास मे भी इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये चित्र आकार मे विशाल, रंग-योजनाओ मे समृद्ध, शैली मे परिपक्व तथा आकृति-विधान मे विविध हैं। यहाँ एक स्थान पर कुमारी मरियम अपने कपोल को अपने पुत्र ईसा की भुजा पर विश्राम देती हुई अत्यन्त मार्मिक रूप मे अंकित हैं। इस केन्द्रीय दृश्य के चारो ओर ईसा की सूली के पश्चात की घटनाएँ चित्रित हैं। इसी प्रकार के अन्य अनेक प्रसिद्ध एवं विशाल चित्र यहाँ अंकित हैं जिनके कारण इसे रोमनस्क कला का सिस्टाइन चैपिल कहा जाता है। सितारो की सृष्टि करते हुए ईश्वर, लावण्यमयी हव्वा, नूह का स्वागत करते हुए प्रभु, बाबुल की मीनार तथा इब्राहीम, यूसुफ एवं मूसा की जीवन-गाथाएँ भी यहाँ पर चित्रित है। इन भित्ति चित्रो पर बहुत विचार-विमर्श हो चुका है और यह कहा गया है कि प्राय एक ही पीढी तथा एक ही समुदाय के चित्रकारो ने इनकी रचना की है क्योकि रेखाकन एवं छाया-प्रकाश की पद्धति इस समस्त कार्य मे लगभग एक-समान ही है।

बारहवी शती के चित्र प्राय पश्चिमी एवं केन्द्रीय फ्रांस मे सुरक्षित हैं। एक स्थान पर एक अश्वारूढ ईसाई सम्राट (सम्भवत कोन्स्टेण्टाइन) का चित्र बना है। इसमे बैंगनी रंग बहुत अधिक प्रयुक्त हुआ है। यही साध्वी स्त्रियो के मध्य कुमारी मरियम, सन्तो के साथ सिंहासनासीन ईसा, देवदूतो के मध्य मेमना आदि का स्वर्ग के यरूसलम की पृष्ठभूमि मे अकन किया गया है।

ब्रिनाइ के चित्रो मे भावना की सुकुमारता तथा रंगो की कोमलता दर्शनीय है। ईसा के जन्म की खुशी में बासुरी बजाते चरवाहे, मिस्र को पलायन, ईसा को स्तनपान कराते हुए कुमारी, ईसा की ओर बढते देवदूत तथा एक प्रीतिभोज आदि के दृश्य अंकित हैं। गौथिक कला मे जो गम्भीरता थी उसके बीज यहाँ देखे जा सकते हैं। स्त्रियो के वक्षस्थल के परिधान मे समकेन्द्रिक वक्र रेखाओ से सिकुडने बनायी गयी हैं तथा अनेक स्थानो पर चमकदार श्वेत पृष्ठ भूमि मे चमकदार रंगो से आकृतियाँ अंकित हुई हैं। एक अन्य चर्च मे अश्वारोहियो के दल परस्पर युद्ध करते हुए दिखाये गये हैं। कलाविदो का विचार है कि यह ११६३ ई मे सुल्तान नूरुद्दीन की पराजय से सम्बन्धित दृश्य है। एक अन्य चर्च के अर्द्ध-गुम्बद मे सोलह आकृतियो से घिरे सिंहासनासीन ईसा

एवं खिड़कियो के नीचे सन्तों की आवक्ष आकृतियाँ अंकित हैं जो रानी थियोडोरा एव उसकी दासियो के बिजेण्टाइन चित्र-समूह का स्मरण कराती है। यहा यूनानी सन्तो की भी कुछ आकृतिया है। केटालोनिया के चर्च मे ईसा को चार देवदूतो से घिरा हुआ दिखाया गया है। एक देवदूत के हाथ मे एक पुस्तक तथा शेष तीनो के हाथो में एक-एक पशु का अग्रभाग है। ईसा की आकृति नीली पृष्ठभूमि मे है तथा चारो ओर की आकृतियाँ पीले तथा लाल रगो मे हैं। यह चित्र भडकीले कालीन जैसा प्रभाव उत्पन्न करता है। अन्य चित्रो मे प्राय: गहरे बादामी रंग का सामान्य वातावरण है, हरे रग के दो बल तथा पीले-नारंगी का भी प्रयोग है। वक्र रेखामय त्रिभुजो के रूप मे गहरे लाल रङ्ग का प्रयोग कपोलो के निम्न भाग मे किया गया है।

मूद मे जो चित्र उपलब्ध हुए हैं उनमे विविध कल्पना के दर्शन होते हैं। यहाँ मानवाकृतियाँ, पक्षी, वास्तविक तथा काल्पनिक पशु, वंशी, वर्ग, त्रिभुज, षट्भुज, मुडे हुये फीते तथा अर्द्धवृत्त आदि आलकारिक अभिप्राय बड़े ही विविध रूपो तथा रगो मे चित्रित किये गये हैं। प्राय सिन्दूरी, गुलाबी, अग्नि के समान चमकदार पीले, भूरे तथा बैंगनी रंगों का सुन्दर एव प्रभावशाली प्रयोग हुआ है। इस प्रकार बारहवी शती के चित्रो की रंग-योजनाएँ अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध हैं जिनमें मूल रंगो के विभिन्न गहरे तथा हल्के बलो का निर्माण करने के अतिरिक्त बैंगनी, हरे, तांबे जैसे पीले तथा नीले रंगो का भी प्रयोग हुआ।

इस युग मे गोल पदकों (Medallions) के मध्य विभिन्न पशुओ को चित्रित करने की भी प्रथा थी। ऐसे चित्रित पदक प्रायः सभी गिरजाघरो मे मिल जाते हैं। इनका धार्मिक महत्व था।

स्पेन—यहाँ चित्रककला के दो स्वरूप मिलते हैं-(१) भित्ति चित्रण एव (२) काष्ठ चित्रण। इनमे प्राय: सिंहासनासीन कुमारी, सन्तवर्ग, धार्मिक आचार्यो तथा ईश्वरीय दूतो का चित्रण किया गया है। स्वर्ग तथा नरक आदि के दृश्य भी हैं। स्थानीय पशु-पक्षियो एव वनस्पति का प्रयोग आलकारिक अभिप्रायो मे किया गया है।

स्पेन के भित्ति-चित्रण पर प्राचीन शास्त्रीय परम्पराओ का प्रभाव है। चित्रो मे आरम्भिक रग गीली फ्रेस्को पद्धति से भरे गये हैं तथा रेखाकन टेम्परा विधि से किया गया है। घनत्व एव गहनशीलता प्रदर्शित करने के हेतु आकृतियो मे श्वेत तथा काले रगो का प्रयोग किया गया है। प्राय खनिज रगो लाल, पीले, हरे तथा भूरे को ही श्वेत अथवा काले के साथ मिला कर प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं सुर्ख लाल, कृमिदाना नीला, तेज हरा तथा नारंगी-पीला आदि रंग भी प्रयुक्त हुए हैं।

बारहवी शती के प्रथम चरण में स्पेनिश भित्ति-चित्रण पर्याप्त उन्नत हुआ। इस समय बिजेण्टाइन परम्परा मे जो भित्ति-चित्र बने उनमे कुछ कठोरता, ज्यामितीयता और आलकारिकता आदि विशेषताएँ आ गयी हैं। प्राय. सीधी खडी आकृतियाँ सम्मुख मुद्राओं मे ही चित्रित की गयी है। कुछ चित्रो मे वर्णनात्मकता, प्रवाहमयी रेखा तथा विचित्र कल्पना का प्रयोग बडी जीवन्तता तथा स्वाभाविकता से हुआ है। स्पेन में बिजेण्टाइन परम्परा मे कार्य करने वाले केटालोनिया के तीन प्रसिद्ध चित्रकार थे—मास्टर आफ ताहूल, मास्टर आफ मेडरेली तथा मास्टर आफ पेडरेट। इनमें से प्रथम कलाकार को सम्पूर्ण रोमनस्क चित्रकला के प्रमुख चितेरो मे से एक माना जाता है। आकृतियो का सुस्पष्ट रेखाकन एव व्यजना-क्षमता इसकी प्रधान विशेषताएँ हैं। मास्टर आफ पेडरेट की रेखाएँ योजनाबद्ध हैं। उसने प्राय: सिंदूरी, कृमिदाना, भूरे, हरे तथा पीले रगो मे भड़कीली आकृतियाँ अकित की हैं।

बोही मे बने एक चित्र, जिसमे दानियाल की भविष्यवाणी तथा सन्त स्टीफेन को पत्थर मारने का दृश्य है, के कलाकार ने चित्रगत विस्तार एव प्रकाशीय प्रभावो को बडे अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है।

दूसरी शैली की परम्परा मे कार्य करने वाले कलाकारो पर इटली का प्रभाव प्रमुख रहा है। विचित्र आकृतियो के अतिरिक्त इस शैली मे आखेट के दृश्य भी अंकित किये गये हैं।

बारहवी शती के अन्त मे नव-बिजेण्टाइन प्रवृत्ति आरम्भ हुई। स्वच्छन्द रेखाओ की प्रवृत्ति भी बलवती,

हुई। सम्भवत. यह कार्य इटली अथवा ब्रिटेन के किसी कलाकार ने किया है। तेरहवी शती की इग्लिश कला से इसमे पर्याप्त साम्य है।

धीरे-धीरे स्पेन की कला गौथिक शैली की ओर बढने लगी। स्पेन की पेनल चित्रकारी भी भित्ति चित्रो के समान ही है। प्राय अलसी का तेल रगो मे मिलाकर दीवारो पर गीली तथा सूखी दोनो विधियो से कार्य किया गया है। श्वेत, काले, मटैले, पीले, लाल, सिंदूरी, कृमिदाना, हरे, हल्के तथा गहरे कत्थई रगो का सगतिपूर्ण प्रयोग हुआ है। लाल तथा पीले रगो की प्रधानता है। तेरहवी शती मे ही प्लास्टर आफ पेरिस की पीठी मे सुवर्ण तथा सुनहरी वार्निश मिलाकर भित्ति चित्रो मे स्वर्णकारी की अनुकृति की गयी है।

इटली—यहाँ की रोमनस्क कला का स्वरूप पर्याप्त विविध है। दक्षिणी इटली का सीधा सम्पर्क बिजेण्टियम एव पूर्वी देशो से था और उत्तरी इटली का उत्तरी यूरोप से सम्बन्ध था। केन्द्रीय इटली मे प्राचीन परम्पराएँ चल रही थी।

लोम्बार्डी के चित्रो मे प्रभावपूर्ण गढनशीलता, प्रबल छाया-प्रकाश एव अतिप्रकाश तथा वस्त्रो मे बिजेण्टाइन प्रभाव होते हुए भी शारीरिक उभारो का सकेत दिया गया है। इनकी शैली ने परवर्ती इटली तथा फ्रास की चित्रकला को भी प्रभावित किया। आओस्ता के चर्च मे चित्रो की आकृतियाँ गाढे तथा भारी रगो मे अकित है, वस्त्रो मे भी गढनशीलता का प्रभाव है और दृश्य-योजना सशक्त एव व्यजनात्मक है। मुखाकृतियाँ गोल हैं जो किसी भिन्न परम्परा का सकेत करती हैं। नेत्र विशाल तथा भौंहें धनुषाकार हैं, कपोलो का रग कुछ भिन्न है।

ओलीजियो के चित्रो की रग-योजनाएँ कोमल हैं किन्तु इन पर नवीन बिजेण्टाइन लहर का प्रभाव है। बारहवी शती के चित्रो मे हैलेनिस्टिक प्रभावो का भी समन्वय करने की चेष्टा हुई। धीरे-धीरे कलाकार गहरी रेखाओ की ओर बढते गये हैं और आकृतियो की गढनशीलता को छोडते गये हैं। तेरहवी शती मे युद्ध आदि के दृश्यो का भी अकन हुआ जिन्होंने आगे चलकर गोथिक कला मे जन-जीवन के चित्रण को प्रेरणा दी।

आल्पाइन क्षेत्र के चित्रो मे मानवाकृतियो तथा देवदूतो को पुष्पो के समान तथा पख फूल की पखुड़ियो के समान खुले हुए अकित किये गये हैं। एक स्थान पर कवचधारी सैनिक तथा कुत्तो को हिरन का पीछा करते हुये चित्रित किया गया है। हिंसा और पापाचरण से सम्बन्धित विषय का यह चित्र इस युग की धार्मिक कला मे अपने ढग का एक मात्र उदाहरण है। इब्राहीम के बलिदान के एक चित्र की पृष्ठ-भूमि मे हिम मण्डित शैल-शृंग एव उनके नीचे छोटे-छोटे कोमल श्वेत पौधे अकित किये गये हैं। इस प्रकार इस युग के कलाकार ने दृश्य-चित्रण का भी किंचित् प्रयत्न किया है। इस क्षेत्र मे रोमनस्क शैली के अन्तिम चित्रो मे धनुर्धरो का अकन है। इनके साथ-साथ यहाँ गोथिक शैली भी आरम्भ हो गयी।

रोम तथा लैटियम क्षेत्रो के ग्यारहवी शती के चित्रो में गहरे रग की बाह्य रेखाएँ अकित की गयी हैं तथा आकृतियो मे हल्के एव सपाट रग भरे गये हैं। सम्भवतः इनमे रोमन मणिकुट्टिम चित्रो की प्रेरणा है। रोम के अन्य चित्रो मे रगो का भारीपन, आकृतियो का उभार, छाया प्रकाश तथा अतिप्रकाश का प्रयोग हुआ है। इन दोनों शैलियो मे भित्ति चित्रो के अतिरिक्त द्विफलक एव त्रिफलक भी निर्मित हुए हैं। अनेक मणिकुट्टिम चित्रो मे भी इस का पालन हुआ है। बारहवी शती मे रोम मे वेनिस के कुछ चित्रकार मणिकुट्टिम चित्रो की रचना के हेतु आमन्त्रित किये गये। इन्होंने रोम मे चल रही आलकारिक एव यथार्थवादी प्रवृत्ति को रोक दिया। फलत. यहाँ जो शैली विकसित हुई उसमे लकडी के खिलोनो के समान आकृतियो, मुद्राओ और रेखाओ की कठोरता एव अपारदर्शी रगो का पुन प्रचलन हो गया। तेरहवी शती के अन्त मे इस शैली को प्राणवान् बनाने की चेष्टा की गयी। इस समय के चित्रो मे परिष्कार एव दरबारी भावना के दर्शन होते हैं।

टस्कनी मे बारहवीं शती मे पैनल तथा वेदिका चित्र अधिक बने। इनमे बिजेण्टाइन शैली का अनुकरण किया गया है। छाल पर बनाये गये कुण्डली-चित्रो मे परिष्कृत शैली का प्रयोग है। इस समय सिसली मे जो पुस्तक-सज्जा हुई उसमे अंगूर-लता तथा पंचकोण फूल-पत्तियो का विशेष प्रयोग हुआ। मध्य तेरहवीं शती से सामाजिक विषयों का चित्रण विशाल स्तर पर आरम्भ हो गया। बोलोना इनका प्रधान केन्द्र था। इस समय बिजेण्टाइन प्रभाव कम होने तथा फ्रेंच प्रभाव बढने लगा।

जर्मनी तथा मध्य यूरोप—यहाँ रोमनस्क भित्ति-चित्रो के बहुत कम उदाहरण अवशिष्ट हैं। इनमे पर्याप्त विविधता है। प्रायः भित्ति-चित्रण की मिश्रित पद्धति का प्रयोग हुआ है। चित्र का प्ररूप सीधे दीवार पर ही बनाया गया है। प्राय. सन्तों से घिरे ईसा, सिंहासनासीन मरियम, अन्तिम न्याय तथा बाइबिल की अन्य कथाओ का चित्रण बिजेण्टाइन शैली के अनुकरण पर हुआ है किन्तु आकृतियो मे घनत्व दर्शाने की चेष्टा की गयी है। ईसा की आकृति मे आभा-मण्डल एव रङ्ग-योजनाओ के माध्यम से देवत्व का प्रभाव उत्पन्न किया गया है। बारहवी शती के चित्रों मे रोमनस्क घनत्व भी मिलता है तथा आकृतियो मे पहले जैसा तनाव नही है। स्वाबिया मे ईसा की मृत्यु तथा पुन जीवित होने की घटना को प्रतीकार्थ सहित प्रस्तुत किया गया है। राइन नदी के तटवर्ती क्षेत्र में ईसा तथा सन्तो के जीवन चरित्र अंकित हैं और सन्तो के बलिदान का मार्मिक पक्ष विशेष रूप से चित्रित हुआ है। यह ईसाई धर्म के प्रति यहूदी भावना का परिचायक है।

इन सभी स्थानो पर भित्ति-चित्रो के अतिरिक्त पुस्तक चित्र भी बने। इनकी शैली स्थानीय भित्ति-चित्रो के ही अनुरूप है।

इंग्लैण्ड—यहाँ ससैक्स मे सर्वाधिक प्राचीन रोमनस्क चित्र सुरक्षित हैं किन्तु ये बहुत क्षत-विक्षत अवस्था मे हैं अत. इनकी शैली का अनुमान करना कठिन है। परवर्त्ती चित्रो का अनेक स्थानो की शैलियो से साम्य है। इंगलिश चित्रकारो ने अनेक यूरोपीय देशो में जाकर कार्य भी किया था। प्रायः फ्रांस तथा स्पेन मे ऐसे चित्र अधिक हैं।

इंग्लैण्ड मे नार्मन विजय के उपरान्त अनेक ग्रन्थ एव चित्रकार नार्मण्डी से आये। पुष्पित वनस्पति, मानवीय, पशु तथा भयानक आकृतियो के अलंकृत रूपो आदि से युक्त नार्मन शैली ने इग्लैंड में प्रवेश किया। इस शैली के साथ-साथ स्थानीय विंचेस्टर शैली भी बारहवीं शती मे प्रचलित रही आयी।

बारहवीं शती के आरम्भ मे पुस्तक-अलकरण के एक नवीन सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। इनमे पूर्ण पृष्ठो के चित्रो मे, जिनमे किंचित् बिजेण्टाइन शैली का प्रभाव है, जन-जीवन का भी सुन्दर चित्रण है। चित्रकारो के हस्ताक्षर अत्यन्त अलकृत हैं। इस समय का एक प्रसिद्ध चित्रकार ह्यूगो था।

मध्य बारहवी शती मे शक्तिशाली एवं अतिशय पूर्ण चेष्टाओ तथा आलकरिक अभिप्रायो के प्रति रुचि बढ जाने से इग्लैंड की शैली मे परिवर्तन आया। कैण्टाबरी तथा विंचेस्टर के चित्रित ग्रन्थ इसके उदाहरण हैं। इनमे मानवाकृतियो पर ज्यामितीय अलंकरणो का प्रभुत्व है। मानवाकृतियो मे पर्याप्त गतिशीलता है एव वे रङ्गो के द्वारा धरातलो से पूर्णतः पृथक् कर दी गयी हैं। बारहवी शती के अन्त मे यहाँ रङ्गो की चमक एव अलकरणो का आधिक्य हो गया। कलाकारो ने अपने हस्ताक्षर बहुत अलकृत और विभिन्न प्रकार की पत्रावलियो से घिरे हुए बनाये हैं। इनमे बिजेण्टाइन स्रोतों के माध्यम से शास्त्रीय तत्वो को भी अन्तर्भुक्त करने की चेष्टा की गयी है।

इन देशो के अतिरिक्त रोमनस्क शैली स्कैण्डिनेविया मे भी प्रचलित हुई। प्राय सभी स्थानो पर यह कला बिजेण्टाइन से गोथिक शैली की ओर होने वाले परिवर्तनो की सूचक है। इसीलिये कुछ विद्वानो के मतानुसार रोमनस्क शैली अपूर्ण गोथिक शैली के अतिरिक्त कुछ नही है।

रोमनस्क शैली की रेखाएँ अपनी पूर्वगामी कला की अपेक्षा दृढ एव प्रवाहपूर्ण हैं। रेखा का महत्व बढा है। प्राय. गहरे तथा चमकदार रङ्गो के प्रति अधिक रुचि रही है। हल्के रङ्गो का प्रयोग धीरे-धीरे समाप्त हो गया है।

यूट्रेक्ट साल्टर (Utrecht Psalter) की अनुकृतियो मे इस प्रवृत्ति का क्रमश विकास देखा जा सकता है। आरम्भिक अनुकृति मे कोई परिवर्तन नही हुआ है। बारहवी शती के मध्य की प्रति मे रेखाएँ दृढ हो गयी है। बारहवी शती के अन्त तक आते-आते चित्रण-विधान पूर्णत परिवर्तित हो गया है। रङ्ग तथा रेखा दोनो कठोर हो गये हैं। धनी सरक्षको के हेतु निर्मित प्रतियो मे मणियो के समान दमकते रङ्ग लगाये गये है। इस युग मे इनामेल चित्रण की भी पर्याप्त उन्नति हुई। धातु पर चित्रित आकृतियाँ भी एक प्रकार की चमक से युक्त रहती थी जो इस समय बहुत लोकप्रिय थी। इस समय का इनामेल का कार्य मणि-रत्न जटित आभूषणो तथा बिजेण्टाइन मणि-कुट्टिम के सदृश है। रोमनस्क कला सूक्ष्मता एव शैली-वैशिष्ट्य को लेकर शास्त्रीय प्रेरणाओं की ओर झुकी थी अत बिजेण्टाइन कला उसके हेतु केवल एक अन्तरिम आदर्श मात्र थी। रोमनस्क कला मे सर्वाधिक महत्व धातु-निर्मित वेदिकाओ आदि का था। उसके पश्चात् पूजागृहो के भवन महत्वपूर्ण समझे जाते थे। अन्य समस्त कलाएँ गौण रूप मे प्रयुक्त हुई। इन सबका समन्वय होने से ही परवर्ती काल मे गोथिक कला का उद्भव हुआ।

गोथिक शैली

गोथिक कला शैली का आरम्भ बारहवी शती पूर्वार्द्ध मे फ्रास मे हुआ था। ११३५ ई० मे फ्रास के तत्कालीन शासक एब्बोट सूजर (Abbot Suger) ने पेरिस के बाहर निर्मित सन्त डेनी (St Denis) के चर्च मे कैरोलिजियन शैली के अलकरणो आदि को परिवर्तित करना आरम्भ किया और उनको अद्यतन बनाने का प्रयत्न किया गया। लगभग तेरहवी शती के मध्य तक यह कार्य पूर्ण हुआ। इस नयी शैली के अनुसार धातु की उत्कीर्ण आकृतियो से अलकृत द्वार कपाट, जो प्राय कास्य के बनाये जाते थे, भवनो मे लगाये जाने लगे। इनके ऊपर भवनो मे मणिकुट्टिम का कार्य भी किया जाता था। धातु, विशेष रूप से कासे के बने द्वार-कपाटो की प्रथा इटली और रोम मे बहुत पहले से ही प्रचलित थी अत इसे कोई नवीनता नही माना जा सकता। सम्भवत सूजर का लक्ष्य फ्रास मे इटैलियन चर्च का निर्माण करना था। इस चर्च को बनाने वाले कारीगर यद्यपि रोमन कला-शैली में दीक्षित थे तथापि वे स्विटजरलैण्ड आदि निचले देशो के निवासी थे और ये सभी रोमनस्क रुचि वाले थे। अत जिसे गोथिक शैली कहा जाता है वह वास्तव मे पहले से चली आ रही रोमनस्क प्रवृत्तियो का ही व्यवस्थित रूप है। इनमे ईसाई धार्मिकता और रोमनस्क परम्पराओ का सम्मिश्रण हुआ था। इस कला की सबसे महत्वपूर्ण बात आकृतियो की प्रतीकता है। भवनो पर जो अतिशय अलकरण रोमनस्क कला मे होने लगे थे उनका इस युग मे विरोध किया गया और मानवीयता का दृष्टिकोण फैला। बारहवी शती की सबसे बडी उपलब्धि मानववादी विचारधारा का विकास है जिसे ईसाई धार्मिकता के साथ जोडने का प्रयत्न हुआ। विशालता तथा शान-शौकत को अहकार का मूल कारण माना गया।

सन्त डेनी के चर्च मे नवीनीकरण होने के साथ ही पेरिस नगर तथा समीपवर्ती क्षेत्रो मे अनेक नवीन भवनो का निर्माण आरम्भ हो गया जिनकी शैली की उद्भावना मे अनेक देशो के कलाकारो ने सहयोग दिया। इन भवनो मे स्तम्भो का विशेष महत्व था जो नुकीले मेहरावो को जन्म देते थे। इन्ही मेहरावो पर छत स्थिर रहती थी। ऐसे भवन धार्मिक कार्यों के हेतु विशेष उपयोगी होते थे। इनमे लम्बे तथा ऊँचे दरवाजो और खिड-कियो का प्रयोग होता था जिनमे से बहुत अधिक प्रकाश भवनो मे आ सकता था। द्वार-कपाटो तथा खिडकियो मे लगे काँच, मेहरावो तथा दीवारो के छोटे-छोटे पेनलो मे बने चित्रो के रूप मे ही गोथिक चित्रकला के अधिकाश उदाहरण उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त कुछ पुस्तक-चित्रो की भी रचना हुई।

इस प्रकार गोथिक शैली आरम्भ मे उत्तरी फ्रास की एक स्थानीय शैली थी। मध्य बारहवी शती तक यह क्षेत्र विश्व मे बहुत महत्वपूर्ण हो गया और इसी कारण तेरहवी शती (१२१५ ई०) मे गोथिक शैली को अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्राप्त हुआ। एक अर्थ मे गोथिक शैली के प्रचलन का अर्थ था कलाओ का केन्द्र पूर्व के बजाय

पश्चिम की ओर हट जाना। इस युग मे राज्य को चर्च के प्रभाव से मुक्त करने का भी प्रयत्न हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि धार्मिक अधिकारियो ने विशुद्ध धार्मिक कला के प्रति अपना आग्रह शिथिल कर दिया। दूसरी ओर चर्च की प्रतिष्ठा मे भी कमी आयी और लोगो ने यह समझा कि राज्य शक्ति को उलटने-पलटने मे चर्च का भी बहुत बड़ा हाथ रहा है।

बारहवी शती मे सहसा ही उत्तरी फ्रास समस्त यूरोप मे विद्याओ का सर्वोच्च केन्द्र माना जाने लगा। इस पुनरुत्थान का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है। इस समय बडी सावधानी से इस बात का प्रयत्न हुआ कि कहीं हम प्राचीन पैगन सभ्यता की ओर तो नही बढते जा रहे हैं? उत्तरी फ्रास के प्रमुख स्थानो—चार्ट्रेस, रीम्स, लाओन तथा पेरिस मे सात उदार कलाओ का अध्ययन आरम्भ हुआ और गणित आदि के आधार पर गोथिक स्थापत्य का विकास हुआ। रोमनस्क भवनो से गोथिक भवनो मे एक बडा अन्तर यह कि गोथिक भवनो मे विशुद्ध ज्यामिति का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। स्तम्भो, सिरदलो तथा मेहराबो आदि के रूप मे प्राय: रेखाओ तथा चापों की ही अनुभूति होती है। नुकीले मेहराबो का इस शैली मे इतना प्रयोग हुआ है कि नुकीले मेहराबो वाले समस्त भवन ही गोथिक कहे जाने लगे। पर इसके पूर्व रोमनस्क भवनो मे भी नुकीले मेहराबो का प्रयोग हुआ था। गोथिक भवन प्राय लम्बे पतले खम्भो और नुकीले मेहराबो से ही बने हैं। इनमे दीवारें बहुत कम हैं। खम्भों पर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। दीवारो के स्थान पर बड़े-बड़े ऊँचे दरवाजे तथा खिड़कियाँ हैं। इस प्रकार भित्ति-चित्रो के हेतु इन भवनों मे कम स्थान है, रगीन कॉच की खिडकियो के लिये अधिक। कही-कही छोटे पेनल-चित्र भी बने हैं और पुस्तक चित्रण भी हुआ है। गोथिक कला के प्राय ये ही रूप समस्त देशो मे प्रचलित रहे हैं।

आभूषणो तथा चमकदार रगो के प्रति गोथिक युग मे भी बहुत रुचि बनी रही। प्राय सभी मूर्तियाँ रगी जाती थीं, भवनो के कुछ निश्चित भागो मे भी रग किये जाते थे। कही-कही चित्र भी बनाये जाते थे। अत. गोथिक युग मे चित्रकला को कोई बहुत महत्वपूर्ण स्थान नही मिल सका। धार्मिकता के कारण सपाट आकृतियो से ही काम चल जाता था। उनमें गढ़नशीलता अथवा छाया-प्रकाश के प्रयोग की कोई आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती थी। प्राय प्रतिमाओ का व्यय न वहन कर सकने वाले धार्मिक स्वभाव के लोग चित्र बनवा लेते थे। इटली मे इस प्रकार का कार्य बहुत अधिक हुआ है। फ्रास मे तेरहवी शती मे प्रचुर सख्या मे चित्र बने। इस कला की सबसे बडी उपलब्धि आकृतियो को प्रतीकता और पूर्वाग्रहो से मुक्त करके यथार्थात्मक प्रस्तुतीकरण के धरातल पर प्रतिष्ठित करना है। ये कलाकार स्वयं यह नही जानते थे कि उनकी इस उपलब्धि का कितना महत्व है। किन्तु यह विशेषता केवल पेनल-चित्रो में ही विशेष रूप से मिलती है। पुस्तको को अलकृत करने वाले चित्र-कार तो नयी-नयी शैलियो और नये-नये फैशनो के आविष्कार मे ही लगे रहे। इस प्रकार चित्र के दृश्य मे परिप्रेक्ष्य एव गढनशीलता आदि के भ्रम उत्पन्न करने का जो प्रयत्न गोथिक कला मे आरम्भ हुआ उसने परवर्ती कला को बहुत प्रभावित किया। हेनरी फोसिलन के अनुसार "स्वर्ग से सम्बन्धित वस्तुओ को ससार से सम्बन्धित कर देना ही गोथिक कला का महान् लक्ष्य था। ईसा की सूली के एक चित्र 'The Altarpiece of the Parlément Paris" मे ईसा के दोनों ओर तत्कालीन फ्रासीसी अभिजात वर्ग के व्यक्ति पेरिस मे पहनी जाने वाली वेशभूषा में चित्रित किये गये हैं।

फ्रांस—यहाँ की गोथिक कला में ऐतिहासिक विषयो के अतिरिक्त सेंट लुई का जीवन चरित्र, शिशु-कब्रिस्तान मे बने मृत्यु का नृत्य, सेण्ट मेरीटाइम मे बने ईसा के बाल-जीवन के चित्र, सार्थ मे अकित नरक के दृश्य तथा अन्य स्थानों पर बने कुमारी के जीवन, सिंहासनासीन ईसा, सूली, सन्तों के बलिदानो, एण्ड्रयू आदि की गाथाओ, कुमारी का अभिषेक तथा समकालीन सम्राटो, ईसाई पादरियो आदि के चित्र अकित हुए हैं। इनके अतिरिक्त स्थान-स्थान पर अगूर लताओ तथा गोल पदकों के आलकारिक आलेखन भी चित्रित हुए हैं। फ्रास की कला पर

हालैण्ड, फ्लाण्डर्स तथा बेल्जियम आदि की कला का भी प्रभाव पडा है। सामान्यत फ्रांसीसी गोथिक कला की आकृतियो मे भारीपन नही है, रेखाएँ कोमल तथा प्रवाहपूर्ण हैं। प्राय वृक्ष, वनस्पति, पर्वत, मानवाकृति, वेश-भूषा आदि सभी वस्तुओ मे यथार्थता का प्रयत्न किया गया है। इस शैली के अतिरिक्त अनेक चित्रो मे रगीन काँच का प्रभाव देखा जा सकता है, जैसे शिशु ईसा के जीवन-चरित्र तथा नरक के चित्रो मे। निजी भवनो के चित्रों की शैली मे दरबारी ठाट-बाट का प्रभाव मिलता है। चोदहवी-पन्द्रहवी शती की फ्रेंच कला मे मौलिक प्रतिमा-विधान तथा सयोजनो के दर्शन होते हैं। कलाकारो ने चित्रो की सौन्दर्य-वृद्धि के हेतु, सुनहरी पृष्ठ भूमियो, चमकदार रगो, शान-शौकत तथा आलकारिक आलेखनों का प्रयोग किया है। अनेक चित्रकार शाही परिवारो तथा धर्माधिकारियो के व्यक्ति-चित्र अकित करने मे लगे रहे। पन्द्रहवी शती की कला मे दृश्य-चित्रण एव धार्मिक रहस्यात्मकता का विशेष प्रभाव रहा है।

फ्रास मे गोथिक पुस्तक-चित्रण कला रगीन काँच की कला से प्रभावित होती रही किन्तु चित्रो के चारो ओर हाशियो मे मनुष्यो, राक्षसो, पशु-पक्षियो अथवा आखेट-दृश्यो को अकित किया जाता रहा। इन पर इगलिश कला का प्रभाव माना जाता है।

रगीन कांच—गोथिक युग मे रगीन काँच की कला का पर्याप्त विकास हुआ। ये कांच दरवाजो तथा खिडकियो मे जड दिये जाते थे जो दिन के प्रकाश मे भवनो के आन्तरिक भागो मे बडा ही रगीन वातावरण उत्पन्न कर देते थे। फ्रास मे रगीन काँच का कार्य मुख्य रूप से रीम्स नगर के सेण्ट रेमी, चार्ट्रेस, बूर्जेज, पेरिस के स्टे चैपिल आदि मे हुआ है (फलक ६-ग)। इनकी आकृतियो की मुद्राओ तथा परिधानो पर मूर्तिकला का प्रभाव है। प्रायः हल्के रगो की अथवा श्वेत पृष्ठ-भूमि पर गहरे तथा चमकीले रगो की आकृतियाँ बनायी गयी है। पीले रग के स्थान पर चाँदी के रग का भी प्रयोग हुआ है। कुछ चित्रो मे आकृतियो मे एक ओर परछाई भी अकित की गयी है जिससे उनमे रिलीफ के समान किंचित् उभार का आभास होता है।

फ्रास के गोथिक चित्रकारो मे ज्यान प्यूसिल (Jean Pucelle), ज्यान द ओर्लियेन्स (Jean de Orleans) एटीन लॅंगलीयर (Etienne Langlier), कोलार्ड द लाओन (Colard de laon), निकोला फ्रोमेण्ट (Nicolas-Froment), ज्यान बैलेगेम्ब (Jean Bellegambe), जेरार्ड डेविड (Gerard David), क्वेण्टिन मैसी (Quentin-Massys), ज्यान फूके (Jean Fouquet), एजर्स (Angers), ज्यान बूर्डिशन (Jean Bourdichon), मास्टर आफ मोलिन्स (Master of Moulins), तथा होनोर (Honore) के नाम प्रमुख हैं।

स्विटजरलैण्ड—यहाँ की कला प्राय. फ्रास से प्रभावित है और इसके अत्यल्प उदाहरण ही अवशिष्ट हैं। प्राय एण्टवर्प, एम्सटरडम, लोम्बार्डी, वाल्टेन्सवर्ग, बर्न आदि स्थानो पर सुरक्षित भित्तिचित्रो, पेनलो, रगीन काँच तथा पुस्तक-चित्रो के रूप मे यहाँ की गोथिक शैली की कलाकृतिया सुरक्षित हैं। प्राय ईसा के जीवन, सन्त जोन, स्टीफेन, पीटर, पाल तथा धर्म पर बलिदान हो जाने वाले महापुरुषो के जीवन-चरित्र एव चित्र अकित किये गये हैं। पुस्तक-सज्जा मे पुष्पो, लताओ, मनुष्यो आदि के अलकरणो का भी प्रयोग हुआ है। पृष्ठभूमि मे लाल, नीला अथवा सुनहरी रग भरा गया और कही-कही भवनो अथवा प्राकृतिक दृश्यो का भी अकन हुआ है। आगे चलकर हरे, बादामी तथा हल्के लाल रग की भी पृष्ठभूमियाँ चित्रित होने लगी।

यहाँ के चित्रकारो मे मास्टर आफ वाल्टेन्सवर्ग (Master of Waltensburg) तथा कोनार्ड वित्ज (Konard Witz) प्रमुख हैं।

स्पेन—यहाँ गोथिक कला का इतिहास प्राय. १२७५ से १५२५ ई के मध्य तक विस्तृत है। प्राय केसाइल, वालेन्सिया, बर्गोस, तोलेदो, ग्रानादा, तेरूल, बारसीलोना, एन्दालूसिया, मैलोरका, एरागन, आदि मे यहाँ के गोथिक उदाहरण सुरक्षित हैं। यहाँ की कला मे भी ईसाई धर्म से सम्बन्धित तथा सरक्षको एव राजपरिवारो के चित्र अकित किये गये हैं। यहाँ की कला मे वास्तविकता तथा मानवीयता का प्रभाव अधिक है जिसके कारण धार्मिक

भावना में गिरावट आयी है। रेखाओ मे बारीकी तथा कोमलता है, रंग योजनाओ में बड़ी बारीकी से विविधता लायी गयी है। अरब के सम्पर्क से रेखात्मक अलंकरण भी आरम्भ हुआ। इटली के प्रभाव से लयात्मकता का भी समावेश हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय गोथिक शैली के युग मे यहाँ चित्रगत विस्तार के प्रभाव देने का प्रयत्न हुआ तथा आकृतियाँ गतिपूर्ण बनने लगी। स्पेन की अन्तिम गोथिक शैली हिस्पानो-फ्लीमिश शैली कही जाती है। इस कला मे नैसर्गिकता के प्रति विशेष आग्रह है। वस्तुवादी यथार्थवादिता, शरीर-रचना की सरलता तथा मानवतावादी भावना का समावेश इन चित्रो मे हुआ है।

स्पेन मे रंगीन कांच की कला पर आरम्भ से ही फ्रेंच प्रभाव रहा है। इस कला की आकृतियाँ धार्मिक प्रतीकता लिये हुए हैं। कुछ कलाकारो ने श्रेष्ठ आचार्यों द्वारा चित्रण के हेतु बनाये गये रेखांकनो की अनुकृति पर रंगीन कांच के चित्र निर्मित किये। लियोन, एविला तथा तोलेदो के ईसाई धार्मिक भवनों की रंगीन काच की कला स्पेन मे विशेष प्रसिद्ध रही है। पुस्तक-चित्रण मे कोमल रंग-योजनाओ का प्रयोग हुआ है।

स्पेन के गोथिक शैली के चित्रकारो मे जुआन ओलिवर, रक द बार्ताजोना, मास्टर आफ ओलाइट, लुई बोरासा, बर्नार्डो मारटोरल, निकोला फ्लोरेण्टीनो, निकोला फ्रांसिस, लुई दालमौ तथा बार्तोलोम बरमीजो के नाम प्रमुख हैं। फ्लीमिश कलाकार जान वान आइक भी १४२८ ई में स्पेन आया था। इसकी शैली का भी स्पेन की कला पर प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त एण्ड्रिया आर्केग्ना, जिओत्तो तथा ह्यूगो वान डर ग्वेज की कला से भी स्पेन के गोथिक चित्रकारो ने प्रेरणा ली है। यहाँ के भित्ति चित्र तैल माध्यम मे निर्मित हैं।

मध्य यूरोपीय देश—इन देशो मे गोथिक प्रभाव प्रायः चौदहवी शती के आरम्भ मे ही व्यापक हो सका। प्रायः बिजेन्टाइन तथा रोमनस्क शैलियों का प्रचलन यहाँ बहुत रहा था। इस कला के प्रधान केन्द्र जर्मनी मे कोलोन, आस्ट्रिया मे वियना, चैकोस्लोवाकिया मे प्राग, तथा बोहीमिया, साल्जबर्ग, बैवेरिया साइलेशिया, पोलैण्ड, पूर्वी प्रशिया आदि थे। इन देशो की कला आपस मे एक-दूसरे देश से भी प्रभावित हुई है और इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली तथा जर्मनी की कला से भी। यथार्थवाद के साथ-साथ यहाँ की कला मे अभिव्यंजना क्षमता भी पर्याप्त है। पन्द्रहवी शती की जर्मनी की गोथिक कला मे आकृतियो तथा भाव के अनुकूल ही पृष्ठभूमियो मे दृश्य-योजना कल्पित हुई है जिससे चित्र के प्रभाव मे एकता आयी है।

इस क्षेत्र में बोहीमियन कलाकार मास्टर आफ ट्रैबन तथा हेम्बर्ग का चित्रकार मास्टर बर्ट्रम विशेष प्रसिद्ध हो गये हैं।

मध्य यूरोपीय देशों की कला प्राय रेखा-प्रधान रही है, आकृतियो की गठनशीलता पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। इटली के प्रभाव से कहीं-कहीं यथार्थवादिता कुछ समय के लिये अवश्य दिखायी दे जाती है। फिर भी आकृतियो मे अलौकिकता, भारहीनता, फैशन, अगणित सिकुड़नो वाले वस्त्र, परिप्रेक्ष्य का अभाव, रंगो की चमक-दमक आदि इस क्षेत्र की कला की सामान्य विशेषताएँ रही हैं। इस क्षेत्र मे रंगीन कांच की कला भी यद्यपि पर्याप्त समृद्ध रही है तथापि उसमें विविधता नही है। इनकी शैली में परिपक्वता भी है। कहीं-कहीं खिड़कियो मे केवल आलंकारिक आलेखन ही चित्रित हुए हैं। इनके विपरीत पुस्तक चित्रों में चिकने एवं प्रवाहपूर्ण परिधानो सहित मानवाकृतियो का अंकन हुआ है। इनमे गठनशीलता पर अधिक बल दिया गया है, रेखा पर नहीं। जहाँ अलंकरण हैं वहाँ वे बहुत भड़कीले है।

इटली—यहाँ की गोथिक कला मे भी ओल्ड तथा न्यू टेस्टामेंट की कथाओं का चित्रण ही प्रधान रूप से हुआ है। आरम्भ मे तो कला पर धर्म का कठोर अनुशासन था किन्तु कलाकारो द्वारा अपने संघ बना लेने के उपरान्त कला कुछ स्वतन्त्र हुई और उसने जन-जीवन के हर्ष-शोक को अपनी अभिव्यंजना का आधार बनाया। यहाँ के प्रसिद्ध भित्तिचित्र असीसी में सेण्ट फ्रांसिस्को तथा सेण्ट पीटर, पादुओं मे ऐरीना चैपल, फ्लोरेन्स में सेण्ट

क्रोचे, उफीजी, मेरिया नोवेल्ला, सेण्ट मार्को का कान्वेण्ट, सिएना टाउन हाल, नेपिल्स, पीसा, उम्ब्रिया, रोम, वोलोना तथा वेनिस आदि स्थानो के चर्चों, उपासना-गृहो एव अन्य धार्मिक भवनो मे अकित हैं।

इटली की कला में इस युग मे परिप्रेक्ष्य तथा गहराई देने का बहुत प्रयत्न हुआ। अब तक आकाश प्राय सुनहरी वनता था, अब वह नीले रग से बनाया जाने लगा। चित्रो मे नैसर्गिकता, स्वाभाविक सहजता तथा दृष्टिगत यथार्थता का समावेश हुआ। इटली की गोथिक शैली के प्रमुख चित्रकार निम्नलिखित हैं—

१—सिमाबू (Giovanni Cimabue, १२४०—१३०२) यह इटली के फ्लोरेण्टाइन स्कूल का प्रसिद्ध कलाकार था। इसे इटली की चित्रकला का पिता (Father of Italian Painting) कहा जाता है। यूरोप की आधुनिक चित्रकला के इतिहास मे प्राय सर्व प्रथम इसी का नाम लिया जाता है। कहा जाता है कि यह जिओत्तो का गुरु था। कला के क्षेत्र मे इसने पर्याप्त मौलिकता दर्शायी और रूढियो का वहिष्कार किया। सिमाबू की प्रसिद्धि का प्रधान कारण विख्यात कवि दान्ते द्वारा उसका उल्लेख है जिसमे उसने कहा है कि "सिमाबू समझता था कि कला के क्षेत्र मे वही सबसे आगे है, किन्तु जिओत्तो ने उसका स्थान ले लिया था" विजेण्टाइन शैली में वस्त्रो की सिकुडने दर्शाने वाली रेखाएं कठोर होती थी किन्तु सिमाबू ने उन्हें शिथिल कर दिया। सिर को एक ओर झुका हुआ बनाया और अगुलियो को कुछ चचलता प्रदान की। सिमाबू ने आकृतियो को पर्याप्त स्वाभाविक बनाने की चेष्टा की है। सम्भवत १२७२ ई० मे वह रोम गया था जहाँ उसने प्राचीन शास्त्रीय कलाकृतियो को देखा होगा और उनसे प्रेरणा ली होगी। सिमाबू की एकमात्र अवशिष्ट प्रामाणिक कृति पीसा के उपासनागृह मे अकित सेण्ट जोन का विशाल मणिकुट्टम चित्र है जिसमे उसने १३०२ ई० मे कार्य किया था। इसके अतिरिक्त अन्य चित्र असीसी तथा उफीजी मे भी उसके द्वारा अकित कहे जाते हैं जिनमे मेडोन्ना की आकृति प्रधान रूप-से चित्रित हुई है। असीसी से ही इटली मे गोथिक शैली का आरम्भ माना जाता है। सिमाबू के साथ दूशिओ की भी आरम्भिक कला-शिक्षा असीसी मे हुई थी। सिमाबू के जीवन चरित्र के विषय मे कुछ भी ज्ञात नही है। रोम, पीसा तथा असीसी के चर्चों मे ही उसने कार्य किया था। असीसी मे उसने जो कार्य आरम्भ किया था उसे जिओत्तो ने पूर्ण किया। सिमाबू के पश्चात् इटली की कला मे वास्तविक गहराई तथा उभार और परिप्रेक्ष्य का प्रभाव दिखाने का कार्य जिओत्तो ने किया।

२—जिओत्तो (Giotto-१२६६ अथवा १२७६-१३३७)-यह सिमाबू का शिष्य था। सिमाबू तथा जिओत्तो दोनो को आधुनिक कला का जन्मदाता (The founders of modern Painting) कहा जाता है। इन कलाकारो ने विजेण्टाइन आकृतियो की कठोरता को समाप्त कर उनमे स्वाभाविकता लाने का प्रयत्न किया। इस कार्य मे सिमाबू की अपेक्षा जिओत्तो अधिक सफल हुआ। उसने ईसा आदि की दैवी आकृतियो को मानवीयता प्रदान की और ईसाई कला मे कलाकार की व्यक्तिगत एव मानवीय अनुभूति को प्रमुखता दी। इस प्रकार कला मे कलाकार का व्यक्तित्व प्रथम वार प्रकट हुआ। उसने वस्त्रो आदि की सिकुडनो मे रेखाओ का कम प्रयोग किया और रगो द्वारा ही स्थानीय उभार दिखाने का प्रयत्न किया। धार्मिक आकृतियो मे उसने मौलिक भाव भरे।

कहा जाता है कि जिओत्तो एक गडरिये का लडका था और भेडें चराते समय स्लेट आदि पर भेडो आदि के चित्र बनाया करता था। एक वार सिमाबू ने उसे देखा और उसे अपने साथ फ्लोरेंस ले गया। वहाँ उसने अपनी प्रतिभा का अच्छा प्रदर्शन किया जिसके फलस्वरूप सिमाबू उसे अपने साथ असीसी के चर्च को चित्रित करने के लिए ले गया। इस चर्च के ऊपरी कक्ष मे जिओत्तो ने सन्त फ्रासिस के जीवन से सम्बन्धित भित्ति-चित्रो का अंकन किया। कुछ कलाविदो के विचार से ये चित्र जिओत्तो ने अकित नही किये हैं क्योकि इनकी शैली जिओत्तो की सामान्य शैली से पर्याप्त भिन्न है, फिर भी इन चित्रो के मानवतावाद के कारण उनके जिओत्तो द्वारा निर्मित

होने की सम्भावना ही व्यक्त की जाती है।" रस्किन ने उसे "आदर्शवाद, परम्परा तथा औपचारिकता के विरुद्ध साहस पूर्ण प्राकृतिकतावादी" कहा है।[1]

१३०० ई. के लगभग St Peter के चर्च मे भी जिओत्तो ने एक विस्तृत मणिकुट्टिम भित्ति-चित्र की रचना की थी किन्तु इसमे अन्य कलाकारो ने इतना अधिक काम फिर से कर दिया है कि मूल कार्य प्राय. पूरी तरह छिप गया है।

पादुआ के एरीना चेपिल मे सन्त जोशिम, सन्त अन्ना, कुमारी मरियम तथा ईसा के जीवन चरित्रो का भी अ कन जिओत्तो ने किया था। सम्भवत: ये चित्र १३०६ अथवा १३०८ ई मे पूर्ण हुए। इन चित्रो मे अ कित आकृतियो मे अधिकाधिक घनत्व, स्वभाविकता भावप्रवणता एव नाटकीयता के दर्शन होते हैं। (फलक ७क)

१३२० ई. के लगभग फ्लोरेन्स के St Croce नामक स्थान के चार कक्षो (Chaples) को चित्रालंकृत करने के हेतु जिओत्तो को आमन्त्रित किया गया। इनमें से सन्त फ्रांसिस, सन्त जोन द बैपटिस्ट, सन्त जौन इवाजलिस्ट तथा स्वर्गारोहण (Assumptiom) के चित्र ही तीन कक्षों मे शेष है। इनमे गोथिक मूर्तिकला का किंचित् प्रभाव द्रष्टव्य है। १३२९-३३ ई. के मध्य जिओत्तो ने नेपिल्स मे भी कार्य किया था किन्तु अब उसमे से कुछ भी शेष नही है।

बोलोना, फ्लोरेन्स, लन्दन, म्यूनिख, पेरिस, तथा वाशिंगटन आदि मे जिओत्तो द्वारा निर्मित अनेक पेनल-चित्र सुरक्षित हैं। कहा जाता हैं कि ये अकेले उसी की कृतियाँ न होकर उसके शिष्यो की भी है जो उसी की शैली में कार्य करते थे। उफीजी की मेडोन्ना, बर्लिन की कुमारी तथा फ्लोरेन्स का सूली का चित्र निर्विवाद रूप मे उसी की रचनाएँ मानी जाती हैं। चौदहवी शती मे मेसेचियो तथा माइकेल ए जिलो पर भी उसका प्रभाव पडा। जिओत्तो ने केवल मानवाकृतियो ही नही अपितु भवनो एव प्राकृतिक पृष्ठ-भूमि को भी बडी कुशलता से अ कित करने की चेष्टा की है। किन्तु इन आकृतियो को पूर्णत यथार्थात्मिक नही कह सकते क्योकि मनुष्यो की तुलना मे वृक्ष, पर्वत एव भवन छोटे आकारो मे बने हैं। परिप्रेक्ष्य के नियमो का भी पूरी तरह पालन नही किया गया है। फिर भी आलोचको के मत से कला के क्षेत्र मे उसकी देन बहुत महत्वपूर्ण है।[2] जिओत्तो का एक प्रमुख शिष्य गैड्डी था। फ्लोरेन्स की कला पर सिमाबू तथा जिओत्तो का बहुत प्रभाव पडा और अनेक कलाकारो ने इनका अनुकरण किया।

३—एण्ड्रिया ऑरकेग्ना (Andrea Orcagna—१३०८-६८) फ्लोरेंस मे मध्य चौदहवी शती मे कार्य करने वाला एक प्रसिद्ध चित्रकार, मूर्तिकार एव वास्तुकार था। जिओत्तो के आदर्शो से पूर्णत सहमत न होते हुए भी वह बहुत लोकप्रिय हुआ। १३४३/४४ मे वह चित्रकारो के सघ मे तथा १३५२ मे पाषाण-शिल्पियो के सघ मे प्रविष्ट कर लिया गया। फ्लोरेंस के St. Maria Novella के Strozzi Chapel में उसने एक विशाल भित्ति-चित्र की रचना की है। इस चित्र मे आकृतियो को रेखा प्रधान रूप मे कल्पित किया गया है और गहराई के प्रभावो को अस्वीकार कर दिया है। सुनहरी पृष्ठ-भूमि मे प्राचीन रूढ आकृतियो की रचना की ओर उसका अधिक झुकाव रहा। १३६८ मे वह रुग्ण हो गया और उसकी अनेक अपूर्ण कृतियो को उसके भाई Jacopo तथा Nardo ने पूर्ण किया। फ्लोरेंस, लन्दन, न्यूयार्क, वाशिंगटन, वेटीकन तथा फिलाडेल्फिया आदि मे उसके अनेक चित्र संग्रहीत है।

---

1. "A daring naturalist in defiance of tradition, idealism and formalism"

2. श्री राबर्ट गोल्डवाटर का कथन है:—"Giotto turned the art of painting from Greek into Latin and rendered it modern. He mastered art most completely than any one else ever did."

जिओत्तो की समाधि पर फ्लोरेन्स के पन्द्रहवी शती के कला-सरक्षक मेडिसी लोरेन्जो ने निम्न पक्तियाँ लिखवायी थी—"Lo, I am he........to whose right hand all was possible, by whom dead painting was brought to life, by whom art became one with nature For I am Giotto"

अनेक बाहरी कलाकारो जैसे जिओवान्नी दा मिलानो, जिओत्तीनो तथा ज्युस्तो दे मेनाबुई आदि के भी बहुत से चित्र फ्लोरेन्स मे हैं।

सिएना मे प्राचीन परम्पराएँ गहरी जड़ें जमाए रही। कुछ कलाकारो ने जिओत्तो के अनुकरण का प्रयत्न किया पर वे भी आध्यात्मिकता को अधिक महत्व देते रहे, आकृति की स्वाभाविकता को नही। यहाँ की कला मे बारीकी और भावुकता भी बहुत है जिसके कारण भड़कीली रङ्ग-योजना तथा शरीर के बजाय मुखाकृति की विवरणात्मकता पर अधिक बल दिया गया है। यहा गोथिक कला पर फ्रास का प्रभाव आया।

फ्रास तथा सिएना मे इनामेल तथा मूर्तिकला के कारण बहुत घनिष्ट सम्पर्क था। इन शैलियो का प्रथम प्रयोक्ता दूशिओ (Duccio di Buoninsegna) था। उसकी कला मे फ्रेंच लघु चित्रो से अत्यधिक साम्य है तथा जिओत्तो के समान ही परिप्रेक्ष्य के तत्वो का पालन हुआ है।

४—दूशिओ (१२५५/६०—१३१८/१९ ई०) सिएना का प्रथम महान् चित्रकार था और जिस प्रकार फ्लोरेंस की कला मे जिओत्तो का महत्व है उसी प्रकार सिएना का कला में दूशिओ का है; फिर भी उसमे जिओत्तो के समान स्वाभाविकता की शक्तिशाली प्रवृत्ति नही है। दूशिओ को सिएना की चित्रकला का पिता कहा जाता है। उसने अनेक अपराध किये थे जिनके कारण सिएना की सरकार ने उसे अनेक बार दण्डित भी किया था। फिर भी वह बड़ा प्रतिभावान कलाकार था। जिओत्तो की भाँति क्राति न करके दूशियो ने शताब्दियो के परिश्रम से विकसित बिजेण्टाइन कला की समस्त उपलब्धियो को समन्वित करने का ही प्रयत्न किया। इनमे उसने तत्कालीन ईसाई धर्म की मानववादी भावना को और जोड दिया। १२७८, ७९ तथा ८० ई० मे उसने अनेक चित्र बनाये। फ्लोरेंस के Sta Maria Novella के एक चर्च के हेतु उसने मैडोन्ना का एक विशाल चित्र अकित किया था जिसे वसारी नामक इतिहासकार ने सिमाबू द्वारा अकित माना है। १३०८ से १३११ तक उसने सिएना के उपासना-गृह (Cathedral) के लिये एक चित्र अकित किया। इस चित्र मे मैडोन्ना अपनी गोद मे शिशु ईसा को लिए सिंहासन पर आसीन हैं, चारो ओर अनेक सन्त खडे हैं और ऊपर देवदूत एकत्रित हैं। ऊपर तथा नीचे ईसा, मेरी तथा सन्तो की जीवन-गाथाएँ चित्रित हैं। सामने की आकृतियो मे घनत्व, चारित्रिक विशेषताएँ आदि बडी कुशलता से अकित हैं और इनमे नवीनता तथा मौलिकता भी है। पीछे के छोटे दृश्यो में जीवन गाथाओ को भी सरलता से प्रस्तुत किया गया है। सुवर्ण तथा अन्य चमकदार रग स्वय मे सौंदर्य की भावना के पोषक बन कर आये हैं, आकृतियो की गठनशीलता की व्याख्या करने के हेतु उनका प्रयोग नही हुआ। आकृतियो को बाँधने एव चित्र के धरातल पर आलकारिक प्रभाव उत्पन्न करने के उद्देश्य से विविध प्रकार की रेखाओ का प्रयोग हुआ है। तीन वर्ष मे पूर्ण होने के उपरान्त यह चित्र बडे सम्मान के साथ एक जुलूस बनाकर पूजागृह तक ले जाया गया। इसके पश्चात् सिएना में जो कलाकार हुए उन मे कोई भी दूशियो की आलकारिक शैली की समता नही कर सका। इसके चार चित्र प्रसिद्ध हैं :—(1) The calling of the apostles Peter and Andrew, (2) Maesta, (3) Virgin and Child enthroned, (4) The Marys at the tomb ये विशेषताएँ सिएना स्कूल मे लगभग दो शताब्दियों तक चलती रहीं। अगली पीढी के कलाकारो साइमन मार्तिनी तथा लोरेन्जेत्ती पर भी दूशियो का प्रभाव पडा।

५—साइमन मार्तिनी (Simone Martini) १२८४—१३४४ ई०—यह सिएना का दूसरा प्रसिद्ध कलाकार था और दूशिओ का शिष्य था। इसने केवल रेखात्मक लय की दृष्टि से ही रेखा का विकास किया। दूशिओ की परिष्कृत रग योजनाओं को भी उसने विकसित किया। जिओवान्नी पिसानो की मूर्ति-कला एव फ्रेंच गोथिक कला से भी वह विशेष प्रभावित था। जिस प्रकार, दूशिओ ने सिएना के चर्च हेतु मैडोन्ना का एक विशाल चित्र अकित किया था उसी प्रकार मार्तिनी ने सिएना टाउनहाल के लिये इसी विषय को चित्रित किया था। इससे ज्ञात होता है कि आरम्भिक काल मे वह दूशिओ से पर्याप्त प्रेरित हुआ। किन्तु

उसमें जो गोथिक प्रवृति थी वह उसकी अगली कृति "सत लुई" मे स्पष्ट उभर कर आई। यह नेपिल्स मे निर्मित हुई थी। इस समय नेपिल्स फ्रेंच शासन मे था और वहाँ के शासक ने मार्तिनी को नवीन शैली में चित्राकन के हेतु आमन्त्रित किया था। इसी के उपलक्ष्य मे साइमन मार्तिनी ने उक्त सन्त के चित्र की रचना की थी। इस समय से उसकी कला दरबारी कला कही जाती है जो परिष्कृत तथा सुरुचिपूर्ण है और फ्रासीसी प्रभाव से युक्त है।

साइमन मार्तिनी ने मेडोन्ना की जिस आकृति का विकास किया वह सिएना की कला मे बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। १३२८ ई० में उसने सिएना के टाउनहाल के हेतु घुड़सवार का एक व्यक्ति-चित्र अकित किया। इसकी पृष्ठभूमि मे सैनिक तम्बुओ का विस्तृत दृश्य चित्रित है। इसके पश्चात् उसने असीसी मे सन्त फ्रासेस्को तथा सन्त मार्टीन के जीवन वृत्तो का अकन किया। इनमे फ्रेंच-गोथिक कला का पर्याप्त प्रभाव है, साथ ही अश्वारोहियो की शान-शौकत का भी चित्रण है जो साइमन की एक प्रमुख पहचान है। उसका सर्वश्रेष्ठ चित्र उद्घोषणा (The Annunciation) से सम्बन्धित है जो उफीजी, फ्लोरेंस मे है। इसे उसने अपने साले लिप्पो मेम्मी के साथ चित्रित किया था और इस चित्र पर दोनो के हस्ताक्षर हैं। यह चित्र शिल्प-कौशल का अद्भुत उदाहरण है जिसमे स्वर्ण का प्रचुर प्रयोग है। साथ ही दो आयामी अमूर्त आलेखन का भी यह अच्छा प्रमाण है। समकालीन कलाकार जिओत्तो आदि के यथार्थवाद से तो यह कोसो दूर है। १३४२ मे उसने ईसा के जीवन की एक घटना को चित्रित किया जिसमे चिकित्सको से झगड़ने के उपरान्त ईसा अपने घर लौट रहे हैं। इसमे मणियो के समान चमकदार रंगो का प्रयोग हुआ है। उसने कुछ अन्य चित्र भी बनाये। सिएनावासी उसे महान चित्रकार मानते थे। एण्टवर्प, बर्लिन, बिरमिंघम, बोस्टन, केम्ब्रिज, लेनिनग्राद, नेपिल्स, न्यूयार्क, ओटावा, पेरिस, सियना, वेटीकन तथा वाशिंगटन आदि मे उसके अनेक चित्र सग्रहीत हैं।

साइमन मार्त्तिनी के चित्र बड़े जीवन्त, सुन्दर तथा दिव्यभावयुक्त हैं। दूशियो के पश्चात् सिएना की दूसरी पीढ़ी के कलाकारो मे यह अग्रणी रहा है। इसके चित्रो की बडी माँग थी। इसने नेपिल्स के सम्राट के हेतु चित्र बनाये, पीसा तथा ओरवीतो मे चित्राकन किया तथा असीसी के चैपिल मे कार्य किया। किन्तु इसका सर्वोत्तम कार्य सिएना मे ही है। १३३९ ई० मे रोम के निष्कासित पोप ने उसे एविग्नन (फ्रास) मे आमत्रित किया। वही कार्य करते हुए उसकी मृत्यु हुई। सधा हुआ रेखाकन और शीघ्रता उसकी ऐसी विशेषताएँ हैं जिनका आगे के कलाकार अनुकरण करते रहे। इसके प्रसिद्ध चित्र हैं :—(1) St. Francis (2) St. Martin being made a knight (3) Annunciation (4) Guidoricco do Fogliano तथा (5) Coronation of the Virgin.

इसी समय यहाँ पिएट्रो लोरेन्जित्ती तथा एम्ब्रोजियो लोरेन्जित्ती नामक दो कलाकार भी बहुत प्रसिद्ध हुए। पिएट्रो ने फ्लेमिश कला के प्रभाव से दैनिक जन-जीवन तथा कौटुम्बिक जीवन के चित्रण का सिएना की कला मे सूत्रपात किया। इन चित्रो मे करुणा की अच्छी व्यजना हुई है। एम्ब्रोजियो ने दृश्यगत विस्तार के प्रभाव भी दर्शाने की चेष्टा की है जिनके कारण दूर से दिखायी देने वाले नगर दृश्य, नीचे से दिखायी देने वाले ऊँचे पर्वतो तथा ऊपर से दिखायी देने वाली नीची घाटियो के बहुत सुन्दर चित्र बनाये हैं। इसका प्रभाव आधुनिक दृश्य-चित्रण पर भी माना जाता है।

सिएना के अन्य कलाकारों मे बार्ना एवं मैत्तियो के नाम प्रमुख हैं। उम्ब्रिया मे सन् १३१० ई मे मैडोन्ना का एक चित्र किसी अज्ञात कलाकार ने किया था। इसी प्रकार ईसा की सूली का भी चित्रण करने वाले चित्रकार का नाम ज्ञात नही है।

उपर्युक्त स्थानो के अतिरिक्त पीसा, सिसली, रोम, अब्रुज्जी, बोलोना, वेनिस, पादुआ, वेरोना, लोम्बार्डी आदि मे भी अनेक कलाकृतियाँ गोथिक शैली में बनी किन्तु इनमे से अधिकाश नष्ट हो चुकी हैं। बोलोना मे वाइटेल कैवेल्ली तथा वेनिस मे पाओलो वेनेजिआनो प्रमुख चित्रकार हो गये है। १३८० ई० के आसपास उत्तरी इटली की

गोथिक कला मे एक बार पुन उन्नति का ज्वार आया। इस समय के कलाकारो मे पिसोनेल्लो, जेण्टाइल द फेब्रिआनो, स्टीफेनो दा जेवियो एव जिओवान्नी दा ग्रासी के नाम प्रमुख हैं। इनकी कला में भव्यता एव शान-शौकत के साथ-साथ स्वाभाविकता भी है।

रगीन कॉंच—इटली के भवनो मे बडे-बडे कॉंच के दरवाजो अथवा खिडकियों का प्रचलन न होने से रगीन कॉंच का अधिक प्रयोग नही हुआ। तेरहवी शती तक यहाँ जो भी थोडा-बहुत रगीन कॉंच का कार्य हुआ वह रोमनस्क शैली मे ही था। असीसी से गोथिक शैली की कॉंच की कला का आरम्भ तेरहवी शती मे हुआ। यहाँ की इस कला के विकास का श्रेय जर्मन, अल्सेशियन, स्विस तथा इटालियन कलाकारो को है। पादुआ, सिएना तथा फ्लोरेन्स मे भी रगीन कॉंच का सुन्दर कार्य हुआ है जिसके कलाकारो मे जिओवान्नी द बोनिनो एव मास्टर आफ फिगलाइन प्रमुख हैं। अनेक रगीन कॉंच भित्ति चित्रकारो द्वारा निर्मित भी कहे जाते हैं।

इग्लैण्ड—यहाँ पर ईसाई धर्म तथा सरक्षको, पादरियो, राजपरिवार एव जन-जीवन विषयक गोथिक शैली के भित्ति चित्र प्राय: विंचेस्टर चैपल, वेस्ट मिनिस्टर ऐबी, सेण्ट फेथ चैपल, सेण्ट स्टीफेन चैपल आदि भवनो की दीवारो पर अकित हैं। इनकी शैली पर इटली, विशेष रूप से दूशियो तथा बोहीमिया की कला का प्रभाव है। यहाँ बहुत कम कृतियाँ अवशिष्ट हैं।

रगीन कॉंच—इग्लैण्ड मे रगीन कॉंच की एक विशेष चित्रण पद्धति प्रचलित हुई जिसके प्रवर्त्तन का श्रेय सेण्ट डेनिस को है। इस पद्धति मे आलकारिक आकृतियो के मध्य रगीन काच की पट्टियाँ जड दी जाती हैं। ये टाइलो जैसा प्रभाव उत्पन्न करती हैं। अन्य देशो में प्रचलित काच की खिडकियो के समान कार्य भी इग्लैण्ड के केण्टरबरी तथा लिंकन उपासना गृहो तथा यार्क मिनिस्टर के कैथेड्रल मे हुआ है। आरम्भ में यहाँ ज्यामितीय रूपो तथा आलकारिक फूल-पत्तियो का चित्रण बहुत हुआ। आगे चलकर मानवाकृति का अकन भी होने लगा जिसे किसी मण्डप अथवा गृह मे स्थित दिखाया जाता था। प्राय: श्वेत कॉंच पर ही यहाँ आकृति-चित्रण हुआ है। रगीन काच आयातित किया जाता था। पन्द्रहवी शती में यहाँ रगीन कॉंच की कला मे अलकरण प्रवृत्ति पुन बलवती हो गयी।

इग्लैण्ड की पुस्तक-चित्रण कला मे तेरहवी शती में हेनरी तृतीय के समय एक विशेष शैली प्रचलित हुई जिसे "दरबारी शैली" कहा जाता है। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, तत्कालीन सरक्षको, अमीरो तथा दरबारियो आदि के द्वारा ही इस शैली को प्रोत्साहित किया गया था।

गोथिक कला की चरम परिणति शास्त्रीय पुनरुत्थान मे हुई जिसका प्रधान केन्द्र इटली मे था किन्तु जिसका प्रभाव यूरोप के समस्त देशों मे पहुँचा।

पुनरुत्थान काल की चित्रकला

पृष्ठभूमि

मध्य युगीन इटली मे जहाँ एक ओर राजनीतिक अस्थिरता थी वहाँ दूसरी ओर व्यापार एवं कलाओ की बड़ी उन्नति हो रही थी। उत्तरी यूरोप की अपेक्षा इटली बड़ा समृद्ध देश था और पूर्वी देशो से रेशम तथा मसालों का व्यापार यहीं होकर शेष यूरोप मे फैल रहा था। १५वी शती मे व्यापार के अन्य मार्ग खुले, अमरीका की खोज हुई और अमरीकी सुवर्ण से स्पेन का राजकोष भर गया। इसने इटली की अर्थव्यवस्था को बुरी तरह प्रभावित किया; किन्तु इसका प्रभाव सत्रहवीं शती मे ही स्पष्ट रूप से अनुभव किया गया। १४वी से १६वी शती तक तो इटली के जेनोआ, मिलन, वेनिस, माण्टुआ, फेरारा, बोलोना, फ्लोरेंस, पीसा, सिएना, पेरुजिआ तथा रोम आदि प्रसिद्ध नगर ही सम्पूर्ण यूरोप के व्यापार पर अधिकार किये रहे।

इटली मे पवित्र रोमन शासको का आधिपत्य था जो जर्मन थे, अत वे इटली मे प्रभावशाली शासन की स्थापना नही कर सके। स्थानीय पोप समय-समय पर इनका विरोध करते रहे। इटालियन कवि दान्ते ने चौदहवी शती मे लिखे, "ऑन मोनार्की" नामक ग्रन्थ मे इसका स्पष्ट विवेचन किया है। इससे तथा तत्कालीन अन्य ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि इस समय विभिन्न नगरों के शासक अपना प्रभाव-क्षेत्र बढाने का प्रयत्न करते रहते थे।

विदेशी शासन के विरोध के बावजूद इटली-वासी कभी एक होकर उसका सामना नही कर सके। पन्द्रहवी शती मे फ्रांसीसियो तथा अंग्रेजो मे परस्पर युद्ध हुआ और जर्मन लोग आन्तरिक उपद्रवो में उलझ गये। फ्रास के चार्ल्स अष्टम ने १४६४ मे इटली पर आक्रमण किया, जर्मनो ने १५२७ में रोम का विध्वस किया, फिर भी पन्द्रहवी शती मे कला की दृष्टि से इटली मे स्वर्ण युग का सूत्रपात हुआ।

पन्द्रहवी शती के पूर्वार्द्ध मे इटली मे पाँच शक्तियो ने स्वय को सुदृढ बनाने का प्रयत्न किया। ये थी— मिलन, वेनिस, फ्लोरेंस, नेपिल्स तथा पेपल रियासतें। नगर-राज्यो की ये शक्तियाँ छोटे-छोटे नगरो को अपने प्रभाव-क्षेत्र मे रखने, सम्पत्ति को सचित करने एव युद्ध की सम्भावनायें कम करने के प्रयत्न मे लगी रहती थी।

इन सब परिस्थितियो के कारण कला भी केवल कुछ नगरो मे ही केन्द्रित हो गयी। दरबारी शान-शौकत तथा राजकीय उत्सवो की भव्यता मे कलाओ ने भी सहयोग दिया। सम्राट, राजकुमार तथा राजकीय अधिकारी कलाओ के सरक्षक एव कलाकारो के आश्रयदाता बने। भाषा, दर्शन तथा प्राचीन साहित्य मे रुचि उत्पन्न हुई। प्राचीन सस्कृति के अध्ययन का प्रभाव तत्कालीन कलाओ पर भी पडा। 'श्रेष्ठ तथा सुसस्कृत मनुष्य' की भावना ने व्यक्तिवाद को जन्म दिया और पन्द्रहवी शती की इटली में सभी क्षेत्रो में फैशन का बोलबाला हो गया। लोग अपनी तथा अन्य व्यक्तियो की जीवन-गाथाएँ लिखने लगे। मनुष्यो की व्यक्तिगत उपलब्धियो को महत्व दिया जाने लगा और सामाजिक व्यवहार मे उदारता का समावेश हुआ। अतीत के अनुसधान की भावना ने प्राचीन कला को पुनरुज्जीवित करने मे सहायता की। बौद्धिक प्रयत्न होने के कारण इस आन्दोलन को सम्मान भी मिला और शीघ्र ही यह आन्दोलन विद्वत्वर्ग मे लोकप्रिय हो गया। नवीन कलाकृतियो की रचना मे प्राचीन कला के अवशेषों से बहुत सहायता ली गयी। अनेक कलाकार प्राचीन शास्त्रीय कला का अध्ययन करने की दृष्टि से रोम के प्राचीन भग्नावशेषो को देखने के हेतु जाने लगे।

किन्तु इस सब का यह अर्थ नही है कि कलाकारो ने कोई नवीन सृष्टि करने के स्थान पर केवल पुरातत्व-विदो की भाति प्राचीन का अनुकरण ही किया अथवा इस समय से इटली की कला मे सहसा क्रान्ति आ गयी। ऐसा सोचना इटली की तत्कालीन कला-परम्पराओं के प्रति आँख बन्द कर लेना होगा। इसे पुनरुत्थान न कह कर व्यापक परिवर्तन कह सकते हैं। यद्यपि प्रत्येक कलाकार और प्रत्येक युग कुछ न कुछ परिवर्तन लेकर आता है तथापि

१४०० ई० के लगभग इटली तथा यूरोप के अन्य कलाकारो का प्राय एक ही दृष्टि-बिन्दु बन गया था और वे सब समान ढग मे विचार करने लगे थे। इस प्रकार की विचार-धारा की पृष्ठभूमि मे सर्जित कलाकृतियाँ 'अन्तर्राष्ट्रीय गोथिक कला' के अन्तर्गत रखी जाती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय गोथिक कला के आधार पर ही इटली तथा अन्य यूरोपीय देशो की कला का तुलनात्मक अध्ययन सुविधा पूर्वक किया जा सकेगा और पुनरुत्थान का भी वास्तविक अर्थ समझ मे आ सकेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय गोथिक शैली—"अन्तर्राष्ट्रीय" शब्द से यह नही समझना चाहिए कि सभी स्थानो की कला बिल्कुल एक समान थी। उसका केवल यही तात्पर्य है कि एक-सा दृष्टिकोण सभी स्थानो पर विकसित हो रहा था तथा कुछ सामान्य विशेषताएँ समस्त कलाकृतियो में दिखाई देने लगी थी। उदाहरण-स्वरूप पेरिस, प्राग तथा मिलन (फ्रांस, चेकोस्लोवाकिया तथा इटली) की कलाकृतियो मे सुरुचि, अदब-कायदा, अनुत्तेजक मुद्राएँ तथा अलकृत परिधान मिलते हैं। इनकी एक वर्णनात्मक शैली थी और वस्त्रो को अत्यधिक कीमती तथा फैशनेबुल बनाया जाता था। कलाकार विवरणात्मक अलकरण के प्रति बहुत सजग थे और पशु-पक्षी अथवा पुष्पो को भी पर्याप्त विवरणो के साथ अकित करते थे।

स्पष्ट है कि इस प्रकार की शैली का विकास सरक्षको की रुचि के अनुकूल ही हुआ था। किन्तु इसके हेतु यह भी आवश्यक था कि सरक्षक सम्राट कला के प्रति अपना उत्साह प्रदर्शित करते। बोहीमियाँ तथा फ्रास के सम्राट ऐसे ही थे। प्राग आदि मे किंचित् सुकुमार आकृतियो का अकन हुआ जिसके कारण वहाँ की शैली 'कोमल' कहलाई। इस शैली का राइन नदी के तटवर्ती देशो मे अच्छा प्रसार हुआ। मिलन तथा फ्लोरेंस मे भी इस शैली के अनुकर्ता हुए जिनमे लोरेंजो मोनेको एव जेण्टाइल दा फ्रेब्रिआनो प्रमुख हैं। फ्लोरेंसवासी शिल्पी लोरेंजो घिबर्त्ती भी इस शैली का प्रशसक था। घिबर्त्ती की आकृतियाँ सुन्दर, मूल्यवान वस्त्राभूषण धारण किए हुए एव आकर्षक मुद्राओ मे बनी है।

गोथिक एवं पुनरुत्थान-काल की कला में मुख्य भेद

गोथिक युग मे भवन-निर्माण कला प्रधान थी, चित्र तथा मूर्ति का उपयोग केवल भवन की शोभा बढाने के उद्देश्य से किया जाता था। पुनरुत्थान काल में चित्र एव मूर्ति का स्वतन्त्र महत्व बना। वे केवल भवनो के अलकरण में ही प्रयुक्त नही हुए वरन् स्वतन्त्र रूप मे भी सर्जित किये गये। गोथिक युग मे आकृतियाँ प्राय छोटे आकारो मे ही बनायी जाती थीं किन्तु पुनरुत्थान-कालीन कलाकारो ने विशाल आकृतियाँ बनाना आरम्भ किया। गोथिक युग मे आकृतियो की मुद्राएँ, वस्त्रो को सिकुड़नें एव सीमा-रेखाएँ आदि ऊपर की ओर जाती-सी अकित की जाती थी किन्तु रिनेसा मे इनमे क्षैतिज गति उत्पन्न की गयी। इसका प्रधान कारण यह था कि गोथिक कला का उद्देश्य किसी दूसरे लोक की व्यजना था, जबकि पुनरुत्थान-कालीन कलाकार इस भौतिक ससार को ही प्रस्तुत करना चाहते थे। गोथिक युग मे रेखाकन एव रंगो का अलग-अलग महत्व न था किन्तु पुनरुत्थान काल के कलाकारो ने रेखाकन एव् रजन क्रिया को पृथक्-पृथक् देखा। इस युग में परिप्रेक्ष्य का भी वैज्ञानिक विधि से अध्ययन किया गया जबकि गोथिक कलाकारो के हेतु वस्तुओ के वास्तविक परिप्रेक्ष्य का कोई महत्व न था। गोथिक युग मे तैल-चित्रण पर भी अधिक बल नहीं दिया गया था। पुनरुत्थान कला मे तैल का माध्यम बहुत प्रयुक्त हुआ। इस युग की वेश-भूषा मे भी देश तथा काल की दृष्टि से पर्याप्त विस्तार दिखायी देता है। यही नही, कलाकारो ने नवीन परिधानो की भी कल्पना की है। इस प्रकार इस युग की वेश-भूषा मे मौलिकता के दर्शन होते हैं। पुनरुत्थान काल में कला-सिद्धान्तो और चित्रण के नियमो को प्रमुखता मिली। इसके पूर्व कला के नियम धर्म के अनुचर थे। पुनरुत्थान काल मे उनको धर्म से मुक्ति मिली। गोथिक कलाकार जहाँ आश्रय के हेतु चर्च का मुँह देखते थे वहाँ इस युग मे कलाकार को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

इटली में पुनरुत्थान

टस्कनी (फ्लोरेंस) के अनेक कलाकार अन्तिम गोथिक शैली से सन्तुष्ट नही थे। बनावटी सयम एव सुरुचि के स्थान पर वे भावाभिव्यक्ति को अधिक महत्व देते थे। सम्भवतः उन्होंने प्राचीन कला के बजाय अपने पूर्ववर्ती टस्कन मूर्तिकार जिओवान्नी पिसानो से प्रेरणा ली। उसकी कलाकृतियो मे नाटकीय मुद्राएँ, गहरी काटी हुई व्यजनापूर्ण वेश-भूषा तथा धरातलीय चिकनेपन का अभाव है जो लोरेन्जो घिबर्ती की शैली के ठीक विपरीत है। लगभग यही प्रवृत्ति कुछ समय पश्चात् की फ्लोरेण्टाइन चित्रकला मे मिलती है जबकि मैसेचियो (Masaccio) ने अपनी शैली के निर्माण मे जिओत्तो से प्रेरणा ली। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि असन्तुष्ट टस्कन कलाकारो ने प्राचीन शास्त्रीय कला के स्थान पर मध्यकालीन कलाकारो से ही प्रेरणा ली। यह सच है कि चित्रकला की अपेक्षा शास्त्रीय मूर्तिकला एव भवनो के अनेक अवशेष इन कलाकारो के सामने थे जिनसे ये पर्याप्त प्रभावित हो रहे थे। यही कारण था कि ये कलाकार बार-बार प्राचीन कला की अनुकृतियाँ भी प्रस्तुत करते रहते थे। विद्वानो के नवीन मानवतावादी दृष्टिकोण एव प्रजातान्त्रिक भावना ने भी कला को प्रभावित किया। इस प्रकार इस आन्दोलन मे नवीन तथा प्राचीन दोनो तत्वो का समन्वय हुआ। अतः घिबर्ती एव दोनातेल्लो आदि को भी समन्वयवादी कलाकार कहा जाना चाहिए। फिर भी नये कलाकारो का लक्ष्य केवल समन्वय नही था। रोमन सभ्यता के पतन से पूर्व शास्त्रीय कला की जो प्रतिष्ठा थी वे उसे पुनः प्राप्त करना चाहते थे। इसी हेतु वे जो प्रयोग कर रहे थे उनमें प्राचीन गरिमा को जगाने का प्रयत्न था, प्राचीन कला की अनुकृति मात्र का नही।

इसका आरम्भ पन्द्रहवीं शती के मानवतावादियो द्वारा अनजाने ही हुआ था। उन्होंने जो साहित्यिक उल्लेख देखे उनसे आकृष्ट होकर प्रयोग आरम्भ किये और जैसे-जैसे वे प्रयोग करते गये, उन्हे प्राचीन कला की गम्भीरता का अनुभव होता गया। यह अनुभव किया जाने लगा कि नवीन प्रयोग तभी सफल हो सकते हैं जब प्राचीन कला और उसके नियमो का पूर्ण ज्ञान हो। यह भी अनुभव किया जाने लगा कि मध्यकाल पतन का युग रहा है। १४५० ई० के लगभग मूर्ति शिल्पी घिबर्ती का भी यही दृष्टिकोण था। उसने कला-इतिहास के तीन भाग किये। प्रथम भाग मे विट्रूवियस तथा प्लिनी से प्राचीन काल का आरम्भ किया गया था। द्वितीय भाग अत्यन्त सक्षेप मे मध्यकाल से सम्बन्धित था और १३०० ई० से पुनरुत्थान का युग माना गया था। इस प्रकार उसने पुनरुत्थान को इटली मे १४०० ई० से न मानकर समस्त यूरोप की दृष्टि से जिओत्तो तथा गोथिक युग से जोड़ दिया। पुनरुत्थान के क्रम को उसने इटली की बिजेण्टाइन कला मे से होकर विकसित तथा प्राचीन कला को केवल एक प्रेरक तत्व माना। इस समय तक इन कलाकारो के समक्ष कोई एक कार्यक्रम नही था। इन कलाकारो ने ऐसा अनुभव नही किया कि खोई हुई अथवा विस्मृत प्राचीन कला की सहसा खोज हो गई हो बल्कि इन्होंने समकालीन कला-परम्पराओ की पुन. व्याख्या का ही प्रयत्न किया। पिसानो तथा दोनातेल्लो के मूर्तिशिल्प, ब्रूनेलेशी के स्थापत्य एवं लोरेन्जो मोनेको तथा मैसेचियो के चित्रो से यही स्पष्ट होता है।

भवनो के सम्बन्ध मे ब्रूनेलेशी (Brunelleschi) ने गणित एव ज्यामिति के जिन नियमो का प्रयोग किया था उनसे चित्रकला ने भी लाभ उठाया। इनके आधार पर चित्रो में व्यवस्थित परिप्रेक्ष्य का विकास आरम्भ हुआ और सपाट धरातल पर ज्यामितीय आकृतियो के निर्माण से गहराई तथा तृतीय आयाम का आभास दिया जाने लगा। इन नियमो का सूत्रीकरण १४३५ ई० मे लियोने बतिस्ता (Leone Battista) द्वारा अपने चित्रकला-विषयक ग्रन्थ मे किया गया। इन नियमो की सहायता से रिलीफ चित्रो मे भी वास्तविक की अपेक्षा बहुत अधिक गहराई का भ्रम उत्पन्न किया जाने लगा। मध्यकालीन रिलीफ में यह विशेषता नही थी। इस समय का ख्यातिप्राप्त चित्रकार मैसेचियो था।

फ्लोरेन्स की कला

फ्रा एन्जेलिको—अन्य कलाकारो मे फ्रा एंजेलिको (Fra Angelico १३८७/१४००-१४५५) बहुत प्रसिद्ध हो गया है। उसका वास्तविक नाम फ्रा जिओवानी दा फीसोल (Fra Giovanni da Fiesole) अथवा गुइदो द पिएट्रो था। वह सन्त कलाकार कहा जाता है। वह ईसाई धर्म प्रचारक अधिकारी था अत उसने अपनी कला को धर्म के प्रचार मे लगाया। इसीसे उसकी शैली सरल, स्पष्ट, एव परम्परागत थी। जिओत्तो तथा मैसेचियो का भी उस पर बहुत प्रभाव था जिसके कारण उसने बड़ी-बड़ी आकृतियाँ बनाई हैं। इस प्रकार उसकी कला गोथिक विशेषताओ के साथ आरम्भ होकर पन्द्रहवी शती के पूर्वार्द्ध की फ्लोरेन्टाइन कला से भिन्न मार्ग पर चलती रही है। १४२८ ई के पूर्व उसने अधिक चित्र नही बनाए। मैडोन्ना का एक चित्र निश्चित रूप से १४३३ ई मे उसने अकित किया था जो अब फ्लोरेंस मे है। St Marco का Convent उसके अधीन १४३६ मे आया और उसने १४३७ मे उसे चित्रो से सजाना आरम्भ कर दिया। यहाँ उसने पचास भित्ति-चित्र अकित किये। उसने St Marco के उपासना-कक्ष को भी चित्रित किया। इन चित्रो मे मेडोन्ना को देवदूतो से घिरी हुई दर्शाया गया है। एजेलिको को रोम मे वेटीकन को चित्रित करने हेतु भी आमन्त्रित किया गया जहाँ उसने १४४६-४६ ई के मध्य कार्य किया। एक अन्य उपासनागृह मे उसने अतिम न्याय का भी चित्रण किया। १४५५ मे रोम मे ही उसकी मृत्यु हुई।

उसकी कला मे केवल आवश्यक विवरण ही अकित मिलते है और आकृतियो का घनत्व जिओत्तो की भाँति है। भवनो का परिप्रेक्ष्य भी पूर्णतः विकसित नही हैं। प्रकृति का अंकन आकर्षक रूप मे हुआ है। उसे पुष्पो का अकन बहुत प्रिय था और वह विचित्र वेश-भूषा के अकन मे भी पर्याप्त रुचि लेता था। उसकी आकृतियाँ कोमल हैं। वह रिनेसाँ का सर्वप्रिय कलाकार माना जाता है। उसके रग इतने शुद्ध, आकृतियाँ सुन्दर, पृष्ठ-भूमियाँ सुनहरी और चमकीली तथा सयोजन इतने सरल हैं कि प्रत्येक व्यक्ति उसके चित्रो को समझ सकता और उनका आनन्द ले सकता है।

फ्रा एन्जेलिको के आरम्भिक चालीस वर्ष का जीवन-वृत्त ज्ञात नही है। उसकी प्रसिद्धि सेण्ट मार्को के कान्वेण्ट के चित्रो के कारण ही है। इन चित्रो की सरलता तथा सुन्दरता का कोई भी अतिक्रमण नही कर पाया है। जब इस कान्वेण्ट का पोप ने उद्घाटन किया तो अपने चित्रो के कारण फ्रा बहुत प्रसिद्ध हो गया। किन्तु फ्रा इस प्रसिद्धि का अनिच्छुक था। वह चित्रण के पूर्व हर बार प्रार्थना किया करता था। ईसा की सूली का एक चित्र बनाते समय वह निरन्तर रोता ही रहा था। वह केवल ईश्वर का सेवक बना रहना चाहता था। वसारी के कथनानुसार पोप उसे इतना चाहता था कि वह उसे फ्लोरेंस का आर्कबिशप बना देने का इच्छुक था किन्तु उसने यह स्वीकार नही किया। उसके प्रसिद्ध चित्र हैं—(१) मिस्र को पलायन, (२) कुमारी का अभिषेक, (३) भविष्यवाणी, (४) देवदूत सगीतज्ञ तथा (५) अन्तिम न्याय। उसके इस अन्तिम चित्र मे ही मानवीयता के दर्शन होते हैं अन्यथा सभी चित्रो मे धार्मिक दिव्यता है।

मैसेचियो (Masaccio) का जन्म १४०१ ई में हुआ था। आयु मे वह ब्रूनीलेशी एव दोनातेल्लो आदि से बहुत छोटा था। उसकी आरम्भिक शिक्षा कहाँ हुई, इस विषय मे विवाद है किन्तु उसने एक अन्य फ्लोरेण्टाइन कलाकार मेसोलिनो के साथ अनेक चित्रो में कार्य किया था। मेसोलिनो आयु मे मैसेचियो से बीस वर्ष बड़ा था अत निश्चय ही उसकी कला का प्रभाव मैसेचियो पर पड़ा होगा। तत्कालीन अलकरण प्रवृत्ति से उसे घृणा हो गई थी और सम्भव है कि इसी कारण मैसेचियो ने जिओत्तो की कला कृतियो का गम्भीर अनुशीलन किया। यद्यपि निश्चित रूप से इसका कोई प्रमाण नही मिलता तथापि उसकी आकृतियो मे जो गठन-शीलता एव घनत्व है, उसका कोई अन्य समाधान नही है। उसके समकालीन अन्य कलाकारो मे यह प्रवृत्ति नही मिलती। ब्रूनेलेशी की कला से भी वह प्रभावित हुआ था क्यो कि परिप्रेक्ष्य के सम्बन्ध मे उस युग मे जो प्रयोग किये जा रहे थे उनका उपयोग मैसेचियो ने

अपने प्रथम विशाल भित्तिचित्र "The Trinity" मे किया है जो Sta Maria Novella मे सुरक्षित है। इसी भित्तिचित्र से यह ज्ञात होता है कि शास्त्रीय स्थापत्य का भी उसने विस्तृत अध्ययन किया था, क्यो कि इस चित्र की पृष्ठ-भूमि मे प्राचीन ग्रीक-पद्धति की महरावो आदि का अकन है। इस चित्र मे कुछ इस प्रकार के प्रभाव उत्पन्न किये गये हैं कि समस्त आकृतियाँ सजीव-सी होकर उपस्थित हुई प्रतीत होती हैं।

मैसेचियो के दो अन्य चित्र भी विशेष प्रसिद्ध हैं। इनमे से एक उपासना-गृह की वेदी का बहुफलकीय चित्र (Polyptych) है जो १४२६ ई मे पीसा के एक चर्च के हेतु अ कित किया गया था। इस चित्र का एक अ श, जिसमें फरिश्तो से घिरे हुए कुमारी एव शिशु अ कित हैं, लन्दन के राष्ट्रीय सग्रहालय मे है। इस चित्र मे कुछ नीचा दृष्टि-बिन्दु लेकर कुमारी की आकृति को प्रभावशाली बनाने का प्रयत्न किया गया है, साथ ही बालक ईसा का आभामण्डल गोल वृत्त के रूप मे न बनाकर सिर के ऊपर छत्राकार स्थिति मे घूमती हुई ठोस तश्तरी के रूप मे बनाया गया है। सेवा मे उपस्थित एक फरिश्ते के हाथ की वीणा का दण्ड दर्शक के सामने की स्थिति मे है जो स्थितिजन्य लघुता का अच्छा प्रभाव प्रस्तुत करता है। फ्लोरेन्स के कारमाइन चर्च मे जो विशाल भित्ति-चित्र उसने अ कित किया था उसमे यद्यपि नाटकीय मुद्राओ का अभाव है तथापि जिओत्तो से प्रभावित गठनशीलता आदि का प्रदर्शन है। समस्त आकृतियो मे भाव गाम्भीर्य है और आदम तथा हव्वा के स्वर्ग से निष्कासन के दृश्य मे करुणा भी व्य जित होती है। यह सब होते हुए भी उसकी कृतियो मे न परम्परागत सौन्दर्य है और न आकर्ष ण। सम्भवत. वह इस प्रकार की विशेषताओ से युक्त आकृतियो की रचना भी नही करना चाहता था।

१४२८ ई. में वह रोम गया जहाँ कुछ ही महीने बाद वह लापता हो गया। कहा जाता है कि उसे मार दिया गया। यह अनुमान का विषय है कि यदि वह जीवित रहता तो उसकी कला किस दिशा मे विकसित होती।

केवल सत्ताईस वर्ष की अल्पायु मे उसने पर्याप्त ख्याति अर्जित की। १४२२ ई मे वह कलाकारो के उस स घ (guild) मे सम्मिलित कर लिया गया जो परम्परागत कला का विरोधी था। उस समय फ्लोरेन्स मे अन्त-र्राष्ट्रीय गोथिक शैली का प्रमुख कलाकार जेन्टाइल दा फेब्रिआनो (Gentile da Fabriano) था। मैसेचियो उसका विरोधी था। मैसेचियो की कला स्थान, प्रकाश, आकृति के घनत्व एव परिप्रेक्ष्य सम्बन्धी प्रभावो की दृष्टि से जिओत्तो के बहुत निकट थी। तत्कालीन शिल्पियों मे कोई भी चित्रकार उसके समान कार्य नही कर रहा था। केवल मूर्त्तिकार दोनातेल्लो तथा वास्तुकार ब्रूनेलेशी से ही उसकी तुलना की जा सकती है। इसी से मैसेचियो को आधुनिक कला के जन्मदाताओं मे से एक माना जाता है। मैसेचियो की शैली पूर्णत यथार्थवादी एव महान् है। मैसेचियो की कला ने सम्पूर्ण रिनेसा को प्रभावित किया। बोत्तीचेल्ली, लियानार्डो, माइकेल ए जिलो तथा राफेल ने उसके चित्रो की अनुकृतियाँ करके उसकी शैली का अध्ययन किया था। उसने परिप्रे क्ष्य और स्थितिलाघव के जो नियम विकसित किये थे उन्होने चार सौ वर्ष तक कला को प्रभावित किया।

दृश्य कलाओ के क्षेत्र मे यह परिवर्तन आरम्भ मे प्रधानत फ्लोरेन्स मे ही केन्द्रित रहा। इटली के शेष भागो—वेनिस, वेरोना, फैरारा अथवा मिलन आदि—मे पन्द्रहवी शती के पूर्वार्द्ध मे केवल परम्परागत कलाकृतियो की ही माँग रही।

मध्यकाल मे ईसाई धर्म के प्रचार के हेतु कला एक आवश्यक माध्यम बन चुकी थी किन्तु इसके द्वारा केवल कथाओ का ही चित्रण हो सका था, अमूर्त भावो का नही। पुनर्जागरण युग तक आते-आते कला अमूर्त-भावो की भाषा बनने लगी। उसमे रूप और रग के द्वारा प्रतीक दिये जाने लगे। इटली की दशा इस समय कुछ ऐसी थी कि प्रत्येक चर्च मे कलाकार कार्य करते थे और कलाओ को समझने की इटली-वासियो की क्षमता बढ़ने लगी थी। गोथिक युग की तीन बातो को ही पुनर्जागरण युग के कलाकारो ने आगे बढाया जो थी

(१) धर्म, (२) शास्त्रीय आधार एव (३) प्रकृति का अध्ययन। इनमें से पिछली दो बातो को इसी युग मे अधिक महत्व दिया गया। धर्म पर से यद्यपि अन्ध-श्रद्धा हट गयी थी किन्तु अब भी उसका बहुत प्रभाव था। अब भी चर्च कला की आश्रयदात्री थी। वहाँ धर्म के अतिरिक्त प्रकृति, इतिहास, पुराण, उपदेश कथाओ एव व्यक्ति-चित्रो आदि को अंकित किया गया। १४०० ई० से १४७५ ई० तक कलाकारो ने चर्च को खूब सजाया और धर्म प्रचार मे सहायता की, अत. रिनेसाँ कला धर्म से पृथक् नही कही जा सकती।

इटली के कलाविदो ने प्राचीन यूनानी कला एव साहित्य का अध्ययन आरम्भ किया। इसमे रुचि रखने वाले धनपतियो ने उनकी सहायता की। १४४० ई० के लगभग कुस्तुन्तुनियाँ पर तुर्को का अधिकार हो गया और वहाँ रहने वाले यूनानी विद्वानो ने इटली मे शरण ली। इसके साथ ही छपाई का आविष्कार हुआ। प्राचीन रोमन प्रतिमाओ के अतिरिक्त प्रकृति का भी सूक्ष्म अध्ययन हुआ। वनस्पति शास्त्र, भूगर्भ, खगोल, रसायन, औषध, शरीर शास्त्र, विधि आदि विद्याओ एव साहित्य आदि का गम्भीरता से अध्ययन किया जाने लगा। पर इस समय की कला पर शास्त्रीय प्रतिमाओ का बहुत अधिक प्रभाव नही है। कलाकारो ने उनका अध्ययन अवश्य किया, अनुकृति नही। बोत्तीचेल्ली तथा मेण्टेग्ना की आकृतियाँ मूर्तियो जैसी गठनशीलता लिये हुए हैं किन्तु उनके मूल मे प्रकृति का अध्ययन है। पन्द्रहवी शती की समस्त कला मे प्रकृति निरीक्षण, शक्ति-मत्ता, चरित्र और लगन की दृढ़ता है किन्तु लावण्य,भव्यता और रगो का वैभव नही है। इन कमियो को चरम पुनरुत्थान (High Renaissance) के समय पूर्ण किया गया।

फ्लोरेंस के कलाकार रगो की अपेक्षा रेखाकन मे अधिक कुशल थे। उन्होने प्राय फ्रेस्को पद्धति से भित्तियो पर एव टेम्परा पद्धति से कपडे पर चित्रकारी की। यद्यपि तैल-चित्रण को लोग जानते थे पर उसका प्रयोग १४७५ ई० के पूर्व अधिकाश कलाकार नही करते थे। फ्लोरेंस के कलाकार विषय की पकड और टेक्नीकल ज्ञान में अपने युग मे अग्रणी थे।

जैसा कि पिछले पृष्ठो मे सकेत किया जा चुका है, फ्लोरेंस का सर्व प्रथम उल्लेखनीय कलाकार मैंसेचियो था। उसके पश्चात् के चित्रकारो के हेतु मैंसेचियो तथा दोनातेल्लो की उपलब्धियो का मूल्याकन करने की समस्या उपस्थित हुई। परिप्रेक्ष्य की नवीन वैज्ञानिक स्थापनाओ को स्वीकार करना भी शेष था। डोमेनिको वेनेजियानो (Domenico Veneziano) की कृतियो मे यह क्रम स्पष्टत देखा जा सकता है। १४४० ई० मे उसने स्टा लूसिया की वेदिका का चित्रण किया था। उसमे तत्कालीन समस्याएँ बहुत स्पष्ट हैं। उसमे वेदिका के प्राचीन स्वरूप को सुरक्षित रखते हुए चित्र मे तीन मेहराब तो चित्रित थे किन्तु त्रिफलक सम्पुट के स्थान पर केवल एक ही चित्रफलक बनाया गया था। उपासकों आदि को चित्रित करने वाले इधर-उधर के फलको को हटा कर सभी आकृतियों को एक ही फलक पर सुसम्बद्ध कर दिया गया था। दृष्टि के क्रमिक अपसरण के विचार से चित्रगत विस्तार का इसमे अच्छा निर्वाह किया गया है।

डोमेनिको की शैली का फ्लोरेंस के महान् कलाकारो पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। पुरुष मुखाकृतियो का भारीपन और वस्त्रो की गहरी सिकुड़नें प्राचीन परम्परा से हटने की सूचक है। पिछली पीढी के कलाकार फैब्रिआनो की आकृतियो मे ये विशेषताएँ नही थी। मैंसेचियो की आकृतियो में छाया-प्रकाश के आधार पर आकृतियो की गठनशीलता को प्रदर्शित करने का जो प्रयत्न किया गया था उसे डोमेनिको ने आगे विकसित नहीं किया। डोमेनिको की शैली मे रेखा का पर्याप्त महत्व है। इसी के साथ वर्णाढ्यता का भी आकर्षण है। मैंसेचियो के समान गहरी छाया द्वारा गठनशीलता प्रदर्शित करके सम्पूर्ण चित्र की वर्णाढ्यता को कम करना अन्य कलाकारो ने उचित नहीं समझा।

फ्लोरेंस की चित्रकला के विकास मे पाओलो उच्चेलो (Paolo Uccello) का योगदान उल्लेखनीय है।

वह आयु मे दोमेनिको और मैसेचियो से बडा था। आरम्भ मे उसने घिबर्ती के यहाँ कार्य सीखा था। उसकी आरम्भिक कृतियाँ अन्तर्राष्ट्रीय गोथिक शैली के निकट है। शनै शनै. वह कला की तत्कालीन खोजो मे रुचि लेने लगा। गहरे छाया-प्रकाश के द्वारा गढ़नशीलता तथा आकृतियो को छोटा और नीचा करके दूरी प्रदर्शित करना उसे बहुत अच्छा लगा। किन्तु कुछ समय पश्चात् उसकी शैली मे किंचित् परिवर्तन हो गया और चटकीले रग एव छोटी आकृतियाँ उसके चित्रों मे बहुत दिखायी देने लगी।

पाओलो उच्चेलो (Paolo Uccello—१३९६/७-१४७५) को प्राचीन ग्रंथो मे परिप्रेक्ष्य का आविष्कर्ता भी कह दिया गया है। वास्तविकता यह है कि उसने इसके सिद्धान्तो का गम्भीरता से अध्ययन किया था और इससे भी अधिक स्थितिजन्य लघुता का। इससे उसकी शैली मे कुछ अन्तर भी आया किन्तु उसने कभी भी इसका उपयोग प्राकृतिक आकृतियो मे नही किया। १४२५ तक उसकी कलाकृतियाँ उपलब्ध नही होती यद्यपि १४१५ मे ही वह फ्लोरेण्टाइन कलाकारो के संघ मे सम्मिलित हो गया था। १४२५ में वह वेनिस गया। वहाँ पाँच वर्ष तक उसने सेण्ट मार्क के गिर्जाघर मे चित्रण किया। १४३१ मे वह फ्लोरेन्स लौट आया। १४३६ मे उसे एक अंग्रेजी सैनिक की मूर्ति के आधार पर एक अश्वारोही का भित्ति-चित्र बनाने को कहा गया। इस चित्र पर उसने दुबारा भी कार्य किया और इसमें स्थितिजन्यलघुता का पर्याप्त प्रयोग किया। इसके पश्चात् भी उसकी आकृतियाँ एक बिन्दु परिप्रेक्ष्य मे बँधी हुई नही हैं। स्थितिजन्य लघुता के सम्बन्ध मे उसने दूसरा प्रयोग 'चार धर्मदूत' (Four Prophets) नामक चित्र मे किया जो फ्लोरेंस के उपासनागृह (Cathedral) मे है। यहाँ उसने रगीन काँच की खिड़कियो की रचना भी की। १४४५ मे वह पादुआ गया। वहाँ उसने जो दैत्य चित्रित किये उनका प्रभाव मेण्टेग्ना पर माना जाता है। अब ये लुप्त हो चुके है। १४४५ के लगभग ही उसने फ्लोरेन्स मे अपना प्रसिद्ध चित्र प्रलय (The Deluge) बनाया। यहाँ वह १४३१ मे सृष्टि सम्बन्धी कुछ चित्र भी बना चुका था। इस चित्र मे परिप्रेक्ष्य का विशद प्रयोग किया गया है। तत्कालीन लेखक अलबर्ती के चित्रकला सम्बन्धी ग्रन्थ मे परिप्रेक्ष्य को समझाने मे जिन वस्तुओ का उदाहरण दिया गया है वे प्रायः इस चित्र मे अंकित हैं, अत' कुछ कलाविदो ने इस चित्र से उस ग्रन्थ का सम्बन्ध जोड़ने की भी चेष्टा की है। उफीजी, लन्दन तथा पेरिस में उसने युद्ध के दृश्य भी इसी शैली मे चित्रित किये है। इन चित्रो में आलंकारिकता है और इसके पश्चात् उसकी समस्त कृतियो मे यह आलंकारिकता लौट आयी है। उसने १४६९ तक चित्र रचना की।

दोनातेल्लो तथा मैसेचियो के प्रभाव के रहते हुए भी कलाकारो मे सयम तथा बारीकी की प्रवृत्ति आन्तरिक रूप मे चल रही थी। दोनातेल्लो ने अत्यन्त सवेग युक्त एव फिनिश-रहित चित्रो की रचना के द्वारा १४५३-६६ के मध्य इस प्रवृत्ति का विरोध भी किया था, किन्तु उसके प्रयत्नो का कोई परिणाम नही निकला। इन सभी प्रवृत्तियो का समन्वय हमे फ्रा फिलिप्पो लिप्पी (Fra Filippo Lippi १४०६-६९) की शैली मे उपलब्ध होता है। वह एक अनाथ बालक था और १४२१ मे फ्लोरेन्स के धार्मिक अनाथालय में भर्ती हुआ था। वहा मैसेचियो ने चित्र बनाये थे। लिप्पी पर इनका प्रभाव पडा और वह इस कला की ओर आकर्षित हो गया। १४३० मे उसके बनाए चित्र उपलब्ध हैं। इन पर मैसेचियो का जबर्दस्त प्रभाव है और इस सम्भावना से इन्कार नही किया जा सकता कि वह मैसेचियो का शिष्य भी रहा हो। १४३४ मे वह पादुआ गया। १४३७ मे चित्रित मैडोन्ना से यह स्पष्ट होता है कि उस पर से मैसेचियो का प्रभाव हट रहा था और दोनातेल्लो तथा फ्लेमिश कला का प्रभाव पड़ रहा था। पेरिस मे उसने जो चित्र अंकित किया उसमे दोमेनिको की स्टा लूसिया की वेदिका की मैडोन्ना के समान संयोजन के नियमो का पालन किया गया है। दोनों ओर की घुटनो पर झुकी आकृतियो से पिरामिड की रचना की गयी है। इसके पश्चात् वह गति के चित्रण मे विशेष रुचि लेने लगा। यहा तक उस पर से मैसेचियो का प्रभाव पूर्णत हट चुका था। उसका अन्तिम कार्य धार्मिक भावना तथा सगीतात्मकता की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है। वर्लिन

तथा नेपिल्स मे सुरक्षित ईसा के जन्म-सम्बन्धी चित्र इसके उदाहरण हैं। १४६६ मे उसने स्पोलेटो कैथेड्रल का चित्रण आरम्भ किया जो १४६९ तक चलता रहा, किन्तु अब वह बीमार रहने लगा था अत अधिकाश कार्य उसके शिष्यो ने ही किया। १४५२-६४ के मध्य वह एक ईसाई भिक्षुणी को लेकर भाग गया था। उससे फिलिप्पीनो नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। स्पोलेटो का शेष कार्य लिप्पी की मृत्यु के उपरान्त उसी ने पूर्ण किया। १४६० के आस-पास बोत्तिचेली भी उसका शिष्य रहा था।

फ्रा फिलिप्पो लिप्पी के चित्रो मे यद्यपि आकृतियाँ, पृष्ठभूमि एव अग्रभूमि बहुत स्पष्ट रहती है तथापि वह समस्त चित्र के आलकारिक प्रभाव को ही सर्वोपरि रखता है। उसमे यद्यपि बहुत स्पष्टता नही है तथापि मानवीयता उसके चित्रो मे पर्याप्त मुखर है। भाव-प्रदर्शन पर वह बहुत ध्यान देता है। फ्रा एजेलिको के पश्चात् भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से लिप्पी का ही नाम आता है। सयोजन तथा रेखाकन मे वह मैसेचियो तक नहीं पहुँच सका। रग तथा छाया-प्रकाश पर उसका पूर्ण अधिकार रहा है। लिप्पी ने धार्मिक चरित्रो के लिए अपने पडोसियो के चेहरो का उपयोग किया। उसने अपने समय मे प्रचलित वेश-भूषा को ही चित्रित किया। उसकी नारी-आकृतियो मे विशेष माधुर्य है। लिप्पी का मुख्य उद्देश्य धर्म को भौतिक आधार देना और धार्मिक पात्रो को वास्तविक बनाना था। उसने बौद्धिकता से बचने की भी चेष्टा की। उसके मैडोन्ना चित्रो मे गम्भीरता का अभाव है और शिशु ईसा की आकृति आदर्श-रहित है। उसकी कृतियो मे प्राय विभिन्न प्रकार के मनुष्य वेश-भूषा और भावो को प्रदर्शित करने की भी भावना है।

लिप्पी की कुमारी की वेश-भूषा ने अगले पचास वर्ष तक कलाकारो को प्रेरित किया। चित्रकारो ही नही, मूर्तिकारो तक पर इसका प्रभाव पडा। नाटकीय मुद्राओ तथा आलकारिक प्रभाव के मध्य सन्तुलन प्रदर्शित करने वाले उसके कथा-प्रधान भित्ति-चित्र भी पर्याप्त लोकप्रिय हुए। दोमेनिको घिरलैण्डियो की शैली मे इसके अनेक चिन्ह मिलते है।

एण्ड्रिया डेल कास्टेग्नो (Andrea del Castagno—१४२३ ?—१४५७) यह फ्लोरेन्स के कलाकारो मे बहुत प्रतिभाशाली था और परिप्रेक्ष्य का आचार्य था। इसने दोनातेल्लो के मूर्तिकला के प्रभावो को चित्रकला मे प्रयुक्त किया। अपने ग्रुप-व्यक्तिचित्रो के कारण यह बहुत प्रसिद्ध है। इसकी चित्र शृखला प्रसिद्ध पुरुष तथा महिलाएँ है जिनमे बैसेचियो, पेट्रार्क, दान्ते आदि के व्यक्तिचित्र भी हैं। दाऊद तथा अन्तिम भोजन का भी इसने चित्रण किया है।

पायरो देला फ्रान्सेस्का (Piero Della Francesca १४१०/२०—९२) यह कलाकार वर्तमान युग मे बहुत दिनो तक तिरस्कृत किया जाता रहा किन्तु अन्त मे लोगो ने इसे पन्द्रहवी शती के चतुर्थ चरण का सर्वाधिक लोकप्रिय चित्रकार स्वीकार किया। यद्यपि उसकी रगयोजनाएँ फीकी और कोमल हैं तथापि आकृतियो को उसने जो गणितीय पूर्णता प्रदान की और निकट तथा दूर की आकृतियो के अनुपात एव उनके मध्य के रिक्त स्थान का जो उत्तम प्रभाव प्रस्तुत किया, उसके कारण इस कलाकार का बहुत महत्व है। रेखाकन, परिप्रेक्ष्य, वातावरण तथा छाया-प्रकाश का उसे इतना अच्छा ज्ञान था कि उसके सामने लोग लियोनार्डो को भी भूल जाते थे। आज के घनवादी कलाकारो तथा सेजान आदि ने उनसे बहुत प्रेरणा ली है। पायरो का आरम्भिक उल्लेख दोमेनिको वेनेजियानो के साथ १४३९ ई० मे फ्लोरेंस में चित्राकन के सम्बन्ध मे उपलब्ध होता है। उसका जन्म टस्कनी के एक छोटे से गाँव मे हुआ था और उसकी आरम्भिक शिक्षा वेनेजियानो, उच्चेल्लो, कास्टेग्नो तथा मैसेचियो से प्रभावित हुई। अपनी जन्म-भूमि मे वह नगर पालिका का सदस्य भी रहा जिससे अनुमान किया जा सकता है कि उसमे बौद्धिक प्रौढता थी। वहीं उसने मेडोन्ना का एक बहुफलकीय चित्र भी बनाया था जिसमे मेडोन्ना अपने वस्त्र के किनारे से ढककर मानवता की रक्षा कर रही है। मानवता के प्रतीक रूप मे कुछ स्त्री-पुरुष चित्रित किये गये

हैं। १४४५ मे आरम्भ होकर यह चित्र १४६२ के लगभग पूर्ण हुआ। लन्दन मे सुरक्षित बपतिस्मा सम्बन्धी चित्र उसकी आरम्भिक शैली का द्योतक है जिसमे शास्त्रीयता के चिन्ह उपस्थित हैं। १४५० मे उसने सन्त जैरोम का एक चित्र बनाया जो अब क्षत-विक्षत अवस्था मे बर्लिन संग्रहालय मे है। १४५१ ई० मे उसने एक भित्ति-चित्र भी अंकित किया जिसमे सम्मात्रा और पुनरावृत्ति के प्रति उसकी रुचि झलकती है। १४५२ मे उसने अरेज्जो के सेण्टाफ्रासेस्को के प्रार्थनाभवन मे वास्तविक-सूली (The True Cross) विषय का चित्रण आरम्भ किया। पायरो की ख्याति प्रधानत. इन्ही चित्रो पर आधारित है। इनका विषय बहुत उलझा हुआ है। स्वर्ण-कथा (The Golden Legend) के अनेक प्रचलित रूपो पर आधारित इस आख्यान को उसने सरल करने की भी चेष्टा की है। इससे सम्बन्धित दो युद्धो को दोनो ओर आमने-सामने चित्रित करके उसने सम्मात्रा के प्रति अपनी पुरानी रुचि प्रदर्शित की है। ये चित्र शताब्दियो तक अज्ञात रहे और धर्माधिकारियो ने इनका सुधार करने मे अन्य चित्रकारो से बहुत कम कार्य लिया अत. इनका मूल-रूप पर्याप्त सुरक्षित रह सका है। इनसे पायरो पर वेनेजियानो तथा फ्लोरेंस की कला के प्रभाव का अच्छा अनुमान लगाया जा सकता है। १४५९ मे ये चित्र पूर्ण हुए और पायरो रोम चला गया। उसने ईसा का पुनः जीवित होना तथा उर्बिनो के ड्यूक, डचेज एव मित्रमंडली का एक द्विफलक चित्रित किया। इन व्यक्ति-चित्रो के तैल-चित्रण टैक्नीक पर फ्लीमिश-कला का प्रभाव है। इस समय पायँरो विशाल वेदिका-चित्रो की रचना कर रहा था जिनके कुछ अश अवशिष्ट हैं। १४७२—७५ के मध्य उसने दानदाता के रूप में उर्बिनो के ड्यूक तथा मैडोन्ना का एक चित्र अंकित किया। दूसरा चित्र ईसा के जन्म का है। १४७८ मे उसने चित्रांकन छोड दिया। इस समय से वह गणित एव परिप्रेक्ष्य मे बहुत रुचि लेने लगा और उसने इस विषय पर 'परिप्रेक्ष्य की समस्या' एव 'चार नियमित शरीर' नामक दो पुस्तकें लिखी। सम्भवतः वह अन्धा भी हो गया था। १४९२ ई० तक वह जीवित रहा।

पायरो की शैली मे वेनेजियानो के समान घनत्व के साथ-साथ शास्त्रीय वास्तु की पृष्ठ-भूमि उपलब्ध होती है। उसने उर्बिनो के राजभवन के निर्माण मे परामर्श दिया था और पुरातत्व मे भी उसकी रुचि थी तथापि व्यावहारिक रूप मे वह चित्रकार ही था। उसने मानवाकृति-समूहो को इस प्रकार से सयोजित करने की चेष्टा की है कि उनसे वास्तु के समान घनत्वपूर्ण आकारो का बोध होता है। दृश्य की विभिन्न गहराइयो की वस्तुओ को परस्पर सम्बन्धित करके छाया-प्रकाश एव सयोजन का ऐसा स्वरूप उपस्थित किया गया है कि अप्रधान वस्तु स्वय चित्र के धरातल पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है। पायरो की कला ने एण्ड्रिया मेण्टेग्ना को प्रभावित किया।

सान्द्रो बोत्तिचेली—(Sandro Botticelli, १४४५/४७—१५१०)—यह फ़िलिप्पो लिप्पी का शिष्य और पन्द्रहवी शती के अन्त मे फ्लोरेंस का प्राय अकेला ही कार्य करने वाला प्रसिद्ध कलाकार था। लिप्पी के अतिरिक्त १४७० के आस-पास उस पर एण्टोनियो पोलैउओलो (Antonio Pollaiuolo) का भी प्रभाव पडा था। वह घिरलैण्डियो का समकालीन था। उसकी कला को विक्टोरियन युग में अधिक प्रगतिशील एवं स्वाभाविक माना गया था किन्तु वर्तमान कलाविद ऐसा नहीं समझते। उसमे किंचित् मानसिक विकृति भी थी और वह पन्द्रहवी शती के अन्तिम चरण की धार्मिक अशान्ति से परेशान भी था। कला के क्षेत्र मे वह भावाभिव्यक्ति के हेतु रेखा को बहुत महत्वपूर्ण मानता था। उसकी यह मान्यता तत्कालीन फ्लोरेण्टाइन कलाकारो की प्रवृत्ति की सूचक है। फिर भी उसकी शैली प्राचीन कला पर आधारित है। उसने अन्योक्ति-रूपक का भी प्रयोग किया है और प्राचीन कथानको को ईसाई भावना से देखा है। 'प्राइमावेरा' तथा 'वीनस का जन्म' (फलक ८—क) उसकी ऐसी ही कलाकृतियाँ हैं। १४८१-८२ मे वह रोम गया और वहाँ घिरलैण्डियो के साथ सिस्टाइन चैपल मे भित्ति-चित्र अंकित किये। १४८० से १५०० ई० के मध्य उसने एक विशाल चित्रशाला स्थापित की और सौम्य भक्ति भाव से युक्त असख्य मैडोन्ना चित्रो का सृजन किया। उसके रेखाचित्र के आधार पर ही अनेक चित्र बनाये जाते थे और इस प्रकार

उसने पर्याप्त धन अर्जित कर लिया। उन्नीसवी शती मे ऐसे कुछ जाली चित्र भी बनाने की चेष्टा की गयी।

१५०० ई० के लगभग उसकी शैली तत्कालीन कलाकारो लियोनार्डो तथा माइकेल एंजिलो से इतनी भिन्न थी कि उसकी लोकप्रियता कम होने लगी। उसके जीवन के अन्तिम दस वर्ष रहस्यपूर्ण हैं। सम्भवत: इस अवधि मे उसने 'पियटा' चित्रो का निर्माण किया जो विभिन्न सग्रहालयो मे बिखरे हुए हैं। रहस्यात्मक ईसा-जन्म भी इसी समय की कृति है। १४६०—१५०० की अवधि मे उसने दान्ते के काव्य का भी चित्रण किया था। ये रेखा-चित्र अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के हैं और शरीर की वाह्य सीमा के प्रति कलाकार की सूक्ष्म सवेदन-शीलता को व्यक्त करते हैं। उसकी चित्रशाला मे लिप्पी के पुत्र फिलिप्पीनो ने भी कार्य किया था।

बोत्तिचेली को प्रमुखत: पेनल चित्रकार कहा जाता है। उसके चित्रो मे रगो, परिधानो एव प्राचीन भग्नावशेषो के प्रति विशेष आग्रह दिखाई देता है। प्राकृतिक वातावरण के अकन मे फ्लीमिश कला का प्रभाव है किन्तु रेखा की स्पष्टता बोत्तिचेली मे बहुत अधिक है। उसकी आकृतियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानो रेखाचित्र बनाकर आन्तरिक भागो मे रग भर दिये गये हो। इनमे कोमल गठनशीलता भी उत्पन्न की गयी है। उसकी मुखाकृतियाँ प्राय गम्भीर और उदास जैसी प्रतीत होती हैं। अतिशयतापूर्ण मुद्राओ तथा घुमाव-फिराव युक्त रेखाओ के द्वारा इन्हे और भी वल दिया गया है। बोत्तिचेली की ये विशेषताएँ फिलिप्पीनो की शैली मे भी मिलती हैं। बोत्तिचेली तथा घिरलैंडियो के चित्रों मे रेखात्मकता का प्रमुख कारण यही है कि दोनो ही आरम्भ मे स्वर्णकारो के यहाँ कार्य सीखे थे। अन्य कलाकारो ने भी अपने जीवन का आरम्भ स्वर्णकारी सीखने से ही किया था। सम्भवत. रेखाकन मे कुशलता प्राप्त करने के हेतु आरम्भ मे यह कार्य सीखना परम्परा से ही अनिवार्य समझा जाता था। चित्र की वास्तविकता और सफल पूर्णता का आधार आरम्भिक रेखाचित्र माना जाता था। विशाल भित्ति-चित्रो के हेतु स्केच अथवा कार्टून बनाना इसी हेतु अनिवार्य हो गया था।

इस विकास को शृ खलाबद्ध करने वाला कलाकार एण्टोनियो पोलैउओलो (Antonio Pollaiuolo-१४३२-९८) था। वह तत्कालीन फ्लोरेंस का एक प्रमुख चित्रकार था। वह मूर्तिकार एव स्वर्णकार भी था और उसका कार्य बहुत कम होते हुए भी पर्याप्त महत्वपूर्ण है। सवेदनपूर्ण रेखात्मक शैली मे उसने एक रेखा-चित्रावली का निर्माण किया था जिसके कारण वह मानव-शरीर को विभिन्न भाव-भगिमाओ मे बड़ी सरलता से चित्रित करने योग्य हो गया। उसकी केवल दो कृतियाँ शेष हैं: एक नग्न पुरुषो का युद्ध और दूसरी सन्त सेवाशियान का उत्सर्ग। प्रथम चित्र मे नग्न पुरुषाकृतियो को विभिन्न मुद्राओं मे रेखाकित करके शरीर-शास्त्र, गठनशीलता एव अनुपातो को प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय चित्र शरीर शास्त्र का अध्ययन करने के उपरान्त विभिन्न मुद्राओ को विभिन्न विषयो से सम्बन्धित करने की युक्ति का उदाहरण है। प्रथम चित्र के द्वारा यह अनुमान भी सरलतापूर्वक किया जा सकता है कि स्वर्णकारी और रेखा-चित्रकला परस्पर कितनी सम्बद्ध हैं। दो अन्य चित्र हाइड्रा को मारते हुए हरक्यूलीज तथा सन्त डेविड भी उसके द्वारा अ कित कहे जाते हैं।

एण्टोनियो की यह कुशलता विशेष रूप से एक कलाकार को महान् बनाने मे योग-दायिनी सिद्ध हुई। यह कलाकार था लियोनार्डो दा विंची (Leonardo da Vinci)। यद्यपि वह कभी भी एण्टोनियो का शिष्य नही रहा किन्तु दोनो के लक्ष्यो में इतना साम्य है कि किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध उनमे अवश्य अनुमानित किया जा सकता है। लियोनार्डो ने आरम्भ मे "मागी की स्तुति" (Adoration of Magi) नामक चित्र के हेतु अनेक स्केच रेखात्मक शैली मे ही अ कित किये थे। सन्त सेवाशियान के उत्सर्ग वाले चित्र मे एण्टोनियो ने अपने समकालीन कुछ प्रमुख कलाकारो के ही समान पृष्ठभूमि में प्राचीन यूनानी भवनो के भग्नावशेष अंकित किये थे। इस प्रकार की पृष्ठभूमि चित्रित करके एक ओर ये कलाकार प्राचीन कला के प्रति अपनी रुचि प्रदर्शित करना चाहते थे किन्तु दूसरी ओर उन्हें आशिक रूप मे प्रस्तुत करके अपनी मौलिकता तथा चित्र के सम्पूर्ण प्रभाव को नवीनता के

साथ प्रस्तुत करना चाहते थे। यह प्रवृत्ति केवल फ्लोरेन्स मे ही थी अन्य स्थानो पर नही और यही विशेषता वास्तव मे पुनरुत्थान की आत्मा कही जा सकती है। १४०० ई के लगभग से उत्पन्न होकर यह प्रवृत्ति १५०० ई के लगभग पूर्णता को पहुँची। इसी हेतु इसी समय की कला-प्रवृत्ति चरम पुनरुत्थान (High Renaissance) कही जाती है। लियोनार्डो इसका एक अग्रदूत था।

वेरोचियो (Andrea del Verroccio, १४३५—१४८८ ई.)—चित्रकला के इतिहास मे इसका विशेष स्थान है। इसका केवल एक प्रामाणिक चित्र ही अवशिष्ट है "ईसा का बपतिस्मा"। इसमें भी एक दूत तथा पृष्ठ-भूमि का अकन युवा लिओनार्डो का माना जाता है। वेरोचियो का प्रभाव लियोनार्डो, पेरूजिनो तथा घिरलैण्डियो पर पड़ा। उसकी चित्रशाला में तेरह वर्ष की आयु मे लियोनार्डो ने प्रवेश किया था और दस वर्ष तक वह वहाँ रहा। वेरोचियो की प्रसिद्धि का प्रमुख आधार शान-शौकत से युक्त डेविड की मूर्त्ति है।

पेरूजिनो (Perugino, १४४५ ?—१५२३)—पेरुजिनो की कृतियो में उसका स्वभाव तथा व्यक्तित्व व्यजित नही होता। वह निरीश्वरवादी था किन्तु उसके धार्मिक चित्र बहुत गम्भीर, मधुर तथा सुन्दर हैं। कोमल तथा विस्तृत पृष्ठभूमियो मे उसने सुन्दर मैडोन्नाएँ भी अंकित की हैं। वह राफेल का गुरू था और इस प्रकार उसने इटली के अनेक कलाकारो को भी प्रभावित किया था। उसने लियानार्डो के साथ फ्लोरेन्स मे वैरोचियो से कला की शिक्षा भी प्राप्त की थी। रोम के सिस्टाइन चैपिल मे उसने भित्ति-चित्र बनाये। कुछ समय तक वह इटली का सर्वोच्च कलाकार बना रहा। उसकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं :—फासेस्को डेले ओपेअर, सूली, शव दफनाना, सन्त माइकेल तथा पवित्र परिवार।

लूका सिग्नोरेल्ली (Luca Signorelli, १४४५ ?—१५२३)—राफेल के पूर्व मध्य इटली मे दो महान कलाकार थे—एक पेरूजिनो, दूसरा सिग्नोरेल्ली। सिग्नोरेल्ली के आरम्भिक जीवन के विषय मे कुछ भी ज्ञात नही है। इसका जन्म कोर्टोना मे हुआ था और शिक्षा पायरो देला फ्रासेस्का के साथ हुई थी; किन्तु इस पर सबसे अधिक प्रभाव पोलैउओल्लो के शरीर शास्त्र के नियमो का था। सिग्नोरेल्ली का सुप्रसिद्ध चित्र "संसार का अन्त" है जिसमें नग्न स्थूल मानवाकृतियो को अनेक शक्तिशाली एव भयानक मुद्राओ मे चित्रित किया गया है। कहा जाता है कि उसके एक पुत्र को किसी ने मार दिया। उसने उसके मृत शरीर का एक स्केच बनाया और उसे बाद मे अपने एक चित्र 'The Entombment" में समाविष्ट कर लिया। यह चित्र आजकल कोर्टोना मे हैं। राफेल ने सिग्नो-रेल्ली के चित्रो के अवयव संगठन की अनुकृति की। माइकेल एंजिलो पर उसकी सुडौल अनावृताओ का प्रभाव पड़ा। उसके प्रसिद्ध चित्र हैं :—फरिश्ता, अभिशप्त आत्माएँ तथा संसार का अन्त।

दोमेनिको घिरलैण्डियो (Domenico Ghirlandio, १४४६—१४९४)—यह अपनी परिस्थितियो से तृप्त रहने वाला कलाकार था। उस समय फ्लोरेन्स कला के क्षेत्र में बहुत उन्नति पर था और इसने इस अवसर का सर्वोत्तम लाभ उठाने का प्रयत्न किया। यह स्वर्णकार का पुत्र था और इसका लक्ष्य दूसरो को खुश रखना था। मैडोन्ना के एक चित्र मे इसने चित्र बनवाने वाले संरक्षक के परिवार जनो के इतने अधिक चित्र अंकित कर दिये हैं कि चित्र मे भीड जैसी लग गयी है। इसकी चित्रशाला एक प्रकार का कारखाना थी जहाँ हर प्रकार का चित्रण किसी भी समय कराया जा सकता था। वहाँ से कोई भी ग्राहक निराश नही लौटता था। एक टोकरी का हैंडिल रंगने से लेकर ईसा के अन्तिम भोजन तक के चित्र इसके यहाँ बनते थे। किन्तु घिरलैण्डियो की ख्याति का मूल कारण उसके व्यक्ति-चित्र हैं जिनका प्रभाव राफेल पर भी पड़ा है। अपने एक शिष्य की प्रतिभा से वह अपने समय मे अवगत नही हो सका जो माइकेल एंजिलो के नाम से विख्यात हुआ। इसके प्रसिद्ध चित्र हैं :—जिओ-वान्ना तोर्नाबुओनी, बालक और वृद्ध, कुमारी का जन्म।

चरम पुनरुत्थान

जैसा कि आरम्भ मे ही कहा जा चुका है, इस युग मे केवल प्राचीन यूनानी शास्त्रीय कला का पुनरुत्थान ही नही अपितु नया जन्म हुआ था। यह यूनानी विद्याओ के अध्ययन से कुछ अधिक वस्तु थी। इसमे यूनानी दर्शन, इटालियन बुद्धि, ईसाइयत तथा वास्तविक जगत के प्रयोगात्मक ज्ञान—इन सबका समन्वय था। इसके परिणामस्वरूप इटालियन बुद्धिवाद नैतिकता के बन्धनो मे बँधा न रह सका। फिर भी इसने सौंदर्य का अभिनन्दन और धर्म का सम्मान किया। यह युग सचमुच विरोधो के समन्वय का युग था जिसमे बुद्धि की प्रधानता और धर्म एव नैतिकता की गौणता थी।

इस युग ने यूनानी दर्शन का पुनर्निर्माण किया और उसके साहित्य को अपने साँचे मे ढाला। साथ ही सम्पूर्ण विश्व के रहस्यो को जानने का यत्न किया। धर्म की शक्ति शनै शनै क्षीण होने लगी थी और भौतिक जीवन को अधिक महत्व दिया जा रहा था। सोलहवी शती तक इटली में यही दशा रही। उसके पश्चात् नैतिकता और धर्म मे से श्रद्धा-विश्वास निकल जाने तथा सामाजिक जीवन मे भ्रष्टाचार बढ जाने से कलाओ का भी पतन होने लगा।

चरम पुनरुत्थान काल मे यद्यपि धर्म का भी चित्रण हुआ पर वह गोथिक कला के समान नही था। चित्रकार के हाथो मे कला का उद्देश्य केवल बाइबिल की शिक्षा न रह कर शुद्ध सौन्दर्य का सृजन हो गया। चित्र मे रग और रूप का महत्व हो गया, विषय का नही। भौतिक ससार मे इसने आकर्षण और प्रेम उत्पन्न कर दिया और जब चर्चो मे चित्रकारो को दीवारें सजाने का कार्य सौंपा गया तो उन्होने कला के इस नये रूप का ही आश्रय लिया। इस प्रकार एक ओर जहाँ इस नई कला पर भी धर्म की मुहर लगाई गयी वही दूसरी ओर इसने धार्मिक बन्धनो से स्वय को सर्वथा मुक्त कर लिया। पुनरुत्थान काल की कला की विवरणात्मकता को त्याग देने से ही चरम पुनरुत्थान शैली का विकास हुआ।

लियोनार्डो दा विन्ची (Leonardo da Vinci-१४५२-१५१९)—चरम पुनरुत्थान के तीन फ्लोरेंस वासी कलाकार प्रमुख हैं—लियोनार्डो, माइकेल एंजिलो तथा राफेल। इनमे लियोनार्डो केवल कलाकार ही नही वरन् सम्पूर्ण विश्व की एक महान् विभूति हो गया है। उसकी बौद्धिक क्षमता इतनी थी कि उसने शरीर शास्त्र, अन्तरिक्ष विद्या तथा अन्य अनेक क्षेत्रो मे उन सम्भावनाओ की कल्पना करली थी जिनका आगे चलकर सफल अनुसधान किया गया। उसकी रुचियो और कार्यक्षेत्र की विविधता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उसने जिन अनेक कार्यो को आरम्भ किया उनमे से बहुत कम को पूर्ण कर पाया। शरीर मे रक्त के परिभ्रमण की खोज उसी ने की थी, युद्ध के हेतु सशस्त्र गाडी का आविष्कार भी उसी ने किया था, अनेक प्रकार के वायुयानो तथा हेलीकोप्टर की योजना बनायी थी तथा पनडुब्बी की कल्पना की थी। किन्तु इनमे से वह किसी भी खोज को पूर्ण नही कर पाया। उसने हजारो रेखा-चित्र बनाये, अनेक चित्र रगे किन्तु केवल थोडे से चित्रो को ही पूर्ण कर सका। उसकी कृतियो मे अदृश्य के दर्शन की लालसा दृष्टि-गोचर होती है।

यद्यपि उसने धार्मिक चित्र बनाये हैं पर वह स्वय धार्मिक न था। उसे प्राचीन यूनानी मूर्तियो की श्रेष्ठता का विचार करने की भी चिन्ता न थी और उसके लिये वे प्रकृति की जूठन थी। उसे भौतिक जीवन से विशेष प्रेम था और वैज्ञानिक विश्लेषण के पश्चात् ही वह वस्तुओ की सुन्दरता का चित्रण करता था। यद्यपि उसने तैल-चित्रण बहुत किया तथापि टेक्नीक की दृष्टि से वह अपने युग से आगे नहीं बढ सका।

बहुत कम काम करने पर भी मिलन तथा फ्लोरेंस के अनेक कलाकारो ने उसका अनुकरण किया। उसने कला को धार्मिक पक्षपात रहित स्तर पर उतारा और कलाकार का सामाजिक आदर बढाया। उसकी दृष्टि मे कलाकार व्यवसायी न होकर न्याय, सत्य आदि सामाजिक मूल्यो की प्रतिष्ठा करता है।

लियोनार्डो फ्लोरेंस के एक वकील का अवैध पुत्र था। उसका जन्म विन्ची मे हुआ था। आरम्भ मे उसने वैरोचियो से कला की शिक्षा ग्रहण की। वैरोचियो प्रसिद्ध मूर्तिशिल्पी दोनातेल्लो का शिष्य था। कहा जाता है कि जब लियोनार्डो ने उसके साथ बपतिस्मा के एक चित्र मे बायी ओर का देवदूत चित्रित किया तो वैरोचियो ने चित्रांकन करना ही छोड दिया। १४७६ तक वह वैरोचियो के साथ रहा। इसके पूर्व १४७२ में ही वह चित्रकारो के संघ का सदस्य बन चुका था और १४७३ मे एक दृश्य-चित्र बना चुका था। इस दृश्य-चित्र से पृथ्वी की रचना मे उसकी रुचि का पता चलता है। वस्त्रो की सिकुडनो को नवीन ढग से प्रस्तुत करने के सम्बन्ध मे भी उसने अनेक प्रयोग किये थे। म्युनिख के मैडोन्ना चित्र मे उसने तैल चित्रण-टेक्नीक सम्बन्धी नवीन प्रयोग किया है। इसमे दानेदार धरातल के पात्र पर ओस की बूँदें अंकित हैं जिन्होने उसके समकालीन कलाकारो को आश्चर्य मे डाल दिया था। १४७४ मे उसने एक व्यक्तिचित्र अंकित किया जिसमे हाथ भी दर्शाये गये थे। वैरोचियो भी हाथो मे फूल लिए एक महिला का इसी प्रकार का चित्र बना चुका था और इसी परम्परा मे लियोनार्डो ने आगे चल कर 'मोना लिसा' नामक विश्व-प्रसिद्ध चित्र अंकित किया। १४८१ ई. के लगभग उसकी पर्याप्त ख्याति हो गयी होगी क्योंकि उसे फ्लोरेंस के निकट ईसाई सन्तो के एक मठ मे राज्याधिकारियो द्वारा ईसा की वन्दना (Adortion of the kings) विषय के चित्रण के हेतु आमन्त्रित किया गया। इस चित्र मे वे सभी विशेषताएँ मिलती हैं जो पन्द्रहवी शती के अन्त मे कला का लक्ष्य बन चुकी थी। चित्र का सयोजन पिरामिड के समान ठोस है। उसमे गहराई भी है और गतिशीलता भी। यह चित्र पूर्ण नही हो पाया यद्यपि इससे सम्बन्धित अनेक स्केच उसने बनाये। १४८३ मे वह मिलन पहुँचा। मिलन के ड्यूक को उसने एक पत्र भेजा था जिसमें एक सैनिक, इन्जीनियर, मूर्तिकार, चित्रकार, दरबारी मसखरे, नगर-योजक आदि अनेक दृष्टियो से उसने अपनी योग्यता का परिचय दिया था और ड्यूक के दरबार मे नौकरी की प्रार्थना की थी। मिलन पहुँचकर उसने श्वेत रोमयुक्त कोट वाली महिला का चित्र अंकित किया। इस चित्र मे अंकित युवती निश्चय ही ड्यूक की पत्नी है। शैलखण्डो की कुमारी (Virgin of the rocks) (फलक १०-क) शीर्षक से उसने जो दो चित्र अंकित किये उनके सम्बन्ध मे यह धारणा है कि उन्हे एक साथ आरम्भ किया गया था। किन्तु वास्तव मे पेरिस संग्रह वाला चित्र पहले और नेशनल गैलरी लन्दन वाला चित्र बाद मे अंकित किया गया था, क्योंकि पहले चित्र मे फ्लोरेंस की परम्परागत शैली का अधिक प्रभाव है।

लियोनार्डो मिलन मे १४९९ तक रहा। प्रधानत वह ड्यूक के दरबार की विभूति के रूप मे रहा। ड्यूक के पिता की वह अश्वरोही प्रतिमा विशाल आकार मे निर्मित करना चाहता था किन्तु यह कार्य भी पूर्ण न हुआ। अश्व की केवल मिट्टी की प्रतिमा ही बन पायी। इतना अवश्य है कि उसने अश्वो के अनेक सुन्दर रेखाचित्र बनाये। मिलन के ही एक उपासना-गृह मे उसने ईसा का अन्तिम भोजन (The Last Supper) नामक चित्र आरम्भ किया। १४९७ ई. में वह इस पर कार्य कर रहा था। एक तो वह बहुत धीरे-धीरे कार्य करता था, दूसरे उसने फ्रेस्को के स्थान पर तैल पद्धति मे प्लास्टर की भित्ति पर कार्य करने का प्रयोग आरम्भ किया था—इन्ही दोनो कारणो से यह चित्र स्वयं उसके सामने ही दीवार पर से उखडने लगा था। चरम पुनरुत्थान काल का यह ऐसा प्रथम चित्र है जिसमे एक तनावपूर्ण स्थिति और ईसा के शिष्यो की मुखाकृतियो की मनोवैज्ञानिकता पर बल दिया गया है। पन्द्रहवी शती मे फ्लोरेण्टाइन चित्रकला इस प्रकार के विषयो तथा परिस्थितियो के चित्रण से अनभिज्ञ थी। लियोनार्डो के पश्चात् की पीढी ने यह स्वीकार किया कि कलाकार विचारक और स्रष्टा होने के नाते दार्शनिक से किसी प्रकार कम नही होता और वह ऐसा कारीगर मात्र नही जो धन के बदले कुछ निश्चित क्षेत्र मे प्रतिदिन रङ्ग भरे। इस प्रकार लियोनार्डो की कला की पर्याप्त प्रशसा की गयी है। वास्तव मे लियोनार्डो ने कलाकार की प्रतिष्ठा को बढाने मे बहुत योग दिया है।

१४९९ मे मिलन पर फ्रेंच अधिकार हो गया और लियोनार्डो फ्लोरेंस लौट आया। १५०२-३ मे वह सीजर बोरजिया का सैनिक इन्जीनियर रहा। इस समय शव-गृहो मे जाकर उसनें अनेक शवो का अध्ययन

किया जिसके फलस्वरूप वह अपने समय का सर्वश्रेष्ठ शरीरविद् (Anatomist) कहा जाने लगा। इसी समय उसे माइकेल ए जिलो के साथ फ्लोरेंस की विजयो की स्मृति-स्वरूप युद्ध-दृश्यो के दो विशाल भित्ति-चित्र अंकित करने को कहा गया। दोनो कलाकारो मे अनबन रहती थी और वे एक दूसरे को चाहते भी नहीं थे फलत. ये चित्र भी पूर्ण न हो सके। लियोनार्डो ने प्राचीन मोम चित्रण की पद्धति का भी प्रयोग किया जिसमे वह असफल रहा। १५०३ में आरम्भ हुआ यह कार्य १५०५ मे रोक दिया गया। इसी अवधि मे वह दो वयस्को तथा एक-दो शिशुओ के चित्रण द्वारा संश्लिष्ट सयोजन के प्रयोग करता रहा। ये चित्र प्राय मैडोन्ना तथा शिशु ईसा के हैं जिनमे कोई सन्त भी साथ-साथ चित्रित है। इस प्रकार के केवल दो चित्र (सम्भवत प्रथम और अन्तिम) ही अवशिष्ट हैं। १५००-१५०४ के मध्य ही उसने फ्लोरेंस के एक अधिकारी की पत्नी का व्यक्ति-चित्र अंकित किया। यही विश्वप्रसिद्ध मोनालिसा है (फलक १०-ख)। इस नारी के विषय मे अनेक प्रकार की बातें कही जाती हैं और चित्र मे अङ्कित इसकी मुस्कान भी रहस्यपूर्ण-सी लगती है। तकनीकी दृष्टि से आँखो तथा होठो की रेखा बार-बार खीचने से मुस्कान का यह प्रभाव स्वय ही उत्पन्न हो गया है। तैल पद्धति का इसमे उत्कृष्ट प्रयोग है और छाया प्रकाश के धूम्र सदृश प्रभाव हेतु यह चित्र द्रष्टव्य है। लियोनार्डो का विचार था कि छाया तथा प्रकाश परस्पर मिले हुए होने चाहिये, उनके मध्य किसी सीमा-रेखा का आभास न हो। यह चित्र मुखाकृति की गढ़नशीलता का आदर्श माना जाता है।

१५०६ मे लियोनार्डो पुन मिलन गया। उसके अन्तिम वर्ष वैज्ञानिक शोधो मे व्यतीत हुए। १५०७ मे उसने सन्त जोन का एक चित्र बनाया। इस चित्र मे लियोनार्डो के दोष उभर कर आ गये हैं। घनत्व उत्पन्न करने की प्रवृति के कारण चित्र मे छाया काले रङ्ग के समान हो गयी है। छाया-प्रकाश को महत्व दिया गया है अत रङ्ग का महत्व पूर्णत. समाप्त हो गया है। भावाभिव्यजन की सूक्ष्मता दर्शाने के प्रयत्न मे मुखाकृतियो मे बनावटीपन आगया है। उसने जो अनेक रेखा-चित्र बनाये थे, उनका सग्रह करके परवर्ती कलाविदो ने एक पुस्तक भी प्रकाशित करदी है।

माइकेल ए जिलो (Michelagnelo Buonarroti — १४७४-१५६४) चरम पुनरुत्थान का दूसरा महान् कलाकार माइकेल ए जिलो था। फ्लोरेंस राज्य के केपरीज (Capres) नामक स्थान पर उसका जन्म हुआ था जहाँ उसके पिता एक रेजीडेण्ट न्यायाधीश थे। उसका जन्म होने के कुछ ही समय बाद परिवार को फ्लोरेंस स्थानान्तरित होना पड़ा। १४८८ मे पारिवारिक विरोध का सामना करते हुए उसने दोमेनिको घिरलैण्डियो की चित्रशाला मे कार्य सीखना आरम्भ किया। तीन वर्ष तक वह वहाँ रहा। आगे चलकर अपने जीवन मे उसने इस तथ्य को छिपाने की चेष्टा भी की, क्योकि वह नही चाहता था कि उसके शिक्षको मे किसी साधारण कलाकार का नाम भी लिया जाये। कुछ ही समय पश्चात् वह लोरेंजो द मैडिसी के सरक्षण मे बर्तोलदो के पास कार्य सीखने पहुँच गया। फिर भी सम्भवत. उसने भित्ति-चित्रण टेकनीक घिरलैण्डियो से सीखा था और वही उसने प्राचीन आचार्यों की रेखानुकृतियाँ बनायी थी। इनमे से जिओत्तो तथा मैसेचियो की अनुकृतियाँ लूव्र, म्यूनिख एव वियना मे हैं। १४९२ मे उसका सरक्षक लोरेंजो चल बसा। माइकेल ए जिलो बोलोना चला गया और १४९६ मे रोम पहुँच गया। वहाँ उसने अपनी प्रथम महत्वपूर्ण कृतियाँ (बाकुस एव सेण्ट पीटर के चर्च मे पियटा की प्रतिमाए) गढी। यह कार्य पन्द्रहवीं शती के अन्त तक पूर्ण हो पाया। ये मूर्तियाँ बहुत सँवार कर बनाई गयी हैं और माइकेल ए जिलो के शरीर शास्त्र एव वस्त्रो की सिकुड़नों के पूर्णज्ञान को प्रकट करती हैं। पियटा के निर्माण से उसने एक नारी की गोद मे लेटे हुए पूर्ण विकसित पुरुष के अकन की समस्या को भी सुलझाया जिसमे उस शताब्दी के समस्त कलाकारो ने प्रयत्न किया था। माइकेल ए जिलो ने इसे पिरामिड के रूप मे प्रस्तुत किया। इस प्रतिमा की रचना से उसका यश बहुत फैल गया। १५०१ मे वह प्रसिद्ध मूर्ति-शिल्पी के रूप मे फ्लोरेंस लौटा और वहाँ १५०५ ई० तक रहा। इस

अवधि मे वह बहुत व्यस्त रहा। १५०१-४ के मध्य उसने डेविड की मूर्ति बनाई, ब्रूजेज मैडोन्ना का निर्माण किया और १५०३ में बारह सन्तो की प्रतिमाएँ गढने का कार्य अपने हाथ मे लिया जिसे वह पूर्ण नही कर सका। फ्लोरेंस के ससद भवन हेतु उसने वह भित्ति-चित्र भी १५०४ ई० मे बनाना आरम्भ किया जिसका कार्यभार उसे लियोनार्डो के साथ-साथ सौंपा गया था। यह कार्य पूर्ण न हो सका और दो महान् स्थानीय कलाकारो द्वारा महान् कलाकृति की रचना का स्वप्न अधूरा रह गया। इससे सम्बन्धित पीसा के युद्ध का दृश्य अ कित करने के हेतु उसने जो रेखाचित्र अ कित किये थे वे अब "स्नानार्थी" (Bathers) के नाम से विख्यात है। इनमे नग्न मानव शरीर को पूर्ण आकारों मे चित्रित करके उसी के द्वारा उन अनेक भावो को व्यजित किया गया है जिनका चित्रण एक कलाकार द्वारा सम्भव है। ये चित्र वर्षों तक फ्लोरेंस के प्रत्येक नवयुवक चित्रकार हेतु दर्शनीय एव अनुकरणीय बने रहे और इटली की परवर्ती कला पर इनका व्यापक प्रभाव पडा। इन्ही की शैली मे आगे चलकर उसने सिस्टाइन चैपल की छत मे सृष्टि-सम्बन्धी चित्रो का अकन आरम्भ किया (फलक ९-क)। यह कार्य उसे बीच मे ही छोडना पडा क्योंकि पोप जूलियस द्वितीय अपने जीवन-काल में ही अपने लिए एक सुन्दर समाधि का निर्माण कराने को आतुर था। १५०६ के लगभग इस मकबरे का बनना आरम्भ हुआ जो १५४५ तक कई बार नई योजनाओ मे ढाला गया। माइकेल एँजिलो ने कोई चालीस वर्ष तक इसका निर्माण अपने निर्देशन में कराया और १५४५ में जब वह सत्तर वर्ष का था, उसने पोप की एक विशाल कास्य-प्रतिमा भी इसके हेतु निर्मित की।

इसी बीच १५०८ ई० मे वह रोम लौटा और सिस्टाइन चैपल की छत का चित्रण पुन: आरम्भ किया। अपने साथियो एव शिष्यो के कार्य से असन्तुष्ट होकर उसने समस्त चित्रो को स्वय ही चित्रित करना निश्चय किया। मचान पर लेटे-लेटे छत का चित्रण करने मे असीम कष्ट सहते हुए भी वह निरन्तर इस कार्य मे लगा रहा। वह अपने चित्रो को दूर से देखकर त्रुटियों का अनुमान नही करने पाता था। १५१० मे उसने द्वार के निकट का (आधा) भाग पूर्ण किया। १५१२ मे उसने शेष कार्य आरम्भ किया और उसे शीघ्र ही पूरा कर डाला। उसके ये चित्र उसी समय महान् कलाकृतियाँ मान लिये गये। यद्यपि वहाँ राफेल भी कार्य कर रहा था किन्तु माइ-केल एँजिलो की कृतिया ही सर्वश्रेष्ठ स्वीकार की गयी। इस समय उसकी आयु केवल सैंतीस वर्ष की थी और वह महानतम् जीवित चित्रकार मान लिया गया था। उसे सासारिक मनुष्यो से बढकर समझा जाने लगा। इन चित्रो मे नग्न दास, धर्मदूत, ईसा के पूर्वज, पृथ्वी पर प्राणियो का आरम्भिक जीवन तथा दीवारो पर मूसा एव ईसा के जीवन-चरित्र अकित हैं। प्रथम-दृश्य मे अकेला ईश्वर सृष्टि-रचना के हेतु उद्यत दर्शाया गया है। तत्पश्चात् इसके द्वारा विभिन्न वस्तुओ का सृजन, आदम और हव्वा का स्वर्ग से पतन, प्रलय, नूह का मद आदि चित्रित हैं। समस्त चित्रों के पीछे नव अफलातूनवादी विचार-धारा छिपी है। इनके पश्चात् धर्म दूत और भविष्य द्रष्टा चित्रित हैं साथ ही ईसा के जन्म की भविष्यवाणी का अकन हुआ है। चारो कोनो मे मुक्ति-सम्बन्धी दृश्य हैं। नीचे के अँधेरे भागो मे ईसा के पूर्वजों का चित्रण है। १५१६ मे इस कार्य को पूर्ण करके वह फ्लोरेन्स मे मेडिसी के पास चला गया।

उसका नवीन आश्रय दाता पोप लियो दशम था जो लोरेंजो का छोटा पुत्र था। उसने उसे अपने पारि-वारिक चर्च के प्रवेश द्वार को पूर्ण करने का कार्य सौंपा किन्तु चार वर्ष तक सर खपाने के पश्चात् भी वह उसे न बना सका। १५२४ में इस पर पुनः कार्य आरम्भ हुआ। इसी समय उसे लोरेंजियाना पुस्तकालय के भवन की योजना बनाने का कार्य सौंपा गया। इसके हेतु उसने ज्यूलियानो तथा लोरेंजो की प्रतिमाएँ एव दिन-रात और प्रात सध्या की प्रतीकाकृतियाँ निर्मित की। ये मूर्तियाँ उसकी शैली के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। १५२७ मे मेडिसी को फ्लोरेन्स से निकाल दिया गया। माइकेल एँजिलो ने राज्य का पक्ष लिया। १५२९ मे उसे एक बार आतंक के कारण भागना भी पडा। १५३० मे मेडिसी ने धार्मिक क्षेत्र में पुन. अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। माइकेल एँजिलो को क्षमा कर दिया गया और उसने पुन: १५३४ तक वहाँ कार्य किया। इसके पश्चात् वह रोम मे जाकर स्थायी रूप से

रहने लगा और जीवन के अन्तिम तीस वर्ष वही व्यतीत किये। वहाँ सिस्टाइन चैपल की वेदी की भित्ति पर अंतिम न्याय का चित्रण करने के हेतु उसे पुन आमन्त्रित किया गया। १५३६ मे उसने इसमे कार्य आरम्भ किया। (इस बीच रोम पर आक्रमण हुआ और इससे माइकेल ए जिलो के मन मे एक प्रकार की निराशा व्याप्त हो गयी जो इस कृति में स्पष्ट दिखायी देती है)। इन समस्त चित्रो से लोगो में यह धारणा बलवती हुई कि नग्न मानवाकृति को स्थितिजन्य लघुता की दृष्टि से विभिन्न मुद्राओ में प्रस्तुत करना ही चित्रकला का लक्ष्य है और यह बहुत कठिन है। पाल तृतीय ने इससे प्रभावित होकर दो अन्य चित्रो के हेतु उसे आमन्त्रित किया। ये है—सन्त पाल की बातचीत और सन्त पीटर की सूली। माइकेल ए जिलो अब ७५ वर्ष का था। अब वह भवन निर्माण में अधिक रुचि लेने लगा था। सन्त पीटर के प्रसिद्ध चर्च का वह प्रधान वास्तु-शिल्पी था। जीवन के अन्तिम दिनो में उसने ईसा की सूली के अनेक रेखाचित्र बनाये, सुन्दर कविताएँ लिखी और पियटा का निर्माण किया। यद्यपि उसने इसे अपनी समाधि के हेतु बनाया था किन्तु अब यह फ्लोरेन्स के केथेड्रल में है। उसने एक अन्य पियटा भी निर्मित किया था जो भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से बहुत उद्वेगपूर्ण है। इसमें ईसा तथा मेरी की आकृतियाँ परस्पर लीन होती हुई दिखाई गयी हैं। इसी पर कार्य करते हुए १८ फरवरी १५६४ मे उसकी मृत्यु हो गयी।

माइकेल ए जिलो इटली के चरम पुनरुत्थान के चित्रकारो मे एक कठोर साधक, पूर्ण पारगत कलाकार एव महान् व्यक्ति था। कवि के रूप मे भी वह इटली मे अद्वितीय था। उसके समय ही कला का केन्द्र फ्लोरेन्स से हट कर रोम हुआ। जब वह नही रहा तो यह केन्द्र वेनिस मे पहुँच गया। माइकेल ए जिलो अपने चित्रो मे मूर्तिकारी स्वभाव के कारण मानवाकृतियो को प्रमुख रूप मे दिखाता था किन्तु उसकी मानवाकृतियो मे कुछ अनुपातहीनता एव बेडौलपन है जो पहले-पहल अच्छा नही लगता। उसकी नारी आकृतियो मे भी पुरुषत्व आ गया है। विद्वानो का विचार है कि उसमे शास्त्रीय तथा गोथिक दोनो शैलियो का समन्वय है। एक ओर तो वह मांसल और ठोस शरीर का चित्रण करना चाहता था जो उसका वशानुगत प्रभाव था। दूसरी ओर वह गोथिक प्रभाव के कारण आत्मा की बेचैनी और सृष्टि के रहस्यो को अकित करना चाहता था। अन्त मे वह बरोक कला की शक्तिमत्ता से आकृष्ट हुआ।

माइकेल ने प्रकृति के भव्य चित्रण को तिलाजलि दे दी थी। उसकी कला मे ऐसे व्यापक प्रयोग हैं जो उसे जियोत्तो से लेकर बीसवी शती तक के कलाकरो से सम्बन्धित करते हैं। पुनरुत्थान के पश्चात् जो रीतिवाद (Mannerism) प्रचलित हुआ उस पर माइकेल ए जिलो का व्यापक प्रभाव पडा। उसे बरोक कला का पिता भी कह दिया जाता है।

राफेल (Raphael Sanzio—१४८३—१५२०)—यह चरम पुनरुत्थान के तीनो प्रमुख कलाकारो मे सबसे छोटा था। कलाचार्यों की कोटि में यह सबसे अधिक समन्वयवादी था। उसका पिता जियोवान्नी सान्टी (Giovanni Santi) चित्रकार था। १४६४ में पिता की मृत्यु होने पर राफेल कुछ दिन भटकता रहा। १५०० मे वह पेरुजिनो के यहाँ कार्य सीखने लगा। सम्भवत इसी समय उसने "सैनिक के स्वप्न" (The knight's dream) नामक चित्र की रचना की थी जो अब नेशनल गैलरी लन्दन मे है। इस समय लियोनार्डो ४८ वर्ष का, और माइकेल एंजिलो २५ वर्ष का था जबकि राफेल केवल १७ वर्ष का था। फिर भी केवल दस वर्ष पश्चात् वह उनके समकक्ष मान लिया गया। १५०० से १५१० ई० का युग राफेल के एक महान् चित्रकार के रूप मे उदय एव चरम पुनरुत्थान का एक विशिष्ट युग है।

यद्यपि १५०२/३ मे अकित एक सूली के चित्र मे भी उसने पेरुजिनो से प्रेरणा ली है तथापि १५०४ के कुमारी के चित्र मे सयोजन एव रचना सम्बन्धी प्रौढता का परिचय मिलता है। इसी समय वह फ्लोरेन्स गया जहाँ उसे अपनी कला की रूढिवादिता का आभास हुआ होगा। फलत उसने अनेक रेखा-चित्रो आदि के द्वारा उन

समस्त उपलब्धियो को शीघ्र ही आत्मसात् कर लिया जो उसे नवीन प्रतीत हुईं। लियोनार्डो के कुमारी, शिशु तथा सन्त ऐन्न के चित्रो से उसने एक नवीन प्रकार के मैडोन्ना चित्रो का विकास किया और मोनालिसा के आधार पर व्यक्ति चित्रो की एक नयी पद्धति का आरम्भ किया जिसका उदाहरण मेडालेन्ना डोनी का व्यक्ति चित्र है। लियोनार्डो के छाया-प्रकाश के सिद्धान्तो का प्रभाव राफेल की पृष्ठ भूमियो मे इसी समय से मिलना आरम्भ हो जाता है। माइकेल एंजिलो के प्रभाव से उसकी आकृतियों की रेखाएँ शक्तिशाली और सयमपूर्ण हो गयी हैं। १५०८ में वह रोम गया और पोप जूलियस द्वितीय के द्वारा वेटीकन मे चित्राकन के हेतु नियुक्त किया गया। शीघ्र ही वह वहाँ का प्रधान चित्रकार हो गया। केवल माइकेल एंजिलो ही उससे श्रेष्ठ और पृथक् था जो उस समय वहाँ सिस्टाइन चैपल की छत का चित्रण कर रहा था। छब्बीस वर्ष की आयु मे राफेल कलाकारो की प्रथम श्रेणी मे गिना जाने लगा और अपना शेष जीवन उसने वही व्यतीत किया। १५०६ तथा १५१२ के मध्य उसने पोप जूलियस द्वितीय तथा लियो दशम के हेतु भित्ति-चित्र अकित किये। इन्हीं मे "स्कूल आफ एथेन्स" नामक प्रसिद्ध कृति है। यह कृति चरम पुनरुत्थान का भी उत्तम उदाहरण है। एक अन्य चित्र—शृ खला हेलियोडोरस के भवन मे चित्रित हुई है जिसमे नाटकीयता अधिक है। इसकी रचना १५११-१४ के मध्य हुई थी जबकि माइकेल एंजिलो के सिस्टाइन भित्ति-चित्र १५१२ मे दर्शको के हेतु खोले गये थे। अत इनकी शैली एव रङ्ग योजनाओ का भी राफेल पर प्रभाव पडा। अन्य स्थानो के चित्र उसके शिष्यो ने अकित किये हैं। १५१४ मे वह सेण्ट पीटर के गिर्जाघर का प्रमुख वास्तुशिल्पी भी बन गया। रोम के फार्नेसिया नामक स्थान पर उसने जो भित्ति-चित्र अकित किये वे भी उत्कृष्ट श्रेणी के हैं। वह टेपेस्ट्री डिजाइन का भी आविष्कार कर रहा था जिससे अकित परदे सिस्टाइन चैपल मे टाँगने की योजना थी। इसी समय वह प्राचीन धर्म शास्त्र (Old Testament) के आधार पर वेटीकन मे चित्र बना रहा था। इस समय की उसकी एक कृति सिस्टाइन मैडोन्ना है जो अकेले उसी ने चित्रित की है। इस चित्र की मैडोन्ना पृथ्वी की मानुषी न रह कर स्वर्ग की देवी (मातृ देवी) हो गयी है और उसे बादलो में तैरते हुए चित्रित किया गया है (फलक ८-ख)। वास्तव मे यह तत्कालीन जन-भावना के परिवर्तन का ही परिणाम है। उसकी अन्तिम श्रेष्ठ कृति ईसा का दिव्य शरीर धारण करना (The Transfiguration) है जो १५१७ मे आरम्भ हुई। १५२० मे जब राफेल की मृत्यु हुई तब तक यह पूर्ण नही हो पायी थी। इसे उसके प्रिय शिष्य ज्यूलियो रोमानो द्वारा पूर्ण किया गया। इस चित्र मे एक प्रकार का रीतिवाद है। ३७ वर्ष की आयु मे जब राफेल की मृत्यु हुई तो अनेक पादरी, राजा, राजकुमार आदि उसके मित्र थे। किसी भी चित्रकार ने उसके पूर्व इतनी सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त नही की थी।

राफेल की कला सामन्ती एव धर्म निरपेक्ष है। उसमे विवरणो की बारीकी का अभाव तथा भावाभिव्यक्ति की प्रौढता है। उसने जीवन के सुन्दर पक्ष को ही चित्रित किया है और वह बौद्धिकता के साथ-साथ किंचित् ऐन्द्रिकता की ओर भी झुका है।

राफेल को शताब्दियो तक समूह-सयोजन का आचार्य माना जाता रहा है। व्यक्तियों के समूह, समूहों का सम्पूर्ण चित्र मे अनुपात, चित्र की ऊँचाई और गहराई का अनुपात और व्यक्तियो की विभिन्न मुद्राएँ—इन सबमे उसने कमाल कर दिखाया है।

राफेल की सर्वाधिक ख्याति उसके मैडोन्ना चित्रो से है। इनके चित्रण मे मिठास, मातृत्व, ममता, बालकों-सा सरल विश्वास और सौन्दर्य-पूर्ण कोमल स्निग्धता है। उसकी कला मे से ही बरोक शैली का विकास हुआ। निकोला पुसिन तथा आग्र पर उसका विशेष प्रभाव पडा।

माइकेल एंजिलो तथा राफेल पुनरुत्थान काल की दो विरोधी प्रवृत्तियो के सूचक हैं। इनसे इस युग को दो भिन्न दिशाएँ भी मिली। दोनो एक-दूसरे के विरोधी थे, यह सुप्रसिद्ध है। राफेल स्वभाव से मिलनसार और परिष्कृत व्यवहार वाला था। उसने अनेक चित्रकारो को शिक्षित किया और उनका नेतृत्व भी किया। माइकेल

ए जिलो अधिक समय तक अपने सहायको तथा शिष्यो के साथ कार्य नही कर सकता था। यद्यपि जो छोटे कलाकार उसके पास आते थे वह उनकी सहायता भी करता था तथापि वह अन्तर्मुखी वृत्ति का था। इन प्रवृत्तियों के कारण इन दोनो कलाकारो ने दो भिन्न शैलियो का सृजन किया। माइकेल ए जिलो द्वारा सिस्टाइन चैपल की छत मे अकित आकृतियो मे प्रतिमाओ जैसा भार है वहाँ राफेल द्वारा वेटीकन मे चित्रित रूप लावण्य एव परिष्कार-युक्त हैं। माइकेल की शैली गम्भीर एव आवेश युक्त है, राफेल मे नवीनताओ की सहज स्वीकृति है। यही कारण है कि किसी कलाकृति को पूर्ण करने मे माइकेल ए जिलो जहाँ अधिकाधिक कठिनाई अनुभव करता था वहाँ राफेल ने सहज रूप मे ही अनेक चित्र स्वय पूर्ण किये तथा अपनी चित्रशाला मे कार्य करने वाले अन्य चित्रकारो से बनवाये। इसके साथ यह भी द्रष्टव्य है कि केवल ३७ वर्ष की आयु मे ही उसकी मृत्यु हो गयी थी।

१५६९ ई० में फ्लोरेन्स टस्कनी के एक नवीन एव विस्तृत राज्य का अङ्ग बन गया। इस समय कलाकारो के सामने अनेक श्रेष्ठ कृतियाँ थी जिनसे वे प्रेरित हो रहे थे। बोत्तिचेली के गहन भाव युक्त पिएटा चित्र, लियोनार्डो की नारी-आकृतियो की अर्थ भरी चितवन, माइकेल ए जिलो की उद्विग्नता और आवेग तथा राफेल की मैडोन्नाओ का कुलीन जगत्—ये सब तत्कालीन कलाकारो को भ्रमित कर कर रहे थे। इन सबके साथ ही माइकेल ए जिलो का 'स्नानार्थियो' का रेखा-चित्र भी पुरुषाकृतियो के चित्रण का आदर्श उपस्थित कर रहा था। कलाकार इनके आधार पर नवीन प्रयोग करने और अपनी शैली का विकास करने मे लग गये। इन अन्य कलाकारो मे माण्टुआ निवासी कोरैज्जियो का नाम प्रमुखता से लिया जाता है।

कोरैज्जियो (Correggio १४८८—१५३४)—फ्लोरेन्स तथा वेनिस के मध्य माण्टुआ एक छोटा-सा राज्य था। यही परमा के निकट कोरैज्जियो मे १४८८ मे 'कोरैज्जियो' का जन्म हुआ था। मिलन, माण्टुआ तथा फेरारा की दरबारी कला शैली के प्रचलन मे उसकी बहुत प्रेरणा रही है। वह पुनरुत्थान युग की कोमलतम भावनाओ वाला कलाकार था। उसके चित्रो मे स्वतन्त्र आत्माएँ, प्रसन्न मैडोन्नाएँ विचरण करती हुई अप्सराएँ, वनो मे क्रीडा करते शिशु और आकाश मे विहार करते देवदूत स्थूल ऐन्द्रिक सुषमा बिखेरते हुए अकित हैं। गतिपूर्ण एव लयात्मक रेखाकन, मासलता, रङ्ग-वैभव, छाया-प्रकाश तथा वातावरण द्वारा वे बडा सुन्दर प्रभाव उत्पन्न करते हैं। उसके धार्मिक विषयो के चित्रो मे भी इन वस्तुओ के अतिरिक्त कुछ नही मिलता। उसने रमणियो, शिशुओ पुष्पो, वृक्षो तथा आकाशीय दृश्यो मे समान रूप से सुन्दरता का अनुभव किया। १५३४ मे उसकी मृत्यु हो गयी। इसके प्रसिद्ध चित्र हैं —सोते हुए एण्टियोप, सन्त कैथेरीन का विवाह, जुपीटर तथा एण्टियोप और ईसा का जन्म।

कोरैज्जियो पर मेण्टेग्ना तथा लियोनार्डो का प्रभाव माना जाता है। वह रेखाकन से अधिक रङ्गो को महत्व देता था। चित्र के केन्द्र मे वह उजले रङ्गो की तथा चारो ओर गहरे रङ्गो की आकृतियाँ अकित करता था। उसकी कलाकृतियाँ मिलन राज्य के परमा नामक नगर मे सुरक्षित हैं। यहाँ धार्मिक भवनो के गुम्बदो मे उसने बादलो के मध्य स्वर्ग की विविध झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं जिनमे अनेक सन्त, समाज सेवी तथा चिकित्सक भी सम्मिलित हैं। इनकी विशदता, शक्तिमत्ता तथा जीवन का आनन्द दर्शनीय है। किन्तु इतने सुन्दर चित्रो मे भी परमावासियो को त्रुटि दिखायी दी। उन्हें उडते हुए देवदूतो के मुडे हुए पैर पसन्द नही आये और वे उस गुम्बद को मेढको का तालाब कहने लगे। चित्रकार ने जो पारिश्रमिक माँगा था वह भी उन्हे अधिक प्रतीत हुआ। उन्होंने जाँच के हेतु टिशिया को बुलाया। टिशियाँ ने कहा कि यदि गुम्बद का कटोरा बनाकर उसे स्वर्णमुद्राओ से भर दिया जाय तब भी वह मूल्य अधिक नही होगा। इसी कारण उसके पास लोगो का आना बन्द हो गया और वह अल्पायु में ही मर गया। किसी ने उसका शोक नही मनाया और मृत्यु के एक सौ वर्ष बाद ही उसकी कब्र पर पत्थर लगाया गया। उसके चित्रो से अधिक आश्चर्य केवल सिस्टाइन चैपल में अकित माइकेल ए जिलो के चित्रों मे है।

एण्ड्रिया डेल सार्तो (Andrea del Sarto, १४८६—१५३०)—यह फ्लोरेन्स मे कला की शिक्षा ग्रहण करते समय लियोनार्डो तथा माइकेल एंजिलो के चित्रो की अनुकृति किया करता था। इसी से इसने अपना भविष्य बनाया। तेईस वर्ष की आयु में उसने एक भित्ति-चित्र शृंखला आरम्भ की थी जो ग्यारह वर्षो मे पूर्ण हुई। १५१८ ई० मे वह फ्रास भी गया था। पर वहाँ अधिक समय तक नही रह सका। उसने कुमारी तथा मैडोन्ना के अनेक चित्र बनाये जिनमे उसकी पत्नी लूक्रेजिया की झलक स्पष्ट है। वह अच्छा टैक्नीशियन था पर महान् प्रतिभाशाली कलाकार नही था। उसकी प्रमुख कृतियाँ हैं: एक युवा का व्यक्ति-चित्र, हार्पीज की मैडोन्ना, सेक्को की मैडोन्ना, अन्तिम भोजन तथा सन्त जोन द बैप्टिस्ट।

वेनिस की कला

पुनरुत्थान काल की कला वेनिस मे ही पूर्णता को पहुँची थी। वेनिस की कला मे धार्मिक पृष्ठभूमि नही थी, केवल प्रकृति के गहन अध्ययन की रुचि थी। अनावृत स्कन्धो पर छाया-प्रकाश की क्रीडा, रूप की कोमल वाह्य सीमा, वस्त्रो की सुन्दर दिखायी देने वाली सिकुडनें, वेश-भूषा की तडक-भडक, आकर्षक रग-योजना, अभिव्यक्ति पूर्ण मुखाकृति एव मानवाकृति की शालीनता—ये ही वेनिस के कलाकारो के लक्ष्य थे। विषय चाहे कुछ भी हो, पर वे निरन्तर इन्ही विशेषताओ के अकन के हेतु प्रयत्नशील रहे और ये ही उनकी श्रेष्ठता का मापदण्ड थी। जो आँखो को अच्छा लगता था, उसी को उन्होंने प्राथमिकता प्रदान की।

टैक्नीकल दृष्टि से इन कलाकारो की अभिव्यक्ति का प्रधान आधार रग था। रगो के द्वारा ही वेनेशियन कलाकारो ने सौंदर्य के साथ-साथ भयमिश्रित आनन्द भी व्यक्त किया। जो कार्य माइकेल एंजिलो की आकृतियो ने गढनशीलता द्वारा किया वही कार्य वेनिस के कलाकारो ने रगो के द्वारा सम्पन्न किया।

रोम तथा फ्लोरेन्स के कलाकार जहाँ प्राचीन रोमन तथा इट्रस्कन कला से प्रेरित थे वहाँ वेनिस के कलाकार पूर्व की बिजेण्टाइन कला से प्रभावित थे। फ्लोरेन्स की कला पर मूर्तिकला का प्रभाव था जबकि वेनिस की कला वहाँ के सगीतमय वातावरण की छाया मे पल्लवित हुई। इसके कारण ही वेनिस की कला मे रगो का प्राधान्य हो गया। फ्लोरेन्स की कला का विश्लेषण रेखाओ तथा आकृतियो के द्वारा किया जा सकता है किन्तु वेनिस की कला की उत्तमता केवल रगो के आधार पर ही निश्चित की जा सकती है। फ्लोरेन्स के कलाकार रेखाओ द्वारा चित्राकन कर के छाया-प्रकाश द्वारा आकृतियो मे उभार प्रदर्शित करते थे। वेनिस के कलाकार छाया-प्रकाश की अपेक्षा रगो के प्रभाव पर अधिक ध्यान देने लगे। फ्लोरेन्स के कलाकार वस्तु की निश्चित आकृति मानते थे किन्तु वेनिस के चित्रकारो ने वस्तुओ के रंगो के स्थूल आकारो के रूप में ही देखा। वेनिस मे धरातल के कोमल प्रभावो पर भी विशेष बल दिया गया है। सयोजन का आधार रङ्ग माने गये हैं। फ्लोरेन्स मे वस्तु का एक ही रङ्ग माना जाता था किन्तु वेनेशियन कलाकार वस्तु पर वातावरण तथा अन्य वस्तुओ का प्रभाव भी मानते थे और इस प्रकार वस्तु का कोई मूल रंग नही माना जाता था। फ्लोरेन्स के रंगो मे जहाँ स्थिरता है वहाँ वेनिस के रंगो मे गति है। वेनिस की वर्णयोजनाओ मे द्रवणशीलता (Fluidity), पारदर्शिता (Transparency), सीमाहीनता (Contourlessness) तथा कम्पन (Vibration) के दर्शन होते हैं। इस प्रकार फ्लोरेन्स का कलाकार बुद्धिवादी और वेनिस का कलाकार ऐन्द्रिक सौंदर्य का सर्जक था।

वेनिस की कला का इतिहास अपने आप मे सम्पूर्ण है। फ्लोरेन्स के अतिरिक्त इटली मे केवल यही एक नगर ऐसा था जहाँ कला की परम्परा अविराम गति से चली आ रही थी। अन्य स्थानो पर कोई सरक्षक अथवा राजा चित्रकारो को या तो कुछ समय के हेतु अपने यहाँ बुला लेते थे या उनकी कृतियाँ खरीद लेते थे। पुनरुत्थान काल का वेनेशियन दरबार अनेक प्रसिद्ध चित्रकारो को अपने यहाँ आकृष्ट करने मे समर्थ हुआ। वे यहाँ स्थायी रहकर एक विशिष्ट कला-शैली का विकास करने लगे। यहाँ के सामाजिक वातावरण में भी एक प्रकार की उदारता एव सहजता थी। व्यापार पर्याप्त उन्नत था अत. वेनिस बहुत समृद्ध भी था। इससे एक तो कलाकार अपने

चित्रों में वैभव-सम्पन्न पात्रों का अकन कर सके और दूसरे उन्हे अपने परिश्रम का पर्याप्त एव आकर्षक पुरस्कार भी मिल जाता था। यही कारण था कि यहाँ पर कला और कलाकार खूब फूल-फल रहे थे।

पुनरुत्थान के आरम्भ के समय यहाँ गोथिक परम्पराओ का प्रचार था। १४५० ई० के लगभग तक यह प्रभाव प्रवल रहा। पादुआ नामक नगर मे ही यहाँ सर्वप्रथम पुनरुत्थान की शुरुआत हुई। वेनिस तथा उसके निकट-वर्ती राज्य मिलन मे अनेक स्थानीय कलाकार पहले से ही कार्य कर रहे थे। जेण्टाइल दा फेब्रियानो एव पिसानेल्लो नामक फ्लोरेन्स के दो कलाकारो ने उत्तरी इटली की विस्तृत यात्राएँ की और वहाँ अनेक कलाकृतियों की रचना भी की। १४४० के लगभग उत्तरी इटली मे हमे फ्लोरेन्स के अनेक कलाकार दिखाई देते है जैसे मेसोलिनो, घिवर्ती, उच्चेल्लो तथा फिलिप्पोलिप्पी। फिर भी वेनिस आदि की कला पर उनका उल्लेखनीय प्रभाव नही पड सका। यहाँ तक कि दोनातेल्लो भी यहाँ दस वर्ष तक रहा किन्तु वेनिस की कला मे वह परिवर्तन नही ला सका। पादुआ का स्थानीय कलाकार एण्ड्रिया मेण्टेग्ना ही यहाँ सर्वप्रथम पुनरुत्थान का सूत्रपात करने मे समर्थ हुआ।

एण्ड्रिया मेण्टेग्ना (Andrea Mantegna—१४३१—१५०६) मेण्टेग्ना के माता-पिता के विषय मे कुछ भी ज्ञात नही है। वह तत्कालीन कलाविद, सग्रहकर्ता एव पुराविद स्कारसियोन का दत्तक पुत्र एव शिष्य था। मेण्टेग्ना पर आरम्भ से ही प्राचीन कला-कृतियों का प्रभाव पडने लगा। परिप्रेक्ष्य तथा स्थिति-लाघव को उसने फ्लोरेन्स के कलाकारों से सीखा था। सयोजन सवन्धी नियम दोनातेल्लो के आधार पर विकसित किये थे। आकृतियो के घनत्व का आधार उसने प्राचीन शास्त्रीय कला को वनाया। पादुआ मे उसने १४५६ मे सन्त जेम्स के जीवन के चार दृश्य, कुमारी का स्वर्गारोहण एव सन्त क्रिस्टोफर का वलिदान नामक भित्ति-चित्रो का अकन किया। इनकी पृष्ठभूमि मे यूनानी रोमन भवनो आदि के अवशेष भी चित्रित है जो मेण्टेग्ना की रुचि का सकेत देते हैं। इनमे उसने यूनानी वेश-भूषा का भी अकन किया है। इन चित्रो में मेडोन्ना तथा सन्तो की आकृतियाँ र गीन पत्थर अथवा कास्य की वनी प्रतीत होती हैं जो दोनातेल्लो का प्रभाव है। पृष्ठभूमि एव पात्रो को अलग-अलग पेनलो अथवा फलको पर चित्रित न करके एक ही चित्र मे सयोजित किया गया है।

१४६० ई० मे मेण्टेग्ना पादुआ से माण्टुआ चला गया। यह वेनिस के पश्चिम तथा मिलन के पूर्व मे एक छोटा-सा राज्य था। यहाँ वह दरवार का प्रमुख चित्रकार हो गया। यहाँ रहकर उसने विशाल दृश्य-सयोजनो के हेतु अनेक नवीन नियमो की खोज की। राजमहल के वधूकक्ष (Bridal Chamber) मे उसने जो चित्र अकित किये वे अपने अनुपातो एव विषय-वस्तु के चयन के कारण दर्शक को भ्रम मे डाल देते हैं। उदाहरणार्थ दीवारो पर राज-परिवार के व्यक्ति-चित्र इस प्रकार अकित किये गये हैं कि दर्शक को ये व्यक्ति कमरे मे ही खडे प्रतीत होते है। छत के मध्य में चित्रित खुले आकाश के नीचे एक झरोखे में से नीचे झाँकती हुई आकृतियाँ भी वनायी गयी हैं जो वास्तविक प्रतीत होती हैं। मेण्टेग्ना ने इस युक्ति का दुवारा प्रयोग नही किया। इसका पुनः प्रयोग करने वाला कलाकार कोरेज्जियो था। वरोक युग मे इस टेक्नीक का पूर्ण विकास हुआ। अपने सरक्षक माण्टुआ के शासक के हेतु मेण्टेग्ना ने सीजर की विजय, मेडोन्ना एव 'पारनासस' आदि चित्रो की रचना की। सीजर की विजय के चित्र मे उसने रोमवासियो के जुलूस का वडा ही जीवन्त चित्रण किया है। कला-मर्मज्ञो का मत है कि रोमन सभ्यता का ऐसा भव्य पुनर्दर्शन किसी अन्य रूप मे आज तक नहीं किया जा सका है।

माण्टुआ के दरवार में अनेक विद्वान, सरक्षक, कला-समीक्षक एव कलाकार एकत्रित हो गये थे जो प्राचीन कला की आधार-भूत विशेषताओ को समझने लगे थे। यही कारण था कि मेण्टेग्ना ने सन्त सेवाशिया (St Sebas-tian) की आकृति को केवल एक कटिवस्त्र पहने अकित किया जबकि तत्कालीन कलाकार उन्हे अपने समय के परिधान मे चित्रित कर रहे थे। पृष्ठभूमि में भी यूनानी कलाओ के प्रति अभिरुचि का सकेत मिलता है। यही से इस सन्त का वस्त्रावृत अकन रुक गया। १४७४ मे वोत्तिचेली ने भी कुछ परिवर्तन करके इस सन्त को लगभग इसी विधि से अकित

किया। फिर भी बोत्तिचेली की आकृति मे उतना घनत्व एव आनुपातिक सौन्दर्य नही है, अत. पुनरुत्थान शब्द की अधिकारिणी केवल मेण्टेग्ना की ही कृति है।

मेण्टेग्ना की कला ने अनेक वेनेशियन कलाकारो को प्रभावित किया। सर्वाधिक प्रभाव बेल्लिनी बन्धुओ पर माना जाता है। जिओवानी बेल्लिनी था जेण्टाइल बेल्लिनीत का नाम वेनिस के आरम्भिक पुनरुत्थानवादी कलाकारो मे है। उनका पिता जेकोपो बेल्लिनी (Jacopo Bellini १४००–१४७१) महान् प्रकृति-प्रेमी कलाकार था। मेण्टेग्ना के प्रभाव मे उसने भी परिप्रेक्ष्य आदि के सम्बन्ध मे अनेक प्रयोग किये जिनके प्रमाण उसके द्वारा बनाये गये भवनो आदि के रेखाचित्र हैं। इस कलाकार के विषय मे अधिक ज्ञात नही है। १४५४ ई० मे उसने अपनी पुत्री निकोलोसिया का विवाह मेण्टेग्ना से कर दिया था। जेण्टाइल बेल्लिनी (Gentile Bellini—१४२६–१५०७) अपने पिता की चित्र-शाला मे ही कार्य करता था। १४६४ के एक चित्र मे दोनों भाइयों तथा पिता के हस्ताक्षर हैं। १४६६ मे उसे सम्राट ने आमन्त्रित किया किन्तु इस समय की उसकी कोई कृति उपलब्ध नहीं है। १४७९–८१ में वह कुस्तुन्तुनिया के सुलतान मुहम्मद द्वितीय के हेतु चित्र बनाने वहाँ गया। तुर्की से लौट कर १४८४ मे उसने डोज (Dodge) के राजमहल को चित्रित किया। उसने उत्सवो तथा जुलूसो के जो चित्र बनाये वे वेनिस मे बहुत लोकप्रिय हुए। इन चित्रो की पृष्ठभूमि मे नगर का दृश्य तथा अग्रभूमि मे प्रमुख-प्रमुख नागरिक अंकित किये गये थे।

जिओवानी बेल्लिनी (Giovani Bellini–१४३० ?–१५१६) इसे कल्पित जन्मतिथि के आधार पर छोटा भाई माना जाता है। १४५६ मे यह स्वतन्त्र रूप से कार्य करने लगा था। इस पर भी मेण्टेग्ना का प्रभाव पडा था। इसकी इतनी ख्याति हुई कि अनेक कलाकार इसकी चित्रशाला मे आकर कार्य सीखने लगे और नयी पीढ़ी के चित्रकारो के हेतु वह प्रमुख प्रेरणा-स्रोत बन गया। ज्योर्जिओन तथा टिशिया ने भी उससे कला-शिक्षा पायी थी। १५०६ मे आलब्रेश्ट ड्यूरर ने लिखा था कि "जिओवानी यद्यपि बहुत बूढा हो गया है किन्तु फिर भी सर्वश्रेष्ठ कलाकार है। वेनिस के 'मेडोन्ना' चित्रकारो मे तो वह महानतम माना जाता है। उच्चकल्पना-शीलता तथा रचनात्मक प्रतिभा में वह नित्य नवीन दृष्टिगोचर होता है।" उसने जो पियटा-चित्र बनाये है उनमे उसके पिता अथवा दोनातेल्लो का प्रभाव है। वह चित्रो मे मुक्त रूप से प्राकृतिक दृश्यो का विनिवेश कर देता था। यद्यपि वह प्रकृति के विवरणो को बडी सूक्ष्मता से देखता था किन्तु उनके द्वारा कभी भी प्रधान आकृतियो को प्रभावित नही होने देता था। डोज के राज-दरबार मे वह प्रधान चित्रकार था और जीवन पर्यन्त वहाँ इसी पद पर रहा, यद्यपि टिशिया ने उसे वहाँ से हटाने का कई बार प्रयत्न किया। उसके व्यक्ति-चित्रो में फ्लीमिश पृष्ठ-भूमि के आगे पोनेदो चश्म आकृतियाँ अंकित हैं। उसने सन्त जेरोम का जो चित्र १५१३ मे अंकित किया उसकी अग्रभूमि में मानवाकार आकृतियाँ एक मेहराब मे से दूर जगल में बैठे सन्त की ओर झाकती हुई चित्रित हैं। इसमे परिप्रेक्ष्य एव चित्रगत स्थान के सम्बन्ध मे जिओवानी ने कई नये प्रयोग किये हैं। शृंगार-रता महिला के चित्र मे उसने जिस नारी-रूप का अकन किया उसे भविष्य की मेडोन्नाओ मे भी प्रयुक्त किया। आदर्श अनावृता की दृष्टि से यह चित्र पुनरुत्थान की सामान्य भावना के अनुरूप है।

जिओवान्नी की कला मे एन्तोनेल्लो के टेक्नीक तथा मेण्टेग्ना की शैली का प्रभाव था किन्तु फिर भी रूप-कल्पना की दृष्टि से वह नितान्त मौलिक कलाकार था।

एन्तोनेल्लो द मेस्सीना (Antonello Da Messina) यह सिसली का रहने वाला था। आरम्भ में उस पर फ्लीमिश प्रभाव पड़ा था। सम्भवत उसे पायरो देल्ला फ्रासेस्का ने भी प्रभावित किया था। १४७५-७६ में उसने वेनिस की यात्रा की और वहाँ कैसियानो के चर्च में चित्राकन किया। उसकी कला ने वेनिस की शैली में दो परिवर्तन किये। पहला यह कि अब तक वहाँ अण्डे के टेम्परा (Egg Tempera) का प्रयोग होता था। एन्तोनेल्लो

ने वहाँ तैल-चित्रण के व्यापक एवं शीघ्र प्रचार को प्रोत्साहित किया। इससे आकृतियों तथा विवरणों के अंकन में प्रकाश का महत्व ज्ञात हुआ। चित्रकारों की धारणाएँ बदली और वे रेखा के स्थान पर छाया-प्रकाश को प्रमुखता देने लगे।

इस नये प्रयोग के परिणाम-स्वरूप रंग-योजनाओं में परिवर्तन आरम्भ हुआ और प्रकाश के साथ-साथ छाया के रंगों का निर्माण होने लगा। यह तथ्य सामने आया कि पूरक रंगों के मिश्रण के अतिरिक्त छाया तथा प्रकाश के मिश्रण से भी चित्र में विविधता उत्पन्न की जा सकती है। इसके फलस्वरूप एन्तोनेल्लो की शैली का व्यापक अनुकरण होने लगा। पहले छाया-प्रकाश के द्वारा आकृतियों की गठन-शीलता को प्रस्तुत किया गया। परिधानों, स्थापत्य एवं दृश्य-योजनाओं में इसका प्रयोग हुआ। सोलहवीं शती के आरम्भ में लोरेंजो लोत्तो (Lorenzo Lotto) भी इस पद्धति का प्रशंसक था। धीरे-धीरे इस पद्धति का प्रयोग रंग योजनाओं को समृद्ध करने के हेतु किया जाने लगा। बेल्लिनी-बन्धुओं के अन्तिम चित्रों में आकृति-रचना की स्पष्टता के साथ-साथ तेज प्रकाश, गहरी छाया तथा प्राथमिक रंगों का वर्ण-वैपरीत्य प्रस्तुत करके यही प्रभाव उत्पन्न किया गया है।

१४७०-८० में वेनिस की कला में जो प्रवृत्तियाँ विकसित हुई उन्होंने अगले पचास वर्ष तक चित्रकला को प्रभावित किया। इनमें प्रमुख विशेषता आकृतियों एवं पृष्ठभूमि में संयोजन की सुसम्बद्धता थी। दूसरी विशेषता प्रकृति के प्रति संवेदन-शीलता थी। बेल्लिनी, ज्योर्जिओन, टिशियाँ तथा लोत्तो-सभी में यह दिखाई देती है। प्रायः सूर्योदय अथवा सूर्यास्त के समय के ग्रामीण दृश्यों की पृष्ठभूमि में आकृतियों का अंकन किया जाने लगा।

इटली के अन्य स्थानों की भाँति वेनिस में भी भित्ति-चित्रों की परम्परा चली आ रही थी। इस समय के चित्रकारों ने प्रयोगों द्वारा यह देखा कि वहाँ की समुद्री जलवायु में भित्ति-चित्रों की अपेक्षा कपड़े पर बने तैल-चित्र अधिक स्थायी हैं, अतः १४८० के लगभग से भित्ति-चित्रों के स्थान पर भी विशाल पैमाने पर केनवास चित्र बनाकर लगाये जाने लगे। सम्पूर्ण पन्द्रहवी तथा सोलहवीं शती में इस प्रकार के चित्रों की बहुत माँग रही। इनके विषय तथा शैली फ्लोरेंस के इतिहास का चित्रण करने वाले चित्रों के ही समान है। वेनिस की कला में दर्शक को आकृतियों की मुद्राएँ अथवा घटना-चक्र इतना प्रभावित नहीं करता जितने रंग प्रभावित करते हैं। चित्रकार दृश्य को पर्याप्त विवरणात्मकता सहित प्रस्तुत करते हैं।

ज्योर्जिओन (Giorgione—१४७६/८—१५१०)—जियोवानी बेल्लिनी के शिष्यों में ज्योर्जिओन बहुत प्रसिद्ध हुआ। उसका नाम लियोनार्डो दा विन्ची के साथ आधुनिक कला के संस्थापक के रूप में लिया जाता है। तैल माध्यम में उसने व्यक्तिगत उपयोग के हेतु छोटे चित्रों की रचना का आरम्भ किया जिनमें रहस्यात्मक एवं उत्तेजक विषयों का अंकन किया जाता था। आँधी (The Tempest) नामक चित्र इसका अच्छा उदाहरण है (फलक ११-ख)। इस चित्र के विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि कलाकार ने प्रकृति की मन स्थिति (Mood) को अंकित करने का प्रयत्न किया है। ज्योर्जिओन के विषय में अधिक ज्ञात नहीं है। १५०६ में 'कैटेना' नामक कलाकार के साथ एक स्टुडियो की उसने नींव डाली। १५०७-८ में उसने डोज के राज-भवन को चित्रित किया। १५०८ में वह वेनिस-स्थित जर्मन व्यापारियों के भवन में भित्ति-चित्र अंकित करने पहुँच गया। वहाँ एक छोटी स्थिति में टिशियाँ भी कार्य कर रहा था। यहाँ के जो चित्र अवशिष्ट हैं उनसे सिद्ध होता है कि वह एक कल्पनाशील आविष्कर्त्ता था जिससे टिशियाँ ने बहुत कुछ सीखा। १५१० में मृत्यु के पश्चात् उसके द्वारा अधूरे छोड़े हुए अनेक चित्र टिशियाँ तथा सेबास्तियानो देल प्योम्बो ने पूर्ण किये। दोनों पर ही उसका गहरा प्रभाव था। बेल्लिनी के आधार पर उसने अपनी जन्मभूमि कैसिल फ्राको में मैडोन्ना चित्र अंकित किया था।

ज्योर्जिओन की कला की निम्नांकित विशेषताएँ हैं —

१—रेखा की मादक झिलमिलाहट। २—धूमिल वर्णिका।
३—तेज प्रकाश की क्रीडा। ४—वातावरण की एकसूत्रता।

टिशियाँ (Titian—१४८७/९०—१५७६)—टिशियाँ को इटली का वयोवृद्ध कलाचार्य कहा जाता है। सम्भवत. इटालियन कलाकारो मे सर्वाधिक आयु उसी ने प्राप्त की है। उसकी जन्मतिथि के विषय मे पर्याप्त मतभेद है। वह आल्प्स के एक पहाड़ी नगर मे उत्पन्न हुआ था। आरम्भ में वह जेण्टाइल वेल्लिनी तथा तत्पश्चात् जिओवानी बेल्लिनी का शिष्य रहा। उस पर ज्योर्जिओन का भी प्रभाव पड़ा था। ज्योर्जिओन यद्यपि उसका गुरु नही था तथापि उसके द्वारा छोड़े गये अनेक चित्र टिशियाँ ने पूर्ण किये। उसके साथ सेबाशियानो ने भी कार्य किया। इनके चित्रण ने टिशियाँ को उसकी कला की विशेषताएँ समझने और उसीकी शैली मे चित्रण करने का अवसर प्रदान किया। १५११ मे ज्योर्जिओन की मृत्यु हो गयी और सेबाशियानो रोम चला गया। इस प्रकार वेनिस मे टिशियाँ का कोई प्रतिद्वन्द्वी नही रहा। जिआवानी बेल्लिनी इस समय पर्याप्त वृद्ध हो चुका था और १५१६ मे उसकी मृत्यु के उपरान्त वह वेनिस गणराज्य के शासकीय चित्रकार के रूप मे प्रतिष्ठित हुआ। इसी समय उसने "कुमारी का स्वर्गारोहण" चित्र आरम्भ किया जो १५१८ मे पूर्ण हुआ। इस चित्र से टिशियाँ की ख्याति बहुत बढ गयी। यह चित्र वेनिस मे पुनरुत्थान का प्रथम उद्घोष है। १५१६—२६ के मध्य पेसारो वेदी के चित्र मे टिशियाँ की नवीन शैली का पूर्ण विकास परिलक्षित होता है। १५३२ ई में वह बोलोना मे चार्ल्स पचम से मिला जहाँ उसने आस्ट्रियन चित्रकार द्वारा अकित चार्ल्स के एक चित्र की इतनी सुन्दर अनुकृति की कि सम्राट ने उसे १५३३ मे अपना दरबारी चित्रकार बना लिया। धीरे-धीरे टिशियाँ सम्राट का घनिष्ट मित्र बन गया। सोलहवी शती के लिये यह एक अद्वितीय परिस्थिति थी क्योकि माइकेल ए जिलो तथा राफेल सजिओ को छोडकर, अन्य कोई कलाकार उस स्थिति तक नही पहुँच सका था। १५४० ई. में टिशियाँ पर माइकेल ए जिलो का प्रभाव रीतिवादी कृतियो मे देखा जा सकता है,। इसी समय उसने रोम की यात्रा की जिसके कारण उसकी कृतियो में किंचित् शास्त्रीयता का प्रवेश हुआ। १५४५-४६ मे पाल तृतीय तथा उसके पौत्रो एव १५४८—४६ मे तथा १५५०—५१ मे दरबारी व्यक्तिचित्रों की जो क्रमश: रचना टिशियाँ ने की उससे इस प्रकार के चित्रो का एक विशिष्ट स्वरूप विकसित हुआ। इसीका उपयोग आगे चलकर पीटर पाल रुबेन्स आदि ने अपने व्यक्ति-चित्रो मे किया। १५५५ में चार्ल्स की गद्दी छिन जाने पर टिशियाँ स्पेन के फिलिप द्वितीय की सेवा में चला गया। यहाँ उसने काव्य एव पुराण आदि के आधार पर श्रृंगार-पूर्ण कथानको का चित्रण किया। इन चित्रो मे टिशियाँ ने रगों का बड़ी ही उन्मुक्तता से प्रभाववादी शैली के समान प्रयोग किया है। आकृतियो की सीमाएँ धूमिल अकित की गयी हैं और आकृतियों को रेखात्मक न बनाकर रंगो के धब्बो के रूप मे चित्रित किया गया है। १५६० में उसकी कला की बहुत आलोचना होने लगी पर वास्तव में वह एक नवीन शैली का आविष्कार करने मे लगा हुआ था। ईसा को कब्र मे लिटाना (The Entombment) नामक चित्र को अधूरा छोड़कर वह चल बसा। इस चित्र को उसके शिष्य पाल्मा जिओवाने ने पूर्ण किया।

टिशियाँ की कला में प्रकाश तथा रगो को गति एव सगति प्रदान की गयी है। उसने आकृतियो को मूर्त्तियो के समान कठोर होने से बचाया और रंगो की शक्ति का पूर्ण उपयोग किया। विषयो की दृष्टि से उसने यद्यपि श्रृगार पूर्ण कथानको को ही अधिक चित्रित किया है तथापि दु'खान्त घटनाओ को भी गम्भीरता एव करुणा के साथ प्रस्तुत किया है। आधुनिक कला के जन्मदाताओं मे उसका भी नाम लिया जाता है। टिशियाँ के चित्रण-विधान का विवरण उसके शिष्य पाल्मा ने इस प्रकार दिया है.—पहले वह चित्र के धरातल पर तूलिका से रंग के धब्बे लगा लेता था। इन धब्बो से बनने वाली अमूर्त-सी आकृतियाँ उसके मनोभावो को व्यक्त करती थी। इनके हेतु प्राय' गेरुए अथवा श्वेत रंग का प्रयोग किया जाता था। उसी तूलिका को काले, लाल अथवा पीले रगो मे डुबो कर केवल तीन-चार स्पर्शों मे ही वह कमाल की आकृति बना देता था। इसके पश्चात् वह उस चित्र को दीवार के सहारे रख देता था और महीनो उसे देखता तक न था। तत्पश्चात् जब वह उसे फिर देखता तो एक शत्रु की भाँति उसकी आलोचना करता और एक शल्यक की भाँति उसे सुधारता। इस प्रकार बार-बार कार्य करके वह उसे एक

श्रेष्ठ कलाकृति बना देता था। उसके पश्चात् उसमे मानवाकृतियो की कल्पना की जाती और शरीरवर्ण का प्रयोग किया जाता। चित्र को पूर्ण करते समय वह अति-प्रकाश एव सीमा-रेखाओ को कोमल कर देता था। इस कार्य में वह तूलिका से अधिक अ गुलियो का प्रयोग करता था।

टिशियाँ ने अनेक सुन्दर चित्रो की रचना की है जिनमे से कुछ का उल्लेख किया जा चुका है। अन्य कृतियो मे वाचूज तथा एरियाने, फ्लोरा, मेग्डेलिन, युवक अ ग्रेज, दस्ताने सहित पुरुष, कामदेव की शिक्षा, पिएटा, उर्बीनो की वीनस (फलक ६-ख), काँटो का ताज, यूरोपा का शीलभङ्ग, पवित्र तथा अपवित्र प्रेम, परस्यूज तथा एण्ड्रोमेडा, एव राजपरिवारो तथा पादरियो के व्यक्तिचित्रो का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है।

पाओलो वैरोनीज—(Paolo Veronese, १५२८-१५८८)—वैरोनीज को वेनिस का राफेल कहा जाता है। वह ऐसे समय मे हुआ था जब पुनरुत्थान की सादगी समाप्त हो चुकी थी। उसके अधिकाश चित्रो मे शानदार वेश-भूषा, मूल्यवान् अलकरण, फर्नीचर, स्थापत्य, हीरे, जवाहरात तथा शस्त्रो का ही अकन अधिक हुआ है। उसकी कला ऐसे बिन्दु पर थी जिसके पश्चात् वेनिस की कला का पतन आरम्भ हो गया था। मुखाकृतियो के भाव की तनिक भी चिन्ता न करके विभिन्न रगो का प्रभाव दिखाना ही मुख्य कार्य समझा जाता था।

पाओलो वैरोनीज का जन्म वैरोना मे हुआ था। अनेक छोटे-छोटे चित्रकारो से कार्य सीखने के उपरान्त टिशियाँ, माइकेलए जिलो, तथा ज्यूलियो रोमानो आदि से भी उसने प्रेरणा ग्रहण की। १५५३ ई० से उसने वेनिस के डोज राजभवन मे चित्रण आरम्भ किया। इसमे साहस के साथ परिप्रेक्ष्य सम्बन्धी अनेक नवीन प्रयोग किये गये और रीतिवादी पद्धति मे अनावृताएँ चित्रित की गयी। इन्हें अत्यन्त उलझनपूर्ण मुद्राओ तथा स्थितियो मे अकित किया गया था। १५६० मे उसने रोम की यात्रा की और वहाँ से लौटने पर विला मेजर मे चित्राकन किया। ये चित्र वेनिस की दृश्य चित्रकला के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी है।

पाओलो ने विशेष रूप से बाइबिल, इतिहास तथा रूपको के आधार पर विशाल दृश्यो की योजना की है जिनमे विभिन्न अस्त्र-शस्त्र एव परिधान धारण किये हुए मनुष्यो की भीड़, प्रकाश, र ग, सुनहरी केशयुक्त तत्कालीन फैशन धारण किये हुए सुन्दर स्त्रियो, अश्व, श्वान, बन्दर, दरबारी, गणिकाओ, सगीतज्ञों, सैनिको एव शानदार भवनो आदि का समावेश हो सका है। ये चित्र तत्कालीन वेनिस के जीते-जागते उदाहरण हैं। उसकी चित्रण-पद्धति का उदाहरण एक चित्र से हो जाता है जिसका शीर्षक है "काना मे वैवाहिक भोज"। काना वह स्थान है जहाँ ईसा ने सर्वप्रथम चमत्कार दिखाकर पानी को शराब मे बदल दिया था। इस चित्र मे सगमरमर का फर्श, स्तम्भ, मेहराब तथा बालकनो के अतिरिक्त लगभग एक सौ आकृतियाँ अ कित हैं जिनमे फ्रासिस प्रथम, सुल्तान सुलेमान, माइकेल एजिलो की मित्र महिला विट्टोरिया कोलोना आदि के साथ अग्रभूमि के चित्रकार ने स्वय को, टिशिया तथा टिंटोरॅट्टो को भी चित्रित किया है। इसमे उतनी ही धार्मिकता शेष है जितनी किसी फॅसीइॅस शो मे हो सकती है। किन्तु इस चित्र जैसी शान-शौकत अन्यत्र नहीं मिलती। उसने धार्मिक चित्रो मे भी इसी प्रकार के वैभव का अकन किया जिसके फलस्वरूप उसे एक अदालत के समक्ष उपस्थित होना पड़ा। उससे पूछा गया कि ईसा के अन्तिम भोजन के चित्र मे उसने कुत्तो, जर्मन सैनिको आदि का अ कन क्यो किया है। उसने कलाकार की स्वतन्त्रता को धार्मिक अधिकारियो द्वारा कुचले जाने का विरोध किया किन्तु उसके तर्क स्वीकार नही किये गये। न्यायालय ने उसे अपने व्यय पर चित्र सुधारने का आदेश दिया। वेरोनीज ने चित्र तो नही सुधारा पर उसका शीर्षक बदल कर "लेवी के घर मे दावत" रख दिया। उसके प्रमुख चित्र हैं मोसेज का मिलना, वैवाहिक भोज, मार्स और वीनस, लेवी की दावत, कैथेरीन का विवाह, मागी की वन्दना एव ईसा का अन्तिम भोजन आदि।

टिण्टोरॅट्टो (Tintoretto १५१८—१५९४)—आयु में पाओलो वैरोनीज से बड़ा होने पर भी टिण्टोरॅट्टो का नाम वेनिस के कला-इतिहास मे वैरोनीज के पश्चात् ही आता है। वह सोलहवी शती का अन्तिम महान् वेनेशियन

कलाकार था। उसका जन्म वेनिस मे हुआ था किन्तु उसके आरम्भिक जीवन के विषय मे अधिक ज्ञात नहीं है। वह स्वय को टिशियाँ का शिष्य कहा करता था। १५३६ मे वह एक अच्छा कलाकार बन चुका था। १५४५ तक उसने एक ऐसी शैली का विकास किया जिसमे माइकेलए जिलो के रेखाकन एव टिशियाँ की रग योजनाओ का समन्वय था। उस युग मे केवल वही एक ऐसा कलाकार था जो इन दोनो को मिलाने मे समर्थ हुआ। फिर भी उसका रेखांकन आकृतियों की गठनशीलता को माइकेलए जिलो के समान प्रस्तुत नही कर पाया और उसके रग टिशियाँ की अपेक्षा कम शुद्ध, अधिक अभिव्यजनापूर्ण, आकृतियो की गति का सकेत देने वाले एव छाया-प्रकाश के क्षेत्रो को स्पष्ट प्रस्तुत करने वाले हैं। इस प्रकार पुनरुत्थान युग के दो दिग्गजो की शैलियो का समन्वय करके टिण्टोरैट्टो ने यूरोपीय कला मे महान् योग दिया है। परवर्ती युग मे सभी बरोक कलाकार उस से प्रेरित हुए हैं। उसके चित्रो की आकृतियो मे जहाँ चलते-फिरते ठोस आकारो जैसा प्रभाव है वहाँ टिशियाँ के समान रगो का संगीतमय स्वरूप एव धरातल का छाया-प्रकाश के विभिन्न क्षेत्रो मे विभाजन एव सुन्दर रूप योजना भी है।

टिण्टोरैट्टो आरम्भिक चित्रो मे भद्रिका के समान आकृति सयोजन करता था। प्राय. लम्बी तथा शानदार आकृतियो के साथ मुख्य घटना को वह गहराई मे अकित करता था। चित्र के सम्पूर्ण धरातल में आकृतियाँ फैला दी जाती थी जो विरोधी कर्णों का निर्माण करती थीं। अँधेरे स्थानो मे प्रकाश, एव प्रकाश युक्त आकृतियो मे गहरा रंग लगाकर वह सर्वत्र विरोधी तथा नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयत्न करता था। १५४८ मे उसने एक दास की प्राण रक्षा करते हुए सन्त मार्क का चित्र बनाया। इससे उसकी ख्याति बहुत बढ गयी। इस विशाल चित्र मे पर्याप्त भीड-भाड, आश्चर्यजनक स्थितिलाघव, चमकदार वर्ण-विधान तथा केवल एक क्षण की घटना को ही प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया था। आगे चलकर उसने विस्फोटयुक्त केन्द्र अथवा पीछे की ओर जाते हुए कर्णों का बहुत सयोजन किया। इनकी परिधि मे वह अत्यन्त आवेगपूर्ण आकृतियो का अंकन करता था। डोज के राजभवन मे उसने स्वर्ग का विशाल दृश्य १५७७ के लगभग इसी विधि से अकित किया है।

टिशियाँ की भाँति टिण्टोरैट्टो की चित्रशाला भी विशाल थी जिसमे उसके दो पुत्र एव एक पुत्री प्रधान सहायक थे। इन्हें कार्य करने मे पर्याप्त स्वतन्त्रता थी। वह राज परिवार के अतिरिक्त धार्मिक सस्थाओ के हेतु भी चित्राकन करता था। १५६५ में वह ऐसी ही एक सस्था स्कुओला दि स. रोक्को (Scuola di S. Rocco) का सदस्य बन गया और उसने उसके सम्पूर्ण भवन को चित्रित किया। १५८८ मे यह कार्य पूर्ण हुआ। यहाँ बारह फीट ऊँची भित्ति पर कुमारी का जीवन तथा सोलह फीट ऊँची एक अन्य भित्ति पर ईसा मसीह का जीवन चित्रित है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक चित्र यहाँ विभिन्न कमरो मे बने हैं जो उसके अप्रत्याशित दृष्टि-बिन्दु, विरोधी आकारो, असामान्य गतिविधि एव छाया-प्रकाश तथा रग के स्वप्निल एव मायालोक के समान प्रभाव को प्रस्तुत करते हैं। तत्कालीन कलाविद एव इतिहासकार वसारी को उसका कार्य बिल्कुल भी पसन्द नही था और उसके विचार से टिण्टोरैट्टो कला को मजाक समझता था। उसके प्रसिद्ध चित्र हैं आकाश-गगा की उत्पत्ति, मिस्र को पलायन, सन्त मार्क का चमत्कार, वेनेशियन सीनेटर, ड्रैगन को मारते हुए सन्त जार्ज तथा सूली।

टिण्टोरैट्टो के पश्चात् वेनिस मे कला की स्थिति बहुत दयनीय हो गयी। समाज और राजदरबार मे कलाकारो को सम्मान घटने लगा। नये कलाकार अपनी अपनी विशिष्ट शैलियो मे रचना करने लगे किन्तु लोगो पर उनकी कृतियो का कोई प्रभाव नही होता था। पुनरुत्थान युग की समाप्ति के साथ इटली मे भी कला का अध्याय समाप्त हो गया। परवर्ती युग मे कोई भी कलाकार इटली को सर्वोच्च गौरव दिलाने मे समर्थ नही हुआ।

पुनरुत्थान काल की जर्मन कला

फ्लाण्डर्स की कला आल्प्स पर्वत के उत्तर मे समस्त यूरोप मे फैलने लगी थी। १४७५ ई० तक इसका वैसा ही महत्त्व हो गया था जैसा इटली की कला का था। यहाँ तक कि कुछ कला-समीक्षको ने इसे "अन्तर्राष्ट्रीय दरबारी शैली" भी कहा है। इगलैण्ड, पुर्तगाल तथा स्पेन—सभी स्थानो पर इसका प्रभाव फैला। जर्मनी मे भी

इसका प्रभाव पहुंचा। जर्मन चित्रकार लूका मोजर (Lukas Moser) रोवर्ट केम्पिन का समकालीन था। उसके एक चित्र पर १४३१ की तिथि अंकित है जो जान वान आइक के घेण्ट वेदी के चित्र (१४३२) से एक वर्ष पूर्व निर्मित किया गया था। चित्र-संयोजन एवं आकार की विशालता मे मोजर का चित्र आइक से किसी प्रकार हीन नहीं है। इस चित्र मे दृश्य तथा आकृतियो का संयोजन परस्पर सम्बन्धित है जिससे कृति मे एकता आ गयी है। मोजर तथा आइक की शैली मे समानता होते हुए भी यह नही कहा जा सकता कि दोनों मे कोई सम्पर्क भी था। १४३०-१४४० के मध्य अनेक जर्मन चित्रकारों ने जान वान आइक की प्रकाश-छाया पद्धति के अनुकरण का प्रयत्न किया, किन्तु इनकी कला मे किंचित् कठोरता है।

१४५० ई० के उपरान्त रोजर वान डर वीडन तथा डर्क वाउट्स की कला के समन्वय पर आधारित एक सन्तुलित शैली का विकास किया गया। जर्मनी में कई स्थानों के कलाकारों मे इसका प्रमाण मिल जाता है। इस युग का प्रथम उल्लेख्य कलाकार माइकेल पैचर था।

माइकेल पैचर (Michael Pacher लग० १४३५-१४९८)—यह कलाकार टाइरोल (Tyrol) नामक स्थान पर जन्मा था जो इटली के बहुत निकट है। उसने जो चित्र अंकित किये हैं उनसे अनुमान किया जाता है कि १४७० के लगभग उसने पादुआ की यात्रा की थी। इस समय की उसकी आकृतियो पर मेण्टेग्ना का प्रभाव है। विवरणात्मकता तथा रंगो की चमक-दमक में उसकी कला आइक परम्परा की अनुगामिनी है। पैचर कुशल मूर्तिकार भी था अतः इटली में विकसित होने वाले परिप्रेक्ष्य के नियमो मे भी उसने रुचि ली। अनेक बातो मे उसकी कला इटली से भिन्न है, जैसे, भवनों का अंकन गोथिक पद्धति में किया गया है और वस्त्रो की सिकुड़नें रोवर्ट केम्पिन की भांति टूटी हुई दिखाई गयी हैं। सम्भवतः पैचर ने गोथिक परम्पराओ को अपने ढंग से नवीन दिशा मे मोडने का प्रयत्न किया जिसके फलस्वरूप वह इटली की चित्र एवं मूर्तिकला की ओर आकर्षित हुआ।

शोनगौर (Schongauer ?—१४९१)—यह कोलमार नामक स्थान का निवासी था। इसकी कला पर फ्लीमिश प्रभाव अधिक था। सबसे अधिक प्रेरणा इसे रोजर वान डर वीडन से प्राप्त हुई थी। तकनीकी पूर्णता एवं आलेखन की उत्तमता मे उसके समान कोई कलाकार नहीं हुआ है। वह चित्रकार तथा उत्कीर्णक (Engraver) था। मध्यकालीन यूरोप मे कागज के प्रचलन के साथ-साथ काष्ठ-शिल्प एवं उत्कीर्ण चित्र (Wood cuts and Engravings) बनाने का बहुत अधिक प्रचार था। जर्मन चित्रकार इस कार्य मे विशेष कुशल थे। शोनगौर के उपरान्त ड्यूरर जर्मनी का सर्वोत्तम उत्कीर्णक हो गया है किन्तु बहुत समय तक लोग शोनगौर को ही प्रमुखता देते रहे। इसीसे उसकी कला की उत्तमता समझी जा सकती है। उसका केवल एक मैडोन्ना चित्र रंगो से बना हुआ उपलब्ध है। शेष ११५ उत्कीर्ण चित्रो से ही उसकी कला का अनुमान लगाया जा सकता है। इनमे प्रयुक्त शैली ने तत्कालीन जर्मन कला के विकास मे निर्णायक योग दिया है। ड्यूरर भी उसका यश सुनकर उससे मिलने गया था किन्तु तब तक वह इस संसार से विदा हो चुका था।

शोनगौर की शैली—शोनगौर की रेखा आलंकारिकता के साथ-साथ अभिव्यजनात्मक भी है। चित्र मे उड़ती हुई जैसी आकृतियो की भीड़ एवं रूपो की मौलिकता उसकी अन्य विशेषताएं हैं। उसके सयोजनो में रेखाओ तथा आकृतियों का संघर्ष रहता है। शोनगौर के चित्रों की रेखानुकृति के द्वारा ही हम उसकी विशेषताओ को भली-भांति समझ सकते हैं।

शोनगौर की शैली में गोथिक आध्यात्मिकता के कारण आलंकारिक प्रभाव तथा उड़ते हुये वस्त्रो का प्रयोग हुआ है जिनके नीचे शरीर के विवरण छिप गये हैं। उसकी आकृतियां पौधो के अलकृत रूपो के समान प्रतीत होती हैं। विविधता और वैभव के अंकन में भी पर्याप्त कुशलता है।

आलब्रेस्ट ड्यूरर—(Albrecht Durer-१४७१-१५२८)—जर्मन कला पर फ्लाण्डर्स के अतिरिक्त

इटली का भी प्रभाव पड़ने लगा था। धीरे-धीरे इटली का प्रभाव अधिक होता गया। केवल वहाँ के तत्वो के समन्वय से उसकी तृप्ति न हुई अत इटली की कृतियो की अधिकाधिक अनुकृति होने लगी। सम्पूर्ण यूरोप मे इटली के कलाकार बुलाए जाने लगे। प्राय. शासकगण उनकी बहुत प्रशसा करते थे। कला के प्रधान सरक्षक वे ही थे अत: इटली की शैली के प्रसार मे उनका बहुत योग रहा है। यही कारण है कि जर्मनी के महान कलाकार ड्यूरर ने भी इटली की यात्राए' कीं और वहाँ के कलाकारो के अनुकरण पर ही अपना जीवन ढाला।

ड्यूरर एक स्वर्णकार का पुत्र था जो १४८५ मे नूरम्बर्ग में आकर बस गया था। बचपन मे उसने अपने पिता से स्वर्णकारी सीखी। तत्पश्चात् लगभग तीन वर्ष तक एक चित्रकार के यहाँ काष्ठशिल्प की शिक्षा ग्रहण की। १४९० मे उसने यूरोपीय देशो की यात्रा आरम्भ की। बीच-बीच मे समय निकाल कर वह भ्रमण पर जाता रहा। १४९४ मे वह नूरम्बर्ग लौट आया और वही विवाह किया। कुछ दिन पश्चात् वह वेनिस गया और लगभग एक वर्ष बाद घर लौटा। १५०५ मे वह पुनः वहाँ गया और वहाँ दो वर्ष रहा। वही उसकी भेंट जियोवानी वेलिन्नी से हुई जिसका वह प्रशसक था। वेलिनी ने उसका एक चित्र खरीदना चाहा और राफेल ने उसे एक चित्र भेंट किया। वहाँ उसने "गुलाब के हारो वाली मैडोन्ना" तथा "चिकित्सको के मध्य ईसा" नामक चित्र अंकित किए। वहाँ से लौटने पर उसने कला सम्बन्धी साहित्य का गम्भीर अध्ययन आरम्भ कर दिया और अनेक नवीन प्रयोग भी किये। अब वह साथी कारीगरो के स्थान पर विद्वानो के सम्पर्क मे रहने लगा। उसने गणित, लैटिन भाषा एव साहित्य का अध्ययन भी किया। धीरे-धीरे उस पर लियोनार्डो तथा मेण्टेग्ना का भी प्रभाव पड़ा। उसकी जीवन-पद्धति में यह परिवर्तन जर्मन लोगो के लिए आश्चर्य का विषय बन गया। १५१२ ई मे वह राजकीय चित्रकार नियुक्त हुआ और १५२० मे उसने अपना पद एव सेवावृत्ति स्थिर रखने के हेतु नीदरलैंड की यात्रा की जहाँ उसके नवीन सरक्षक का राज्याभिषेक हो रहा था। इसके उपरान्त उसने एण्टवर्प, ब्रूसेल्स, मैलाइन्स, कोलोन तथा घैण्ट आदि का भ्रमण किया। सभी जगह उसका भव्य स्वागत हुआ। १५२१ की जुलाई मे वह घर लौटा। अब उसे ज्वर रहने लगा था। १५२८ तक जीर्ण अवस्था मे कार्य करते रहने के पश्चात् उसका देहावसान हो गया।

ड्यूरर ने अनेक चित्रो, काष्ठशिल्पाकृतियो एव उत्कीर्ण चित्रो का सृजन किया (फलक १२–क)। इनके अतिरिक्त असंख्य रेखा-चित्र एवं प्रारूप निर्मित किए। शरीरशास्त्र, अनुपात एव कला-सिद्धान्तो पर भी उसने चार पुस्तको की रचना की तथा अपनी यात्राओं के सस्मरण लिखे। इटली के पुनरुत्थान के कला-सम्बन्धी विचार एव रूप ड्यूरर के माध्यम से ही उत्तरी यूरोप के देशो मे फैले। इनके साथ उसने गोथिक शैली का जर्मन व्यक्तिवाद भी समन्वित किया। उसे सर्वाधिक ख्याति उत्कीर्ण चित्रो से मिली। काष्ठशिल्प तथा उत्कीर्ण चित्रो के टेक्नीक का भी उसने पर्याप्त विकास किया जिससे उनकी रग योजनाए' एव प्रभाव समृद्ध हुए। उत्कीर्णन द्वारा उसने अनेक चित्र बनाये जो मनोरंजन के साथ-साथ उसके सन्देशवाहक भी थे। ये चित्र आकार मे छोटे और मूल्य मे सस्ते होते थे अतः हर जगह लोग इन्हें खरीद सकते थे।

ड्यूरर की शैली मे तकनीकी परिष्कार, विविध कल्पना, व्यजना एव उत्तम रेखाकन उपलब्ध होता है। उसके रूप प्राय. व्यक्तिगत एव गम्भीर अर्थों तथा प्रतीको से जुड़े रहते हैं। दर्शको पर इनका तुरन्त प्रभाव होता है यद्यपि इनका अर्थ बहुत देर में समझ मे आता है।

ड्यूरर ने जलरगो से भी दृश्य-चित्रण किया है। ये प्राय इटली की यात्राओ के समय बनाये गये थे। इनमें प्रकृति की विभिन्न ऋतुओ की छटा देखते योग्य है।

ड्यूरर की विशाल चित्रशाला में अनेक चित्रकार कार्य करते थे किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका कोई भी उत्तराधिकारी नही हुआ। उसकी कला बहुत लोकप्रिय हुई तथापि उसमे एक ऐसा व्यक्तिगत तत्व था जिसे कोई दूसरा कलाकार ग्रहण नही कर सका। यही कारण है कि उसके अनुकर्त्ता तो अनेक हो गये किन्तु मौलिक

रूप से उसकी शैली को आगे बढाने वाला कोई चित्रकार न हो सका। १–सैनिक, मृत्यु और पिशाच, २–सूनापन तथा ३–सन्त जैरोम उसके श्रेष्ठ उत्कीर्ण चित्र माने जाते हैं।

ग्रूनेवाल्ड (Mathias Grunewald, १४८०—१५२८/३०)–यह ड्यूरर का समकालीन और जर्मन चित्रकारो में श्रेष्ठ स्थान का अधिकारी माना जाता है। उसके जन्म एव जीवन चरित्र के विषय मे कुछ भी ज्ञात नही है। १५०८ से १५१४ तक वह मैंज के आर्कबिशप एव कार्डिनल का दरबारी चित्रकार रहा था।

अपने समकालीन अन्य चित्रकारो की भाति उसने काष्ठ-चित्रो की रचना की। उसके रेखाचित्र भी बहुत कम उपलब्ध हैं। अन्य प्रकार के जो चित्र उपलब्ध हैं उनसे ज्ञात होता है कि वह पुनरुत्थान-कालीन इटली के विचारो से अवगत था किन्तु वहाँ की शैली का ज्यो का त्यो प्रयोग नहीं करता था। अन्तिम गोथिक शैली की आकृतियो का ही प्रयोग करते हुए वह परिप्रेक्ष्य आदि को केवल भावात्मक प्रभाव के सवर्धन के हेतु प्रयुक्त करता था। वह अनिवार्यत धार्मिक कलाकार था। जहाँ ड्यूरर लेखनी से रेखाँकन करता था वहाँ ग्रूनेवाल्ड कोयले अथवा पेन्सिल से रेखाए अ कित करता था। ग्रूनेवाल्ड की आकृतियाँ बॉश एव शोनगौर के समतुल्य रखी जा सकती हैं। ग्रूनेवाल्ड की पशु आकृतियो मे भी एक प्रकार का घरेलू परिचितपन है और उन्हें उच्च कल्पनाशील भूमिका मे प्रस्तुत किया गया है। उसका यश प्रधानतः चार फलको वाले ईसा की सूली के एक चित्र के कारण है। इसके बाहरी खण्डो मे भविष्यवाणी, मैडोन्ना, ईसा का पुन जीवित होना तथा सगीतज्ञ आदि हैं। बाहर के दोनो खण्ड बन्द कर देने पर सूली का गम्भीर दृश्य ही दिखाई देता है। बीच मे ईसा की भावपूर्ण आकृति है जो सूली पर लटकी है। पीटे जाने से उनके शरीर पर खरोचें आ गयी है। कीलो के गड्ढो से खून बह कर जम गया है। शरीर पर पसीना भी सूखा हुआ दिखायी दे रहा है। यह दृश्य बडा ही कारुणिक है। मृत्यु का इतना वेदनापूर्ण चित्रण शायद ही किसी ने किया है। सम्भवत उसने इटली के तर्क और जर्मनी की मानवता के स्थान पर अपने मन की करुणा को ही व्यक्त किया है। इस चित्र को देखकर दर्शक वेदना के अपार सागर मे डूब जाते हैं। उसके अन्य प्रसिद्ध चित्र हैं ईसा की खिल्ली उडाना, सन्त डोरोथी तथा एक शबीह।

लूका क्रेनेख (Lucas Cranach—१४७२—१५५३)—यह महान चित्रकार, काष्ठशिल्पी एव धातु चित्रो का निर्माता था। इसके जीवन के विषय मे बहुत कम ज्ञात है। वह लगभग १५०० ई० से विएना मे रहने लगा था। १५०५ में वह सैक्सनी मे दरबारी चित्रकार हो गया। वहाँ उसकी भेंट मार्टिन लूथर नामक धार्मिक एव सामाजिक सुधारक से हुई और वह उसके प्रचार के हेतु चित्र बनाने लगा, यद्यपि स्वयं वह कैथोलिक था। उसकी आरम्भिक कृतियो मे धार्मिक दृष्टि है। उसने एक विशाल चित्रशाला स्थापित की थी जिससे उसकी शैली भी प्रभावित हुई। व्यक्ति-चित्रण के क्षेत्र मे उसने आपादमस्तक मनुष्याकृति को स्वतन्त्र महत्व प्रदान किया। जीवन भर वह उत्तम व्यक्ति-चित्र अकित करता रहा। इसके साथ-साथ उसने अत्यन्त वासनापूर्ण नारी-आकृति का भी विकास किया जिसके शरीर मे सिर से पैर तक मणियो के समान दमकते रग भर कर उसे वीनस अथवा अन्य कोई नाम दे दिया गया। १५०५—१५०६ के मध्य उसने काष्ठ चित्र भी बनाये जिन पर ड्यूरर का प्रभाव है। १५२० से वह बाइबिल तथा नवीन सुधारको के हेतु अनेक चित्र बनाने लगा जिनकी आकृतियाँ कठोर तथा भद्दी हैं। उसका निजी कार्य उसकी चित्रशाला के सम्मिलित कार्य से पृथक् करना कठिन है।

ग्रूनेवाल्ड जहाँ अभिव्यजना की गहराई को महत्त्व देता था वहाँ क्रेनेख ने जीवन के सुखात्मक पक्ष पर अधिक ध्यान दिया। उसकी आकृतियाँ समकालीन वेश-भूषा मे हैं मनुष्य सैनिक के वेष मे हैं और स्त्रियाँ टोप पहने हैं। उनमें दरबारी गणिकाओ की-सी झलक है। राइन नदी के तटवर्ती प्राकृतिक दृश्यो के अकन में भी उसका मन विशेष रमा है। प्रकृति के प्रति प्रेम एव अनावृत नारी की कोमलता का अकन उसकी प्रधान विशेषताएँ हैं। यह खुले हुए प्रकाशयुक्त वातावरण तथा लौकिकता का चितेरा था। आदम और हव्वा विषय को लेकर भी उसने कई

चित्र बनाये हैं जिनमें हव्वा की आकृति अल्हड नवयुवती के सदृश है किन्तु आदम की आकृति किंचित श्रान्त-क्लान्त प्रतीत होती है। लूका सुन्दर दृश्य चित्र बनाता रहता था जिनमे एक सुन्दर सजीव पशु अवश्य रहता था। उसके हरिण इतने स्वाभाविक थे कि उन्हें देख कर कुत्ते भौंकने लगते थे। इनसे भी अधिक उसकी अनावृताए सुन्दर थी। यूरोप की कला मे इनकी तुलना नही है क्योकि इनमे हास्य का पुट है।

कुछ आलोचको का कथन है कि उसके कार्य मे महानता नही है। एक बार ड्यूरर ने भी कहा था कि लूका बाहरी आकृति मे तो उलझ जाता है पर आत्मा का चित्रण नही कर सकता। वास्तव मे वह आतरिक चरित्र चित्रण मे अधिक सफल नही हुआ है। उसकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं —वीनस तथा क्यूपिड, वसन्त की अप्सरा, सेक्सनी के ड्यूक हेनरी तथा वीनस।

हांस होलबीन कनिष्ठ (Hans Holbein the younger १४९७—१५४३)—उत्तरी यूरोप में हास होलबीन सर्वश्रेष्ठ यथार्थवादी व्यक्ति चित्रकार था। उसके पिता भी एक अच्छे चित्रकार थे और होलबीन की आरम्भिक कला-शिक्षा उन्ही की चित्रशाला मे हुई। १५१५ के लगभग वह बेसले (Basle) चला गया और वहाँ एक चित्रकार के साथ कार्य करने लगा। यहाँ उसकी बहुत ख्याति हुई और शीघ्र ही वह मुद्रको तथा प्रकाशकों के हेतु कार्य करने लगा। इनमे सबसे बडा प्रकाशक फ्रोबेन था जिसके माध्यम से उसकी भेंट राजाओ आदि से हुई। इस समय के व्यक्ति चित्रो में चारित्रिक विशेषताओ का अच्छा अकन हुआ है। धार्मिक चित्रो मे वह भक्ति-भावना नही दिखा सका है। उनमे भी कठोरता और यथार्थवादिता आ गयी है। उसके आरम्भिक चित्रो मे बर्गोमास्टर मेयर और उसकी पत्नी का चित्र विशेष उल्लेख्य है। १५१७ में वह बेसले से चला गया और सम्भवत उसने इटली की यात्रा की। १५१९ में में वह पुन. बेसले लौटा और वही रहने लगा। १५२० मे उसने विवाह किया। इसी समय उसे काउंसिल चैम्बर मे भित्ति-चित्रण का निमंत्रण मिला। यहाँ उसने न्याय, नागरिक व्यवहार एव न्यायाधीशो आदि के चित्र अकित किये। १५३० तक यह कार्य पूर्ण हुआ। उसने लूथर बाइबिल का भी चित्रण किया और तत्कालीन जर्मनी की परिस्थितियो पर कटाक्ष करते हुए "मृत्यु का नाच" एव "मृत्यु के क ख" नामक चित्र-मालाओ की रचना की। इनमे यह दर्शाया गया है कि बड़े से बड़े और छोटे से छोटे किसी को भी मृत्यु नही छोडती है। १५२६ मे बेसले मे अशान्ति के समय वह लन्दन भी चला गया था जहाँ उसकी प्रसिद्ध धर्माचार्यों से भेंट हुई। कुछ समय तक सभवतः उसने राज परिवार की सेवा भी की। १५३२ में वह पुनः इंग्लैड आया और सर टामस मूर की सहायता से उसे बहुत सा कार्य मिल गया। उसने हेनरी अष्टम एव उसकी पत्नी का भी चित्र बनाया। इसे देखकर अनेक व्यक्ति उससे चित्र बनवाने के हेतु आये। इंग्लैड के सम्राट ने भी उसे आमंत्रित किया और अपने विवाह के लिये प्रत्याशी राजकुमारियो के चित्र अकित करने के हेतु उसे अनेक स्थानो को भेजा। धीरे-धीरे उसने चित्राकन मे माडेल का उपयोग सीमित कर दिया और केवल रेखाचित्र मे ही उसका उपयोग करने लगा। उसकी शैली मे भी अन्तर आया और आकृतियाँ अधिकाधिक रेखात्मक एव परम्परागत होती गयी। उस पर मिलन की इटालियन कला का प्रभाव भी पड़ा।

होलबीन के व्यक्तिचित्रो मे आकर्पण, परिष्कार एव गहराई है। उसकी विचार धारा चरम पुनरुत्थान के बहुत समीप थी। आग्र (Ingres) तथा देगा (Degas) पर उसके असाधारण प्रतिप्रेक्ष्य एव व्यजकता का प्रभाव पडा है। उसके व्यक्तिचित्र रंगीन रेखाचित्रो के समान हैं। शरीर की भगिमा एवं मुख की व्यजना पर उसने बहुत ध्यान दिया है। "मृत्यु का नाच" में उसकी आकृतियाँ बहुत प्रभावपूर्ण बन पडी हैं।

आलब्रेश्ट ड्यूरर, लूका क्रेनेख तथा हास होलबीन—ये तीनो जर्मनी के महान् चित्रकार हैं। सेजां, पिकासो तथा वान गॉग आदि अनेक आधुनिक कलाकारो ने इनसे पर्याप्त प्रेरणा ली है। जर्मनी की कला अपनी शक्तिमत्ता एवं कल्पना-शीलता के हेतु विख्यात है।

फ्रांस तथा बोहीमिया में पुनरुत्थान

इस युग की फ्रास तथा बोहीमियाँ की कला का इतिहास बहुत अधिक उत्साहप्रद नही है। यद्यपि यहाँ भी कलाकार परम्पराओ को छोड रहे थे तथापि राजनीतिक अस्थिरता के कारण उन्हे पर्याप्त सरक्षण एव प्रोत्साहन नही मिल सका। १४०० ई० मे वेन्जेल को बोहीमियाँ की गद्दी से उतार दिया गया। यद्यपि उसने पुनः गद्दी पर अधिकार कर लिया और १४१६ तक शासक रहा तथापि कला की दृष्टि से यह स्थान महत्वहीन हो गया। फ्रास मे भी छठे चार्ल्स की १४२२ ई० मे मृत्यु हो गयी और उत्तराधिकार के हेतु इग्लैंड तथा फ्रास मे युद्ध भी हुए। ये परिस्थितियाँ प्रगतिशील कलाकारो को कोई सरक्षण न दे सकी। बोहीमियाँ मे कला का विकास अलकृत सिकुडनो वाले परिधानो तथा बाजारू सौन्दर्य से युक्त आकृतियो के रूप मे हुआ। फ्रास मे यह परिवर्तन केवल मूर्तिकला में ही हुआ। फ्रास मे मूर्तियो पर मध्यकालीन परम्परा के अनुसार रङ्ग भी किया जाता था। फिर भी इनमे एक आकर्षण और स्थायित्व है। फ्रास की दरबारी सस्कृति के प्रभाव से कलाकृतियो मे नाटकीयता का अभाव एव परिष्कृत रुचि आदि के प्रति झुकाव मिलता है। फ्रैंच कलाकार इस प्रकार की भावपूर्ण आकृतियाँ तथा नाटकीय मुद्राएँ आदि प्रस्तुत नही करते थे जिनसे दर्शक अभिभूत हो जायें। क्लॉस स्लुटर (Claus Sluter) द्वारा निर्मित मूर्तियो में जो नाटकीयता का तत्व आ गया है उसके कारण इस देश की कला मे अवश्य कुछ विभिन्नता दिखायी देती है। यह अभी तक रहस्य ही बना है कि उसकी कला तत्कालीन सरक्षक बरगडी के ड्यूक को किस प्रकार आकर्षित कर सकी। चित्रकला मे यहाँ जो परिवर्तन आये वे इटली की प्रेरणा पर आधारित थे। इस समय के एक चित्र मे गहरी वेदनापूर्ण आँखें अकित हैं। यहाँ के पुस्तक-चित्रो मे भी यही प्रवृत्ति दिखायी देती है। इन सब कृतियो का समय लगभग १३७५ ई० से १४१६ ई० के मध्य माना जाता है। फ्लीमिश कलाकार रोजर वान डर वीडन (Roger van der Weyden) की कला मे यही व्यजनात्मकता प्रतिफलित हुई है। सामान्य रूप से फ्रैंच कला मे भावात्मक अभिव्यजना का अभाव और अलकरण एवं विवरणात्मकता की प्रचुरता है। दृश्यों के सैटिंग भी बहुत सोच-समझ कर किये गये हैं। कलाकार चित्रो मे खूब परिश्रम करते थे और सरक्षको द्वारा उन्हें इसका अवसर भी दिया गया था। एक-एक चित्र मे कभी-कभी दो कलाकारो ने दो या तीन वर्ष तक कार्य किया है। इटली की कला के प्रभाव से इनके द्वारा अकित विवरणो मे परस्पर सुसम्बद्धता भी आने लगी थी।

प्रकृति के अध्ययन मे ये कलाकार इटली से भी आगे निकल गये हैं। इस कला के विकास का इतिहास अभी तक अस्पष्ट है। १४०५—१० ई० तक यहाँ दृश्य चित्रो की पृष्ठभूमि मे सुनहरी आकाश बनता था किन्तु इसके पश्चात् पीछे छोटे होते हुए वृक्ष और झील के ऊपर उडता हुआ कुहरा आदि चित्रित होने लगे। किन्तु केवल इसी से यहाँ की कला मे क्रान्तिकारी दृष्टिकोण का आरम्भ नही मान लेना चाहिये। न तो सभी कलाकारो ने नवीन ढग अपनाया था और न प्राकृतिक यथार्थता से आकृतियो के स्वाभाविक अकन की प्रेरणा ही मिली थी। आकृतियाँ अब भी प्राचीन पद्धति से ही बनायी जाती थी। १४१५ ई० में इसमे परिवर्तन आया।

नीदरलैण्ड्स की कला

चौदहवीं शती मे नीदरलैण्ड्स अनेक राज्यो मे विभक्त था जिनमे कला की दृष्टि से फ्लाण्डर्स का नाम महत्वपूर्ण है। फ्लाण्डर्स-निवासी स्वभाव तथा परिस्थितियो से सघर्ष-प्रिय रहे हैं। १३८५ ई० तक उनके देश मे स्थिरता नहीं आ सकी थी। इसके पश्चात् वे व्यापार, कला तथा सैन्य-शक्ति मे फ्रास एव जर्मनी से टक्कर लेने लगे।

अन्य देशो की भाँति आरम्भिक फ्लीमिश कला मे भी ईसाई धर्म का ही चित्रण हुआ। व्यक्ति-चित्रण एव दृश्य चित्रण को कम महत्व मिला। फ्लाण्डर्स की यह कला फ्रास की लघु चित्र शैली के समान थी किन्तु उसका अपना एक ढग था। उस पर ग्रीक, रोमन बिजेण्टाइन अथवा इटली की कला का कोई प्रभाव नही था। कोमलांगी आकृ-

तियाँ, विवरणो की बारीकी और अनिश्चित गति इस कला की विशेषताएँ थी। यद्यपि कलात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से ये चित्र भद्दे थे किन्तु कारीगरी की दृष्टि से उत्तम थे। यहाँ तैल रङ्गो के माध्यम से बहुत कार्य हुआ है।

फ्लाण्डर्स में चित्रकला का इतिहास पन्द्रहवी शती से ही उपलब्ध होता है। उसके पूर्व की कला के सम्बन्ध में अधिक ज्ञात नही है। फ्लीमिश कला वास्तव मे आइक बन्धुओ से ही आरम्भ होती है। इनके साथ ही रोबर्ट केम्पिन का नाम उल्लेखनीय है। इन कलाकारो ने फ्रेंच परम्पराओ को अस्वीकार करके नवीन धारा का आरम्भ किया। १४१५—२५ ई० के मध्य पेरिस मे बने चित्रो मे जहाँ वस्त्रो को कोमल और बारीक सिकुडनो सहित चित्रित किया गया है वहाँ रोबर्ट केम्पिन के वस्त्रो मे त्रिकोणात्मक, सपाट एव अव्यवस्थित क्रम वाली सिकुडनें हैं। वस्त्रो मे भार भी अनुभव होता है। प्रतीत होता है कि इस कला पर मूर्तिशिल्प का प्रभाव पडा। केम्पिन की मुखाकृतियाँ भी व्यजनात्मक हैं।

आइक बन्धुओ मे ह्यूबर्ट वान आइक (Hubert van Eyck, १३६६/७०—१४२६) के विषय में अधिक ज्ञात नहीं है। उसके नाम से केवल चार उल्लेख मिलते है :—१४२४—२५ मे मास्टर ह्यूबर्ट को घैण्ट के मजिस्ट्रेट द्वारा उपासना वेदी के दो डिजाइनो का मूल्य चुकाया गया; मास्टर ह्यूबर्ट की चित्रकला का मजिस्ट्रेट ने निरीक्षण किया, १४२६ में उसकी चित्रशाला मे उपासनावेदी से सम्बन्धित एक प्रतिमा एव कुछ अन्य कृतियाँ थी; और मास्टर ह्यूबर्ट के उत्तराधिकारियों ने सम्पत्ति-कर चुकाया। १८ सितम्बर १४२६ में उसकी मृत्यु हो गयी।

छोटा भाई जान वान आइक (Jan van Eyck १३७०/८०—१४४०/४१)—पर्याप्त प्रसिद्ध हुआ। इन दोनों भाईयो को तैल-चित्रण पद्धति का आविष्कर्ता कहा जाता है। इनसे पहले तैल पद्धति से केवल भूमि बनायी जाती थी, चित्रण टेम्परा रगो मे होता था। इन्होने तैल रगो को चित्रण के योग्य बनाया। इनके प्रयोगो के कारण इनके द्वारा निर्मित तैल-चित्रो की रङ्गत और चमक मे अभी तक कोई परिवर्तन नही आया है। इन्होने रगों को बहुत पतला करके बारीक से बारीक काम भी सम्भव कर दिखाया है। जान वान आइक पहले लीज (Liege) के बिशप राजा के दरबार मे रहा। १४२५ ई० के लगभग वह बरगण्डी के ड्यूक की सेवा में चला गया। यहाँ उसने जो कार्य किया था उसका अधिकाश नष्ट हो गया है। जो कुछ अवशिष्ट है वह तत्कालीन दरबारी कला की उच्चतम स्थिति का द्योतक है। इन चित्रो मे राजकीय वैभव की शान-शौकत का अच्छा चित्रण हुआ है। साथ ही भवनो, प्राकृतिक दृश्य एव दूरी पर एक नगर का पर्याप्त सूक्ष्मता एवं सावधानी से अङ्कन किया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जान वान आइक पर फ्रेंच दरबारी कला-परम्पराओ का बहुत प्रभाव था। फिर भी सम्पूर्ण चित्र के ढाँचे की जो नवीन व्यवस्था है वह इटालियन कला को समझ कर ही अपनायी गयी है। इन दोनो परम्पराओं का अद्भुत समन्वय ही जान वान आइक की शैली मे हुआ है। पृष्ठभूमि एवम् आकृतियो का विन्यास अधिकाधिक आकर्षक होने लगा है। यह प्रवृत्ति प्राचीन पुस्तक-चित्रकारो मे भी झलकती है जो विशाल भित्ति-चित्रो के आधार पर ही लघु-चित्रो की दृश्य-योजना करते थे। इसी वृत्ति का चरम विकास घैण्ट की वेदी के हेतु निर्मित विशाल बहुफलकीय चित्र (The Ghent Altar-piece) मे दिखाई देता है। यह चित्र दोनो भाइयों ने मिल कर पूर्ण किया था। ह्यूबर्ट की कला प्रकृति के अकन मे दर्शनीय है और जान ने "स्थिर-जीवन" की चित्रण पद्धति मे कुशलता प्राप्त की है। चित्र केवल एक बिन्दु के परिप्रेक्ष्य (One point perspective) के आधार पर नहीं बनाया गया है। यह कृति एक के ऊपर एक अकित चित्रो की दो पक्तियो का समूह है। ऊपर की पक्ति के केन्द्र मे ईसा को सम्राट के रूप मे चित्रित किया गया है। उनके दोनो ओर कुमारी, दोनों सन्त जॉन तथा अनेक देवदूत एवं पखधारी संगीतज्ञ आदि हैं। एक स्थान पर आदम तथा हव्वा भी अंकित हैं। एक हस भी चित्रित है जो हव्वा के स्तन मे छिद्र करके रक्त पी रहा है। इसके द्वारा मनुष्य के पाप और कष्टो के द्वारा उनसे मुक्ति को प्रस्तुत किया गया है। नीचे की पक्ति के केन्द्र मे मेष-शावक

की उपासना (Adoration of the Lamb) का चित्र है। इसकी विस्तृत दृश्य-योजना, पृष्ठभूमि मे यरुसलम, उसके पीछे नदिया एव पर्वत तथा ऊपर आकाश मे सूर्य चित्रित है। अग्रभूमि मे अनेक सन्त, धर्माधिकारी, राजपरिवारो के समूह एवम् देवदूत मेष-शावक की उपासना करते दिखाये गये हैं। अग्रभूमि के केन्द्र मे एक फव्वारा भी जीवन का प्रतीक बनकर चित्रित हुआ है। इस केन्द्रीय चित्र के दोनों ओर चार पेनल और बने हैं जिनमें न्यायाधीश, सैनिक, सत और तार्थयात्री मेष-शावक के दर्शनो के हेतु आते हुए प्रदर्शित हैं। इन समूहो के पीछे भी विस्तृत वानस्पतिक पृष्ठ-भूमि चित्रित की गयी है। ऊपरी पक्ति की आकृतियाँ विशाल आकार की है और नीचे की पक्ति मे परिप्रेक्ष्य की गहराई तथा विशाल दृश्य-योजनाओ और अपार जन-समूहो के सयोजन से ही उन्हे सन्तुलित किया गया है। बडी और छोटी प्रत्येक वस्तु को एक समान सावधानी से चित्रित किया गया है जो इस धार्मिक आस्था का सदेश देती हैं कि ईश्वर सभी वस्तुओ को एक समान प्रेम करता है।[1] मानव-समूहो के अकन मे पर्याप्त विविधता है और प्राकृतिक दृश्य मे इटली की वनस्पति का चित्रण किया गया है। कोई दो सौ से अधिक आकृतियो वाले इस चित्र मे चरित्र-चित्रण की विचित्रता, वस्तुनिष्ठ वस्तु-चित्रण, भक्ति की भावना और केन्द्रीय सयोजन हैं जो इसे फ्लेमिश कला ही नही वरन् सारे ससार की कला मे अत्यन्त गौरव-पूर्ण स्थान प्रदान करते हैं। चित्र मे जहाँ विशाल दृश्य-सयोजन है वहाँ सूक्ष्म विवरणो को देखने के हेतु सूक्ष्म-दर्शी दर्पण की भी आवश्यकता होती है।

जान वान आइक ने कुछ अन्य चित्र भी बनाये जिनमे 'चर्च की कुमारी', 'भविष्यवाणी', सन्तो के साथ मेडोन्ना एव एक दानदाता का त्रिफलक, चासलर रोलिन एव मेडोन्ना आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। कुछ रजत-रेखीय चित्र (Silver point drawings) भी जान के बनाये कहे जाते हैं।

जान की योग्यता तथा आविष्कारक क्षमता उसे नीदरलैण्ड्स स्कूल के आरम्भिक कलाकारो मे श्रेष्ठ पद प्रदान करती है। बरगण्डी के दरबार की समस्त इच्छाओ की पूर्ति उसकी कला में हुई है। घैण्ट की वेदी के चित्र ने सम्पूर्ण पन्द्रहवी शती की कला को प्रभावित किया और जो टेक्नीक उसने विकसित किया वह फ्लेमिश परम्परा बन गया। आकृतियो के क्षेत्र मे जान की अपेक्षा उसके बाद के कलाकार रोजर वान डर वीडन को अधिक श्रेय मिला। उसकी आकृतियाँ अधिक भावपूर्ण और सजीव होकर आयीं। जान वान आइक का प्रमुख शिष्य पेत्रस क्रास्टस था। उसका भी बहुत दिनो तक सम्मान किया जाता रहा।

रोबर्ट केम्पिन ने तूर्नै (Tournai) में तथा जान वान आइक के ब्रूजेज (Bruges) मे अपने जीवन का अधिकाश समय व्यतीत किया था। केम्पिन की चित्रशाला में एक उत्तम कलाकार का अभ्युदय हुआ जिसका नाम रोजर वान डर वीडन था।

रोजर वान डर वीडन (Roger van der Weyden, १३९९/१४००-१४६४)—यह मध्य पन्द्रहवी शती का एक महान् फ्लेमिश कलाकार था। १४२७ ई० से १४३२ ई० तक यह राबर्ट केम्पिन (Robert Campin) का शिष्य रहा था। उसी के अनुकरण पर इसकी शैली मे स्पष्टता, भाव व्यजकता एव सवेदनशीलता का विकास हुआ। इसने एक विशाल चित्रशाला स्थापित की थी जिसमे रङ्ग घोटने से लेकर तूलिका के अन्तिम स्पर्श लगाने तक का कार्य पृथक्-पृथक् व्यक्तियो को उनकी योग्यता के अनुसार सौंपा गया था। १४२६ ई० के लगभग उसने ब्रूसेल्स की एक महिला के साथ विवाह किया और केम्पिन से कार्य सीखने के उपरान्त ब्रूसेल्स में ही रहने लगा।

---

1 We are reminded, despite the interest in the material splendour of the real and present world, of the persistence of a profound religious conviction that every thing in the universe, every nail, every blade of grass, every person great or small, was equal in God's love."—John P. Sedgewick Jr

१४३६ ई० के आस-पास वह नगर का प्रमुख कलाकार हो गया। १४५० में उसने स्वर्ण जयन्ती मनाई और रोम एवं फ्लोरेन्स आदि की यात्रा की। वहाँ वह फ्रा एंजेलिको की कला के सम्पर्क में आया तथा कोस्मास एवं दामियाँ आदि का भी उसने भ्रमण किया। उसने बरगण्डी दरबार के अनेक सदस्यों के हेतु चित्र बनाये किन्तु वह कभी भी दरबारी-चित्रकार नहीं रहा। चार्ल्स रोलिन के लिये १४४६ में उसने अन्तिम न्याय का एक सुन्दर चित्र अंकित किया था। उसने अनेक व्यक्तिचित्र भी अंकित किये जिनकी संवेदनशीलता दर्शनीय है। उसने एक ऐसे चित्र-फलक सम्पुट (Diptych) का भी प्रचलन आरम्भ किया। जिसके एक भाग में मेडोन्ना एवं शिशु तथा दूसरे भाग में प्रार्थना-रत भक्त का व्यक्तिचित्र अङ्कित रहता था। यह बहुत अधिक लोक-प्रिय हुआ। १४५२ ई० में अङ्कित एक त्रिफलक उसकी ऐसी विशेष कलाकृति है जिसमें वर्ण योजना, संवेदनशीलता एवं टेक्नीक तीनों की उत्तमता देखी जा सकती है। फिर भी भावों के केवल परिष्कृत-रूप को ही उसने ग्रहण किया है। आकृतियों को विकृत किये बिना ही उसने वेदना आदि को बड़ी सफलता से प्रस्तुत किया है।

वीडन की शैली—रोजर वान डर वीडन की आकृतियाँ चित्र तल (Picture plane) के निकट ही अंकित रहती हैं। उनके ऊपर प्रायः भवन अथवा चंदोवे का आच्छादन रहता है। स्तम्भों आदि के पार्श्व से दूर का दृश्य पर्याप्त विवरणात्मकता सहित चित्रित किया जाता है। आकृतियों में यद्यपि छाया-प्रकाश के द्वारा किंचित् गठनशीलता प्रदर्शित रहती है तथापि वे सघनता की अपेक्षा आलंकारिक प्रभाव ही अधिक प्रस्तुत करती हैं। परिधान हल्के-फुल्के, छोटी-छोटी सिकुड़नों में टूटे हुए तथा लयात्मक अलंकरण के समान प्रभाव उत्पन्न करते हैं। उत्तरी यूरोप में रिनेसाँ के आरम्भ के समय की कला में जो विशेषताएँ थीं वे ह्यूबर्ट, जान तथा रोजर के द्वारा भली-भाँति प्रकट हो जाती हैं। एक ने प्रकृति के अङ्कन में विशेष रुचि ली, दूसरे ने आकृतियों की गठनशीलता को प्रस्तुत किया और तीसरे ने आलंकारिक प्रभावों को अधिक महत्व प्रदान किया।[1]

रोजर वान डर वीडन १४६४ ई० तक जीवित रहा। अपने जीवन में उसने शैली में कई बार कुछ परिवर्तन भी किया। सम्भवतः इटली में हो रहे तत्कालीन परिवर्तनों के प्रभाव का ही यह परिणाम था। जान वान आइक तथा रोजर वान डर वीडन को फ्लीमिश पुनरुत्थान के संस्थापक-द्वय भी कहा जाता है। वास्तव में फ्लाण्डर्स की कला के ये दो महान् स्तम्भ हैं।

इन दोनों कलाकारों की उपलब्धियों को पचाना और उन्हें आगे बढ़ाना सरल कार्य नहीं था। आने वाले युग के कई कलाकारों ने इनकी एक-एक विशेषता को समझने का प्रयत्न किया। ब्रूजेज के पैत्रस क्राइस्टस ने जान वान आइक की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति एवं उज्ज्वल विवरणात्मकता को अक्षुण्ण रखा। डर्क बाउट्स (Dirck Bouts) ने पृष्ठभूमि एवं प्रकृति का सुव्यवस्थित अङ्कन किया। उसमें रोजर के समान अभिव्यंजना का अभाव है। साथ ही उसकी आकृतियों में जड़ता है। जान वान आइक, रोजर वान डर वीडर तथा बाउट्स इन तीनों की विशेषताओं का समन्वित रूप हान्स मेमलिंक (Hans Memlinc) की कला में मिलता है।

ह्यूगो वान डर ग्वेज (?—१४८२)—पन्द्रहवीं शती उत्तरार्ध के समस्त कलाकारों में सर्वाधिक उल्लेखनीय ह्यूगो वान डर ग्वेज (Hugo van der Goes) है। उसकी जन्म-तिथि के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। जान वान आइक के पश्चात् घैण्ट में चित्रण करने वाला तथा नीदरलैण्ड्स के आरम्भिक कलाकारों में वह एक श्रेष्ठ कलाकार था। सम्भवतः उसका जन्म घैण्ट (Ghent) में हुआ था और १४६७ ई. तक वह कलाकार संघ का सदस्य

1—"The three men encompass three great phases in northern Renaissance painting · the atmospheric wonder of the great world (Hubert), the solidity and splendour of material objects (Jan), and the decorative tracery that unites the whole in a continuous calligraphic rhythm (Roger) "-John P Sedgwick.

भी रहा था। १४७३/७४ एव १४७५ मे वह स घ का डीन रहा। १४७५ के लगभग ही उसने पोर्टिनरी आल्टर-पीस का चित्रण किया जो अब उफीजी मे है। इसका चित्रण नीदरलैण्ड मे रहने वाले एक फ्लोरेंसवासी के हेतु किया गया था। चित्र बन जाने पर सीधा फ्लोरेन्स भेज दिया गया अत नीदरलैण्ड की कला पर इसका कोई प्रभाव नही पडा। चित्र लगभग आठ फीट से भी बडे आकार मे है। समृद्ध एव ठण्डी र ग-योजना तथा तैल चित्रण के उत्कृष्ट टेकनीक का फ्लोरेन्स मे बहुत स्वागत हुआ। इसके कुछ ही दिनो बाद वह सन्त हो गया किन्तु चित्र-रचना करता रहा। इस बहाने उसका अनेक व्यक्तियो से सम्पर्क हुआ तथा अनेक स्थानो का भ्रमण किया। इसी यात्रा मे उसे एक प्रकार का धार्मिक उन्माद हो गया और १४८२ ई में पागलपन की अवस्था मे ही उसकी मृत्यु हो गयी। बर्लिन मे उसके अन्य दो विशाल चित्र सुरक्षित है। शेष छोटी-छोटी कृतियाँ अनेक सग्रहालयो मे हैं।

पोर्टिनरी आल्टरपीस (Portinari Altarpiece) का महत्व हमे तब ज्ञात होता है जब इस कृति की तत्कालीन अन्य कलाकारो की कृतियो से तुलना करके देखते है। इसके समान शक्तिमत्ता उस समय की अन्य रचनाओ मे नही है। उसकी आकृतियो में प्रत्येक स्थान पर ही उच्च दृष्टि बिन्दु नही मिलता। प्रधान पात्रो को दर्शक के शिर से ऊँचा बनाया गया है जिसके कारण वे महत्वपूर्ण हो गये हैं। कम महत्वशालिनी आकृतियो को अग्रभूमि मे स्थान मिला है। पृष्ठभूमि में साधारण पात्रो को बहुत छोटे आकार में चित्रित करके एक प्रकार का असन्तुलन उत्पन्न कर दिया गया है। चित्र मे छाया-प्रकाश का प्रभाव नाटकीय न होकर स्वाभाविक है। प्रधान पात्रो की मुखाकृतियाँ गम्भीर तथा अन्तर्मुखी प्रवृति व्यजित करती हैं। साधारण पात्रो को अधिक चचल दिखाया गया है। प्रधान पात्रो का व्यवहार सयमित है। छोटी-छोटी आकृतियो तथा वस्तुओ की पृष्ठभूमि में बडी-बडी आकृतियाँ चित्रित करके उसने सम्भवत सामाजिक व्यवस्था के विरोधाभास को भी व्यजित किया है (फलक ११-क)।

इनके अतिरिक्त हालैण्ड के दो अन्य कलाकारो के नाम भी उल्लेखनीय है। दोनो की कला मे कुछ ऐसी विचित्रताएँ हैं जो उन्हें अन्य समकालीन स्थानीय चित्रकारो से पृथक कर देती हैं। पहला कलाकार गीर्तजन जान्स (Geertgen tot Sint Jans) हार्लेम निवासी था। हालैण्ड का यह कलाकार केवल २८ वर्ष जीवित रहा किन्तु इस छोटीसी अवधि मे ही उसने आश्चर्यजनक प्रतिभा का प्रदर्शन किया। प्रकृति-चित्रण उसका प्रिय विषय था। ईसा के जन्म (The Nativity) के एक चित्र में उसने केवल चित्राकित वस्तुओ से ही प्रकाश का स्रोत लेकर समस्त वस्तुओं को छाया-प्रकाश से प्रभावित दिखाया है। इस प्रकार सम्पूर्ण चित्र में र गो के स्थान पर केवल छाया-प्रकाश का ही विचार किया गया है। चित्र के केन्द्र मे एक चौकोर स्थान पर बालक ईसा लेटे हैं। उनका शरीर सूर्य के समान प्रकाश-युक्त है। चारो ओर की आकृतियो पर उन्ही का प्रकाश पड रहा है। ऐसा प्रतीत होता है मानों केन्द्र में कोई प्रकाश का स्रोत रखा है और समस्त वस्तुओ को वही प्रकाशित कर रहा है। पृष्ठभूमि मे दूर एक देवदूत आकाश मे से प्रकाश-पु ज की भाँति उतरता हुआ अकित है। भूमि पर बैठे एव खडे मनुष्यो तथा अन्य जीवधारियो पर चन्द्रमा के समान इसी का प्रकाश आ रहा है।

बॉश—दूसरा कलाकार हीरोनीमस बॉश (Hieronymus Bosch-१४६२-१५१६) है। उसका जन्म हेर्टोजनबॉश (हालैण्ड) मे हुआ था, वही उसकी मृत्यु भी हुई। उसकी कृतियो में गोथिक युग की नैतिक व्यवस्था पर प्रतीकात्मक व्यग्य किया गया है। उसकी आरम्भिक कृति मे ईसा की सूली का चित्रण हुआ है। अन्य कृतियो में मूर्खों का यान (the ship of Fools), सन्त ऐन्थनी की छलना (the Temptation of St Anthony), पृथ्वी का स्वर्ग (Earthly paradise), सात दुष्पाप (Seven deadly sins), भूसा गाडी (Hay-wain), पागलपन की चिकित्सा (Cure for madness) तथा ईसा की नकल (Christ Mocked), विशेष प्रसिद्ध हैं।

इन चित्रो मे बॉश ने जिस प्रतीक-विधान का प्रयोग किया है उसे आज समझना प्राय असम्भव हो गया है। वर्तमान मनोशास्त्रियों का विचार है कि उसकी आकृतियाँ अचेतन की गहराइयो की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति हैं,

किन्तु यह मत ठीक नही हैं। उसके स्वय के युग मे अनेक विद्वानो, राज-परिवारो एव सरक्षको ने उसकी कृतियो का आदर किया था और उन्हे खरीदा भी था। इससे स्पष्ट है कि उस समय इनका अर्थ स्पष्ट था और बाद मे लोग उसे भूलते चले गये हैं। कलाकार ने अपने समय मे प्रचलित लोक-विश्वासो तथा व्यंग्य-कथाओ से प्रेरणा लेकर इनकी सृष्टि की है। इन आकृतियो मे मनुष्य, पशु, पशुमानव, विचित्र जीव एव विचित्र स्थापत्य के अतिरिक्त अवर्णनीय रूपो की भी सृष्टि हुई है और इन सबको चित्रो में यथा-स्थान बड़े सुव्यवस्थित रूप मे संजोया गया है। सबसे अधिक सौन्दर्य प्राकृतिक दृश्यो का है जिनके परिवेश मे घटनाओ की सृष्टि हुई है। प्राकृतिक दृश्यो का विस्तार और वनस्पतियो की छटा दर्शनीय है। कहा जाता है कि अपने समय तक विकसित फ्लीमिश कला के टेक्नीक का वॉश ने व्यक्तिगत उद्देश्यो के हेतु उपयोग किया है, किन्तु चित्रो के विषय वास्तव मे सामाजिक है और उन्हे मानवीय त्रुटियो की विविधता एव असीमितता का चित्रण कहा जा सकता है। चित्रो को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो बुराइयो से भरे इस संसार का शीघ्र ही अन्त होने वाला है।

पीटर ब्रूगेल (Pieter Bruegel—१५२५/३०—१५६९)—वॉश के पश्चात् व्यग्यात्मक शैली मे चित्र-रचना करने वाला दूसरा प्रसिद्ध कलाकार पीटर ब्रूगेल था। वह उत्तम दृश्य-चित्रकार भी था। यद्यपि उसकी जन्म-तिथि ज्ञात नही है तथापि १५५१ ई० मे वह एण्टवर्प के कलाकार सघ मे सम्मिलित था। अनुमान है कि इस समय उसकी आयु कोई २०-२५ वर्ष की रही होगी। १५५२ ई० में वह फ्रास तथा इटली गया। १५५३ मे वह रोम भी गया और १५५४ मे आल्प्स को पुनः पार कर वापिस लौटा। पर्वतीय दृश्यो एव इटली-भ्रमण का उस पर गहरा प्रभाव पडा। यात्रा की अवधि मे बनाये गये रेखाचित्र तथा चित्रो मे अकित दृश्यावलियाँ इसके प्रमाण हैं, किन्तु लगता है कि इटली की कला उसे कोई प्रेरणा न दे सकी। यात्रा से लौटने पर उसने वॉश की शैली मे तथा उसी के समान विषय लेकर रेखाचित्र बनाना आरम्भ किया। जीवन के अन्तिम दस-बारह वर्षों मे उसने सामाजिक, धार्मिक एव जन-जीवन के विषयों का विशाल प्राकृतिक पृष्ठ-भूमियो के साथ चित्रण किया। ये चित्र उसकी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ कहे जा सकते हैं। यद्यपि कुछ लोग उसे किसान ब्रूगेल कहते हैं किन्तु वास्तव मे वह बहुत सुसस्कृत व्यक्ति था। अनेक सम्राटो एव पादरियों से उसकी घनिष्ठता थी। उसके चित्रो मे अनेक प्रकार की ग्रामीण वेश-भूषा को स्थान मिला है। उसने पापो का व्यग्यात्मक चित्रण किया है। अबोध शिशुओ एव स्त्रियो की हत्या (Massacre of the innocents) नामक चित्र मे उसने छिपे रूप से स्पेनवासियो द्वारा नीदरलैण्ड्स पर किये गये अत्याचारो का ही चित्रण किया है। उसने ऋतु-सम्बन्धी जिन पाँच चित्रो का अकन किया है उनमे यद्यपि कोई नैतिक सन्देश नही है किन्तु दृश्य-चित्रो मे उनका महत्वपूर्ण स्थान है। इन चित्रो मे प्रकृति के प्रति सवेदनशीलता एवं मानव का वातावरण से सम्बन्ध बडे ही मार्मिक रूप मे व्यक्त हुए हैं। कुछ समय तक एण्टवर्प मे रहने के उपरान्त वह ब्रूसेल्स मे आकर रहने लगा था। "मृत्यु की विजय" (The Triumph of Death) उसका एक प्रसिद्ध चित्र है जिसमे मानवता की दयनीय अवस्था तथा आग से दग्ध ससार अकित किया गया है। यह चित्र वॉश का स्मरण दिलाता है और इसका विषय स्थानीय कला मे वॉश से लेकर ड्यूरर तथा होलबीन तक अनेक महान् कलाकारो को आकर्षित करता रहा है। चित्र में बहुत ऊँचे क्षितिज का प्रयोग किया गया है। इससे अधिक-से-अधिक स्थान उपलब्ध करके अधिक-से-अधिक वस्तुएँ अकित करने की युक्ति निकाली गयी है। नर-ककाल तथा मानव देह असख्य परिमाण में चित्रित करके विनाश-लीला का भयकर दृश्य उपस्थित किया गया है। नीचे दाएँ कोने मे एक वीर सैनिक मृत्यु की समस्त सेना पर अधिकार का प्रयत्न कर रहा है जो बडे ही रोष और आवेश मे चित्रित की गयी है। पृष्ठ-भूमि मे अग्नि शिखाएँ, काँटेदार चक्र और फाँसी के फन्दे अकित है जो फ्लाण्डर्स की निरीह जनता पर स्पेनवासियो द्वारा किये गये क्रूर अत्याचारों का सकेत देते हैं। एल ग्रेको (El Greco) ने इसी विषय को बहुत मर्यादा और गम्भीरता से चित्रित किया है।

धार्मिक तथा ऐतिहासिक विषयो को समकालीन समाज के परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत करने वाला ब्रूगेल केवल अकेला ही नही था, फिर भी वह ऐसा सर्वश्रेष्ठ कलाकार था। उसकी शैली मे जो शक्ति थी उसने आगे चलकर दैनिक जन-जीवन तथा विशुद्ध दृश्य चित्रण की स्वतन्त्र परम्पराओ का विकास करने मे महत्व-पूर्ण भूमिका निभायी। यहाँ तक कि स्थिर-जीवन के चित्रण पर भी उसका प्रभाव पडा।

ब्रूगेल ने खेलो तथा कहावतो पर भी चित्र बनाये हैं। कहावतो के आधार पर बने चित्र अब दुर्बोध होते जा रहे हैं क्योकि अनेक कहावतें तत्कालीन फ्लीमिश लोगो के साथ ही लुप्त हो चुकी हैं।

ब्रूगेल उत्तर पुनरुत्थान एव बरोक युगो के सन्धिकाल मे हुआ था। उसके पश्चात् के फ्लीमिश कलाकार बरोक शैली मे कार्य करने लगे।

फ्लीमिश कला का विकसित रूप बहुत लोकप्रिय हुआ, यहाँ तक कि आल्प्स पर्वत से उत्तर के समस्त यूरोपीय दरबारो मे फ्लीमिश कला अन्तर्राष्ट्रीय दरबारी शैली के रूप मे सम्मानित होने लगी। इग्लैंड, स्पेन, पुर्तगाल और यहाँ तक कि वर्तमान जर्मनी के कुछ भागो में भी इसका प्रचार हो गया। जर्मन कला पर जान वान आइक का विशेष प्रभाव पडा।

स्पेन का पुनरुत्थान—कालीन चित्रकार : एल ग्रेको

पन्द्रहवी शती तक स्पेन की कलाओं मे समृद्ध एव विचित्र कल्पनापूर्ण गोथिक अलकरण-पद्धति प्रबल हो चुकी थी। इटली के प्रभाव से जिन अभिप्रायो का चित्रण करने का प्रयत्न किया गया था उनमे सफलता नही मिली। १४५० तक यहाँ की कला स्थानीय प्रभावो को ही प्रदर्शित करती रही और पुनरुत्थान का ठीक-ठीक अर्थ ग्रहण नही किया गया। सरक्षक सम्राटो की भी अपनी कोई परिष्कृत एव स्थिर रुचि नही थी। फिलिप द्वितीय ने बॉश की विचित्र कृतियो का सग्रह कर रखा था किन्तु १५७७ में जब एल ग्रेको स्पेन आया तो उसने बॉश की कृतियो में रुचि लेना बन्द कर दिया। उसके पास टिशिया के भी अनेक चित्र थे। सम्राटो से पृथक स्पेन की जनता उन कला-कृतियो को पसन्द करती थी जिनमें भावो की गहराई होती थी। इन लोगो के द्वारा सरक्षित कला मे बरोक-पूर्व शैली के दर्शन होते हैं। इस युग के कलाकारो मे विशेष प्रसिद्ध है एल. ग्रेको जिसके उपरान्त स्पेनिश कला मे बरोक प्रवृत्तियाँ पर्याप्त प्रभावशाली हो गयी हैं।

एल ग्रेको (El Greco—१५४१/४५—१६१४/२५)—एल ग्रेको का वास्तविक नाम दोमेनिको थियोटोकोपुलस था। उसका जन्म क्रीट में हुआ था और वही उसकी आरम्भिक शिक्षा हुई। उस समय क्रीट पर वेनिस का अधिकार था किन्तु वहाँ अभी तक विजेण्टाइन शैली चल रही थी। आगे की शिक्षा प्राप्त करने वह वेनिस गया। वहाँ उसने टिशियाँ को अपना गुरू बनाया। १५७० मे जूलियो क्लोवियो नामक उसके एक मित्र ने कार्डिनल फर्नीज को एक पत्र लिखकर एल ग्रेको के हेतु सरक्षण की प्रार्थना की। उसे कार्डिनल का सरक्षण प्राप्त हुआ अथवा नही—इस विषय मे कुछ भी ज्ञात नही है किन्तु इतना अवश्य है कि वह दिन मे अपनी चित्रशाला से बहुत कम निकलता था। जब वह रोम पहुँचा तो उससे कहा गया कि वह माइकेल एजिलो द्वारा चित्रित "अन्तिम न्याय" की नग्न आकृतियो को वस्त्रावृत्त कर दे। इसके उत्तर मे एल ग्रेको ने कहा कि समस्त चित्रो को मिटा कर वह नये और उतने ही अच्छे चित्रो की रचना कर सकता है। ग्रेको के इस कथन का रोम के ईसाई अधिकारियो ने बहुत बुरा माना और उसे विवश होकर स्पेन जाना पडा। वहाँ उसे अपनी योग्यता सिद्ध करने के हेतु दरबारी चित्रकारो से स्पर्द्धा करने को कहा गया। वहाँ उसे बहुत परेशान किया गया जिसके फलस्वरूप प्राय एकान्त मे ही उसने अपना शेष जीवन व्यतीत किया। इस किंवदन्ती मे कितनी सचाई है, यह कहना कठिन है।

ग्रेको की आरम्भिक कृतियो मे टिशिया, माइकेल एंजिलो, राफेल, ड्यूरर आदि महान् कलाकारो का प्रभाव परिलक्षित होता है। इन सबके पीछे उसकी विजेण्टाइन पृष्ठभूमि भी कार्य करती रही है। यह स्पष्ट नही

है कि वह स्पेन क्यो गया किन्तु १५७७ के पश्चात्, वह वहाँ के तोलेदो नामक नगर मे ही मृत्यु पर्यन्त रहा। यह नगर ईसाइयत का गढ था और ग्रेको को यहाँ धार्मिक चित्र बनाने का कार्य शीघ्र ही मिल गया। यहाँ की ऊँची वेदी के हेतु उसने जो चित्र बनाया उसमे उसकी शैली के समस्त तत्वो का सुन्दर समन्वय हुआ है। आकार की दृष्टि से भी यह विशाल है। इसका एक अंश दस फीट तथा दूसरा सोलह फीट ऊँचा है। तोलेदो केथेड्रल के हेतु उसने एक अन्य चित्र "ईसा के वस्त्र उतारना" विषय को लेकर अकित किया किन्तु उसे धार्मिक अधिकारियो ने स्वीकार नही किया। १५८०-८१ मे उसने सम्राट फिलिप के हेतु कई चित्र बनाये। इनमे से एक चित्र को सम्राट ने इसलिये अस्वीकार कर दिया कि उसमे असम्माता, विकृत प्रमाण, आकुलता एव तेज रगो का प्रयोग किया गया था। ग्रेको ने अपना शेष जीवन तोलेदो मे ही व्यतीत करने का सकल्प लेकर अपनी शैली को और अधिक विकसित करना आरम्भ किया। नीदरलैण्ड्स के युद्धो तथा यहूदियो के निष्कासन आदि घटनाओ से वह बहुत प्रभावित हुआ। इन घटनाओ से तोलेदो सुनसान हो गया और सडको पर घास उग आई। उस पर ईसाई सन्त इग्नेटियस के 'समकालीन आध्यात्मिक एव सवेगात्मक अनुभूति' के सिद्धान्त का भी प्रभाव पड़ा जिससे प्रेरित होकर उसने प्राय. अन्य भड़कीले रंगो के विरोध मे नीले रग का प्रयोग किया और लम्बी-लम्बी आकृतियो मे स्नायविक तनाव अंकित किया। इन सबमे उसने एक रहस्यात्मक अनुभव किया और इनके द्वारा अपनी पीड़ा को भी व्यक्त किया।

ग्रेको को समन्वयवादी कलाकार कहा जाता है। क्रीट मे जन्म लेने पर भी उसकी शैली मे प्राचीन क्रीट अथवा यूनानी कला का कोई प्रभाव नही है। उसका सीधा सम्बन्ध अपने समय की बिजेण्टाइन चित्रकला से था। इसी अलौकिक भावमयी शैली के साथ वेनिस की यात्रा के उपरान्त उसने टिशियाँ एव टिण्टोरेट्टो आदि की शैली तथा रग योजनाओ का समन्वय किया। रोम मे उसने आकुल आत्मा को स्थूल आकृतियो मे उतार लाने का माइकेल एजिलो का कौशल देखा। स्पेन की अस्थिर राजनीतिक एव धार्मिक स्थिति ने भी उसे प्रभावित किया और इन सबको समन्वित करके एल ग्रेको ने एक नवीन शैली का विकास किया जिसमे उसका व्यक्तित्व बहुत अधिक निखर आया है। आधुनिक कलाकारो ने भी उससे प्रेरणा ली है। ग्रेको की मानवाकृतियो के अगो मे एक ऐसी भगिमा रहती है जो अन्यत्र नही मिलती। प्रत्येक आकृति धरातल के निकट ही अंकित की जाती है; दूरी का आभास बहुत कम दिया गया है। छाया तथा प्रकाश का गहरा एव विरोधी प्रभाव सर्वत्र प्रयुक्त किया गया है जो चित्र मे एक लय की सृष्टि करता है। इससे दर्शक का ध्यान शरीर रचना पर न जाकर आकृतियो के प्रभाव और आन्तरिक भाव की अभिव्यक्ति पर ही पहुँचता है। सभी चित्रो में सगति एव एकता दिखाई देती है। प्रायः कर्ण, षटभुज तथा कुण्डली के अनुकरण पर चित्रो मे लय का सयोजन किया गया है। इस दृष्टि से ग्रेको पुनरुत्थान शैली का चित्रकार न होकर रीतिवादी कलाकारो की श्रेणी मे रखा जाता है। उसमे पुनरुत्थान जैसा न सयोजन-सौष्ठव है और न मांसलता एव अस्थि-समूह का गठनशीलता एव स्थूलता-प्रधान अकन ही है। ग्रेको की आध्यात्मिकता इतनी प्रबल थी कि वह न तो दिन मे कही घूमता ही था और न चित्र ही बनाता था। प्राय. मोमबत्ती के प्रकाश मे ही उसने चित्राकन किया है। यही कारण है कि उसके चित्रो की पृष्ठभूमि मे प्रायः रात्रि का आकाश चित्रित है। उसने तोलेदो का एक चित्र भी अकित किया है। एक चट्टान पर बसे दुर्ग के समान इस नगर के चारों ओर गहरी घाटियाँ है। चित्र में अनेक भवन, मनुष्य एव सड़कें चित्रित हैं। आकाश में आँधी जैसा प्रभाव अकित किया गया है। कोई इसे आँधी भरे दिन का दृश्य कहता है और कोई रात्रि का। एल ग्रेको के जीवन के समान ही यह चित्र भी रहस्यपूर्ण है।

रीतिवाद (Mannerism)

'रीतिवाद' अंग्रेजी शब्द 'मैनरिज्म' का अनुवाद है जो स्वयं इटालियन शब्द 'मैनेरिया' का रूपान्तर है जिसका अर्थ "शैली" है। इस शब्द का प्रयोग पुनरुत्थान काल की उन अनेक कलाकृतियों के लिए किया जाने लगा था जिनमे लावण्य, परिष्कार, प्रयत्नहीनता तथा दरबारी शान-शौकत का प्रभाव था। १५२० ई० के पश्चात् ही इटली के कलाकारो में व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य एवं अहम् की भावना इतनी प्रबल हुई कि उन्होने पिछले सभी कलाकारो का विरोध करना आरम्भ कर दिया। वे नवीन ढग से अनेक प्रकार की शैलियाँ विकसित करने लगे। इसे रीतिवाद कहा गया है। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम राफेल तथा उसके अनुयायियो द्वारा अंकित कुछ कृतियो के हेतु किया गया था किन्तु १५२० ई० के पश्चात् प्राय सभी कलाकारो को इस वर्ग मे रखा जाने लगा। कलाकारो ने स्वय सचेष्ट होकर इस आन्दोलन का न तो सूत्रपात ही किया था और न दल बनाकर इस नाम से किसी सस्थान की स्थापना ही की थी। १५०० से १५२० ई० के मध्य कलाकारों की समस्त उपलब्धियो और नवीनताओ को लेकर आगे जिन नियमो के आधार पर चित्र बने उन्हें भी रीतिवाद के अन्तर्गत रखा जाता है। साधारणत जिस प्रकार पन्द्रहवी शती की फ्लोरेन्टाइन कला गोथिक विरोधी कही जाती है उसी प्रकार 'रीतिवाद' को चरम पुनरुत्थान विरोधी समझना चाहिये। यह प्रवृत्ति १५२० ई० से १५६० ई० तक चलती रही। इसमे नवीन आविष्कार तथा सृजन की प्रवृत्ति न होकर केवल मनोवैज्ञानिक विरोध की भावना की प्रबलता ही रही है। प्रचलित विधियो मे आकर्षक तरीको को छाट कर कलाकृतियो की रचना करना ही इस शैली का प्रधान लक्ष्य रहा है। तकनीकी कुशलता और शैलीगत परम्पराएँ इसका आधार रही हैं। आज जिसे आर्टीफिशियल (Artificial) कहा जाता है कुछ वैसी ही आकृतियाँ अंकित करने की प्रवृत्ति इन कलाकारो मे थी। उस समय इस शब्द का अर्थ "कलात्मक" था जब कि आज 'नकली' है। कलाकारो ने "कठिनाई" को एक आदर्श माना अर्थात् किसी कठिन मुद्रा को ऐसे ढग से प्रस्तुत किया जाय कि वह सुन्दर प्रतीत हो, उसमे माधुर्य की अनुभूति हो। वैभवपूर्ण कलाकृति, शरीर शास्त्र का पूर्ण ज्ञान और चेष्टाओ मे सरलता की अनुभूति भी इन कलाकारो का लक्ष्य था।

रीतिवाद की कल्पना कलाकारो मे अपनी कुशलता और कारीगरी दिखाने की भावना से उत्पन्न हुई थी। इसके परिणामस्वरूप इसमें निम्नांकित विशेषताओ का आविर्भाव हुआ —

(१) सर्पाकृति घुमाव—माइकेल एंजिलो का विचार था कि मूर्तिकार तथा चित्रकार को अपनी आकृति पिरामिड के आकार मे तथा सर्पाकृति घुमाव युक्त बनानी चाहिये तथा एक, दो अथवा तीन के गुणनफल मे उसकी पुनरावृत्ति की जानी चाहिये। इसी मे चित्रकला का रहस्य निहित है। गतिपूर्ण आकृति मे ही सर्वाधिक सौंदर्य तथा सुन्दरता होती है। आकृति को सर्प के अनुसार बल खाती हुई बनानी चाहिये जैसी कि लहराती हुई दीपशिखा होती है। आकृति लगभग अंग्रेजी के "एस" (S) अक्षर के समान होनी चाहिये और यह विशेषता सम्पूर्ण शरीर तथा विभिन्न अंगो पर समान रूप से लागू होती है। इसी के आधार पर मानव आकृति की मुद्रा को "कोन्ट्रापोस्टो" (Contrapposto) कहा गया है अर्थात् जिस दिशा मे पैर हो उसके विपरीत दिशा मे मुडता हुआ शरीर दिखाया जाय। नितम्बो की दिशा के विपरीत मुख की दिशा हो, एक पैर पर शरीर का बोझ हो और दूसरा पैर मुक्त दिखाया जाय। इन सभी विरोधों को सन्तुलित ढंग से प्रस्तुत किया जाय।

(२) काल्पनिक ग्राम्य वातावरण—रीतिवादी कलाकारों ने एक ऐसे कृत्रिम वातावरण की कल्पना कर डाली जिसमे कुछ दरबारी ढग के फैशनेबुल लोगों को ग्रामीणो के समान वेश-भूषा एवं वातावरण में आमोद-प्रमोद मनाते हुए अंकित किया जाता था। प्राय. गडरियो तथा अप्सराओ को ही रोमाण्टिक वातावरण मे प्रस्तुत करना इस कला का प्रधान विषय था।

(३) पूर्व निश्चित दृश्य-योजनाएं—रीतिवादी कलाकारो ने विषयो, आकृतियो, दृश्यो तथा पृष्ठभूमियो के हेतु कुछ पूर्वनिश्चित आधार बना लिए थे और वे जहाँ भी आवश्यकता होती थी, इन्ही का चित्रण कर देते थे। कुछ चुने हुए ऐतिहासिक अथवा पौराणिक दृश्य, विशेष व्यक्तिचित्र, आमोद-प्रमोद के कुछ निश्चित चित्र और कुछ मनोरंजक स्थल आदि इन चित्रकारो के पास बड़े आकर्षक तथा सुन्दर रूपो मे पूर्वकल्पित रहते थे और उन्ही को ये चाहे जहाँ बनाने को तत्पर रहते थे। आकृतियों के समूह सयोजन के ढग भी निश्चित कर लिए गये थे। स्तम्भो, सीढियो, फव्वारो तथा द्वार कपाटो आदि के भी बड़े अलकृत रूप कल्पित किये गये और भवनो अथवा उद्यानो के दृश्य प्रस्तुत करने वाले चित्रो मे इनका बहुत प्रभाव रहता था।

(४) विविधता और एकरसता—रीतिवादी कला मे विविधता पर बहुत बल दिया गया था और उसकी खातिर एकता का परित्याग भी कर दिया गया था। विविधता के कारण आकृतियाँ आकर्षक लगती थी। आकृतियो के विविध अंगो मे कही-कहीं यह विविधता बहुत अधिक है। उदाहरणार्थ एक सुराही का आधार साँप को पकड़े हुए गरुड के रूप मे है, शरीर घोंघे के समान है, ग्रीवा को पैर रहित नारी आकृति तथा हैंडिल को मुड़े हुए सर्प के रूप मे निर्मित किया गया है। इसी प्रकार इस युग में आकृतियो को बारीकी तथा परिश्रम से बहुत अधिक अलंकृत किया जाता था। इससे वातावरण के प्रभाव की बजाय आकृतियो मे स्पष्टता और विवरणात्मकता की प्रवृत्ति बढ़ी।

किन्तु इस विविधता में विरोध अथवा परिवर्तनशीलता के तत्वो के बजाय पुनरावृत्ति ही अधिक है जिसके कारण इसमे एकरसता भी आ गयी है।

(५) प्रचुरता और संक्षिप्तता—कलाकृति मे प्रचुरता अथवा समृद्धि का अर्थ संख्यात्मक दृष्टि से आकृतियो की अधिकता है किन्तु इसका आशय छोटे स्थान मे अधिक आकृतियो अथवा अलकरणो को एकत्रित कर देना भी है। इसके कारण आकृतियो मे अनेक निरर्थक विवरण एव अलकरण भी समाविष्ट कर दिये गये हैं। इसके विपरीत आकृतियो के अनेक भाव संक्षिप्त रूप मे चित्रित किये गये हैं।

(६) सुन्दरता और भयंकरता—रीतिवादी कला मे प्राय: सुन्दर स्त्री-पुरुषो, बालको, अप्सराओ, प्रिय लगने वाले पशु-पक्षियो, चिकने धरातलो तथा कोमल प्रभावो के साथ-साथ भयकर राक्षसो, सर्पों, सिंहो आदि पशुओ, खुरदरे धरातलो आदि का विचित्र संयोग हुआ है। प्रायः आभूषणो, प्राकृतिक दृश्यो, भवनो के स्तम्भों, द्वार-कपाटो तथा दैनिक प्रयोग के उपकरणो मे इनका अच्छा प्रयोग देखा जा सकता है।

(७) स्पष्टता तथा अस्पष्टता—रीतिवादी कलाकारो ने अपनी आकृतियो को कही स्पष्ट और कही अस्पष्ट बनाया है। कही वर्णनात्मक-विवरणात्मक पद्धति से काम किया है तो अन्यत्र प्रतीकात्मक-रहस्यात्मक पद्धति से। इस प्रकार उन्होंने अपनी कलाकृतियो के प्रति दर्शक की उत्सुकता और आकर्षण को जगाया है। इसके प्रभाव से प्रतीक, अन्योक्ति रूपक एव मानवीकृत आकृतियाँ रीतिवादी कला मे बहुत प्रयुक्त हुई हैं जिनका अर्थ समझने मे विलम्ब लगता है।

(८) रूप और प्रतिपाद्य—रीतिवादी कलाकार विषयवस्तु से अधिक महत्त्व रूप को देते थे और इस प्रकार अपनी कृति की कलात्मक विशेषताओ को प्रमुख मानते थे। दर्शक भी पहले कला की रूपात्मक तथा तकनीकी विशेषताओ से प्रभावित होता था और उसके पश्चात् ही विषय को समझने का प्रयत्न करता था। आकृतियों के घुमाव, छाया-प्रकाश और अधकार के प्रभाव, रगो की क्रीड़ा, परिप्रेक्ष्य और अलकरण—ये सब दर्शक को इतने उलझा लेते थे कि उसे विषयवस्तु अथवा प्रतिपाद्य के बारे मे सोचने का अवसर ही नही मिलता था।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रीतिवादी कला उन उद्देश्यो के उपयुक्त उचित साधन नही रही है जिनके हेतु कलाकृतियो का सृजन होता था। इसमे शैली तो है, औचित्य नही है।

रीतिवाद की कतिपय अन्य विशेषताएँ भी बहुत स्पष्ट हैं। चित्र में मानव शरीर को प्रमुखता देना, कुछ असाध्य-सी मुद्राएँ, लम्बी शरीराकृति, कभी-कभी मास-पेशियों को अनावश्यक रूप से उभार देना, अस्पष्ट संयोजन, प्रधान आकृति को प्राय कोने अथवा पृष्ठभूमि मे चित्रित करना, पास तथा दूर की आकृतियों मे असन्तुलित अनुपात तथा प्राकृतिक दृश्य मे असन्तुलित परिप्रेक्ष्य, रगो की विविवता एवं आकृतियों से असम्बद्धता, कहीं-कहीं लाल रग नारगी रग मे तथा पीला रग हरे रग मे लीन होता हुआ, तथा वर्ण-योजना मे किंचित् रूखापन-ये ही इस शैली के मुख्य लक्षण हैं। इनसे स्पष्ट है कि यह शैली मानसिक असन्तुलन एव सामाजिक अस्थिरता को प्रकट कर रही थी। तत्कालीन ईसाई सुधारवादी आन्दोलन ने प्राचीन शास्त्रीयता एव चरम पुनरुत्थान के प्रति आस्था को समाप्त कर दिया था। राफेल एव माइकेल एंजिलो की आकृतियो में कला पूर्णता प्राप्त कर चुकी थी अत अब प्रत्यावर्तन की बारी थी। यह प्रत्यावर्तन ही इस प्रकार की विकृतियो मे प्रकट हुआ। राफेल का शिष्य ज्यूलियो रोमानो (Giulio Romano), पोण्टोर्मो (Pontormo), रोस्सो (Rosso) एव पार्मीजियानीनो (Pormigianino) (फलक ७-ख) इसके प्रमुख अनुयायी थे। माइकेल एंजिलो, टिण्टोरेट्टो एवं एल ग्रेको आदि ने भी कतिपय आकृतियो मे इस शैली का प्रयोग किया है। वेनिस की कला पर इस आन्दोलन का कोई प्रभाव नही पडा। कैवेलियर डी आरपीनो द्वारा इसको समाप्त करने की चेष्टा की गयी किन्तु प्रकृति-चित्रण का सहयोग लेकर यह कला-शैली बरोक युग मे पुन: प्रकट हुई। १५३० के मध्य एण्टवर्प (फ्लाण्डर्स) मे भी इस शैली मे कुछ अज्ञात कलाकारो ने कार्य किया था।

इस समय फ्लोरेन्स आदि के अनेक कला-मर्मज्ञो एव कलाकारो ने कला-इतिहास एव आत्म-चरित्रो का भी प्रणयन किया। इस युग की जनता कलाकारो, उनके जीवन-चरित्रों तथा उनसे सम्बन्धित कहानियो मे रुचि प्रदर्शित करने लगी थी।

बरोक युग की कला-शैलियाँ

पिछले पृष्ठो मे सकेत किया जा चुका है कि पुनरुत्थान युग के अनेक कलाकार आकृतियो की गठनशीलता, परिप्रेक्ष्य, सन्तुलन एव वातावरण के सयमित सयोजन से ऊबकर नवीन प्रयोग करने लगे थे। यह प्रवृत्ति माइकेल एंजिलो एव राफेल आदि मे आरम्भ होकर एल ग्रेको मे बहुत स्पष्ट हो गई। इसी प्रवृत्ति ने आगे चलकर एक नवीन शैली को जन्म दिया जिसे 'बरोक' शैली कहा गया है।

बरोक युग प्रायः सत्रहवी तथा अठारहवी शती मे प्रचलित रहा है और यह पुनरुत्थान एवं आधुनिक युग के मध्य की कड़ी के रूप मे माना जाता है। कुछ विचारको के अनुसार इस युग मे नये सिरे से पुनरुत्थान का प्रयत्न किया गया था क्योकि इसमे लगभग वे ही प्रवृत्तियाँ पुन दिखायी देती है जो पहले युगो मे प्रचलित हो चुकी थी। अन्य शैलियो की भाँति इसका भी उद्‌भव, उत्थान और पतन हुआ। इसको भी प्राय राज दरबार, धनिको तथा चर्च का सरक्षण मिला और चित्रकला मे अन्य पूर्ववर्ती शैलियों की भाँति बाइबिल, शास्त्रीय इतिहास एव पुराण के आधार पर विषयों का अकन किया गया।

बरोक युग भी ऊँचे और बड़े कलाकारो से प्रभावित रहा। इस युग मे बेरनिनी, पुसिन, रूबेन्स, रेम्ब्राँ, वेलास्केज तथा टाइपोलो जैसे महान् कलाकार उत्पन्न हुए। इन्होंने विगत कला के माध्यम से प्राचीन शास्त्रीय कला को पुन समझने का प्रयत्न किया, विशेषत. रोमन कला को। फिर भी बरोक युग मे रगो के बल अधिक स्पष्ट और रंगीन हैं, धरातल अधिक विविध हैं, शैली अधिक अलंकृत है, छाया-प्रकाश के प्रभाव अधिक नाटकीय हैं और संयम की बजाय उन्मुक्तता भी अधिक है। इस युग मे रिनेसाँ जैसा परिष्कार नही है। कहीं-कहीं कोई विशेष प्रभाव उत्पन्न करने की जानबूझ कर कोशिश की गयी है।

आरम्भ मे कलात्मक गतिविधियो का केन्द्र रोम था किन्तु कुछ समय पश्चात् फ्रास का विशेष महत्व हो गया। प्राय फ्रास, स्पेन, हालैण्ड, इगलैण्ड तथा मध्य यूरोप मे राष्ट्रीय कला-सम्प्रदायो ने इस कला को बहुत आगे बढाया और अनेक नवीन सरक्षक बनाये। नये संरक्षक बनने तथा कला के व्यापक प्रसार का कारण कला मे छोटी चित्र-विधाओ का विशेष उत्थान था जिनमें व्यक्ति-चित्रण, दृश्य-चित्रण, स्थिर जीवन एव लोक-जीवन का अंकन किया जाता था। व्यक्ति-चित्रण तो बहुत प्राचीन काल से ही लोकप्रिय था, अन्य विधाएँ पहली बार उतनी ही व्यापक हुई जितनी बाइबिल, इतिहास अथवा पौराणिक कथाओ को चित्रित करने वाली विधाएँ थी। अठारहवी शती मे फर्नीचर तथा आन्तरिक सज्जा का भी बहुत महत्व हो गया और चीनी मिट्टी के खिलौनो (पोर्सेलिन) के रूप मे एक बिल्कुल नयी कला का आविर्भाव हुआ।

बरोक युग में शैलीगत विभिन्नताएँ भी बहुत अधिक हैं। अलग-अलग स्थानों पर, एक-दूसरी से पर्याप्त भिन्न-शैलियो का विकास हुआ। वास्तव मे सत्रहवी तथा अठारहवी शती की सम्पूर्ण कला के हेतु 'बरोक' शब्द का प्रयोग बहुत उचित नहीं है। बरोक शैली इस युग की एक प्रधान प्रवृत्ति अवश्य थी।

कुछ समय पूर्व तक बरोक शब्द का प्रयोग एक युग के हेतु किया जाता था, किन्तु अब यह केवल एक चित्र-शैली के हेतु ही होता है। यह शैली १६०० ई० के लगभग इटली मे उत्पन्न होकर मध्य अठारहवी शती तक प्रचलित रही और फ्लाण्डर्स, जर्मनी, मध्य यूरोप (आस्ट्रिया, बोहीमिया तथा पोलैण्ड) तथा स्पेन मे विशेष रूप से फैली। अन्य यूरोपीय देशो की कला पर भी इसका कुछ प्रभाव पड़ा। इसके साथ ही फ्रांस मे शास्त्रीय आन्दोलन का आरम्भ हुआ। कैरेवैज्जियो तथा अन्य अनेक डच चित्रकारो ने एक तीसरी शैली मे कार्य किया जिसे यथार्थवाद

कहा जाता है। ये तीनो शैलियाँ किंचित् परिवर्तनो के साथ अठारहवी शती मे भी चलती रही। इन्ही मे से मध्य अठारहवी शती मे रोकोको नामक शैली का विकास हुआ। इसमें कुछ विशेषताएं बरोक शैली की थी और कुछ उसका विरोध भी था। १७६० ई० तक आते-आते शास्त्रीयतावाद ही नव शास्त्रीयतावाद मे विलीन हो गया और यह नया आन्दोलन बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसने बरोक शैली का प्रभुत्व समाप्त कर आधुनिक चित्रकला के हेतु द्वार खोल दिया। इस प्रकार इस युग से कला मे उत्थान और पतन के चक्र की समाप्ति हुई और क्रमश अनेक नये आन्दोलन उत्तरोतर सामने आते गये। इसी के परिणाम-स्वरूप नव-शास्त्रीयतावाद ने आधुनिक कला की नीव रखी।

बरोक युग के सौंदर्य सिद्धान्त—सत्रहवीं शती मे कलाओ को प्राचीन शास्त्रीय विचारो की पृष्ठभूमि मे देखा जाता था और उन्हे श्रेष्ठता तथा निम्नता के एक क्रम मे रखा जाता था। प्राचीन ऐतिहासिक तथा धार्मिक आदि विषयो को व्यक्ति, दृश्य अथवा लोक जीवन के विषयो के चित्रो से उच्च समझा जाता था। अठारहवी शती मे इन निम्न विषयों पर भी गम्भीरता से विचार किया गया। इस समय सौंदर्य-शास्त्रीय विचारधारा का आधार यह था कि चित्र और मूर्ति मे आदर्श प्रकृति की अनुकृति की जानी चाहिये, क्योंकि प्लेटो तथा अरस्तू के अनुसार वास्तविक प्रकृति अपूर्ण है अत. कलाकार का कर्तव्य आदर्श रूपो की रचना करना है। इसके हेतु कलाकार को प्राचीन यूनानी-रोमन कलाकारो से प्रेरणा लेनी चाहिए। पुनरुत्थान युग मे इस प्रकार का चित्रकार राफेल था अत उससे भी कुछ सीखा जा सकता है। कलाकार को शालीनता का ध्यान रखना चाहिए अर्थात् शैली का निर्धारण विषय-वस्तु के अनुसार ही होना चाहिये। बरोक युग के प्राय सभी कलाकारो ने इन विचारो के प्रति अपनी सहमति प्रकट की। किन्तु जहाँ इसी समय के शास्त्रीयतावादी कलाकारो ने आकृति को महत्व दिया वहाँ बरोक चित्रकारो ने रंग को प्रधान माना। इसके अतिरिक्त बरोक चित्रकारो ने चित्रगत विस्तार का गतिशील प्रयोग, आकृतियो की गति और छाया-प्रकाश का भी नाटकीय प्रयोग किया जिनका इन सिद्धान्तो मे कोई उल्लेख नही था। यह होते हुए भी बरोक चित्रकारो ने सौंदर्य का कोई निश्चित लक्ष्य अपने सामने नही रखा। सत्रहवी शती की समाप्ति पर आकृतिवादियो की तुलना मे रंगवादी चित्रकारो की विजय हुई और कलाओ मे उदार दृष्टिकोण आरम्भ हुआ। कला मे विविधता, आकर्षण और लावण्य का बोलबाला हुआ। इस प्रवृत्ति का चरम विकास रोकोको शैली मे और विरोध नव-शास्त्रीयतावाद में दिखायी देता है।

बरोक शैली—बरोक युग की सर्व प्रमुख कला बरोक शैली कही जाती है। इस शैली की प्रधान विशेषताएं निम्नांकित हैं —

(१) संवेग-स्पर्शिता—यद्यपि सभी कला-शैलियाँ किसी-न-किसी मात्रा मे हमारे संवेगो को स्पर्श करती हैं तथापि बरोक शैली संवेग-प्रियता को ही अपना आधार बना कर चलती हैं। यही कारण है कि इस शैली मे प्रतीक अथवा रहस्यात्मकता का बोध नही है और अन्य शैलियो की अपेक्षा सरलता से समझ मे आ जाती है। साथ ही यह हमारे मन को तुरन्त प्रभावित करती है। बरोक शैली की आकृतियाँ जिस धरातल पर चित्रित की जाती हैं उसके आकार और दर्शक से उसकी दूरी के अनुसार ही ठीक अनुपात मे आकृतियाँ छोटी अथवा बडी बनायी जाती हैं। इससे दर्शक को वे एकदम सहज (नार्मल) प्रतीत होती हैं। छोटे चित्रो मे आकृतियाँ अग्रभूमि मे ही अंकित की जाती हैं। कैरेवैज्जियो ने इस प्रकार के प्रयोग सर्वप्रथम किये थे। अग्रभूमि मे चित्रित होने से आकृतियो की भव स्थिति, चेष्टा और शारीरिक रचना पर हमारा ध्यान अपेक्षाकृत अधिक केन्द्रित होता है। इस तकनीक का प्रयोग कैरेवैज्जियो के अतिरिक्ति लुडोविको, कैरेसी, गुइदो रेनी, कोर्टोना, रूबेन्स, वान डाइक तथा रेम्ब्राँ आदि ने भी बहुत किया है। पृष्ठ-भूमि शनैं शनैं अंधकारमय से प्रकाशमय होती गयी है और कहीं-कहीं हल्के प्रकाश में प्राकृतिक दृश्य भी उभर कर आ गया है।

(२) भ्रम—१६३० ई० के पश्चात् बरोक शैली के चित्रो मे अनेक प्रकार से भ्रमात्मकता उत्पन्न करने

का प्रयत्न हुआ। छतों मे अलंकरण इस प्रकार किये गये कि छतें वास्तविक से अधिक ऊँची लगने लगी। दृश्य-चित्रो मे प्रकृति के महान् विस्तार और दूरी का आभास होने लगा। यह भ्रम बरोक युग की उन्नति के समय ही विशेष रूप से प्रयुक्त किया गया। स्वप्न और दिव्य कल्पना के ऐसे कल्पित दृश्य उपस्थित किये गये जो यथार्थ रूप मे घटित नही हो सकते थे किन्तु इन्हे ऐसे यथार्थात्मक रूपो मे अंकित किया गया कि ये सब वास्तविक प्रतीत होते थे। भ्रम का एक अन्य रूप किसी पदार्थ द्वारा किसी अन्य पदार्थ का भ्रम उत्पन्न करना भी था जैसे सगमरमर के द्वारा वस्त्रो अथवा केशो आदि का अथवा चमकदार तावे के तार से प्रकाश की किरणो का आभास कराना या फिर चित्र के चारों ओर रगो द्वारा चित्रित चौखटे से वास्तविक फ्रेम का भ्रम उत्पन्न करना।

एक अन्य युक्ति के अनुसार दर्शक को चित्र के वातावरण मे सम्मिलित करने का प्रयत्न किया गया। इसके हेतु आकृतियाँ इस प्रकार अंकित की गयी मानो वे चित्र के सीमित क्षेत्र मे न समा रही हो या कि वे चित्र के धरातल के बाहर वास्तविक भूमि पर पदार्पण करना चाहती हो। इस युक्ति का प्रयोग १५६० ई० के लगभग पुनरुत्थान कालीन चित्रकार एल-ग्रेको ने आरम्भ किया था। रेम्ब्राँ के "द नाइट वाच" चित्र में इसका अच्छा प्रयोग हुआ। १६०३ में रूबेन्स ने लर्मा के ड्यूक के व्यक्ति-चित्र मे भी इस युक्ति को अपनाया था। वान डाइक द्वारा अंकित चार्ल्स प्रथम के अश्वारोही चित्र मे इसका चरम विकास हुआ जहाँ अश्व को ठीक सामने आते हुए अंकित किया गया है। रेम्ब्राँ की अनेक आकृतियाँ दर्शक की आँखो मे गहरी झाँकती हैं। मानो वे चित्र को फाड़ कर हमारे ससार मे प्रवेश करना चाहती है।

भ्रम का वास्तविक लक्ष्य किसी चित्र मे दृष्टि को आगे पीछे घुमाना और पास तथा दूरी की वस्तुओ का संबन्ध समझना मात्र है, धोखा देना नही। इस दृष्टि से बरोक कलाकृतियाँ आश्चर्यप्रद अधिक है, गभीर कलात्मक कम।

(३) कलाओं का संगम—इस युग मे कलाओ ने आपस मे एक दूसरे के कार्य ले लिये और प्रायः सभी कलाएँ चित्रकला की ओर मुड गयी। भवनो मे मूर्तिकला का गुण आने लगा और मूर्तियाँ चित्रो जैसी रगी जाने लगी। चित्रो मे भी आकृति तथा वाह्य रेखा के स्थान पर छाया-प्रकाश तथा रगो के प्रभावो पर अधिक ध्यान दिया गया। चित्रो मे प्रधान वस्तु केन्द्र के निकट बनने लगी। बेरनिनी कृत "सन्त टेरेसा की दिव्य अनुभूति" इस प्रकार की एक महत्वपूर्ण कृति है जिसमे कक्ष मे मूर्तियो तथा ताँबे की छडो आदि के प्रयोग से चित्र जैसा प्रभाव उत्पन्न किया गया है।

(४) फव्वारो के दृश्य—बरोक कला मे फव्वारो के दृश्यो का बहुत प्रयोग हुआ है। इनमे लहरो तथा फुहारो के अतिरिक्त अनेक प्रकार के विचित्र, काल्पनिक एवं आलकारिक जल-जन्तु चित्रित हुए हैं जो बडे आकर्षक लगते हैं। यद्यपि फव्वारो का प्रयोग पहले से ही होता था किन्तु इस युग मे वे बहुत बडे-बडे अंकित होने लगे।

(५) मंचीय दृश्यात्मकता—इस शैली मे इस प्रकार के विशुद्ध मचीय दृश्यात्मक प्रभावो का भी बहुत प्रचार हुआ जिनमें केवल दरवाजो, स्तम्भो, मेहराबो तथा खिडकियो आदि से किसी विशाल भवन अथवा हॉल आदि का दृश्य प्रस्तुत किया जाता था।

(६) भड़कीली एवं आकर्षक रंग-योजना—बरोक कलाकारो ने अपने चित्रो मे बहुत भडकीले एव चमकदार रगो का प्रयोग किया है। भवनों मे रगीन सगमरमर, अलंकृत फरनीचर एव चमकीली धातुओ से बनी वस्तुओ को इस प्रकार सजाया गया है कि सम्पूर्ण वातावरण बडा ही भव्य और आलीशान प्रतीत होता है। बरोक चित्रकारो की अधिकांश आकृतियाँ भी शान-शौकत से परिपूर्ण है। उनके वस्त्र, आभूषण, केश-विन्यास, चाल-ढाल सभी शानदार हैं। इसके हेतु उन्होने वेनिस की कला से प्रेरणा भी ली है। इसमें भी टिशियाँ का प्रभाव सर्वाधिक है। रग से भरी चौडी तूलिका का मुक्त प्रयोग इसमे बहुत सहायक हुआ है। इस युग मे तूलिका का सर्वोत्तम कार्य रेम्ब्राँ ने किया है।

(७) नाटकीय छाया-प्रकाश—बरोक चित्रकारो ने प्रकाश तथा छाया का नाटकीय एव मनोवैज्ञानिक प्रयोग किया है। बरोक चित्रो मे पृष्ठ-भूमि प्राय अधकारपूर्ण है फिर भी उनके रग बहुत चमकीले हैं। चित्र-सयोजन' के महत्वपूर्ण स्थान पर अकित आकृतियाँ प्रकाश युक्त बनायी गयी है। यह प्रकाश आवश्यकतानुसार तीव्र या कोमल है। इस प्रकार के प्रयोग करने वाला प्रथम कलाकार कैरेवैज्जियो था। उसका प्रभाव वेलास्के तथा ला तूर पर पडा किन्तु उसका सर्वोत्तम प्रयोग रेम्ब्राँ ने किया। "द नाइट वाच" मे इसका नाटकीय और उसके व्यक्ति-चित्रो मे इसका मनोवैज्ञानिक उपयोग बडे ही प्रभावपूर्ण ढग से हुआ है।

बरोक शैली के कुछ प्रमुख चित्रकार

इटली

कैरेवैज्जियो ((Caravaggio, १५७३—१६१०)—यह इटली का बहुत प्रसिद्ध चित्रकार हो गया है। इसने बरोक तथा यथार्थवादी, दोनो शैलियो मे कार्य किया है। उसका वास्तविक नाम माइकेल एजिलो मेरिसी था किन्तु उत्तरी इटली के एक गाँव मे जन्म लेने के कारण उस गाँव से आधार पर ही उसे कैरेवैज्जियो कहा जाने लगा। वह किशोरावस्था मे ही रोम आया था और आरम्भ मे यौवन के तथा हल्के-फुल्के विषयो का चित्रण करता रहा। इनमे उसने छाया-प्रकाश के प्रभावो को बहुत सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया है। इस समय तक वह यथार्थवादी कलाकार रहा। सहसा वह नाटकीय धार्मिक विषयो की ओर मुडा और जीवन-पर्यन्त प्राय इन्ही का चित्रण करता रहा। उसने चर्च आदि के लिये जो चित्र बनाये उनमे साधारण निर्धन किसानो तथा ग्रामीणो की भाँति सन्तो के पैर धूल से सने हुए दिखाये हैं। "कुमारी की मृत्यु" नामक चित्र मे उसने एक ग्रामीण स्त्री को प्राय मृत अवस्था मे चित्रित कर दिया था। कैरेवैज्जियो केवल वही चित्रित करता था जो वह देखता था। उसने ईश्वर अथवा देवताओ को काल्पनिक शक्तियो से युक्त चित्रित नही किया। इसी से धर्माधिकारी अथवा ग्राहक उसके चित्र पसन्द नही करते थे। लोग उसके विरुद्ध भी हो गये। अधिकाश जनता तथा साथी कलाकार उसे बदनाम करने पर तुले थे। वह स्वय भी अहकारी, अनुत्तरदायी और निम्न जीवन को पसन्द करने वाला व्यक्ति था। एक बार झगडे मे उसने एक व्यक्ति को मार दिया और तीन वर्ष तक इधर-उधर भटकता फिरा। अन्त मे नेपिल्स मे सागर-तट पर उसकी मृत्यु हो गयी। इटली मे तो उसे यश नही मिला किन्तु इटली बाहर उसकी शैली का व्यापक प्रभाव पडा। स्पेनवासी रिवेरा तथा वेलास्के उससे विशेष प्रभावित हुए। पीटर पाल रूबेन्स भी उसका बहुत आदर करता था और उसी के अनुरोध पर माण्टुआ के ड्यूक ने कैरेवैज्जियो से उसका एक चित्र "कुमारी की मृत्यु" खरीदा था। कैरेवैज्जियो की प्रमुख कृतियाँ है सेण्ट मेथ्यू का बुलावा, कुमारी की मृत्यु, बाचूज तथा एम्मोस मे भोजन।

कैरेवैज्जियो की सबसे बडी देन यही है कि उसने परम्पराओ अथवा पूर्वाग्रहो के आधार पर चित्रण न करके तथ्यो की स्वय खोज की और दैवी, अलौकिक अथवा स्वर्गीय आदर्शो के स्थान पर मानवीय आदर्श को सामने रखा। मानवीयतावादी होने के कारण उसकी कला मे गम्भीरता है और परम्पराओ का अन्धभक्त न होने से उसमे क्रान्ति है।

पिएट्रो दा कोर्टोना (Pietro da Cortona, १५९६–१६६९)—यह इटली निवासी था और बरोक शैली के आरम्भिक कलाकारो मे से था। इस पर वेनिस की पुनरुत्थानकालीन कला, विशेषत टिशियन, का प्रभाव था जिससे इसकी कला मे सुकोमल ऐन्द्रियता का विशेष निखार हुआ। कोर्टोना ही नही बल्कि १६५० ई. के पश्चात् सम्पूर्ण रोमन कला मे ही यह विशेषता प्रचलित हो चली थी। कैरेवैज्जियो की भाति कोर्टोना भी क्रान्तिकारी था। उसने अनेक तत्वो के समन्वय से एक नवीन शैली का विकास किया जो बहुत लोकप्रिय हुई। इसमे विशाल दृश्यो

के संयोजनो, प्रवाहपूर्ण रंग योजनाओं तथा सामन्ती शान-शौकत का प्रमुख स्थान है। कोर्टोना के इन प्रयोगो का सम्पूर्ण इटली पर प्रभाव पडा।

बेरनिनी (Gianlorenzo Bernini १५६८-१६८०)—इसका जन्म नेपिल्स मे हुआ था। इसके पिता पिएट्रो वेरनिनी रीतिवादी शैली के टस्कन मूर्त्तिकार थे। १६०५ ई० के लगभग वे पोप पाल पंचम के हेतु कलाकृतियाँ निर्मित करने रोम आये। ज्यानलौरेंजो यद्यपि छोटा ही था किन्तु पोप के भतीजे को उसने आकृष्ट किया। १६१५ के लगभग से १६२० तक उसने अपने पिता के साथ-साथ कार्य किया। इस समय तक वह रीतिवादी कलाकार था और उसकी कृतियो मे कोई निश्चित दृष्टि-बिन्दु नही रहता था। दर्शक मूर्ति को चारो ओर घूमकर देख सकता था और आकृतियो की मांस-पेशियो, मुद्राओ एव संयोजन आदि से दर्शक मे तनाव की मन स्थिति बन जाती थी। द गोट अमालथिया, एनिआज एण्ड एन्चिजेज एव नेप्चून एण्ड ट्राइटन इस समय की ऐसी कृतियाँ हैं जो उसकी इन विशेषताओ को व्यक्त करती हैं। इन कलाकृतियो मे शक्तिमत्ता, गतिशीलता एव अनेक दृष्टि-बिन्दुओ आदि का अच्छा निर्वाह हुआ है। कार्डिनल के हेतु निर्मित रेप आफ प्रोजरपिना, डेविड, अपोलो एण्ड डेफने आदि चित्रों मे उसने सम्मुख स्थिति के एक ही दृष्टि-बिन्दु का प्रयोग किया है और सयोजनो मे स्पष्टता रखी है। मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि एव कोमल फिनिश के कारण वेरनिनी को माइकेल एंजिलो के पश्चात दूसरा महान् मूर्तिकार माना जाने लगा।

वेरनिनी की कला का स्रोत केवल माइकेल एंजिलो एव प्राचीन प्रतिमाओ मे ही नही है अपितु समकालीन चित्रकला मे भी है। वह कैरेसी का भी प्रशसक था। उसके प्राकृतिकतावाद पर कैरेवैज्जियो का और हस्त-मुद्राओ एव मुखाकृतियो की भाव-व्यंजकता पर गुइदो रेनी का प्रभाव है। माइकेल एंजिलो का मूर्तियो को पृष्ठभूमि अथवा आधार से चिपका देना उसे पसन्द नही था। उसने आकृति की एक क्रिया एव एक दृष्टि-बिन्दु को भी स्वीकार किया। उसकी आकृतियाँ दर्शक की ओर आती हुई प्रतीत होती हैं। इस प्रकार चित्र के क्षेत्र को बढा कर वह उसमे दर्शक को भी सम्मिलित कर लेता है। बरोक शैली की इस प्रधान विशेषता का वास्तविक सस्थापक वेरनिनी ही था। लौकिक तथा अलौकिक भावो के समन्वय के हेतु उसने रंगीन सङ्गमरमर, कॉस्य, पत्थर, पलस्तर एव चित्रकला-सबका सम्मिश्रित प्रयोग भी किया और उस पर कॉच की खिडकियो से रङ्गीन प्रकाश भी डाला। अनेक कला-समीक्षको ने इसे कुरुचिपूर्ण अलकरण भी कहा है। इस प्रकार की प्रमुख कलाकृतियाँ रोम के कोर्नारो चेपिल तथा सेण्ट पीटर मे हैं। उसकी आवक्ष प्रतिमाओ मे चारित्रिक अन्तर्दृष्टि और धार्मिक प्रतिमाओ मे भक्ति का आवेश है।

वेटीकन आदि मे उसने अनेक भवनो का भी निर्माण किया। १६६५ ई० मे लुई चौदहवे ने उसे लूव्र का नवीनीकरण करने के हेतु पेरिस निमंत्रित किया। यद्यपि यह कार्य तो उसने नही किया किन्तु सम्राट की एक आवक्ष एव एक अश्वारोही प्रतिमा का निर्माण अवश्य किया। लुई को ये पसन्द नही आयी और उसने एक अन्य कलाकार द्वारा ठीक कराकर उन्हे उद्यानो मे लगवा दिया। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका यश समाप्त हो गया।

फ्लाण्डर्स

पीटर पाल रूबेन्स (Peter Paul Rubens, १५७७-१६४०)—फ्लेमिश कलाकार रूबेन्स का जन्म जर्मनी मे हुआ था। इसके पिता एण्टवर्प के निवासी थे जो तत्कालीन नीदरलैण्ड्स का एक अंग था। वे यहाँ प्रवास कर रहे थे। पिता की मृत्यु के उपरान्त रूबेन्स पुनः स्वदेश पहुँच गया। वहाँ पीटर को उच्च वर्ग मे अपना प्रभाव जमाने का अवसर मिला और शीघ्र ही वह सामन्तो मे गिना जाने लगा। उसने सामन्ती रंग-ढंग भी सीख लिया जो जीवन भर उसके साथ रहा। फिर भी चित्रकला मे उसकी विशेष अभिरुचि थी। उसने पहले छोटे कलाकारों से शिक्षा ली। तत्पश्चात् वह इटली चला गया। इस समय वह २३ वर्ष का था। जब वह वेनिस के एक उद्यान मे

स्मृति से एक प्राचीन चित्र की अनुकृति कर रहा था तो एक कला-मर्मज्ञ ने उसे देखा और उसकी कला से प्रभावित होकर वह उसे माण्टुआ के ड्यूक के यहाँ ले गया। वहाँ रूबेन्स को दरबारी चित्रकार नियुक्त कर लिया गया।

कुछ वर्ष पश्चात् रूबेन्स ने स्पेन की यात्रा की किन्तु माँ के सहसा रुग्ण हो जाने से वह शीघ्र ही एण्टवर्प लौट आया। उसे माँ तो न मिल सकी किन्तु सम्राट ने उसे अपने दरबार मे चित्रकार का पद दे दिया। रूबेन्स ने एण्टवर्प के टाउन हाल के हेतु "मैजाइ की वन्दना" नामक चित्र बनाया जिसमे मानवाकार की अट्ठाईस आकृतियाँ है। इसके कुछ ही समय पश्चात् उसने ईसा को सूली पर से उतारने का दृश्य अंकित किया जो प्राय रूबेन्स की श्रेष्ठतम रचना मानी जाती है।

३२ वर्ष की आयु मे उसने एक रईस की कन्या से विवाह किया किन्तु विवाह के सत्रह वर्ष पश्चात् उसकी पत्नी की मृत्यु हो गयी। उदास हृदय रूबेन्स ने इस समय अपने देश के राजदूत का पद भी सम्भाला। वह अपने समय का बडा ही बुद्धिमान राजनीतिज्ञ सिद्ध हुआ।

इसी बीच सन् १६०२ ई में पैंतालीस वर्ष की आयु मे उसे फ्रास की महारानी ने लग्जमबर्ग राजमहल मे इक्कीस विशाल भित्तिचित्र अकित करने को आमन्त्रित किया। यह कार्य भी उसने बडी उत्तमता से निभाया।

अपने राजनीतिक उत्तरदायित्व का वहन करते हुए भी रूबेन्स ने चित्रण नही छोडा। उसे कला से अपने राजनीतिक कार्यों मे भी सहायता मिली। सम्राटो तथा राजकुमारो आदि के व्यक्ति-चित्र अकित करते समय वह उनसे जो वार्तालाप करता, उसमे कभी-कभी उसे राजनीतिक सकेत मिल जाते थे। इनके आधार पर वह इग्लैड तथा स्पेन का वैमनस्य दूर कर एक सन्धि कराने मे भी सफल हुआ था।

पहली पत्नी की मृत्यु के उपरान्त चार वर्ष तक रूबेन्स विधुर रहा। इसके पश्चात् उसने हेलेना फोरमेण्ट नामक एक षोडशी से विवाह किया। रूबेन्स ने उसके अनेक व्यक्तिचित्र बनाये और अनेक धार्मिक-पौराणिक कथाओ के हेतु उसे मॉडेल बनाया (फलक १२-ख)। धीरे-धीरे उसका यश इतना फैल गया कि अनेक कला-प्रेमी उससे चित्र बनवाने लगे। इतना सारा कार्य करने में स्वय को असमर्थ पाकर रूबेन्स ने एक ऐसी चित्रशाला स्थापित की जिसमे किसी चित्र का रेखांकन करके वह रगो के सकेत कर देता था। उसके शिष्य उसमे मोटा-मोटा काम कर देते थे। एक कलाकार प्राकृतिक दृश्य, दूसरा घोडे और तीसरा जगली पशु चित्रित कर देता था। कोई चौथा कलाकार उसमे भीड-भाड बना देता था, पाँचवाँ कलाकार स्थिर-जीवन का चित्रण कर देता था। इन सबके अन्त मे रूबेन्स स्वय उस चित्र मे अपने स्पर्श लगा कर उस पर अपनी छाप डाल देता था। उसके सहयोगी भी ऊँचे कलाकार थे। फिर भी वह किसी को धोखा नही देता था। प्रत्येक कला-प्रेमी उसकी इस पद्धति को जानता था।

जीवन के अन्तिम दिनो मे वह रोगी हो गया था उसके हाथो से प्राय तूलिका गिर जाती थी। इस समय का कार्य पहले की अपेक्षा पर्याप्त निम्न स्तर का है।

नारी आकृति को जितना रूबेन्स ने चित्रित किया है उतना सम्भवत किसी अन्य कलाकार ने नही किया और टिशियन एव रेनोआ को छोडकर किसी भी अन्य कलाकार ने उसे इतनी सुन्दरता से अकित नही किया। रूबेन्स की आकृतियाँ घास पर लेटी हुई, वनो मे विहार करती हुई अथवा स्नानोपरान्त बाहर आती हुई अपने सौंदर्य से सहज ही आकर्षित कर लेती हैं। स्वस्थ मासल शरीरधारिणी ये नारियाँ समृद्धि एव साफल्य की प्रतीक है। उनमे सरलता और मादकता भी है।

रूबेन्स ने केवल अनावृताओ का ही अकन नही किया है। उसने सैकडो व्यक्तियो, दृश्यो, आखेट एव घरेलू जीवन के चित्र अकित किये। इनमे धार्मिक विषयो के चित्र सर्वोत्तम माने जाते हैं। ईसामसीह को जिस कोमलता से रूबेन्स ने चित्रित किया है वैसा बहुत कम कलाकार कर पाये हैं। अनेक प्रकार की यातनाएँ सहते हुए

ईसा की वेदना को मांसलता, ओठो एव आँखो की स्थितियो, शिर के झुकाव एव मुरझाये हुए फूल की भाँति शारीरिक मुद्राओ के द्वारा व्यक्त किया है। उसकी कला का रहस्य आकृतियो की गति मे है। उसने आकृतियो को ऐसी प्रवाह-पूर्ण गति मे अकित किया है कि चित्र के विषय की अनुभूति केवल उसी से होने लगती है।

रूबेन्स बड़ा परिश्रमी कलाकार था। इक्कीस वर्ष की आयु मे ही वह आचार्य मान लिया गया था। फिर भी वह जीवन-पर्यन्त नई-नई बातो का अध्ययन और अभ्यास करता रहा। पचास वर्ष की आयु मे भी वह टिशिया आदि की अनुकृतियाँ करके अपने टेक्नीक मे सुधार लाने का प्रयत्न कर रहा था। वह बड़े वेग से चित्रण करता था और एक बार जो रेखाकन कर देता उसे बदलता नही था। बड़े से बड़े चित्र को वह पाँच-छ दिन मे पूर्ण कर देता था।

कला के समान ही वह जीवन मे भी आनन्द लेता था। नगर के प्राय सभी बड़े-बड़े लोगो से उसका परिचय था और उसकी मृत्यु के समय लगभग सभी एकत्रित हुए थे। किन्तु अपनी ख्याति के कारण उसने कभी-भी विनम्रता और नियमितता को नही छोड़ा।

स्पेन

वेलास्के (Diego Velazquez, १५९९, १६६०)—वेलास्के का जन्म दक्षिणी स्पेन मे हुआ था। उसकी आरम्भिक शिक्षा बहुत अच्छी हुई थी। लेटिन, दर्शन तथा विज्ञान के अध्ययन के उपरान्त उसका झुकाव चित्रकला की ओर हुआ। उसने कला की अच्छी शिक्षा प्राप्त कर अपनी चित्रशाला स्थापित की। अपविद्ध विषयो के चित्रण से उसने शीघ्र ही लोगो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। वह निम्न वर्ग के लोगो मे से अपने विषयो का चयन करता था। बीस वर्ष की आयु मे उसने सिवली के कहारो का एक चित्र बनाया था। यह यथार्थवादी कला का एक श्रेष्ठ चित्र है। बाईस वर्ष की आयु में वह पर्याप्त व्यजनापूर्ण आकृतियाँ चित्रित करने लगा था।

१६२८ ई मे उसने मैड्रिड की यात्रा की। इससे उस पर रूबेन्स का प्रभाव पड़ा। रूबेन्स ने उसे इटली जाकर प्राचीन आचार्यो की रग-योजनाओ के अध्ययन का परामर्श दिया। १७२९ मे उसने इटली जाकर वेरोनीज, टिण्टोरैट्टो तथा टिशिया की महान् कलाकृतियो के दर्शन किये। रोम मे उसने प्राचीन प्रतिमाओ की अनुकृतियाँ बनायी। सिस्टाइन चैपिल मे उसने माइकेल एजिलो के रेखाकन का चमत्कार देखा। १६३१ मे वह स्पेन लौट आया। वहाँ उसने स्पेन के सम्राट फिलिप चतुर्थ तथा राजपरिवार के अन्य सदस्यो के अनेक चित्र अकित किये। स्वय सम्राट ने अपने दरबारियो को भी वेलास्के के सामने चित्राकन के हेतु बैठने के लिये प्रोत्साहित किया। दरबार मे रहने वाले विदूषक बौनो के भी वेलास्के ने अनेक चित्र बनाये।

१६४९ ई मे सम्राट फिलिप ने उसे पुन इटली भेजने की व्यवस्था की जिससे कि वह प्राचीन प्रतिमाओ की साँचे मे ढली अनुकृतिया प्राप्त कर सके और प्राचीन कलाचार्यो के चित्र खरीद सके। किन्तु वहाँ बहुत अधिक मूल्य माँगे जाने के कारण वह केवल पाँच चित्र ही प्राप्त कर सका।

अगले वर्ष उसने इटली के पोप के चित्र बनाये। पोप के चित्र से उसे बहुत यश मिला और वह सन्त ल्यूक अकादमी का सदस्य चुन लिया गया। एक शताब्दी पश्चात् अग्रेज चित्रकार सर जोशुआ रेनाल्ड्स ने भी इसे रोम का सबसे सुन्दर चित्र बताया था। वेलास्के ने इसमें चारित्रिक दृढता और कला-कुशलता का अच्छा प्रदर्शन किया है। इस समय पोप की आयु ७६ वर्ष की थी और उसका जीवन कठोर तपस्या का जीवन था। उसके चित्र मे भी हमे ये गुण दिखाई देते हैं।

१६५१ मे वेलास्के मैड्रिड लौट आया। कला-साधना से थक कर अब वह राजभवन का प्रबन्धक बन गया। इस प्रकार वह चित्राकन के हेतु बहुत थोडा समय निकाल सका। फिर भी उसने राज-परिवार के कुछ चित्र बनाये। एक चित्र मे राजपरिवार के सदस्यों के साथ वह स्वय भी चित्रित है। इसमे उसके बाल बिखरे हैं, घनी मूँछे हैं किंचित् गम्भीर नेत्र हैं।

१६६० मे वह राजकीय कार्यों मे बहुत अधिक व्यस्त रहने के कारण बीमार हो गया और अन्त में उसी दशा मे उसकी मृत्यु हो गयी। स्पेन मे वह बडा सम्मानित कलाकार था किन्तु पैरीनीज के पार शायद ही लोग उसे जानते थे। प्रकाश एव वातावरण का प्रभाव प्रस्तुत करने की दृष्टि से प्रभाववादियो ने उससे प्रेरणा ली थी। कहा जाता है कि वेलास्क्वे ने कला को जिस बिन्दु पर छोडा था, एलग्रेको ने उसी बिन्दु से उसे आगे बढाया था।

स्पेन मे नग्न नारी-चित्रण करने वाला वह प्रथम कलाकार था। सम्राट के संरक्षण मे रहने के कारण उसे दण्डित नही किया गया अन्यथा यदि किसी और कलाकार ने नग्न नारी का चित्रण किया होता तो पता नही उसकी क्या दशा होती। वेलास्केज के पश्चात् बहुत दिनो तक स्पेन मे किसी चित्रकार ने नग्न नारी का अकन नही किया। इस अवरोध को गोया ने माजा के चित्र द्वारा समाप्त किया। वेलास्के अपने समय मे नग्न नारी को केवल पीठ की ओर से ही चित्रित कर सका था। गोया ने उसे सामने से अकित किया।

फ्रांसिस्को द जरबरां (Francisco de Zurbaran, १५९८—१६६४)—किसी प्रतिभाशाली व्यक्ति का समकालीन होना किसी भी कलाकार के हेतु वरदान भी हो सकता है और अभिशाप भी। यह ज्ञात नही है कि जरबरां ने वेलास्के से कितनी प्रेरणा ली थी। लगभग १६ वर्ष की आयु मे जरबरां सिवली गया था। वहाँ पर्याप्त समय के पश्चात उसे ख्याति मिली। वह सिवली छोडकर एक छोटे नगर मे रहने लगा और विवाह किया। यहाँ उसे अनेक धार्मिक चित्र बनाने का निमन्त्रण मिला। इस कार्य मे वह बहुत सफल हुआ। उसके बनाये हुये सन्तो के चित्र सम्पूर्ण स्पेन मे ही नही बल्कि दक्षिणी अमेरिका तथा मैक्सिको तक मे फैल गये। अपनी आरम्भिक अवस्था मे उसने जो कार्य किया है वह बाद मे किये हुये कार्य से अच्छा है। सम्भव है कि व्यावसायिकता के कारण ऐसा हुआ हो। जरबरां के प्रौढ होते होते म्यूरिल्लो की ख्याति बढने लगी थी। जरबरां ने उसकी शैली की मधुरता की अनुकृति करने की भी चेष्टा की किन्तु गम्भीर स्वभाव के कारण वह उसे अपनी शैली मे पूर्णत समाहित नही कर सका। १६५८ ई० मे जरबरां वेलास्के से मिलने मैड्रिड गया। १६६० मे वेलास्के और १६६४ ई० मे जरबरां की मृत्यु हुई। लोग उसे भूल गये। कोई डेढ सौ वर्ष पश्चात् जब नेपोलियन ने स्पेन पर आक्रमण किया तो उसके चित्रो का पता लगा। उनमे से अधिकांश चित्र अब लूव्र मे सुरक्षित है। उसके प्रमुख चित्र है—नीबू, नारंगी तथा गुलाब, सन्त बोनावेन्चर की मृत्यु, सन्त केसिल्डा, एव सन्त जेरोनिमो पेरे।

म्यूरिल्लो (Murillo, १६१७-१६८२)—इसका जन्म स्पेन के सिवली नामक स्थान पर हुआ था। इसकी शिक्षा दीक्षा भी वही हुई। पहले उसने मेलो-तमाशो मे बिकने वाले चित्र अंकित किये जिसमे धार्मिक एव लोक जीवन के विषय होते थे। इनसे उसे बहुत ख्याति मिली। चौबीस वर्ष की आयु मे वह मैड्रिड पहुँचा जहाँ [illegible] कार्य कर रहा था। वह वेलास्के से मिला। वेलास्के ने उसे एक नई दिशा दी और वह उनके प्रभाव से एक नई शैली विकसित करने मे समर्थ हुआ जिसमे यथार्थवाद तथा धार्मिक प्रवृत्ति का समन्वय है। इससे पूर्व उसका कार्य [illegible] था। अब उसने टिशियन, पीटर पाल रूबेन्स, वेलास्के तथा वान डाइक की कला के तत्वों का भी [illegible] समन्वय किया। इससे उसकी कला मे जो प्रौढता आयी उससे उसका बहुत सम्मान बढ गया। १६६० ई० मे [illegible] सिवली मे भी कला-अकादमी की स्थापना की और उसे उसका अध्यक्ष बनाया गया।

म्यूरिल्लो की कला [illegible] से आरम्भ हुई थी। इस शैली मे उसने लोक-जीवन तथा [illegible] [illegible] किया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

हैं जिनके कारण चित्रो मे पवित्रता, नैतिकता, शान्ति, माधुर्य, कोमलता आदि देखने को मिलती हैं। उसकी आकृतियाँ सौंदर्य तथा माधुर्य से परिपूर्ण हैं और राफेल तथा वेलास्के से उसकी तुलना की जाती है। (फलक १३-क)

हालैण्ड

फ्रांस हाल्स (Frans Hals, १५८१—१६६६)

जिस समय फ्रास हाल्स बालक ही था, उसके छोटे से देश हालैण्ड ने स्पेन के साम्राज्य से स्वयं को मुक्त कर लिया था। इससे उसके देश-वासियो मे एक नयी उमग और आशावादिता की भावना उत्पन्न हो गयी थी। धीरे-धीरे हॉलैण्ड ने अपनी सामुद्रिक शक्ति बढाना आरम्भ किया और हाल्स के समय मे ही यह ससार की प्रमुख शक्ति बन गयी थी। इसका प्रभाव हॉलैण्ड के जन-जीवन पर भी पडा। समाज की उन्नति और देश की समृद्धि हुई। लोग आमोद-प्रमोद के द्वारा अपना जीवन सुख से व्यतीत करने लगे।

कहा जाता है कि हाल्स बहुत अधिक मदिरा पान करता था किन्तु यह असत्य है। वह अपने युग के अन्य व्यक्तियो के समान ही केवल थोडी-सी मदिरा अवश्य पीता था। उसमे एक बुरी आदत भी थी जिससे उसका अपयश भी हुआ है। वह यह कि जब उसे मदिरा पीने की धुन उठती तो वह पैसे उधार लेकर भी मद्यपान कर लेता था। यदि उसकी जेब मे पैसे होते तो वह उन्हें तुरन्त खर्च डालता था। इसी से लोग उसको असयमित कह देते थे।

उसकी पारिवारिक परिस्थितियाँ कभी-भी अच्छी नही रही। उसकी अशिक्षित पत्नी कभी-भी उसे गम्भीरता से नही समझ सकी। उसके कई बच्चे शारीरिक दृष्टि से अपग थे अत उसे उनका भी ध्यान रखना पडता था। आर्थिक अथवा पारिवारिक दृष्टि से कठिनाइयो मे रहते हुए भी हाल्स ने अपनी कला का स्तर गिरने नही दिया। उसने विद्वानो, पादरियो, अधिकारियो तथा अन्य अनेक डच नागरिको के व्यक्ति-चित्र अकित किये। शासक वर्ग भी उसका बहुत सम्मान करता था। उसने प्राचीन चित्रो के सरक्षण मे भी सहयोग दिया था और वह चित्रकार-संघ का एक डाइरेक्टर भी था। १६४४ मे वह इसका डीन हो गया। वह राष्ट्रीय सेना मे सार्जेण्ट भी रह चुका था। उसके अनेक शिष्य भी थे।

हाल्स ने आनन्दमय जीवन के चित्र प्रचुर सख्या मे अकित किये हैं। किसी भी अन्य कलाकार ने गीत गाते, वाद्य बजाते, नाचते एव आनन्द मनाते हुए स्त्री पुरुषो एव बालको के इतने अधिक चित्र अकित नही किये हैं जितने हाल्स ने। वास्तव मे उसके मन मे सदैव ही इनके प्रति एक उत्साह बना रहा है।

फ्रास हाल्स बडी शीघ्रता से चित्राकन करता था अत. उसे चित्र बनाने मे अधिक समय नही लगता था। आज उसके लगभग तीन-सौ चित्रो के विषय मे ज्ञात हैं जो उसने कोई ५५ वर्ष की अवधि मे निर्मित किये थे। इसी से लोगो ने उसे चित्र बनाते हुए बहुत कम देखा था।

अपने जीवन के अन्तिम दिनो मे वह हार्लेम छोडकर एम्सटर्डम चला आया। वहाँ का जीवन उसे बहुत अच्छा लगा। किन्तु यहाँ आकर उसका व्यवसाय प्रभावित हुआ और ऋण चुकाने के हेतु उसे अपने चित्र दूसरो को देने पडे। साठ तथा सत्तर वर्ष की आयु मे ऋण दाताओ ने उस पर अभियोग लगाये। इस पर भी वह बहुत व्यय करता था। उसने एक चित्र मे स्वय को तथा अपनी पत्नी को राजसी ठाठ-बाट मे चित्रित किया है। इससे ज्ञात होता है कि वह कितना व्यय करता था।

लगभग अस्सी वर्ष की आयु मे वह बहुत निर्धन हो गया। अब उसके मित्र और ग्राहक भी उसे भूल गये। उस समय नगर के अधिकारियो ने उसे कुछ नकद धनराशि दी और उसके हेतु पेंशन निश्चित कर दी। इसी अवस्था मे लगभग दो वर्ष वह और जीवित रहा। मृत्यु के उपरान्त राजकीय व्यय पर १६६६ ई० मे हार्लेम के प्रमुख चर्च मे उसे दफना दिया गया।

अपने अन्तिम दिनो मे वह दो विशाल समूह-चित्रो पर कार्य कर रहा था। इनमे से एक मे एक स्थान (Old Man's Almhouse) के पुरुष शासको तथा दूसरे मे स्त्रियो का अकन है। इन दोनो चित्रो की सरलता, ओज एव टेक्नीक की सर्वत्र प्रशसा की गयी है।

रेम्ब्राँ हारमेन वान राइन (Rembrandt Harmensz Van Rijn, १६०६—१६६९)—रेम्ब्राँ का जन्म लाइडन मे हुआ था। उसके पिता एक समृद्ध उद्योगपति थे। अपने पुत्र को उन्होने जिस लाड-प्यार से पाला था उसका बालक रेम्ब्राँ पर स्थायी प्रभाव पडा और आगे चलकर कलाकार के रूप मे रेम्ब्राँ ने अपने पिता के ग्यारह-बारह व्यक्ति-चित्र अकित किये। अपनी माँ को भी उसने लगभग एक दर्जन चित्रो का विषय बनाया है।

चौदह वर्ष की आयु मे रेम्ब्राँ लाइडन विश्वविद्यालय मे प्रविष्ट हुआ किन्तु एक वर्ष उपरान्त ही वहाँ से लौटकर उसने कला की शिक्षा के हेतु एम्सटरडम के एक कलाकार पीटर लास्टमेन (Pieter Lastman) का शिष्यत्व स्वीकार किया। वहाँ उसने शास्त्रीय पद्धति से ही रेखाकन का अभ्यास किया। छ महीने पश्चात् ही वह लाइडन लौट आया और अपने ढग से चित्र बनाने लगा। उसने प्राय अच्छे और बुरे सभी प्रकार के विषयो का चित्रण किया। दर्पण मे अपनी मुखाकृति देखकर उसने निरन्तर अपनी शैली को सुधारा। अपने सम्पूर्ण जीवन मे उसने कोई बासट आत्म-चित्र अकित किये हैं। इनके द्वारा उसके विकास की क्रमिक झाकी बडे स्पष्ट रूप मे मिल जाती है। किसी भी अन्य कलाकार ने इतनी अधिक सख्या मे आत्म-चित्र नही बनाये। इनमे से एक चित्र तेईस वर्ष की आयु का है। सुन्दर मुखाकृति, चेहरे पर बालो की लटें झूलती हुई, अपनी योग्यता के दर्प और सतर्कता का भाव लिये हुए आँखें ये ही इस चित्र की विशेषताएँ हैं। वास्तव मे इस समय तक वह कला के क्षेत्र मे स्थिर हो चुका था। उसका एक चित्र पाँच सौ डालर मे बिक गया था। इसके पश्चात् उसने जितने भी आत्म-चित्र अकित किये, सबमे कुछ-न-कुछ नवीन पद्धति से सयोजन किया। उसकी मुखाकृति का भाव भी बदलता रहा।

आत्म-चित्रो तथा माता-पिता के अतिरिक्त रेम्ब्राँ ने बाइबिल के कथानको को भी रूपायित किया है। इस समय उसके पास एम्सटरडम से अनेक लोग बुलाने आये। विवश होकर १६३१ मे वह वही चला गया और जीवन भर वही रहा।

१६३२ मे प्रसिद्ध शल्यक डा० तुल्प ने रेम्ब्राँ को अपने शरीर-शास्त्र के एक पाठ का चित्रण करने के हेतु आमन्त्रित किया। रेम्ब्राँ ने शल्यक-सघ के विशाल कक्ष मे प्रोफेसर तुल्प अपने सात "विद्यार्थी मित्रो" के सामने शरीर शास्त्र का एक पाठ पढाते हुए चित्रित किये हैं। कलाकार ने प्रकाश मे चमकती हुई विभिन्न मुखाकृतियो की भावपूर्ण मुद्राओ को बडी बुद्धिमत्ता से चित्रित किया है। इस चित्र से रेम्ब्राँ की बहुत प्रशसा हुई।

इसके पश्चात् तो रेम्ब्राँ से चित्र बनवाने के लिये लोगो की बाढ-सी आ गयी। दो वर्ष मे उसने चालीस चित्र पूर्ण किये और पर्याप्त धन अर्जित किया। १४३४ ई० में अट्ठाईस वर्ष की आयु मे रेम्ब्राँ ने विवाह किया। रूपवती पत्नी के चचल नेत्रो, सुनहरी केशो तथा सौष्ठव युक्त शरीर को रेम्ब्राँ ने अपनी कला मे उतारा। विवाह के पूर्व रेम्ब्राँ ने उसे अपने एक चित्र के हेतु मॉडेल बनाया था। दो बार मॉडिल के रूप मे बैठने के समय ही अचानक विवाह की बात-चीत चली और दस हजार डालर के दहेज के साथ उसको सुन्दर पत्नी मिल गयी। धनी परिवार से सम्बन्धित होते हुए भी वह शील स्वभाव की थी और रेम्ब्राँ के अनेक चित्रो के हेतु उसने मॉडेल का कार्य भी किया। एक चित्र मे वह रेम्ब्राँ के घुटने पर बैठी है, कलाकार के हाथ मे एक बडा गिलास है। दोनो बडी प्रसन्न मुद्रा मे हैं।

१६३४ से १६४२ के मध्य रेम्ब्राँ ने अनेक श्रेष्ठ चित्रो की रचना की। वह आत्म-चित्र भी बनाता रहा। कभी अपने टोप में मणि-मोती लगाकर तथा गले मे सुवर्ण की एकावली पहनकर, कभी एक अधिकारी के रूप मे और कभी बहुत बडा शानदार टोप पहने। चरित्र के अध्ययन की दृष्टि से उसने एक वृद्धा का भी चित्रण किया। उसने देहाती व्यक्तियो की भी आकृतियाँ चित्रित की हैं।

इन सबके साथ-साथ वह पुराने तथा जीर्ण-शीर्ण धार्मिक विषयो को भी नवीन ढग से कल्पित करता रहा। इनके हेतु उसने अपने सामयिक जीवन मे से मॉडेल चुने हैं। प्रत्येक चित्र मे टेक्नीक, प्रकाश का वितरण तथा अनुभूति की गहराई इतने अच्छे ढग से नियोजित है कि प्रत्येक चित्र उसकी सर्वोत्तम कृति माना जा सकता है।

इस युग की अन्तिम कृति "रात्रि के प्रहरी" (The Night Watch) है। इसमे १४×१२ फीट के कैनवास पर केप्टिन काक की सैनिक टुकडी चित्रित की गयी है। इस चित्र का प्रत्येक विवरण बारीकी से दिखाया गया है और प्रकाश तथा छाया के समस्त बल बहुत सोच-विचार कर लगाये गये हैं। यहाँ तक कि वर्ण-वैपरीत्य के भी अनेक प्रयोग करने के उपरान्त ही विशेष प्रभाव उत्पन्न किये गये है। चित्र के केन्द्र मे केप्टिन है। अन्य पन्द्रह व्यक्ति आगे-पीछे तथा आस-पास अकित है। रेम्ब्राँ ने इस चित्र मे अकित सभी व्यक्तियो से पाँच-पाँच सौ डालर लिये थे किन्तु चित्र बन जाने पर उन्होने शिकायत की कि किसी का चेहरा अन्धकार मे है, किसी को आगे चित्रित करके महत्व प्रदान किया गया है तो किसी को पीछे अकित करके महत्त्वहीन कर दिया गया है। किसी की मुद्रा ऐसी है कि वह पहचान मे नही आता। इस प्रकार इस चित्र को बनवाने के इच्छुक जिन व्यक्तियो ने रेम्ब्राँ को पैसे दिये थे, वे सभी इस चित्र से असन्तुष्ट हो गये। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग रेम्ब्राँ से चित्र बनवाने मे हिचकिचाने लगे। धीरे-धीरे उसकी पूजी समाप्त होने लगी। अन्त मे वह निर्धन हो गया।

रेम्ब्राँ ने अपने रहने तथा अपनी विशाल चित्रशाला स्थापित करने के लिये एक विशाल भवन खरीदा था। उसे प्राचीन कलाकृतियो के सग्रह का भी शौक था और वह उसमे एक सग्रहालय भी बनवाना चाहता था। इस भवन का वह पूरा मूल्य न चुका सका और अन्त मे उसे दिवालिया होना पडा।

लगभग इसी समय उसकी पत्नी का स्वास्थ्य गिरने लगा। १६४२ मे उसकी मृत्यु हो गयी। उसके एक वर्ष पश्चात् रेम्ब्राँ ने उसका एक चित्र स्मृति से अकित किया। इसके बाद वह बहुत विचारशील हो गया। अब वह व्यक्ति-चित्रो मे आकृति-सादृश्य के स्थान पर भावो को विशेष महत्व देने लगा। इसका फल यह हुआ कि लोग उसके बने चित्र पसन्द नही करते थे।

रेम्ब्राँ के घर मे एक दासी थी। उसने रेम्ब्राँ को सान्त्वना प्रदान करने की चेष्टा की। रेम्ब्राँ ने उसके कई सुन्दर व्यक्ति-चित्र बनाये। १६५८ ई० के एक चित्र मे वह लाल वस्त्र पहने है जो उसके केशो के रग से मिलता-जुलता है। १६५६ मे जब उस पर ऋण बहुत बढ गया तो उसकी कलाकृतियाँ नीलाम की गयी। फिर भी वह सम्पूर्ण ऋण से मुक्त नही हो सका। एम्सटरडम के अनाथालय के प्रयत्नो से कुछ सम्पत्ति उसके एक मात्र पुत्र टाइटस के नाम करने मे सहायता मिली। इसमे उसके कुछ चित्र भी थे।

ऐसी परिस्थितियो मे भी रेम्ब्राँ किसी प्रकार चित्रण करता रहा। १६६० के उपरान्त उसने सन्त मेथ्यू और फरिश्ता तथा सिडिक्स नामक प्रसिद्ध चित्रो का सृजन किया। सिंडिक्स के चित्र मे भी रेम्ब्राँ ने छाया-प्रकाश का मौलिक प्रयोग करके कुछ व्यक्तियों को अन्धकार मे दिखाया है। यह चित्र भी उसके ग्राहको को पसन्द नही आया।

रेम्ब्राँ ने आत्म-चित्रो, व्यक्ति-चित्रो, समूह-चित्रो तथा धार्मिक कथानको के साथ-साथ पृष्ठ-भूमि आदि के रूप मे प्रकृति का भी बडा सुन्दर अकन किया है। रेम्ब्राँ के लगभग तीन सौ अम्ल चित्र (Etchings), दो हजार रेखाचित्र तथा साढ़े छ सौ रगीन चित्र आज कला-जगत् को ज्ञात हैं। इस सम्पूर्ण कार्य मे पर्याप्त विविधता, मौलिकता और चारित्रिक विशिष्टता है।

वृद्धावस्था मे रेम्ब्राँ सामान्य जनता और सरल जीवन की ओर आकर्षित हुआ। अपने व्यक्तिगत जीवन की वेदना को उसने अन्य व्यक्तियो मे भी देखा और उसका चित्रण किया। अपने अन्तिम आत्म-चित्र मे भी उसकी यह विशेषता आ गयी है। १६६० ई० के लगभग बने इस चित्र मे जीवन की पराजय, आन्तरिक वेदना और चारित्रिक गम्भीरता है, मानो उसने जीवन का सत्य स्वीकार कर लिया है।

१६६२ में रेम्ब्रां को सान्त्वना देने वाली दासी की मृत्यु हो गयी। १६६८ में उसके पुत्र टाइटस का विवाह हुआ किन्तु एक वर्ष पश्चात् वह भी जीवित न रहा। रेम्ब्रां इस दुःख को न सह सका और १६६९ में ६३ वर्ष की आयु में वह भी इस संसार से चल बसा।

रेम्ब्रां की मृत्यु के समय कोई भारी शोक नहीं मनाया गया। बहुत कम लोग इस घटना को जान पाये। इसका प्रमुख कारण यही था कि लोग उसकी शैली को पसन्द नहीं करते थे। उसके विषयों को भी वे अनुचित समझते थे। रस्किन ने कहा था कि अच्छे चित्रकार उत्तम वस्तुओं को सूर्य के प्रकाश में चित्रित करते हैं किन्तु रेम्ब्रां ने अनुचित वस्तुओं को धुंधले प्रकाश में अङ्कित किया है। यह विचारधारा बहुत दिन नहीं चल सकी। देलाक्रा नामक चित्रकार ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि शायद एक दिन हम रेम्ब्रां को राफेल से भी बड़ा कलाकार मानेंगे। उसने साधारण जीवन की सामान्य दुर्बलताओं को चित्रित किया है। यह कोई बुराई नहीं बल्कि जनतान्त्रिक पद्धति है। वास्तव में आज रेम्ब्रां का सम्मान बहुत अधिक हो गया है (फलक १३ ख—१३ ग)। रूबेन्स से रेम्ब्रां की कला में महान् अन्तर आ गया है। रूबेन्स ने जहाँ उत्फुल्लतादायक प्रकाश का अंकन किया है वहाँ रेम्ब्रां ने गम्भीर छाया का महत्त्व समझा है। रूबेन्स ने मांसल ऐन्द्रियता का सौंदर्य अंकित किया है तो रेम्ब्रां ने हृदय की वेदना को समझा है।

एन्थनी वान डाइक (Sir Anthoy Van Dyck, १५९९—१६४१)—रूबेन्स का प्रभाव जिन कलाकारों पर सर्वाधिक है उनमें वान डाइक का नाम प्रमुख है। उसका जन्म एण्टवर्प में हुआ था और अल्पायु में ही वह रूबेन्स का प्रमुख सहायक बन गया। वह कारुणिक दृश्य अंकित करने में विशेष कुशल था। १६२० में उसने इंग्लैण्ड की यात्रा की। वहाँ का सम्राट जेम्स प्रथम उसे अपने दरबार में रखना चाहता था किन्तु चार महीने पश्चात् वहाँ से वह लौट आया। १६२१ में वह इटली गया। वहाँ वह चार वर्ष रहा। रोम, फ्लोरेन्स, वेनिस, पालेर्मो तथा जेनोआ में उसने अनेक व्यक्ति-चित्र अंकित किये। यहीं से उसके स्वतन्त्र व्यक्ति-चित्रकार जीवन का आरम्भ होता है। इस समय उसने जिन स्केचों तथा संयोजनों का प्रारूप तैयार किया था उन्हीं को वह बहुत समय तक प्रयुक्त करता रहा। १६२५/२६ में वह पुनः फ्लाण्डर्स लौटा तथा तत्कालीन रीजेण्ट इसाबेला का संरक्षण प्राप्त करने का प्रयत्न किया। १६३२ में वह फिर इंग्लैण्ड गया और वहीं रहने लगा। वहाँ चार्ल्स प्रथम के दरबार में उसे पर्याप्त यश और सम्मान मिला। उसका दरबारी चित्रकार हो जाने के उपरान्त उसने माइटन्स तथा जोनसन नामक दो स्थानीय चित्रकारों को हतप्रभ कर दिया। १६४० में रूबेन्स की मृत्यु हो जाने पर उसने स्वयं रूबेन्स के समान प्रतिष्ठा प्राप्त करने का प्रयत्न किया किन्तु इसमें वह असफल रहा।

इंग्लैण्ड में नौ वर्ष के प्रवास काल में उसने जेनोआ में विकसित नियमों का ही अनुकरण किया। इसमें उसे पर्याप्त सफलता भी मिली। उसने एक चित्रशाला भी स्थापित की जिसमें अनेक सहायक चित्रकार कार्य करते थे किन्तु वान डाइक में उन सबसे [illegible] की रूबेन्स के समान क्षमता न थी। यहाँ उसने जो चित्र बनाये उनमें सर्वश्रेष्ठ [illegible] चार्ल्स प्रथम, चार्ल्स के तीन अन्य चित्र, [illegible] के बालक तथा राजपरिवार का समूह-चित्र है। इन चित्रों में उसने व्यक्ति-चित्रण का जो आदर्श स्थिर किया वह इंग्लैण्ड में बहुत समय तक अनुकृत होता रहा। [illegible], लेली, [illegible] तथा गेंसबरो में [illegible] सभी इंग्लिश चित्रकार इसी परम्परा का पालन करते रहे।

वान डाइक के व्यक्ति-चित्र [illegible] की अपेक्षा अधिक [illegible] एवं वस्तु-प्रधान हैं। इसका कारण यह है कि [illegible] अधिक संवेदनशील था। धार्मिक विषयों के चित्रण में यह [illegible] भी प्रभावित हुआ था, किन्तु इन

कलाकारो की शैली को पूरी तरह पचाने मे वह असफल रहा। उसके रंग रूबेन्स की अपेक्षा पतले, सूखे और फीके हैं। चित्र मे वास्तविक रंग भरने के पूर्व वह भूरे रंग से एक बार सम्पूर्ण चित्र बना लेता था। उसकी वर्ण-योजनाओ मे पारदर्शिता एव सफाई भी कम है। उसने प्राय धनी परिवारो का ही व्यक्ति-चित्रण किया है।

रूबेन्स की कला की गति-शीलता और शक्तिमत्ता का प्रभाव फ्लाण्डर्स के स्थिर-जीवन-चित्रण एव दृश्य-चित्रण पर भी पडा। दृश्यो मे छोटी-छोटी मानवाकृतियो का बनना समाप्त हुआ।

ब्रोवर (Brouwer अथवा Brauwer १६०५/६—१६३८)—फ्लीमिश एव डच दैनिक जन-जीवन से सम्बन्धित चित्रकला को जोडने वाली कडी के रूप मे ब्रोवर का नाम स्मरण किया जाता है। वह फ्लाण्डर्स में जन्मा था किन्तु कुछ समय तक हालैण्ड में रहा था एव फास हाल्स से शिक्षा भी ग्रहण की थी। उसने प्राय. गन्दे स्थलों के ही चित्र अधिक बनाये है जिनमें सूअर घूमते है। कुछ दृश्य-चित्र भी उसने अंकित किए हैं। वह स्वय गरीबो की भाँति रहता था। उसके आरम्भिक चित्र ब्रूगेल के ग्रामीण दृश्यो के समान है और वह ब्रूगेल के पुत्रो से भी परिचित था। पहले वह एम्सटर्डम और तत्पश्चात् हार्लेम गया जहाँ फास हाल्स से उसकी भेंट हुई। १६३१-३२ में वह एण्टवर्प के कलाकारो के सघ का सदस्य बन चुका था और वहाँ उस पर रूबेन्स का प्रभाव पड़ा। रूबेन्स ने उसकी बहुत प्रशसा की थी। १६३३ मे राजनीतिक कारणो से उसे कारागार की यात्रा करनी पडी। जेल का रसोइया उसका शिष्य हो गया। स्टीन तथा डेविड टेनियर्स द्वितीय की कला पर उसका प्रभाव पड़ा था। उसकी रग योजनाएँ विस्तृत एव कोमल है और उनका सौन्दर्य चित्र में विषय के अभाव की पूर्ति कर देता है। ब्रोवर ने यद्यपि बरोक चित्रकारो से पर्याप्त प्रेरणा ली है तथापि उसने बरोक एव यथार्थवादी दोनो शैलियो में कार्य किया है।

बरोक युग की शास्त्रीयतावादी कला

यद्यपि सत्रहवी शती की बरोक तथा शास्त्रीयतावादी प्रवृत्तियो मे पर्याप्त भिन्नता है किन्तु दोनो ही शैलियो ने अभिव्यजना तथा मुद्राओ की मुखरता को प्रधानता दी है। साथ ही शास्त्रीय कलाकारो ने बरोक शैली से रगो की चमक, सघनता तथा मनोवैज्ञानिक यथार्थता को भी ग्रहण किया। कहीं-कहीं तो यह प्रभाव इतना अधिक है कि कुछ कलाकारो की कला को "बरोक-शास्त्रीयता" भी कह दिया जाता है। फिर भी ऐन्द्रियता, चित्र-गत विस्तार तथा गति आदि के प्रति शास्त्रीय कलाकारो की जो दृष्टि थी वह बरोक शैली से बहुत भिन्न थी।

आरम्भ से ही शास्त्रीयता का आन्दोलन बरोक प्रवृत्ति को रोकने के प्रयत्न मे रहा। इन शास्त्रीय कलाकारो ने ऐसा करने के हेतु केवल प्राचीन की नकल नही की बल्कि इन्होने अपने युग के अनुसार कृतियो का सृजन किया और इन्हे प्राचीन तथा चरम पुनरुत्थानकालीन सिद्धान्तो का आधार दिया। ये सिद्धान्त थे स्पष्टता, सगति और सन्तुलन। इन्होने रगो की तुलना में आकृति को महत्व दिया और यह माना कि कलाकृति का प्रभाव बुद्धि पर अधिक पडना चाहिये, इन्द्रियों के सुख का उसमे महत्व नही होना चाहिये। इनके चित्रो मे बहुत अधिक आकृतियो की भीड नहीं है, वस्त्रो की फहरान तथा आकृतियो की मुद्राओ मे तीव्र गति भी नही है, जब तक कि उसकी विषयानुसार आवश्यकता न हो। आकृतियों की शान्ति, सरलता और व्यवस्था से बरोक चित्रकार वेलास्के तथा रेम्ब्राँ भी प्रभावित हुए। डच दृश्य-चित्रण, घरेलू जीवन तथा स्थिर जीवन के चित्रो पर भी इसका प्रभाव पडा।

इस युग मे शास्त्रीयता का सबसे बडा पृष्ठ-पोषक फ्रैंच चित्रकार निकोला पुसिन था। इसकी कृतियाँ प्राचीन यूनानी पार्थेनन की कला के समकक्ष रखी जा सकती है। उसकी आरम्भिक कला पर वेनेशियन रंगो का प्रभाव है जिससे उसमे बड़ा ही नेत्र-रजनकारी प्रभाव आ गया है। किन्तु धीरे-धीरे उसकी कला मे बौद्धिकता का समावेश होता गया है और स्पष्टता तथा व्यवस्था के प्रति उसका झुकाव बढता चला गया है। न तो उसकी

आकृतियाँ परस्पर लीन होती हैं और न उनमें अति-रंजना है। फिर भी उनकी कलाकृतियाँ जीवन-विहीन अथवा भाव-हीन नहीं हैं।

पुसिन (Nicolas Poussin, १५९४-१६६५)—फ्रांसीसी चित्रकार पुसिन का जन्म तथा आरंभिक जीवन नार्मण्डी के एक फार्म से सम्बद्ध रहा। उसके पिता हेनरी चतुर्थ की सेना में सैनिक थे। बचपन में उसने एक घर में चित्र बनाते हुए कोई चित्रकार देखा। पुसिन ने उससे कला की शिक्षा देने की प्रार्थना की जिसे उस चित्रकार ने स्वीकार कर लिया। नार्मण्डी में चित्रांकन पूर्ण कर जब वह चित्रकार पेरिस लौटा तो पुसिन भी घर छोड़कर उसके पास भाग आया। इस समय पेरिस में उसने राफेल के चित्रों की मुद्रित प्रतियाँ बिकती देखीं। इन्होंने उसका भविष्य ही बदल दिया। इन चित्रों को देखकर उसने रोम जाने का निश्चय किया। इसके हेतु नौ वर्ष तक सब तरह का परिश्रम करके उसने रोम की यात्रा के लिए धन जोड़ा। दो बार उसने इटली की यात्रा की तैयारी की किन्तु दोनों बार उसे टलना पड़ा। इसी समय उसे एक पुस्तक चित्रित करने का काम मिला। इस काम से उसका संरक्षक इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उसके हेतु बहुत-सा नया काम जुटाया और रोम के प्रमुख नागरिकों के हेतु उसके परिचय-पत्र भी लिख दिये। वहाँ आकर कोई चार वर्ष पश्चात् उसकी भेंट कार्डीनल बारबेरिनी से हुई जिन्होंने उसे एक चित्र बनाने का आदेश दिया। यह चित्र बहुत अच्छा बना और तभी से पुसिन को रोम में लगातार खूब काम मिलने लगा। उसने शनैः-शनैः अपनी शैली का विकास किया। टेक्नीक के निरन्तर अभ्यास से, विशेषतः ड्यूरर की पुस्तकों तथा प्राचीन आचार्यों के चित्रों के निरीक्षण से उसने सौन्दर्य के [illegible] की खोज की। उसे किसी भावना युक्त प्रेरणा की नहीं बल्कि कार्य के निर्देशक आधार की आवश्यकता थी। वह भावों में अधिक विश्वास नहीं करता था और उन्हें पाप तथा दुर्बलता मानता था।

आकाश के हल्के रग के विरोध मे हो। इसके दूसरी ओर अग्रभूमि मे कुछ दूर छोटे वृक्षो का एक अन्य समूह हो, जो अग्रभूमि मे दूसरी ओर बने हुए बडे वृक्ष का सन्तुलन कर सके। इस छोटे वृक्ष-समूह के निकट कोई टीला आदि हो जिस पर कोई प्राचीन ऐतिहासिक स्मारक निर्मित हो। कुछ दूर पीछे तक भूमि का अकन हो तथा क्षितिज पर धुँधली पर्वतमाला अथवा सागर का दृश्य हो। दृश्य मे किसी ऐतिहासिक-पौराणिक या धार्मिक आख्यान से सम्बन्धित कुछ मानवाकृतियाँ भी हो तथा सम्पूर्ण चित्र मे प्रकाश का ऐसा सुन्दर सयोजन हो कि दृष्टि स्वत ही चित्र के सभी स्थानो पर विचरण करती रहे। आदर्श दृश्य चित्रण मे प्रकाश का सर्वोत्तम प्रयोग क्लाद लोरें ने किया है। प्रत्येक वस्तु पर प्रकाश के परिमाण का उसने बारीकी से जो विचार किया है वह प्रभाववाद के पूर्व तक अद्वितीय माना जाता रहा है।

यद्यपि आदर्शवादी दृश्य चित्रकारो ने रोम के निकटवर्ती प्राकृतिक वातावरण के अनेक रेखाचित्र बनाये तथापि प्रकृति को यथार्थ के बजाय उन्होंने अपने आदर्श के अनुसार परिवर्तित रूप मे ही प्रस्तुत किया। इसके हेतु प्रकृति के अलग-अलग उपादान लेकर उन्हें आदर्श दृश्य की कल्पना के अनुसार एक स्थान पर सयोजित किया गया। फिर भी इन चित्रो मे नीरसता अथवा एकरूपता नही है। कलाकारो ने इनमे अनेक विविधताएँ प्रस्तुत की हैं। पुसिन ने जहाँ तीव्र प्रकाश का अधिक प्रयोग किया है, वहाँ क्लाद लोरें ने कोमल प्रकाश को बडी मनोरमता से प्रस्तुत किया है। शास्त्रीय दृश्य-चित्रण मे इन कलाकारो ने प्रकाश का जो विचार किया है वह प्राचीन परम्पराओ पर आधारित कम और बरोक शैली से प्रभावित अधिक है।

क्लाद लोरें (Claude Lorrain, १६००—१६८२)—निकोला पुसिन की भाँति क्लाद लोरें भी यद्यपि फ्रेंच कलाकार था तथापि उसका अधिकाश जीवन रोम मे ही व्यतीत हुआ था। वह एक सरल, अशिक्षित तथा सन्तोषी चित्रकार था। लोराइन प्रदेश में उत्पन्न होकर उसने पेस्ट्री पकाना सीखा था। बारह वर्ष की आयु में वह अनाथ हो गया और किसी प्रकार रोम चला गया। वहाँ एक दृश्य-चित्रकार के यहाँ उसने नौकरी कर ली। वह उसका भोजन पकाता और चित्रशाला मे उसकी सहायता करता। धीरे-धीरे उसने चित्रकला के आधारभूत सिद्धान्त सीख लिये। अपने आरम्भिक चित्रो में क्लाद लोरे ने समकालीन प्रवृत्तियो का परिचय दिया है जैसे कि प्राचीनता के चिन्ह के रूप मे कोई टूटा हुआ स्तम्भ अथवा कोई प्राचीन प्रतिमा आदि का चित्र मे समावेश। वह अपने पड़ौसी चित्रकार निकोला पुसिन से भी प्रभावित हुआ था किन्तु इन सबसे भिन्न प्रकृति के चित्रण के प्रति उसने स्वय को समर्पित कर दिया। उसे इटली के खेत अच्छे लगते थे, चमकता सूर्य और पर्वतो के बदलते हुए रग उसे बहुत सुन्दर प्रतीत होते थे। वह प्रात:काल उगते हुए सूर्य की रश्मियो को देखने के हेतु जल्दी जाग जाता और दिनभर खेतो मे घूमा करता। वहाँ वह सूक्ष्मता से विभिन्न परिवर्तनो का अध्ययन करते हुए चित्र बनाता। चित्रो को वह अपनी चित्रशाला मे ही पूर्ण करता था। प्रकाश का अध्ययन करके उसने जो कलाकृतियाँ बनायी उनका प्रभाव कोई दो सौ वर्ष पश्चात् प्रभाववादी कला शैली पर व्यापक रूप से पड़ा। उसकी प्रमुख कृतियाँ हैं : आइजक तथा रेबेका का विवाह, मिस्र को पलायन, क्लिओपेट्रा, शेबा की रानी का यात्रारम्भ, ऐजेरिया अप्सरा और दृश्य।

जार्ज दे ला तुर (Georges de la Tour, १५९३—१६५२)—पुसिन तथा लोरें के पश्चात् एक और प्रसिद्ध फ्रेंच कलाकार हो गया है जार्ज दे ला तुर। यह कैरेवैज्जियो के यथार्थवाद से प्रभावित था किन्तु शास्त्रीय आदर्शवाद मे विश्वास करता था। सत्रहवी शती के एक इतिहास लेखक के अनुसार फ्रेंच शासक लुई तेरहवें ने अपने कक्ष मे केवल ला तुर द्वारा निर्मित सन्त सेबास्टियन का चित्र ही टँगा रहने दिया था और अन्य समस्त चित्र हटवा दिये थे। किन्तु उसके उत्तराधिकारी लुई चौदहवें ने उसे कोई महत्व नही दिया। यहाँ तक कि उस समय के इतिहासकारो ने भी उसका कोई उल्लेख नही किया। इसका मुख्य कारण ला तुर की शैली है जिसमे पर्याप्त सरलता है। उसकी आकृतियाँ आगे चलकर इतनी सरल हो गयी हैं मानो कठपुतलियाँ हो। उसने दैनिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में बाइबिल की घटनाएँ चित्रित की हैं। साधारण स्त्री-पुरुषो के आधार पर बने इन रात्रि-दृश्यो मे प्राय. मोमबत्ती

अथवा मशाल के प्रकाश की किरणें शरीर के आवश्यक वित्ररणो को छिपा देती हैं और मुखाकृतियो, विचारो, मनोभावो तथा आत्मा को प्रकाशित करती है। केवल आधुनिक युग मे ही इस कलाकार को उचित महत्त्व मिल पाया है। इसकी प्रमुख कृतियां हैं सन्त सेवाशियां की सुश्रूषा करते हुए सन्त आईरीन, भविष्यवक्ता, कुमारी की शिक्षा, बढई जोजेफ।

एण्ड्रिया साची (Andrea Sacchi, १५६६-१६६१) —रोमन वरोक चित्रकार होते हुए भी यह निकोला पुसिन आदि फ्रेंच कलाकारो द्वारा चलाये गये शास्त्रीयतावादी आन्दोलन का अनुगामी था। उसका जन्म रोम मे हुआ था और उसकी आरम्भिक शिक्षा अल्बानी की देख-रेख मे हुई थी। तत्पश्चात् वोलोना मे वह लोडोविको का शिष्य रहा जो ऐनीवेल केरेसी का चचेरा भाई था। कार्य सीखने के उपरान्त वह पुन रोम लौटा और वही रहने लगा। उसकी शैली कोर्टोना की अपेक्षा कम वरोक है। उसमे शास्त्रीयता का पर्याप्त पुट है। यह प्रवृत्ति उसने अपने शिष्यो मे भी उत्पन्न करदी थी जिन्होंने अठारहवी शती मे शास्त्रीयता के आन्दोलन को प्रबल प्रेरणा दी।

यथार्थवाद

प्राचीन शास्त्रीय युग से ही यूरोपीय कला मे यथार्थवाद एक निरन्तर प्रतिपाद्य के रूप मे रहा है। पर जहाँ इसे कलाकारो ने अपनी भावाभिव्यक्ति मे अक्षम देखा है, वही वे इससे दूर चले गये हैं। इस प्रवृत्ति ने जब भी वल पकडा है, यह अपने समकालीन कला-आन्दोलन से अवश्य प्रभावित हुई है। कभी इसे प्राकृतिकतावाद (Naturalism) कहा गया और कभी तद्वाद (Verism)। सत्रहवी शती मे इसके तीन रूप प्रचलित हुए—एक रगीन मूर्तियो से सम्बन्धित, दूसरा कैरेवैज्जियो की शैली की अनुकृति के रूप मे और तीसरा डच चित्रकला मे। तीनो ही रूपो मे यह धरातलीय (सतही) यथार्थ को लेकर चला। इस प्रकार यह अनुकृति का एक सीमित रूप है। सत्रहवी शती मे इसे मानव-प्रकृति का सत्य प्रस्तुतीकरण समझा गया था। अरस्तू ने कहा था कि नृत्य सहित सभी कलाएं अनुकृति-मूलक हैं और इसी विचार के आधार पर पुसिन भी कला को ससार की समस्त वस्तुओ की अनुकृति मात्र मानता था। किन्तु यथार्थवाद मे मनोभावो आदि के आन्तरिक सत्य को प्रस्तुत करने के हेतु अनुपातो तथा दूरीगत सम्बन्धो की पुनर्व्यवस्था नही होती।

जैसा कि सकेत किया जा चुका है, स्पेन की रगीन मूर्तियो के रूप मे भी यथार्थवाद का एक प्रकार प्रचलित था। यह एक धार्मिक एव लोकप्रिय कला थी। इन मूर्तियो मे काच की आँखें, केश और वस्त्र भी प्रयुक्त किये जाते थे। मनोवैज्ञानिक प्रभाव, रगो की तडक-भडक और सुन्दर विन्यास के कारण ये मूर्तियाँ बहुत लोकप्रिय हुई। यह कला अठारहवी शती मे जर्मनी मे भी प्रचलित थी और वहाँ इसे वरोक तथा रोकोको शैलियो ने भी प्रभावित किया।

यथार्थवाद का दूसरा रूप जो "कैरेवैज्जियोवाद" के नाम से प्रचलित था। कैरेवैज्जियो की कला नाटकीय एव भावात्मक गुणो के लिए प्रसिद्ध थी। वरोक तत्वो के साथ-साथ उसमे यथार्थवाद भी था। सत्रहवी शती के यथार्थवादियो ने उससे प्रेरणा ली। कैरेवैज्जियो की आरम्भिक कला मे धरातलीय प्रभावो और स्थानीय रङ्गो का सावधानी से अध्ययन किया गया था। इनका अध्ययन वह अपनी चित्रशाला मे स्थिर-जीवन के चित्र बनाकर किया करता था। इनमे वह बडे चमकदार रङ्ग भी लगाता था और यथार्थ वस्तुओ की भाँति गहरी छाया लगाता था। वह जहाँ तक सम्भव होता, स्थिर जीवन की पद्धति से ही वस्त्रो, वनस्पतियों, अन्य उपकरणों तथा पशु-पक्षियो आदि का चित्रण करता था। गतिपूर्ण मानवाकृतियाँ अवश्य कल्पना से अकित हुई हैं। फिर भी वह क्रियाशील आकृतियों को वातावरण के साथ ठीक प्रकार से सम्बन्धित नही कर पाता था। इस प्रकार कैरेवैज्जियो का यथार्थवाद वस्तु-परक था, प्रयोजन-परक नही। किसी वस्त्र का अलकृत किनारा, किसी लकडी के पटरे का दानेदार धरातल अथवा तलवार की पैनी धार आदि को उसने मनोवैज्ञानिक कारणो से प्रस्तुत किया है।

कैरेवैज्जियो अपने स्वभाव से ही यथार्थवादी था। उसने पौराणिक पात्रो के हेतु समकालीन वेशभूषा मे अपने युग के व्यक्तियो को चित्रित किया है और केवल विशेष चिन्हो अथवा आयुधो आदि से ही उनको पौराणिक प्रतीकता दी है। पवित्र आकृतियो को उसने नायक-नायिका की भूमिका मे प्रस्तुत करने की दो सौ वर्ष से इटली मे प्रचलित परम्परा भी छोड दी। इसी प्रकार उसने कला मे नायक-विरोधी प्रवृत्ति आरम्भ की। उसके चित्रो मे बाइबिल की घटनाएँ अँधेरे स्थानो में घटित हुई हैं, पात्र मैले-कुचैले वस्त्र पहने है और सन्तो के आधे शरीर अँधेरे मे दिखायी नही देते। उनके आकार साधारण पात्रो के ही समान है। पवित्र आकृतियाँ ग्रामीण तथा सामान्य लोगो से घिरी हैं जबकि चर्च के अनुसार ईश्वर तक केवल पादरी के माध्यम से ही पहुँचा जा सकता था। उसने सन्तो तथा किसानो के पैर धूल-धूसरित दिखाये हैं।

इस प्रकार के यथार्थवाद के कारण कैरेवैज्जियो के चित्र चर्च द्वारा अस्वीकृत होते रहे किन्तु फिर भी वह अपने समय का बहुत व्यस्त कलाकार था। उसका प्रभाव नेपिल्स तथा स्पेन की कला पर बहुत समय तक रहा। नेपिल्स मे उसकी प्रेरणा से कारागारो के अँधेरे स्थानो के समान दृश्यो का चित्रण हुआ। इसे बरोक प्रवृत्ति कहा गया है और रिबेरा इस प्रकार का प्रसिद्ध कलाकार माना गया है। जरबराँ तथा वेलास्के भी उससे प्रभावित हुए। स्पेन की रङ्गीन मूर्तिकला के प्रभाव से जरबराँ की आकृतियो मे प्रतिमाओ जैसी निश्चलता भी है। वेलास्के की आरम्भिक आकृतियाँ भी स्पेनिश रगीन काष्ठ प्रतिमाओ से प्रभावित हैं किन्तु उसकी कला मे भावाभिव्यक्ति नेत्रो तथा मुख-विवर में ही निहित रहती है, अन्यथा सम्पूर्ण आकृति निश्चल-सी प्रतीत होती है। उसके व्यक्ति-चित्रो से ऐसा प्रतीत होता है मानो पात्र अपनी वास्तविकता को छिपाये हुये हैं। उसने जीवन के अन्तिम दिनो मे शाही बालको का जो चित्र बनाया है उसमे दूर सामने की दीवार पर टँगे दर्पण मे राजा-रानी के प्रतिबिम्ब दिखायी दे रहे है जो यथार्थ मे दर्शक की जगह खडे हैं। इस प्रकार वेलास्के ने चित्र के कल्पित विस्तार और दर्शक के यथार्थ जगत् के विस्तार में जो सम्बन्ध बनाया है, उसके अतिरिक्त इस चित्र मे कोई अन्य बरोक तत्त्व नही है।

वेलास्के ने इस चित्र मे स्वय को भी एक विशाल कैनवास बनाते हुए दिखाया है। उसके रंग आकृतियो को जितनी स्पष्ट करते हैं उतनी ही छिपाते भी है। उसने हमे रगो की चमक के प्रति भी सवेदनशील बनाने का प्रयत्न किया है। आकृतियो की सीमाएँ भी रगो के विभिन्न बलो तथा तूलिका-आघातो के सामने गौण हो गयी हैं।

इस प्रकार वेलास्के को कैरेवैज्जियो की शैली की दृष्टि से यथार्थवादी कलाकार नही कहा जा सकता। उसकी कला मे वस्तुओ के सतही विवरणो का भ्रम नही है, सयोजनो मे सूत्रबद्धता है, नाटकीयता का अभाव है और वह दैनिक अनुभवो के निकट है।

हालैण्ड की कला तीसरे प्रकार के यथार्थवाद का उदाहरण है। इसमें लोगो की जीवन-यापन पद्धति की यथार्थता है। इसी से यह अपने समय मे बहुत लोकप्रिय हुई। ये चित्र किसी देश के लोगों के वातावरण, वहाँ की नहरो, रेत के टीलो, फार्म हाउसो तथा पनचक्कियो का यथार्थवाद प्रस्तुत करते हैं। हालैण्ड के दृश्य-चित्रों में इनके अतिरिक्त समुद्री दृश्यो का भी अकन हुआ है। स्थिर जीवन मे फूलो, फलो, मछलियों, कालीनो, काँच के सामान, चाँदी के पात्र आदि चित्रित किये गये हैं। यहाँ की गलियो, सडको, चर्च के जीवन तथा लोगो के व्यक्ति-चित्रो की भी बहुत माँग की थी।

रेम्ब्राँ को छोड कर डच कला फोटोग्राफिक यथार्थवाद की ओर मुडती हुई दिखायी देती है। किन्तु यह विकास बहुत शनैः शनैः ही हो पाया। पहले चित्रो मे स्पष्टता लायी गयी, तत्पश्चात् धरातलीय विवरणो को सावधानी से अकित किया जाने लगा, यहाँ तक कि दृश्यचित्रो मे वृक्षो के पत्ते भी बारीकी से दिखाये गये। व्यक्ति-

चित्रण मे इस समय फ्रास-हाल्स का बोलबाला था। कुछ समयोपरान्त स योजनो मे सुसम्बद्धता लाने का प्रयास हुआ। वान गोयन, पोर्सेलीज, हेडा तथा ड्रौवर इस समय के प्रसिद्ध कलाकार हैं। इस समय के स योजनो मे भीड़-भाड़ नही है।

१६४० ई० के आसपास र ग के बजाय विभिन्न बलो का महत्व बढा और वातावरण के गहराई तथा विस्तार मे वृद्धि हुई। यह समय हालैण्ड की कला का स्वर्ण युग कहा जाता है। रूइसडेल, क्विप, वरमीअर,पीटर डी हुक, स्टीन, टरबोर्च, वान द वेल्डे तथा काफ इस समय के प्रसिद्ध चित्रकार थे। इनकी कला मे यद्यपि यथार्थवाद के प्रति बहुत आग्रह है तथापि कल्पना के सहकार से चित्रो को निष्प्राण होने से बचा लिया गया है। कही-कही इनमे बरोक विशालता, सुनहरी प्रकाश, भूरी छाया आदि का भी प्रयोग है। इन सभी कलाकारो में वरमीअर विशेष कल्पनाशील है।

जान वरमीअर (Jan Vermeer, १६३२-१६७५)—डच चित्रकार वरमीअर डेल्फ (Delft) का निवासी था। इसके जीवन के विषय मे बहुत कम ज्ञात है। सम्भवत इसने अपनी जन्मभूमि को कभी नही छोडा। प्राप्त विवरणो के अनुसार उसने फैब्रीटियस से कला की शिक्षा ली थी। इक्कीस वर्ष की आयु मे उसने विवाह किया और स्वतन्त्र रूप से कार्य करना आरम्भ कर दिया। उसकी कला-कुशलता से प्रभावित होकर नगर के कला-कार-सघ ने उसे १६६३ ई० मे डीन बना दिया। इस पद पर वह सात वर्ष रहा। १६७५ ई० मे सकटपूर्ण पारिवारिक परिस्थितियो मे उसकी मृत्यु हो गयी।

वरमीअर ने प्राय आन्तरिक घरेलू दृश्यो मे ही छाया-प्रकाश तथा प्रतिच्छाया के अगणित भेद दर्शाने की चेष्टा की है। उसने र गो को परस्पर इतना अधिक मिश्रित कर दिया है कि चित्रो मे किसी भी स्थान पर तूलिका के स्पर्शों का कोई भी चिन्ह अवशिष्ट नही है। उसके चित्रो मे हाथी दांत जैसी चमक, इनामेल जैसे धरातल और शीतल जल जैसा प्रभाव है। वह बहुत सावधानी से कार्य करता था अत उसने बहुत कम चित्र बनाये है। फिर भी उसके लगभग चालीस चित्र उपलब्ध हैं जिनमे कमरो मे बाहर से आने वाले प्रकाश के विभिन्न परिवर्तनो को र गो के माध्यम से बडी सुन्दरता से प्रस्तुत किया गया है। सभवत वह पहला कलाकार था जिसने किसी निश्चित प्रकाश-स्रोत के आधार पर वस्तुओ के विभिन्न बलों का गम्भीरता-पूर्वक अध्ययन तथा विश्लेषण किया। उसने कला में व्यक्तिगत अनुभूति के स्थान पर वस्तु-परकता को प्रधानता दी। इस प्रकार वरमीअर ने कैरेवैज्जियो द्वारा प्रेरित यथार्थवाद को आगे बढाने में बहुत सहायता दी। उसकी कला में र गो के बलो तथा वातावरण के प्रभावो की पूर्ण एकता है। उसने आकृतियो को सीमा-रेखा के बजाय र गो के बलो से उभारा है।

१८वी शती मे यथार्थवाद—१७वी शती की डच लोक-जीवन की कला में से ही अठारहवी शती के यथार्थवाद का विकास हुआ जिसमे बुर्जुआवर्ग का चित्रण विशेष रूप से हुआ। फ्रास मे इसका पर्याप्त प्रचलन हुआ जहा ज्यान आन्त्वान वातो एव ज्यान वेप्तिस्त शार्दि इसके प्रमुख प्रयोक्ता थे। शार्दि ने रोकोको शैली में भी कार्य किया है।

ज्यान आन्त्वान वातो (Jean Antoine Watteau, १६८४-१७२१)—फ्रेंच चित्रकार वातो का जन्म वालेंसिया मे हुआ था। अठारह वर्ष की आयु मे वह कला की शिक्षा के हेतु पेरिस गया और वहाँ परदो का चित्रण करने लगा। १७०७ ई मे उसने लग्जम्बर्ग पैलेस में फ्लीमिश कलाकारो के चित्र देखे जिनमे पीटर पाल रूबेन्स से वह सर्वाधिक प्रभावित हुआ। १७०८ मे उसने इस कला से प्रभावित होकर कुछ चित्र भी बनाये। १७१० ई में पेरिस मे उसने वेनेशियन कला का अध्ययन किया। उसने अनेक प्रयोग एव उक्त समस्त प्रभावो के समन्वय से एक मौलिक शैली विकसित की जिससे उसकी बहुत प्रशसा हुई। १७१२ ई. मे उसे अकादमी ने सम्मानित

किया। १७०४ ई मे ही उसे क्षय रोग हो गया था जो अब बहुत बढ़ गया अत. १७१६ ई. मे वह चिकित्सा के हेतु लन्दन गया किन्तु कोई लाभ न हुआ। वह पेरिस लौटा और १७२१ ई. मे उसकी मृत्यु हो गयी।

वातौ जब सर्वप्रथम पेरिस आया तो लोगो को सगीत का बड़ा शौक था। इन्ही से उसे उल्लास और आमोद-प्रमोद के विषयो के चित्रण की प्रेरणा मिली। उसने उनके स्टेज सैटिंग का तो चित्रण नही किया किन्तु उनकी जीवन-पद्धति को अपने चित्रो मे उतारा। उसने इन पात्रो को चमकीले रेशमी तथा साटिन के वस्त्र पहनाये और उन्हे सुन्दर उद्यानों तथा सघन कुजो मे बिठाया। उसकी इस पद्धति का अठारहवी शती मे बहुत अनुकरण हुआ।

वातौ अपने समाज के द्वारा ही निर्मित हुआ था और ऐसे शानशौकत तथा राग-रग प्रिय समाज मे रहना उसका सौभाग्य था। तत्कालीन सामन्त चाहते थे कि चित्रकला मे उनकी महत्वाकाक्षाएँ और स्वप्न अभिव्यक्त हो। वातौ ने यही किया। उसे धार्मिकता अथवा देशभक्ति की बिल्कुल भी चिन्ता नही थी।

किन्तु चित्रो मे दिखाई देने वाले सुखी कलाकार से उसका व्यक्तिगत जीवन बिल्कुल भिन्न था। युवावस्था मे वह एक ऐसे कारखाने मे काम करता था जहाँ नित्य अनेक धार्मिक चित्र रूढ़ियो के अनुसार बनाये जाते थे। वह निर्धन था और प्रसिद्धि पाने पर उसे आरम्भ मे जो धन मिला वह उसने बिना सोचे-समझे ही व्यय कर दिया। सम्राट लुई चौदहवें ने उसे कोई सम्मान नही दिया किन्तु सम्राट के दरबारी उससे अनेक चित्र बनवाते रहते थे। सम्भवत अपने रोग के कारण ही उसके कुछ आमोद मूलक चित्रो में भी करुणा की एक हल्की झलक दिखाई देती है। अपने एक चित्र "किथेरा को प्रयाण (The Embarkation for Cythera) मे उसने अनेक प्रेमी-युगल एक नौका पर सवार होकर अपने स्वप्नो के प्रदेश को जाते हुए चित्रित किये है किन्तु पृष्ठभूमि के दृश्य मे वसन्त न दिखाकर शरद का अन्त और शीतऋतु का आगमन चित्रित है।

बरोक युग में ब्रिटेन की चित्रकला

ब्रिटिश चित्रकला का कोई प्राचीन इतिहास नही है। ब्रिटेनवासी चित्रकला की अपेक्षा कविता मे अधिक रुचि लेते थे। यही कारण है कि उनके यहाँ जितना विकास साहित्य का हुआ उतना चित्र एव मूर्तिकला का नही। अग्रेजी चित्रकला का उद्भव बहुत नया है। यह कला सृजनात्मक की अपेक्षा दृश्यात्मक अधिक है। इसकी सफलता व्यक्ति-चित्रण एव प्राकृतिक दृश्यो के अङ्कन मे ही विशेष रही है और इसमे माडेल का उपयोग किया गया है। ईसा की आरम्भिक शताब्दियो मे यह आलकारिक थी। सातवीं शती मे ब्रिटिश चित्रकला मे अलकरण-प्रवृत्ति चरम सीमा तक पहुँच गयी। नवी-दसवी शताब्दी मे ब्रिटेन मे बिजेन्टाइन कला का प्रभाव आया। पन्द्रहवी शती मे यह कला फ्लीमिश तथा फ्रेंच परम्पराओ से प्रेरित हुई। शेष यूरोप के समान सम्पूर्ण मध्यकाल मे इग्लेण्ड में चर्च की दीवारो पर ही प्रधान रूप से चित्रण होता रहा। पन्द्रहवी से अठारहवी शती तक यहाँ बाहरी कलाकार बुलाये जाते रहे। अठारहवी शती के आरम्भ मे इग्लैण्ड मे एक स्थानीय कला-शैली का प्रादुर्भाव हुआ। इस समय शेष यूरोप मे खामोशी छायी हुई थी।

बरोक युग की इग्लिश कला फ्लीमिश कला से प्रेरित हुई। १६३२ मे वान डाइक लन्दन आया था। उसी ने वहाँ बरोक कला की नीव रखी। आगे चलकर इस पर डच प्रभाव भी पड़ा। इस शैली के प्रमुख अंग्रेज चित्रकार निम्नलिखित हैं जिनकी शैली यथार्थवादी अधिक है—

विलियम डाब्सन (William Dobson १६१०-१६४६)—इसका जन्म लन्दन मे हुआ था। बचपन से ही यह चित्रकला मे अपनी प्रतिभा दिखाने लगा था और जब वान डाइक लन्दन आया तो यह उसका शिष्य भी हो गया। वान डाइक की मृत्यु के पश्चात् इसी को चार्ल्स प्रथम का दरबारी चित्रकार बनने का अवसर प्राप्त हुआ। समकालीन लेखको की दृष्टि में यह इग्लैंड मे उत्पन्न सर्वोत्तम कलाकार था। इसकी शैली वान डाइक की अपेक्षा

इटली की भारी आकृतियो की कला से अधिक प्रभावित है। इस पर वेनिस की उन सुन्दर आकृतियो का भी प्रभाव पडा था जो चार्ल्स के सग्रह मे थी। १६४२ के गृह-युद्ध मे चार्ल्स ने आक्सफोर्ड मे शरण ली थी। वही सर्वप्रथम इसका भी उल्लेख मिलता है। इसने राजपरिवार तथा दरवारी व्यक्तियो के अनेक सुन्दर चित्र बनाये किन्तु सम्राट को कभी चित्रित नही किया।

सर पीटर लेली (Sir Peter Lely १६१८—१६८०) यह डच माता-पिता की सन्तान था और जर्मनी मे उत्पन्न हुआ था। इसकी आरम्भिक शिक्षा हार्लेम मे हुई थी और १६३७ मे यह हार्लेम के चित्रकार सघ का सदस्य बन गया। किन्तु इस समय की इसकी कोई कृति उपलब्ध नही है। दस वर्ष पश्चात् यह इग्लैंड आया। इस समय के इसके चित्र हालैंड की तत्कालीन शैली मे ही है। १६४७ के आस-पास इसने शाही परिवार एव सम्राट को चित्रित किया। इनसे इसकी वडी प्रशसा हुई और अनेक व्यक्ति अपने चित्र वनवाने इसके पास आने लगे। १६६१ मे यह चार्ल्स द्वितीय का राजकीय चित्रकार हो गया और इसकी प्रतिष्ठा वान डाइक से भी अधिक हुई। अब यह एक विशाल चित्रशाला का स्वामी था जहा अन्तर्राष्ट्रीय बरोक शैली मे सैकडो व्यक्ति-चित्रो का निर्माण हो रहा था। इन चित्रो मे उस समस्त इन्द्रजाल का अकन था जिसका वैभव इसने चार्ल्स के दरवार मे देखा था। इसने चार्ल्स द्वितीय के दरबार की सुन्दरियो के विलासपूर्ण चित्रो के अतिरिक्त उन वीरो के भी व्यक्ति-चित्र अकित किये है जो द्वितीय डच युद्ध मे विजयी हुए थे। सैनिक चित्रों का यह चित्रागार उसने यार्क के ड्यूक को भेंट किया था।

विलियम होगार्थ (William Hogarth १६९७—१७६४)—अठारहवी शती के पूर्वार्द्ध मे लन्दन व्यवसायी गुण्डो और पाशविक मनोरजनो का केन्द्र था। कुश्ती, व्यभिचार, रीछ और मुर्गों की लडाई आदि यहाँ के सभ्य समाज के शौक थे। सब लोग खूब शराब पीते थे और रात मे किसी का भी अकेले घर के बाहर निकलना सुरक्षित नही था। कौडी-कौडी को मुँहताज निर्धन व्यक्तियो और तावे-पीतल के टुकडो के हेतु अपना सम्मान बेचने वाली भगलामुखियो से भरी गलियो वाले इस नगर मे ऐसे लोग भी थे जो कला के सरक्षक बनने का ढोग रचते थे। पर वास्तव मे उनका काम इटली से चुराई हुई कला-कृतियो की चोर बाजारी एव नीलामी के अतिरिक्त कुछ भी नही था। सास्कृतिक दृष्टि से समाज का यह पतन एक ओर जहाँ इग्लैंड के अधकार पूर्ण पक्ष को प्रस्तुत करता है वहाँ कुछ बुद्धिजीवियो मे आशा की किरण भी दिखायी देती है। यही वह युग था जिसमे जोनाथन स्विफ्ट, सामुएल जोन-सन तथा हेनरी फील्डिग जैसे साहित्यकार और लेखक, डेविड गैरिक जैसे अभिनेता, सर आइजक न्यूटन जैसे विज्ञानवेत्ता और विलियम होगार्थ जैसे चित्रकार उत्पन्न हुए थे।

होगार्थ का जन्म लन्दन के एक स्वर्णकार परिवार मे हुआ था। १७२० ई० के लगभग उसने उत्कीर्णक का कार्य आरम्भ किया। उसकी प्रारम्भिक शिक्षा सेण्ट मार्टिन्स लेन अकादमी मे हुई थी। उस समय वह अपनी स्केच बुक लिये निरन्तर घूमता रहता था। मेले-तमाशो, मुर्गो की लडाई, चुनाव के झगडो, लोक-नृत्यो आदि के अवसर पर उसे कोई भी स्केच करते हुए देख सकता था। एक व्यावसायिक कलाकार के रूप मे उसने पर्याप्त यश अर्जित किया। इसके साथ-साथ वह अपने विषय की समस्याओ पर भी निरन्तर विचार करता रहता था। यही कारण है कि वह एक साधारण चित्रकार न रह कर इग्लैंड का एक महापुरुष बन सका। उसने चित्रकला की शिक्षा के हेतु एक अच्छी अकादमी की स्थापना की जो लन्दन की रायल अकादमी की स्थापना मे प्रेरणादायक सिद्ध हुई। १७२९ मे अपने शिक्षक की रूपवती कन्या के साथ उसका प्रेम-सम्बन्ध हो गया। वह उसे चुपचाप अपने घर ले आया और पुन अपने गुरु से जाकर कहा कि वह अपना तथा अपनी पत्नी का भली प्रकार भरण-पोषण कर सकता है। इसके प्रमाण मे उसने "ए हार्लोट्स प्रोग्रेस" नामक चित्रकथा की रचना की जो वहुत लोकप्रिय हुई। इसमे लन्दनवासिनी अस्थिर मन वाली एक सुन्दर ग्राम-बाला की कथा चित्रित की गयी है। परम्परावादी कला-विदो ने होगार्थ की कला

पर पर्याप्त नाक-भौंहे सिकोड़ी कि वह शास्त्रीय कला से पूर्णत. अनभिज्ञ है किन्तु होगार्थ इनकी चिन्ता किये बिना अपने लोकप्रिय चित्रो से पर्याप्त धन बटोरता रहा। इसके उपरान्त उसने "द रेक्स प्रोग्रेस" नामक दूसरी चित्रकथा का अकन किया।

इन सबके साथ-साथ होगार्थ अनेक सामाजिक कार्यो मे भी लगा रहा। उसने अवैध शिशुओं के हेतु एक चिकित्सालय एव आश्रम की स्थापना की, एक कला-विद्यालय का भी सचालन किया और प्रत्येक क्षेत्र मे ढोंगी व्यक्तियो का विरोध किया। उसकी तीसरी प्रसिद्ध कृति "मैरिज ए ला मोड" है जिसमे एक विवाहित दम्पत्ति के समाज-विरोधी कार्यो का चित्रण है। इसका अच्छा स्वागत नही हुआ और इटालियन कला के भक्तो तथा एक अन्य कलाकार रेनाल्ड्स के प्रशसको ने इसे अश्लील कह कर इसका तिरस्कार किया। जीवन के अन्तिम दशक मे वह अनेक झगडो मे फँस गया जिनसे अन्त तक मुक्ति न मिल सकी। अन्तिम समय मे उसकी धमनियाँ चौडी हो गयी थी जिनके कारण वह शीघ्र ही मर गया। १७५३ मे होगार्थ ने "द एनालाइसिस आफ़ ब्यूटी" शीर्षक से सौंदर्य पर एक पुस्तक भी लिखी थी। उसका अपना आत्म-चरित्र भी उपलब्ध है जो विश्लेषण (एनालाइसिस) के नाम से छप चुका है।

होगार्थ एक उत्साही कलाकार था। उसे अपना देश और उसके निवासी बहुत प्रिय थे। वह केवल धनिको का ही चितेरा नही था, फलत उसके चित्रो मे इग्लैंड की सुन्दर युवतियाँ मानवी रूप मे ही चित्रित हुई है, साम्राज्ञी, रानी, डचेज अथवा श्रेष्ठी-पत्नी के रूप मे नही। इग्लैंड के ईमानदार नेताओ और राजनीतिज्ञो को भी वह मित्र भाव से देखता था। उसमे हास्य की ऐसी क्षमता थी जो उसे भावुकता से बचाये रखती थी। इसी के कारण वह एक ऐसे उत्कीर्णक के साथ कार्य कर सका जिसका मिजाज बहुत गर्म था।

होगार्थ ने किराये के माडेल तलाश करने के बजाय सदैव घूम घूम कर ही जन-जीवन से प्रेरणा ली। एक बार उसने इग्लिश चैनल को पार करके सागर तट के स्केच बनाये। यही कारण है कि उसकी आकृतियाँ खिलौनो के समान निष्क्रिय अथवा बनावटी प्रतीत नहीं होती। समस्त इग्लैण्ड से उसे प्रेरणा मिलती थी। होगार्थ ने चित्रकला की परम्परा को पुनरुज्जीवित्त किया और उसे अन्य कला-रूपो से स्वतन्त्र किया। अपने क्षेत्र में वह अद्वितीय है। यद्यपि लियोनार्डो के समान उसमे कला का जादू नही है तथापि मानवीय धरातल पर उसकी कृतियो का विशिष्ट स्थान है।

सर जोशुआ रेनाल्ड्स (Sir Joshua Reynolds . १७२३-१७९२)—कला-इतिहास ने सर जोशुआ रेनाल्ड्स को ब्रिटिश चित्रकला-परम्परा मे बहुत महत्व प्रदान किया है। उसके पिता एक ग्रामीण विद्यालय मे हैड-मास्टर तथा बेलियल विद्यालय के फैलो थे। इस प्रकार जहाँ इग्लैण्ड के अन्य चित्रकार कुपढ और व्यापारी वर्ग के थे वहाँ रेनाल्ड्स शिक्षित परिवार मे से आया था। रेनाल्ड्स शीघ्र ही तत्कालीन साहित्यकार मण्डली के मुख्य सदस्यो डा० जोनसन, बर्क, गोल्डस्मिथ एव गैरिक आदि का मित्र हो गया। उसने अपनी शैक्षिक योग्यता एव कुलीनता के आधार पर चित्रकला तथा चित्रकारो का जितना सम्मान बढाया, वास्तव मे वह उतना श्रेष्ठ चित्रकार न था।

१७४० में उसे हडसन से शिक्षा प्राप्त करने भेजा गया किन्तु १७४३ मे वह डेवनशायर लौट आया। ६ वर्ष तक उसने डेवनशायर तथा इग्लैण्ड मे स्वतन्त्र रूप से कार्य किया और १७४९ मे वह इटली गया। इसके पूर्व वह वान डाइक के अनुकरण पर इलियट परिवार का चित्रण कर चुका था। इसी के आधार पर उसने अपनी शैली का निर्माण किया था और वान डाइक के समान कलाकृतियाँ बनाने के कारण इग्लैंड के सभ्रान्त नागरिक उसकी कृतियो को बहुत पसन्द करने लगे थे। इटली जाने के पूर्व उस पर वान डाइक के अतिरिक्त होगार्थ, रेमसे तथा हडसन का ही प्रभाव था। दो वर्ष तक उसने रोम मे प्राचीन कृतियो का अध्ययन किया। इसमे राफेल तथा माइकेल एंजिलो

का अध्ययन भी सम्मिलित था। यहाँ आकर ही उसे इटालियन कला के बौद्धिक पक्ष का ज्ञान हुआ। इंग्लैंड के अन्य चित्रकारों में रेमसे के अतिरिक्त किसी ने भी इस पक्ष का विचार नहीं किया था। १७५२ में स्वदेश लौटते समय रेनाल्ड्स वेनिस में कुछ सप्ताह रुका। इन सब प्रभावों को हम उसके परवर्ती व्यक्ति-चित्रण में देख सकते हैं। १७५३ में वह लन्दन में बस गया और डा० जोनसन से भेंट की। शीघ्र ही उसकी ख्याति फैलने लगी। उसने आकृति-चित्रण में महान् पुनरुत्थान शैली के तत्वों का समाहार करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया। १७६८ में जब रायल अकादमी की स्थापना हुई तो रेनाल्ड्स ही एक मात्र उपयुक्त व्यक्ति उसके प्रधान पद के हेतु दिखायी दिया। १७६९ में उसे नाइट की उपाधि भी मिली, और १७७२ में वह अपने नगर का मेयर भी चुन लिया गया। १७६८ से ही उसकी कला में शास्त्रीयता का गम्भीरता से समावेश होने लगा। उसने इतिहास का चित्रण करने वाले चित्रकारों के एक ब्रिटिश स्कूल की स्थापना का सकल्प किया और इस सम्बन्ध में १७६९ से १७९० के मध्य पन्द्रह भाषण भी दिये। इस अवधि में वह अकादमी में अपने चित्रों की निरन्तर प्रदर्शनियाँ भी आयोजित करता रहा। वह प्राय. ऐतिहासिक पद्धति से बड़े आकार के व्यक्तिचित्र बनाता था और इतिहास का भी चित्रण करता था। "सत्य की विजय" तथा "कौमार्य की पूजा करती हुई तीन युवतियाँ" आदि नैतिक विषयों से सम्बन्धित चित्रों का भी उसने निर्माण किया है।

१७८१ में उसने फ्लाण्डर्स तथा हालैण्ड की यात्रा की। वहाँ वह रूबेन्स की शैली की शक्तिमत्ता और स्वतन्त्रता से बहुत प्रभावित हुआ। वहाँ से लौट कर उसने जो चित्र बनाये उनमें पहले की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता है और शास्त्रीयता का आग्रह कम है। १७८९ में उसकी आँखों की ज्योति नष्ट हो गयी और तीन वर्ष पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी।

रेनाल्ड्स की चित्रशाला में अनेक चित्रकार काम करते थे और उसने पर्याप्त सख्या में कलाकृतियों का निर्माण किया है। उसके व्यक्ति चित्रों की मुखाकृतियाँ बहुत पीली हो गयी हैं और उनमें भरा गया कृमिदाना मूल रंग उड़ गया है। उसने जितने भी व्यक्तिचित्र बनाये उन सबके उल्लेख डायरियों में उपलब्ध हैं।

एलन रेमसे (Allan Ramsay १७१३-८४)—यह कलाकार स्काट था। इसकी शिक्षा-दीक्षा एडिनबरा तथा लन्दन में हुई थी और यह लन्दन में ही रहने लगा था। इसने इटालियन विधि पूरी तरह सीखी थी। रेनॉल्ड्स के पूर्व यह इसी विधि में व्यक्तिचित्रण करता था। इसने प्राय राजपरिवार के व्यक्तियों के ही चित्र अंकित किये हैं। इनके हेतु इसने असख्य रेखाचित्र भी निर्मित किये थे।

सर टामस लारेन्स (Sir Thomas Lawrence १७६९-१८३०)—लारेन्स का जन्म ब्रिस्टल में हुआ था। वह बचपन से ही इतना प्रतिभाशाली था कि दस वर्ष की आयु में आक्सफोर्ड में ड्राफ्ट्समैन का कार्य करने लगा। १७ वर्ष की अवस्था होने पर उसने अपनी माँ को एक पत्र में लिखा था कि सर जोशुआ को छोड़कर मैं किसी भी लन्दनवासी चित्रकार से टक्कर ले सकता हूँ। १७८७ में कुछ समय के लिये वह अकादमी में भी शिक्षा प्राप्त करने आया और वहाँ अपने चित्रों की प्रदर्शनी की। इसके पश्चात् उसे निरन्तर सफलता मिलती गयी। १७९२ में रेनाल्ड्स की मृत्यु होने पर वह राजकीय चित्रकार बना दिया गया। १८२० में वह अकादमी का अध्यक्ष चुना गया। इसके पूर्व १८१५ में ही उसे नाइट की उपाधि मिल चुकी थी। व्यक्ति-चित्रण में उसकी ख्याति समस्त यूरोप में फैल गयी। यद्यपि उसकी आमदनी बहुत अधिक थी तथापि वह सदैव ऋण से दबा रहा। सम्भवत यही कारण है कि उसकी कला आत्मा-विहीन थी। उसके पास प्राचीन कलाकृतियों का भी अच्छा सग्रह था। जार्ज चतुर्थ ने उससे अपने समस्त मुख्य सैनिकों तथा दरबारियों के चित्र अंकित कराये थे।

रोकोको चित्रशैली

१७१५ ई मे लुई चौदहवें की मृत्यु के तुरन्त पश्चात् ही फ्रास मे जीवन की शान-शौकत तथा दिखावे के प्रति प्रतिक्रिया आरम्भ हो गयी। फ्रेंच जीवन का केन्द्र विन्दु पुन पेरिस हो गया और बरोक शैली की अपेक्षा छोटे एव आरामदायक भवनो का निर्माण आरम्भ हुआ। इनमे जो आन्तरिक सज्जा की जाती थी उसी के आधार पर रोकोको कला शैली का विकास हुआ। इसमे प्रधानतः कुण्डली एव वृत्ताकारो के समान लयपूर्ण सयोजन किये गये हैं। सम्मात्रा का भी विचार नही हुआ है। अठारहवी शती के पूर्वार्ध मे चीनी मिट्टी, सुवर्ण तथा रजत के पात्रो एव खिलौनो के अलकरण में इसका आरम्भिक स्वरूप देखा जा सकता है। छोटी-छोटी वक्र रेखाओ, सुन्दरता एव उल्लास से युक्त चित्रो एव मूर्तियों मे भी इसी शैली का प्रभाव है। वातौ, बूशे तथा कुछ अशो मे होगार्थ मे भी इस शैली के चिन्ह मिल जाते हैं; किन्तु इंग्लैण्ड मे इस शैली का अधिक प्रचार नही हुआ। फ्रास मे भी १७४० ई० के उपरान्त इसका आकर्षण समाप्त हो गया और वहाँ नव-शास्त्रीयतावाद का प्रारम्भ हुआ जर्मनी ही एक ऐसा देश था जहाँ रोको को शैली मे सर्वाधिक कृतियो का निर्माण हुआ। उसका अनुकरण आस्ट्रिया ने भी किया। वहाँ कैथोलिक समाज ने अतीव सुन्दर चर्च-भवनो, प्रतिमाओ तथा चित्रो की रचना की। इटली तथा स्पेन मे इस शैली का प्रभाव नही रहा। इस शैली मे काच, पत्थर आदि के छोटे-छोटे टुकडो से भी अलकरण किये गये हैं अत उन्हीं के आधार पर नव-शास्त्रीयतावादी कलाकारो ने १७९६-९७ के आस-पास इसे "रोकोको" नाम दिया गया। आरम्भ में यह इस शैली का तिरस्कार-सूचक शब्द माना जाता था किन्तु जब इस शैली की गम्भीरता से आलोचना होने लगी तब भी आलोचकों ने किसी नये नाम की अपेक्षा इसी का प्रयोग उचित समझा।

कला-समीक्षकों का कथन है कि पुनरुत्थान एव प्रभाववाद के मध्य रोकोको शैली सर्वाधिक आकर्षक कला-आन्दोलन है। इसमे विचित्र कल्पना, चातुर्य, ऐन्द्रियता एव प्रासादिकता का गुण है। बरोक एव नव शास्त्रीयता-वादी आन्दोलनो के विपरीत, जो कि इसके पूर्व तथा पश्चात् प्रचलित हुए थे, यह कला-शैली नैतिकता से उदासीन सहज वृत्ति पर आधारित और बौद्धिकता-रहित थी। इसे समझने के हेतु ऐतिहासिक अथवा सैद्धान्तिक, किसी प्रकार की पृष्ठ-भूमि की आवश्यकता नही है।

रोकोको शैली मे एक प्रकार की लयात्मक गति है। प्राय द्विमुख कुण्डली (ᔕ) को बड़े ही सौन्दर्य पूर्ण रूपो मे प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है। इस युग की कला-कृतिया सौन्दर्यपूर्ण कलात्मकता के कारण ही निर्मित एव पसन्द की जाती रही हैं, इस कला के पीछे कोई गम्भीर अथवा दार्शनिक सिद्धान्त नही रहे। जिन रूपो को साधारण कलाकार ठीक प्रकार से प्रस्तुत भी नही कर सके हैं उन्ही को श्रेष्ठ कलाकारो ने कल्पना तथा सहृदयता के बल पर बड़े उत्कृष्ट ढग से प्रस्तुत किया है। वातौ तथा टाइपोलो इस प्रकार के उत्तम कलाकार है जो अन्य युगो के महान कलाकारो की श्रेणी मे रखे जाते हैं।

रोकोको शैली के अलकरणो का प्रारम्भ १७०२ ई० के लगभग वर्सेलीज के राजकीय महल मे देखा जा सकता है। इनके पीछे कठोर नियमो से बचने की इच्छा रही है। रोकोको शैली की उत्पत्ति मे एक और मनोरजक घटना भी महत्वपूर्ण कारण रही है। लुई चौदहवें के ज्येष्ठ पौत्र की भावी पत्नी एव बरगण्डी के ड्यूक की पुत्री के हेतु जो भवन बनवाया गया था उसमे प्राचीन देवियो के चित्र अकित करने की योजना बनायी गयी। सम्राट ने इसे बहुत गम्भीर विषय बताया और तेरह-वर्षीय कन्या के हेतु हल्के एव मनोरजनपूर्ण चित्रो की रचना का सुझाव दिया। इसके परिणामस्वरूप क्लाद औद्राँ (Claude Audran) नामक चित्रकार ने फूल-पत्तियो, बेलो, गुलछर्रो, पुष्पहारो, तीर-कमान लिये बालको, शिकारी कुत्तो, पक्षियो एव सुन्दर अप्सराओ आदि से युक्त जो अलंकरण

बनाये वे सम्राट को शानदार और आकर्षक लगे। रोकोको शैली के प्रति यही प्रतिक्रिया सर्वसाधारण की भी होती थी। यही कारण है कि यह शैली बडी शीघ्रता से प्रचलित हुई।

चित्रित बेल-बूटो की पद्धति इस युग के कलाकारो ने प्राचीन रोमन कला से ग्रहण की थी जहाँ कृत्रिम गुफाओ मे इस प्रकार के अलकरण निर्मित किये जाते थे। इन्हे फ्रैंच कलाकारो ने परिष्कृत रूप देकर रोकोको शैली मे प्रयोग के उपयुक्त बना दिया। धीरे-धीरे इनका प्रयोग दर्पणो के चौखटो एव दीवारो के पेनलो मे भी होने लगा। १६९९ ई० के लगभग ही इस शैली का विकास होने लगा था। अब तक भवनो की आन्तरिक सज्जा मे लकडी अथवा सगमरमर की ज्यामितीय आकृतियो का प्रयोग होता था किन्तु अब इनके स्थान पर प्राकृतिक फूल-पत्तियो को उत्कीर्ण एव चित्रित किया जाने लगा। छत के चारो ओर का भाग रिक्त छोडकर केन्द्र मे गुलाबो का केवल एक गुच्छा चित्रित किया गया। इन प्रवृत्तियो की व्यापक रूप से अनुकृति होने लगी। खिडकियो, दरवाजो आदि की आकृतियाँ भी घुमावदार बनायी जाने लगी और उन्हे प्रचुरता से अलकृत भी किया गया। दीवारो पर दर्पण भी लगाये जाने लगे। १७२३ ई० तक यह शैली पूर्ण विकसित हो गयी। इसका प्रथम महान् चित्रकार वात्तो था जो अब तक बरोक शैली मे कार्य करता रहा था। कलाओ में विरोधी वक्र रेखाओ का अब बहुत प्रयोग होने लगा। स्थान-स्थान पर पचकोण पत्तियाँ बनायी जाने लगी। शख आदि के अलकृत रूपो का भी प्रयोग होने लगा। अब तक फ्रैंच कला मे इनका महत्त्व नही था। जर्मनी मे इनका बहुत अकन होता था। लताओ आदि को परस्पर उलझा कर चित्रित किया जाने लगा। इनमे बन्दरो तथा चीनी ब्याल आदि का भी समावेश हुआ। धीरे-धीरे इग्लैण्ड में भी यह शैली लोकप्रिय हो गयी। फिर भी पेरिस इसका प्रधान केन्द्र रहा।

१७२०—१७३० के मध्य इस शैली मे सम्माता का विचार छोडने का प्रयत्न किया गया। १७५४ में सम्माता का विरोध प्रधानत चाँदी आदि के पात्रो के निर्माण को ध्यान मे रखकर किया गया। १७२० के पश्चात् जर्मनी मे भी यह शैली लोकप्रिय होने लगी। कुर्सियो एवं मेजो, चिमनियो, घडियो तथा अँगीठियो के अलकरण मे भी इसी प्रकार के अभिप्राय प्रयोग मे आने लगे। इस युग मे फर्नीचर के अनेक नवीन रूप आविष्कृत हुये जिन पर लाख-चित्रण हुआ तथा स्वर्ण-रजत के पत्र चढाये गये।

१७४० तक फ्रास मे रोकोको शैली चरम-सीमा तक पहुँच चुकी थी किन्तु १७६० के पूर्व इसका विरोध बहुत कम दिखायी देता है। जैसा कि अभी कहा जा चुका है, फ्रैंच रोकोको शैली का महान् चित्रकार वात्तो था। क्लाद ओद्रां का नाम भी लिया जाचुका है। वात्तो ने उससे शिक्षा ग्रहण की थी। उस पर जिल्लोत का भी प्रभाव पडा जो इटालियन अभिनेताओ के चित्रो के हेतु प्रसिद्ध था। वात्तो के हेतु ये दोनो ही महत्वपूर्ण थे। उसने भी इनके समान फूल-पत्तियो तथा वक्र रेखाओ आदि का प्रयोग किया। उसने भी प्राचीन प्रतिमाओ की अनुकृति का बहिष्कार किया और रूबेन्सवाद तथा रग के प्रभावो को रूप से अधिक महत्वपूर्ण मानने वालो का समर्थन किया। इस समय पुसिनवादियो की हार हो रही थी। स्वय रूबेन्स भी १७०२ ई० में पुसिन की प्रतिष्ठा को फास मे ही जबरदस्त धक्का पहुँचा चुका था। वात्तो ने रूबेन्स मे प्रेरणा लेते हुये भी अपनी कला को व्यक्तिगत अध्ययन पर आधारित यथार्थवाद की दिशा मे मोडा। यद्यपि उसका कार्य बहुत स्तर का नहीं है तथापि उसके पात्र जीवन को एक नाटक की भाँति खेलते हुए प्रतीत होते हैं। उसकी आकृतियाँ गुच्छो मे सयोजित रहती हैं और वे कभी दर्शको की ओर नही देखती है। किन्तु जब वे दर्शको की ओर देखती हैं तो वास्तव मे इटालियन नाटकों की भाँत होती है।

शार्दि (Jean Baptiste Simeon Chardin १६६६—१७७६ ई०) —फ्रांस के स्थिर-जीवन और जन-जीवन के चितेरो मे शार्दि अठारहवी शती का सर्वोत्तम कलाकार था। उसका जन्म पेरिस मे हुआ था। उसकी आरम्भिक शिक्षा एक साधारण दरबारी कलाकार के द्वारा हुई थी। १७२८ ई० मे वह अकादमी का सदस्य हो गया और बीस वर्ष तक उसका कोषाध्यक्ष रहा। उसके आरम्भिक कार्य पर नीदरलैण्ड्स के तत्कालीन मध्यम आकार वाले चित्रो की शैली का प्रभाव है। उसने उन्हें फ्रैंच रुचि के अनुकूल विषयो तथा आकारो मे ढाला है। उसके स्थिर-जीवन के चित्र रसोई के बर्तनो, शाक-सब्जियो, क्रीडा के उपकरणो, फलो की टोकरी, मछली तथा अन्य ऐसी ही सरल वस्तुओ के सयोजनो के रूप मे हैं। इनकी विशेषता गाढे रग, टैक्नीक तथा रंगो के घनत्व में है तथा इन्ही के द्वारा जल की गहराई एवं कोमलता का आश्चर्यजनक प्रभाव उत्पन्न किया गया है। इन चित्रो मे केवल वस्तु-साहश्य ही नही, अपितु इससे भी कुछ अधिक विशेषता है और वह है दृष्टि की ईमानदारी तथा प्रस्तुतीकरण की सचाई। उनके द्वारा अंकित जन-जीवन के चित्र लघु आकार मे हैं जिनमे घरेलू एव परिचित छोटी-छोटी आकृतियो के माध्यम से मध्यमवर्ग के सरल पारिवारिक जीवन को चित्रित किया गया है और निम्न स्तर के जीवन के चित्रण से चित्रो मे कोई हलचल उत्पन्न करने के प्रयत्न से बचा गया है। फैशनेबुल तथा मन-मौजी समाज की विचित्रताओ के अंकन की भी चेष्टा नही की गयी है। १७७५ मे उसने दो आत्म-चित्र तथा अपनी पत्नी का एक व्यक्ति-चित्र प्रदर्शित किये। ये चित्र पेस्टल में हैं और कलाकार द्वारा इस माध्यम के विस्तार तथा विश्लेषण के उत्तम उदाहरण हैं।

शार्दि का जन्म एक मिस्त्री के यहाँ हुआ था। उसका जीवन फैशनेबुल ससार से पूर्णत अछूता रहा। जब अन्य दरबारी कलाकार अनेक प्रकार की साज-सज्जा मे लगे हुए थे और अनेक सुन्दर देव-बालाओ को रमणीक उद्यानो मे चित्रित कर रहे थे, शार्दि का ध्यान अपने पडोसियों, घरेलू जीवन तथा स्थिर जीवन की आकृतियो पर गया। उसने खेलते हुए छोटे बालकों के भी अनेक चित्र बनाये हैं। वह घर छोड़ कर केवल एक बार ही पेरिस से बाहर गया। उसके विषयो के कारण यह कहा जाता है कि उसमे कल्पना का अभाव था और उसकी दृष्टि कभी रसोईघर से आगे नही बढ़ी, किन्तु उसने वास्तव मे साधारण वस्तुओ को भी विशेष सौंदर्य प्रदान किया है। उसके पात्रो की मुद्राएँ कृत्रिम प्रतीत नही होती। लगता है कि किसी ने कैमरे से सहसा उनके चित्र उतार लिये हैं। इनमे अवसर की अनुकूलता भी है अथात् पात्रो की किसी महत्त्वपूर्ण क्रिया को ही अकित किया गया है। जैसे ताश के महल को सावधानी पूर्वक देखता बालक आदि। उसके आत्म-चित्रो मे एक सरल व्यक्ति साधारण वेश मे बैठा है। चित्र मे किसी भी प्रकार की बनावटी मुद्रा अथवा दिखावा नही है। उसका कथन था कि वह चित्र मे रंगो का प्रयोग अपनी भावनाओं के अनुसार करता है, सौंदर्य के अनुसार नही। वास्तव में वह सामान्य जन-जीवन का निष्कपट चित्रकार था। प्रमुख कृतियाँ—पाइप सहित स्थिर जीवन, एक बालक, बाजार से वापसी, चित्र बनाने की तैयारी में बालक, ताश का खिलाडी।

बूशे नामक एक अन्य कलाकार ने भी वातो को आधार मानकर अपनी कला का आरम्भ किया। मध्य-अठारहवीं शती का वह सफल कलाकार माना जाता है। उसने ओलम्पस के मेघो को पर्यंक का तकिया बना डाला। वीनस तथा डायना को यौन-प्रतीको मे परिवर्तित कर दिया। बूशे की दृष्टि मे पानी, झाग, शख, सीप एवं मत्स्य-बालाओ आदि के साथ वीनस की आकृति रोकोको पद्धति के अलंकरणो के पूर्णत उपयुक्त थी। विभिन्न वर्तुल रेखाओ, लास्यपूर्ण मुद्राओ, कोमल स्निग्ध अगो तथा हल्के नीले-गुलाबी आदि रंगो से यह आकृतिसमूह रोकोको पद्धति की आकर्षक सगति उत्पन्न करने मे पूर्ण समर्थ हुआ है। चीनी मिट्टी के खिलोनो आदि मे इसी शैली की अनुकृति हुई है। उसने आकृतियो के शरीर मे जो रंग भरा है, उसमे इन्ही खिलौनो-जैसी चमक है। बूशे के

स योजनो मे भी पर्याप्त स्वतन्त्रता है । उसकी आकृतियाँ किसी गम्भीर नियम से न बँधी रहकर उन्मुक्त रूप मे गतिशील रहती हैं तथा एक-दूसरी की ओर स केत करके स योजन की लय का निर्माण करती हैं ।

बूशे (Boucher १७०३—१७७० ई०) एक विशिष्ट रोकोको सज्जाकार था। उसने वातो के यहाँ एक उत्कीर्णक के रूप मे अपना जीवन आरम्भ किया और १७२३ ई० मे रोमन अकादमी का पुरस्कार जीता किन्तु १७२७ के पूर्व वह इटली नही गया। वहाँ उसे केवल टाइपोलो का कार्य अच्छा लगा। १७३१ ई० मे वह पुन फ्रांस लौट आया। १७३४ ई० मे वह फ्रांस की अकादमी का सदस्य बना और १७६५ ई० मे उसका डायरेक्टर हो गया। सर जोशुआ रेनाल्ड्स ने जब उसकी चित्रशाला का निरीक्षण किया तो माडेल के बिना कार्य करते देखकर रेनाल्ड्स को बडा विस्मय हुआ। बूशे ने उत्तर दिया कि अपनी युवावस्था मे वह माडेल से ही कार्य करता था किन्तु बहुत दिन हुए, उसने माडेल बिठाकर चित्र बनाना छोड दिया है। वह मदाम द पोम्पेदू (Mme de Pompadour) का मित्र था और सम्पूर्ण दरबार उसे बहुत चाहता था। फैशनेबुल तथा परिष्कृत रुचि के स रक्षको ने उससे अनेक कलाकृतियो का निर्माण कराया। वह प्राय. राजकीय उपयोग की टेपेस्ट्री तथा चीनी मिट्टी के उपकरणो के हेतु डिजाइन बनाने मे ही व्यस्त रहा।

अठारहवी शती मे व्यक्ति के व्यक्तित्व का महत्व बढ जाने से व्यक्ति-चित्रण मे अधिक यथार्थता आयी। मनोवैज्ञानिक उलझनो आदि को छोडकर चित्रकार माडेल को उसकी विश्रामपूर्ण एव प्रसन्न मनःस्थिति में प्रस्तुत करने लगे। दृश्य चित्रण मे भी इस शैली का प्रभाव पडा और कोमल वृक्षो, रुपहले फव्वारो तथा उद्यानो मे इटालियन युवक-युवतियो की क्रीडाएँ चित्रित करना ही इस युग का आदर्श दृश्याङ्कन माना गया।

इस समय जर्मनी, आस्ट्रिया तथा बोहीमिया में अनेक छोटे-छोटे शासक थे। इन्होने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कला-शैलियो को प्रश्रय दिया। यहाँ अभी तक विशाल आकार के भवनो आदि का ही निर्माण होता रहा जिनमे बरोक शैली का प्राधान्य था। वास्तव मे इन स्थानो पर बरोक शैली भी पूर्णत प्रतिष्ठित नही हो सकी थी अत यहाँ की कला का रोकोको शैली के इतिहास मे कोई महत्वपूर्ण स्थान नही हैं। फिर भी इन स्थानो मे कुछ भवनो को मूर्तियों एव चित्रो के द्वारा प्रचुरता से अलकृत करने का प्रयत्न किया गया है। फ्रेंच रोकोको चित्रकला के आधार पर यहाँ जिन आलकारिक अभिप्रायों का प्रयोग हुआ है उनमे सम्माला का प्रयोग नही हुआ है। प्राय वानस्पतिक अलकरणो की ही प्रचुरता है। यहाँ चीनी के खिलौने भी बहुत सुन्दर बनाये गये हैं।

इटली मे इस शैली का अनुकरण प्रधानत वेनिस के कलाकारो ने किया। इनमे टाइपोलो सर्वाधिक प्रसिद्ध हो गया है। नवीन शैली मे कार्य करते हुए भी उसने प्राचीन शास्त्रीय प्रतीक-विधान एव मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि को नही छोडा। उसकी कला मे फ्रेंच चित्रकारो के समान बारीकी और मसृणता नही है। विशाल स्थानो के सयोजनो में उसने अपूर्व कुशलता का परिचय दिया है।

टाइपोलो (Giovanni Battista Tiepolo १६९६—१७७० ई०) —इसे अन्तिम श्रेष्ठ वेनेशियन सज्जाकार माना जाता है। यह इटालियन रोकोको शैली का महान् चित्रकार था। इसकी गणना अठारहवी शती के उत्तम चित्रकारो मे की जाती है। इसने लैरेजिनी, रिक्की तथा पियाजेट्टा से कला की शिक्षा प्राप्त की थी। प्राचीन कलाकारो में वह वेरोनीज से प्रभावित हुआ था। १७१७ ई० मे वह कलाकार सघ मे सम्मिलित हो गया। १७१९ ई० में उसने गार्डी नामक कलाकार की बहिन से विवाह किया। इसी समय से उसकी शैली मे परिपक्वता आने लगी। १७२५ ई० में उसे उदाइन के आर्कबिशप का भवन सजाने का निमत्रण मिला। इस कार्य को वह तीन वर्ष मे पूर्ण कर पाया। इन अलकरणो मे हल्के रगो, प्रकाश तथा आकृतियो को मौलिक विधि से प्रस्तुत किया गया है। चित्र के धरातल से दूर तिरछे परिप्रेक्ष्य का भी उसने बडी कुशलता से प्रयोग किया है। इसकी रचना के पश्चात् टाइपोलो ने उत्तरी इटली का विस्तृत भ्रमण किया और स्थान-स्थान पर अनेक

राजभवन एव चर्च चित्रित किये। उसने तैल रङ्गो से तीस फ़ीट ऊँचे विशाल चित्र भी अनेक स्थानो में अंकित किये। "एण्टनी तथा क्लियोपेट्रा" इस प्रकार का अन्तिम चित्र है जो १७५० ई० मे बना था। इस समय उसने वेनिस छोडा और वुर्जबर्ग चला गया। वहाँ १७५३ तक उसने बिशप राजकुमार के हेतु चित्र बनाये। इस कार्य मे दोनो पुत्रो के अतिरिक्त अनेक छोटे-छोटे चित्रकार भी उसके सहायक थे। यह भवन जर्मन रोकोको शैली का उत्तम उदाहरण है और इसमे स्थापत्य एव चित्रकला का सुन्दर समन्वय हुआ है। टाइपोलो के सम्पूर्ण जीवन में इतनी सुन्दर कोई अन्य कलाकृति नही बन पायी। १७५५ ई० मे वह वेनिस लौटा जहाँ उसे अकादमी का प्रथम अध्यक्ष चुन लिया गया। १७६१ ई० मे मैड्रिड के राजभवन को चित्रित करने के हेतु उसे चार्ल्स तृतीय ने स्पेन बुलाया। १७६२ ई० मे वह अपने पुत्रो तथा सहायको सहित वहाँ पहुँचा और चार वर्ष मे अनेक विशाल छतो को चित्रित किया। चार्ल्स ने उसे और भी कार्य सौपा किन्तु १७६७ ई० के पश्चात् नव-शास्त्रीयता-वाद की जो लहर आरम्भ हुई उसके कारण उसकी शैली मे दोष दिखायी देने लगे। लोग आकर्षक और मनमौजी कला को बुरी समझने लगे। १७७० ई० मे मैड्रिड मे ही सहसा उसका निधन हो गया। वह पहले छोटा-सा प्ररूप बना लेता था और सरक्षक द्वारा स्वीकार कर लिये जाने पर उसे अपने सहायको को सौप देता था। यही कारण है कि वह थोडे ही समय में इतना अधिक कार्य कर सका जिसे देखकर आश्चर्य होता है। उसने कुछ व्यक्ति-चित्र भी अकित किये हैं।

चित्रकार प्राय. खिडकियो तथा दरवाजो के माध्यम से चित्रो मे प्रकाश के स्रोत दिखाते हैं किन्तु टाइपोलो ने पूजागृहो तथा राजमहलो की छतो को बादलो तथा आकाश के दृश्यो से ऐसा भर दिया मानो वहाँ छत कभी थी ही नही। इन्हीं मे उसने स्वर्ग, सन्त तथा देवदूत अंकित किये हैं। इस प्रकार के धार्मिक चित्रो मे जहाँ अन्य कलाकारो ने गम्भीरता दर्शायी है वहाँ टाइपोलो ने वैभव और समृद्धि की प्रचुरता ही चित्रित की है। यद्यपि अपने प्रशिक्षण काल मे उसने गहरे और गम्भीर रङ्गो से कार्य किया था तथापि विवाह के पश्चात् उसकी कल्पना ने मुक्त उडान भरना आरम्भ कर दिया था। उसने भवनो के ऊपरी भाग मे कुछ तो वास्तु का प्रयोग किया और शेष भागो मे चित्रण की ऐसी युक्तियाँ अपनायी कि छतो की ऊँचाई वास्तविकता से कही अधिक प्रतीत होने लगी और उनके बीच मे खुला आकाश आभासित होने लगा। उसकी प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित हैं : जफर तथा फ्लोरा की जीत, क्लिओपेट्रा का भोज, विश्वास की विजय तथा इफीजेनिया का बलिदान।

फ्रांसिस्को गार्दी (Francesco Guardı, १७१२—१७९३)—यह अपने देश इटली की विविध झाँकियो के छोटे-छोटे चित्र बनाकर पर्यटको को बेचा करता था। इसके पिता एक अच्छे चित्रकार थे। भाई जियोवान्नी भी प्रसिद्ध था। इसका बहनोई टाइपोलो प्रसिद्ध कलाकार था। गार्दी को बहुत ऊँचा कलाकार नही समझा जाता था। इसने एक पुरानी नाव पर अपनी चित्रशाला बना ली थी और उसे नहरो मे तैराता हुआ नगर-नगर भ्रमण करता रहता था। आज यद्यपि वेनिस नगर बहुत बदल गया है किन्तु गार्दी के चित्रो मे उसकी वह पुरातन भव्य झाँकी सुरक्षित है जो वहाँ के जन-जीवन की रगीनी का आज भी स्मरण कराती है।

गोया (Francısco Goya, १७४६—१८२८)—बलिष्ठ शरीर तथा धनी प्रतिभा का एक ग्रामीण किसान गोया उस समय ख्याति के शिखर पर पहुच गया जब फ्रास की क्रांति से समस्त यूरोप प्रभावित होने लगा था। वह स्वयं इस क्रांति का एक अग और चित्रकला की स्वतन्त्रता का उद्घोषक बन गया। उसमे प्रवृत्तियों की प्रबलता थी और साथ ही उन्हे तृप्त करने की क्षमता भी थी। चित्रकार के रूप मे वह केवल कला-कुशल ही नही अपितु उच्च बुद्धिवादी भी था। अपने देश की कुरीतियो, अन्ध-विश्वासो तथा विकृतियो की जडो तक उसने प्रहार किया और ८२ वर्ष की आयु मे अपनी मृत्यु के समय वह चित्रो के माध्यम से सामाजिक इतिहासकार की भूमिका निभा रहा था।

गोया का जन्म स्पेन के एक पहाड़ी गाँव मे हुआ था। यहाँ केवल एक सौ मनुष्य रहते थे। उसका बचपन अपने परिवार के साथ खेतो मे ही व्यतीत हुआ। एक बार उसे गाँव की दीवारो पर कोयले से चित्र बनाते हुए वहाँ के पादरी ने देख लिया। वह उसकी प्रतिभा को भाँप गया और उसे चित्रकला की शिक्षा प्राप्त करने के हेतु सरागोसा भेजने का प्रबन्ध कर दिया। यही से उसके उच्छृखल तथा घुमक्कड जीवन का आरम्भ होता है। लोगो से लडता-भिडता, कभी एक कला और कभी दूसरी कला का अभ्यास करता वह भाँति-भाँति का जीवन व्यतीत करता रहा। उन्नीस वर्ष की आयु मे वह कलाकार, गायक, तलवार चलाने वाला तथा दल बनाकर रहने वाला-सब कुछ बन गया था। (उसके विषय मे अनेक प्रकार की कहानियाँ प्रचलित है। उसके मरने के समय इन कहानियो ने महाकाव्य के समान व्यापकता प्राप्त करली। आज इनमे से सच और झूँठ को पृथक् करना कठिन है किन्तु इतना अवश्य है कि उसके विषय मे जो कुछ भी कहा जाता है, वह उस सबको कर दिखाने मे समर्थ था)।

इसी समय एक हत्या मे अपराधी होने के कारण उसे मैड्रिड भागना पड़ा। वहाँ कुछ समय तक वह साँडो से लड़ने वालो के साथ रहा और शौकिया रूप मे साँडो से लडता भी रहा। वहाँ वह बायू (Bayeu) नामक कलाकार के सम्पर्क मे भी आया। १७७१ मे उसे रोम भागना पडा जहाँ उसने व्यक्ति-चित्रकार के रूप मे कार्य किया। इटली की कला को वह श्रद्धा से नही देखता था किन्तु वहाँ के जुए, मगलामुखियो तथा भूमिगत जीवन आदि के आकर्षण मे वह फँस गया। उसके चरित्र और कार्यों के विषय मे वहाँ अनेक किंवदन्तियो का आरम्भ हो गया। रोम से वह पुनः सरागोसा लौटा, जहाँ उसे कैथेड्रल को चित्रित करने का कार्य सौंपा गया। १७७५ मे वह मैड्रिड लौटा और बायू की बहन से विवाह किया। उसकी पत्नी घर मे रही आयी किन्तु वह जिप्सियो, नर्तकियो तथा साँडों से लडने वालो के मध्य घूमता रहा। इसी समय से उसने राजकीय प्रयोग के हेतु टैपेस्ट्री के प्ररूप बनाना आरम्भ कर दिया। चार्ल्स चतुर्थ के सिंहासनासीन होते ही उसे राजकीय चित्रकार बना दिया गया। १७८५ से १७९९ तक बढते-बढते वह सम्राट का प्रधान चित्रकार हो गया। १७९२ मे वह कुछ बहरा हो गया था अतः इसके पश्चात् उसने जो चित्र बनाये उनमे उसकी एकाग्रता, कल्पनाशीलता, सूक्ष्म-निरीक्षण-शक्ति आदि के विशेष दर्शन होते हैं। नये-नये रूपो के आविष्कार की तो कोई सीमा ही नही रही। १७९६-९८ के मध्य उसने "लॉस केप्रीकोस" नामक चित्र-शृ खला का सृजन किया जिसमे फैशन, शासन तथा चर्च पर तीखा व्यग किया गया था। इस पर धर्माधिकारी बहुत रुष्ट हुए और सम्राट के हस्तक्षेप से ही उसकी जान बच सकी। इससे कृतज्ञ होकर गोया ने मैड्रिड के निकट एक चर्च की दीवारो पर मानवाकार से भी बडी एक सौ आकृतियो का चित्रण केवल तीन महीने मे ही पूर्ण कर दिया। ये चित्र एक नवीन टेक्नीक द्वारा अङ्कित होने के कारण बडे आश्चर्यजनक हैं। इनके अङ्कन मे स्पज को रङ्ग में भिगोकर दीवार पर पोता गया है और अनावश्यक रङ्ग को दीवार पर से पोंछ दिया गया है। सभी चित्र इसी प्रकार बनाये गये हैं।

दरबारी चित्रकार के रूप मे गोया ने राजपरिवार एव सभासदो के अनेक चित्र बनाये। स्पेन के अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियो के चित्र भी वह व्यक्तिगत रूप से बनाता रहा। अल्बा की रानी (The Duchess of Alba) से उसका प्रथम परिचय १७७६ मे हुआ था, और यह परिचय निरन्तर प्रगाढ होता गया। वह उसकी चित्रशाला मे प्रायः अकेली आया करती। गोया ने उसे माडेल बनाकर दो चित्र अङ्कित किये हैं- एक में वह वस्त्र पहने है तथा दूसरे मे अनावृत है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक चित्रो मे भी गोया ने उसकी मुखाकृति का प्रयोग किया है।

१८०८ ई० मे नेपोलियन ने स्पेन को जीत लिया। यद्यपि गोया ने नवीन शासकों का स्वागत किया किन्तु वह फ्रेंच सिपाहियो के कार्यों से घृणा करता था। उसने इनके क्रूर एवं पाशविक कृत्यो के आधार पर "युद्ध की विभीषिकाएँ" शीर्षक से एक चित्रावली की १८१०-१३ के मध्य रचना की। इस समय गोया अपने नये फ्रेंच शासको के अधीन भी काम करता रहा। १८१४ ई० मे स्पेन पुनः स्वतन्त्र हुआ और गोया का विदेशियो के हेतु काम

करने का अपराध क्षमा कर दिया गया। १८२४ तक गोया ने स्पेनिश दरबार की सेवा की किन्तु उसका विरोध होने लगा और वह पेरिस चला गया।

१८१६ ई० से गोया ने लियोग्राफी का कार्य आरम्भ कर दिया और वह साँड़-युद्ध के छोटे-छोटे चित्र छापने लगा। १८२१ मे वह मैड्रिड के निकट एक छोटे-से घर मे रहने लगा। अब वह बहुत अशक्त तथा पूर्ण बहरा हो गया था। वही कार्य करते-करते किंचित् अन्धेपन की दशा मे उसकी मृत्यु हो गयी। जीवन के अन्तिम दिनो मे वह भयकर तथा विचित्र जीव-जन्तुओ की आकृतियो द्वारा पतित मानव-जाति का चित्रण करने लगा था। दैत्याकार पक्षी, स्वर्ण-राशि से घिरा हुआ मूर्ख, मकबरे मे से उठता हुआ शव जो भूमि पर "कुछ नही" लिख रहा है—इसी प्रकार की कुछ आकृतियाँ है जिनका उसने इस अवस्था मे चित्रण किया था।

गोया की आरम्भिक शैली पर टाइपोलो का प्रभाव है। उसके व्यक्ति-चित्र अठारवी शती की ब्रिटिश कला एवं मेग्ज से प्रेरित है। उसने वेलास्के का गम्भीर अध्ययन किया था जो उसके पूर्व दरबारी चित्रकार रह चुका था। इन सबके साथ-साथ उसने अपने युग की संघर्षपूर्ण स्थिति से भी प्रेरणा ली थी जिसमे व्यक्ति-स्वातन्त्र्य उभर रहा था। उसने रोकोको शैली की सौंदर्यमयी आकृतियो के आधार पर अपनी कला का आरम्भ किया था किन्तु अपने विशेष टेक्नीक के द्वारा वह उसमे मौलिकता उत्पन्न कर सका। उसकी शैली ने प्रभाववादी कलाकारो को बहुत प्रभावित किया है। गोया ने युद्ध का बड़ा ही वीभत्स अकन किया है। वह युद्ध को मानव-सभ्यता का विनाशक मानता था। उसके चित्रो मे फिनिश का अभाव है जो आधुनिक कला की एक प्रमुख विशेषता है। आधुनिक चित्रो मे तूलिका-आघात स्पष्ट रहते है जिनसे कि दर्शक उनके सहारे चित्र-रचना की विधि तथा कलाकार की मनः स्थिति का अनुमान लगा सके। गोया प्राचीन कला का अंतिम और आधुनिक कला का प्रथम महान् आचार्य कहा जाता है। (फलक १४-क)

रोकोको शैली के पश्चात् यूरोपीय कला-आन्दोलन में बहुत विविधता आ गयी। कुछ कलाकार प्राचीन कला की ओर उन्मुख हुए, कुछ प्रकृति की ओर। कुछ कलाकारो ने दृश्यात्मक यथार्थवाद पर बल दिया तो दूसरे कलाकारो ने सामाजिक यथार्थवाद को अधिक महत्वपूर्ण माना। व्यक्तिगत स्वातत्र्य का उदय होने से कलाकार मन की आकुलता को भी व्यक्त करने लगे। धीरे-धीरे ये प्रवृत्तियाँ आधुनिक कला की पृष्ठभूमि बनाने की ओर अग्रसर हुईं। आधुनिक कला के प्रथम महत्वपूर्ण आन्दोलन प्रभाववाद के पूर्व कला की जो स्थिति थी उसका संक्षिप्त निदर्शन ही अगले पृष्ठो मे प्रस्तुत किया जा रहा है।

बरोक युग के पश्चात्

उन्नीसवीं शती की कला मे चार प्रमुख धाराएँ दिखायी देती हैं (१) नव-शास्त्रीयतावाद, (२) स्वच्छन्दतावाद, (३) यथार्थवाद और (४) प्रभाववाद। इनके प्रवर्त्तन के पीछे एक-दूसरी धारा की प्रतिक्रिया रही है। इनकी प्रवृत्ति औपन्यासिक कल्पना के स्थान पर प्रकृति की प्रेरणा, बौद्धिक स्थापनाओ के बजाय सवेदनो के अकन और आदर्श के स्थान पर तथ्यानुसन्धान की ओर रही है। प्रभाववाद का आधुनिक कला से अविच्छिन्न सम्बन्ध है अत. प्रस्तुत प्रसग मे उन्नीसवी शती की शेष तीन धाराओ—नव-शास्त्रीयतावाद, स्वच्छन्दतावाद तथा यथार्थवाद का ही विशेष विवेचन किया जायगा। प्राक्-राफेलवाद भी इसी काल-परिधि मे आ जाता है अतः उसका भी सक्षिप्त दिग्दर्शन किया जायगा।

नव-शास्त्रीयतावाद

(Neo-Classicism) १७१५ ई० से आरम्भ—

अठारहवीं शती मे बरोक एव रोकोको कला-शैलियो का विरोध आरम्भ हुआ। उनके स्थान पर नव-शास्त्रीयतावाद इग्लैड, फ्रास तथा रोम में उत्पन्न होकर समस्त यूरोप मे फैल गया। इस नये आन्दोलन मे जहाँ बरोक एव रोकोको शैलियो का विरोध था वहाँ प्राचीन यूनान तथा रोम की सस्कृति से सीधा सम्पर्क बनाने की इच्छा भी थी। इसने मध्यकालीन गोथिक तथा पुनरुत्थानकालीन इटली के शास्त्रीयतावादी कला-रूपो का बहिष्कार किया। इस प्रकार यूनान तथा रोम के प्राचीन आचार्यो द्वारा कला के जो प्रथम सिद्धान्त स्थिर किये गये थे, यह आन्दोलन उन्ही की ओर उन्मुख हुआ। इसने यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि आधुनिक कला एक परम्परा के निरन्तर विकास के कारण अस्तित्व मे नहीं आयी है अपितु वर्तमान युग और सुदूर अतीत के सीधे सम्पर्क से ही विकसित हुई है। १७४८ ई० मे हरक्यूलेनियम तथा पोम्पिआई आदि नगरो की खोज के कारण इस आन्दोलन को और भी प्रेरणा मिली। इस आन्दोलन का प्रमुख प्रणेता विकलमैन था।

यह आन्दोलन सिद्धान्तवादी ही अधिक रहा और इसके प्रवर्तक कला-कृतियो मे अपनी इच्छाओ को पूर्ण रूप से नही उतार सके। चित्रकला की स्थिति अन्य कलाओ से दयनीय ही रही। कभी-कभी अपने समकालीन स्व-च्छन्दतावादी (Romantic) आन्दोलन से इसकी कृतियां घुल-मिल जाती थी और अन्त मे उसी मे यह विलीन भी हो गया, फिर भी इस आन्दोलन की प्रवृत्ति अनुसन्धान तथा विश्लेषण के द्वारा कला के आधार-भूत सिद्धान्तो की स्थापना की ओर रही।

इगलैण्ड में सर्वप्रथम इस प्रकार की प्रवृत्ति १७१५ ई० के लगभग भवन निर्माण कला मे उत्पन्न हुई। इसे पैल्लेडियनिज्म (Palladianism) कहा जाता है। कहीं-कहीं मूर्तिकला मे भी इसका प्रभाव पड़ा। इस प्रकार के भवन का प्ररूप कल्पित करने वाला प्रथम कलाकार कोलिन कैम्पबेल था। शीघ्र ही अन्य वास्तुशिल्पियो ने उसकी अनुकृति आरम्भ कर दी और अगले चालीस वर्ष तक ब्रिटेन की भवन कला इससे प्रभावित होती रही। इस शैली की विशेषताएँ स्पष्टता, समग्रता और सयम मे निहित थी तथा तीखे कोणो वाली सरल रेखाओ से निर्मित आकृतियों, अलंकरण-विहीन स्तम्भो आदि का इसमे प्रयोग किया गया था।

यद्यपि फ्रांस मे भी इस प्रकार के विचार १७०६ ई० में ही व्यक्त किये जा चुके थे किन्तु कलाकृतियों मे नये आन्दोलन का प्रभाव बहुत देर से दिखायी दिया। प्राय १७५० ई० के पूर्व फ्रैंच भवनों मे शास्त्रीयता की प्रवृत्ति नहीं आ पायी थी। रोम में भी १७३० ई० के आसपास के भवन प्राचीन यूनानी रोमन-कला के अनुकरण पर बनने आरम्भ हुए। इस प्रकार १७५० ई० के लगभग ही इगलैण्ड, फ्रास तथा रोम में (कहीं-कहीं अन्य स्थानो पर

भी) बरोक कला के प्रति विरोध स्पष्ट रूप में सामने आ गया था। लोग उसे अर्थहीन, संयमहीन तथा केवल प्रदर्शन की वस्तु समझने लगे थे। रोकोको कला को भी वे एक पतित शैली मानने लगे थे। इन शैलियो का स्थान लेने वाली नई शैली गम्भीर और बुद्धिसगत शास्त्रीयता पर आधारित थी।

इन परिवर्तनो का प्रधान लक्ष्य वास्तु कला थी। मूर्तिकला कुछ कम और चित्रकला उससे भी कम प्रभावित हुई। चित्रकार इस विषय मे पर्याप्त स्वतन्त्र थे। यहा तक कि इसका प्रमुख चितेरा जाक लुई डेविड जितना प्राचीन कला का उपकार मानता था उतना ही पुसिन के प्रति कृतज्ञ था। इससे स्पष्ट है कि चित्रकला मे विशुद्ध नव-शास्त्रीय शैली की स्थापना का कार्य कितना कठिन था।

जिस समय प्राचीन कला के भग्नावशेष निरन्तर उत्खनन द्वारा प्राप्त हो रहे थे, पिरानेसी नामक उत्कीर्णक उनके आधार पर नाटकीय सयोजनो मे चित्रांकन कर रहा था। भवनो के नीचे छोटे-छोटे मनुष्य अंकित कर वह भवनो के आकार को बहुत अधिक बढाने की चेष्टा कर रहा था। उसकी कला बहुत लोकप्रिय हुई। इससे लोगो में रोमन सस्कृति के प्रति सद्भावना बहुत बढ़ गयी। पिरानेसी के चित्र जहाँ अपनी आकृतियो के कारण शास्त्रीय थे वहाँ सयोजन-पद्धति और भावात्मकता की दृष्टि से रोमाण्टिक भी थे। इन चित्रो मे पर्याप्त प्रभावशालिता है। खुदाई मे प्राप्त पात्रो के अभिप्रायो का भी प्रयोग इस युग की कला मे होने लगा। कलाकार तथा कला-समीक्षक रोम की यात्रा करने लगे। इंगलैण्ड से रिचर्ड विल्सन, जोशुआ रेनॉल्ड्स तथा हैमिल्टन रोमन सस्कृति के भग्नावशेषो के दर्शनो को आये। यद्यपि ये सभी कलाकार अन्य कलाकारो से प्रेरणा लेते रहे तथापि इस यात्रा से इनकी कला मे एक प्रकार की परिष्कृति आ गयी। मुखाकृतियो, मुद्राओ तथा भाव-व्यजना में शास्त्रीय नियमों का विचार होने लगा।

१७६० ई० के उपरान्त चित्रकला मे शास्त्रीयता का प्रभाव व्यापक रूप मे आया। आकृतियो की क्रिया तथा अभिव्यजना में महानता, गम्भीरता, सादगी और सयम का समावेश हुआ। रूप की मसृणता और सीमारेखा की स्पष्टता को चित्रकला का आदर्श मान लिया गया। इसमे अनजाने रोकोको ऐन्द्रियता भी मिल गई। फलतः विंकलमैन द्वारा स्थापित सिद्धान्तो के आधार पर जर्मन चित्रकार मैंग्स ने जो चित्र अंकित किये उनमें प्राचीनता के बजाय राफेल का ही अधिक प्रभाव है। हेमिल्टन आदि अंग्रेज चित्रकारो ने भी इसी शैली मे चित्रण किया। इस शैली का पूर्ण विकास फ्रेंच चित्रकार डेविड द्वारा किया गया।

डेविड (Jacques Louis David) १७४८-१८२५.—नेपोलियन के शासनकाल में फ्रेंच चित्रकला में क्रान्ति लाने वाला महत्वपूर्ण चित्रकार डेविड ही था। उसके चित्रो मे सामाजिक तथा राजनीतिक क्रान्ति के दर्शन होते हैं। वह बूशे का सम्बन्धी था जिसने १७६५ में उसकी कला की शिक्षा का भार विएन को सौंपा था। १७७४ मे उसने रोमन अकादमी का पुरस्कार जीता और १७८१ तक वह रोम मे रहा। उसने बूशे की शैली के स्थान पर नव-शास्त्रीयतावादी शैली का प्रचार किया और उसमें कैरेवैज्जियो के समान तीव्र छाया-प्रकाश का प्रयोग किया। १७८२ में वह अकादमी का सदस्य हो गया और १७८५ में रोम में उसने "होराथी की शपथ" का चित्रण किया। इस चित्र में रगो के स्थान पर आकृति-चित्रण को प्रमुखता दी गयी है और सरलता, सयम एव अनुपातो का ध्यान रखा गया है। इस शैली की यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण फ्रेंच कलाकृति है। फ्रास की जन-क्रान्ति के समय डेविड ने लुई सोलहवें के मृत्यु-दण्ड के पक्ष मे मत दिया था। इससे स्पष्ट है कि वह प्रजातन्त्र का पक्षपाती था। उसने क्रान्ति में हुए शहीदों के व्यक्तिचित्र भी अंकित किये। रोवेस पियरे के पतन के साथ-साथ डेविड भी पकड़ा गया और जेल भेज दिया गया। उसकी पत्नी, जिसे वह कभी तलाक दे चुका था, तथा शिष्यो के प्रयत्नो से वह वहाँ से छूटा और पत्नी के साथ पुनः रहने लगा। १७९८ मे नेपोलियन से उसकी भेंट हुई और वह उसका भक्त हो गया। नेपोलियन ने भी उसकी खूब प्रशसा की तथा उसे अपने प्रचार का साधन बनाया। उसने आल्प्स पार करते

हुए नेपोलियन का एक भव्य चित्र बनाया और "सिंहासनारोहण" नामक चित्र में १८०५ से १८०७ ई० तक परिश्रम किया। इस चित्र में कोई एक-सौ प्रसिद्ध आकृतियाँ हैं। वाटरलू के युद्ध में नेपोलियन की हार हुई। डेविड स्विट्जरलैण्ड भाग गया। वहाँ से वह ब्रूसेल्स आया और वहीं उसकी मृत्यु हुई।

डेविड की शैली में अनेक विरोधी स्रोतों का समन्वय हुआ है। युवावस्था में वह ग्रीक-रोमन शास्त्रीयता का पक्षपाती रहा, नेपोलियन के चित्रों में वह वेनिस की रंग-योजनाओं तथा प्रकाश का प्रयोग करने लगा। अन्त में वह पुन प्राचीन शास्त्रीय शैली की ओर आकर्षित हुआ। उसमें वेनिस की कला का प्रभाव अन्त तक दिखाई देता है। व्यक्ति-चित्रों मे वह यथार्थवादी रहा है। उसके ऐतिहासिक विषयो के चित्रों मे प्रगतिशील एवं मधुर शैली के दर्शन होते हैं। सम्भवत उस पर स्वच्छन्दतावाद का प्रभाव पड़ने लगा था। वह एक महान् कला-शिक्षक था। जेरार्ड, गिरोदेट, ग्रास, तथा आग्र उसके प्रमुख शिष्य हुए।

डेविड की शैली की निम्न विशेषताएँ प्रमुख हैं —

१—नाटकीय दृश्य योजना का स्थान सम्मुख मुद्राओं ने ले लिया है।

२—चित्र सयोजनों में उसने सबल कर्णों का ही अधिक प्रयोग किया है।

३—शास्त्रीयता के अतिरिक्त वेनिस की कला एवं स्वच्छन्दतावाद का प्रभाव होने से वह सन्तुलन का पूरी तरह पालन नहीं कर पाया है।

४—घटनाओं को प्रस्तुत करने में वह नाटक के सूत्रधार की भाँति वर्णनात्मक विधि से काम लेता है अर्थात् स्वयं आकृतियों के भावों में उलझता नहीं।

५—यद्यपि उसकी शैली पुरुषोचित है और उसमे स्त्री सुलभ कोमलता एवं भावुकता नहीं है तथापि समय के साथ-साथ उसमे परिवर्तन होता गया है।

६—उसने केवल ऐसे ही विषयों का अकन किया है जिनका प्रत्यक्ष जीवन मे अनुभव किया जा सके। अलौकिक तथा अतीन्द्रिय से वह दूर रहा है।

७—उसके दृश्य-चित्रण में खुले वातावरण को प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति है जो १८५० ई० के पश्चात् बहुत विकसित हुई।

डेविड ने यूनान तथा रोम के वस्त्रों तथा सेटिंग को पुनः ग्रहण किया जैसा कि मेण्टेग्ना ने अपने युग मे किया था। उसने कहा कि 'रग की अपेक्षा रेखा तथा घनत्व का महत्व है, सवेदन से विचार श्रेष्ठ है'। चित्र को एक प्रकार का रिलीफ समझा गया जिसमे रगो के द्वारा मूर्ति जैसा उभार लाने की चेष्टा हुई।

नव-शास्त्रीयतावादी शैली का दूसरा प्रमुख कलाकार आंग्र (Jean Auguste Dominique Ingres १७८०–१८६७) था। उसने डेविड की शैली में स्वच्छन्दतावाद का समन्वय किया। दक्षिणी फ्रास मे आग्र ने जिसे शास्त्रीयता कहा उसे अन्य स्थानों पर स्वीकार नहीं किया गया। इटली मे प्राचीन परम्पराओ के प्रति अभिरुचि होने के कारण वहाँ उसका प्रभाव अवश्य पड़ा।

आग्र के पिता एक छोटे से कलाकार थे और बालक की प्रतिभा को देखकर पहले उसे उन्होंने तुलूज की अकादमी मे एव तत्पश्चात् १७९७ ई० मे पेरिस में डेविड के पास शिक्षा ग्रहण करने को भेज दिया। १८०१ ई० मे उसने रोमन अकादमी का पुरस्कार जीता। १८०६ ई० तक वह व्यक्ति-चित्रण से अपनी आजीविका चलाता रहा। इसके पश्चात् वह इटली मे अपने भाग्य की परीक्षा करने चला गया। १८०५ ई० मे उसने रिवेरे परिवार के जो व्यक्ति-चित्र अंकित किये, उनकी मधुर रेखाएँ आकृति की सीमाओं की अच्छी व्याख्या करती हैं। आगे उसने इसी शैली का विकास किया। किन्तु वह आकृति मे परिवर्तन नहीं कर सका। रोम से उसने जो चित्र फ्रास भेजे उनकी तीव्र आलोचना हुई। नैपोलियन के पतन के उपरान्त रोम मे ही यात्रियो के रेखा-चित्र बना-बना कर

उसे गुजारा करना पड़ा। १८२० मे वह फ्लोरेन्स पहुँचा और वहाँ "लुई तेरहवें की प्रतिज्ञा" नामक एक चित्र बनाया। जब १८२४ ई० मे इसका प्रदर्शन हुआ तो इसकी बहुत प्रशसा हुई। इससे वह प्रमुख चित्रकारो की श्रेणी मे गिना जाने लगा और देलाक्रा द्वारा प्रचारित स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का प्रमुख विरोधी बन गया। आजीविका के हेतु वह व्यक्ति-चित्रण करता था किन्तु कविताओ तथा शृङ्गार-पूर्ण कथानको के चित्रण के बहाने वह मादक अनावृत सुन्दरियो का अकन किया करता था (फलक १४-ख)। भित्ति-चित्रण मे वह असफल रहा था और उसका "स्वर्ण युग" नामक प्रसिद्ध भित्ति-चित्र नष्ट हो चुका है। उसके हेतु बनाये गये रेखा-चित्र एवं प्ररूप ही अवशिष्ट हैं। १८३४ ई० में वह फ्रेंच अकादमी की रोमन शाखा का डाइरेक्टर बनकर रोम आया। १८४१ ई० मे पेरिस लौटकर उसने अपनी स्थिति और ख्याति का पूर्ण लाभ उठाया तथा देलाक्रा एव अन्य कलाकारो को खूब लताडा। रेखा के सम्बन्ध मे उसका दृष्टि-कोण अन्त तक एक जैसा बना रहा। वह राफेल का भी भक्त था। १८६२ मे वह सीनेटर हो गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी शैली का वास्तविक अनुकरण एदगा देगा (Edgar Degas) ने ही किया।

आग्र के व्यक्ति-चित्रो मे से व्यक्ति के चरित्र-चित्रण का तत्व निकल गया है जिसके कारण वे स्थिर-जीवन के चित्रो की भाँति भावहीन हो गये हैं। यद्यपि आग्र मे रगो के बलो का सूक्ष्म निरीक्षण एव वर्ण-वैभव भी है और उसकी अनावृताएँ राफेल से प्रेरित भी हैं तथापि आग्र के चित्रो मे जो काल्पनिक लय एव रेखा की सरलता है वह राफेल मे नही है। देगा को छोडकर कोई भी आधुनिक कलाकार रेखा के द्वारा आन्तरिक और बाह्य को इतनी कुशलता से प्रस्तुत नही कर पाया है। अनावृताओ के ये चित्र यूनानी प्रतिमाओ एवम् पात्र-कला से भी प्रभावित हैं।

आग्र ने अमूर्त-कला मे भी कुछ प्रयोग किये हैं। बीसवी शती मे अमूर्त-कला का अर्थ है : वस्तु जगत के रूपो से साम्य न रखने वाली आकृतियो की कला, किन्तु उन्नीसवी शती मे इसका अर्थ था . रेखाओ, आकृतियो एव रंग के बलो का स्वतन्त्र लय मे परिवर्तन। इसी के कारण आग्र की मानवाकृतियो मे शरीर-शास्त्र के नियमो की कठोरता नही है। उसने दृश्य-चित्रण भी किया है। यद्यपि ये चित्र अपने समय की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं पर उस समय तक दृश्य-चित्रण के पर्याप्त नियम नही बन पाये थे। आज इनमे अनेक कमियाँ दिखायी देती हैं।

स्वच्छन्दतावाद (Romanticism)—१७५० ई० से आरम्भ

यूनानी कला के अन्वेषण तथा रोकोको के विरोध में नव-शास्त्रीयता की जो प्रवृत्ति यूरोप मे उत्पन्न हुई थी उसे एक अन्य बलवती भावना ने दबा लिया। यह प्रवृत्ति स्वच्छन्दतावाद कही जाती है। इसके उदय होने का कारण यह था कि कलाकारो को प्राचीन मूर्तिकला का आदर्श दिया जा रहा था जबकि वे चित्रकला के माध्यम से अपनी भावनाएँ प्रकट करना चाहते थे। उन्हे आदर्शवादी सौन्दर्यशास्त्र का पाठ पढाया जा रहा था जबकि वे मध्य युग मे रुचि ले रहे थे। उन्हें अपनी प्रत्येक वस्तु को शास्त्रीय ढग पर ढालने को कहा जा रहा था। इसकी प्रतिक्रिया में जो सबसे पहली पीढी सामने आई उसने कला के द्वारा अपने स्वप्न साकार करने की चेष्टा की। अनेक देशों में इस भावना के अनुरूप शैलियाँ विकसित करने का प्रयत्न हुआ किन्तु वेनिस इसमे विशेष सफल हुआ। यहाँ के कलाकारों ने रगो के भावात्मक पहलू, रूबेन्स की कला तथा डेविड के रिलीफ चित्र के सिद्धान्तो के समन्वय से इस शैली का विकास किया। स्वय डेविड की चित्रशाला मे इसका प्रयोगकर्ता ग्रॉस (Gros) था। जेरीकाल्त तथा देलाक्रा (Gericault and Delacroix) ने ग्रॉस की शैली मे ब्रिटिश दृश्य-चित्रण के स्वच्छन्दतावादी तत्व को भी जोड दिया। जेरीकाल्त की कला मे मूर्तिकला का भी प्रभाव है। देलाक्रा पर टिण्टोरेट्टो, वेरोनीज तथा रूबेन्स के सगीत तत्व एवम् रिक्तस्थान के संयोजन के सिद्धान्तो का प्रभाव है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद की धारा बडे वेग से बहने लगी। यथार्थवाद के कारण मध्यवर्ग की नकल के प्रति होने वाली प्रबल प्रतिक्रिया का भी इसे सहयोग मिला। धीरे-धीरे स्वच्छन्दतावादी विषयों को भी लोक-प्रियता प्राप्त होने लगी।

स्वच्छन्दतावाद की जड़ें तत्कालीन बौद्धिक जागृति मे निहिति हैं। धार्मिक तथा अन्य परम्पराओं को पूर्णत: त्याग कर लोग विशुद्ध तर्क के आधार पर सोचने लगे थे। परिणाम-स्वरूप शास्त्रीयता आदि का इस समय कोई महत्व न रहा। पिरानेसी नामक इटालियन चित्रकार, गोया तथा ब्रिटिश दृश्य-वास्तु (Landscape architecture) मे इसके आरम्भिक सूत्र देखे जा सकते हैं। कलाकार अत्र चित्रोपम, अपरिचित एव विदेशी कला-प्रभावो के साथ-साथ प्रकृति की अनियमितता से आकर्षित होने लगे। इस आन्दोलन का चरम स्वरूप फ्रैंच चित्रकार देलाक्रा की कृतियो मे उपलब्ध होता है जिसे उपर्युक्त परिस्थितियो के साथ-साथ १८३० ई० की फ्रैंच क्रान्ति से भी प्रेरणा मिली थी।

स्वच्छन्दतावाद की रहस्यात्मक प्रवृत्ति मे से दो कला-धाराएँ विकसित हुई एक प्रकृत्याश्रित, जिसका विकास कान्स्टेबिल की कला मे हुआ और दूसरी दिव्य-दृष्टि-आश्रित, जिसे टर्नर के चित्रो की विचित्र दृश्य-योजनाओ मे अभिव्यक्ति मिली है। इस दूसरी धारा में प्रकृति के आश्चर्यप्रद, विशाल और रौद्र रूपो पर आधारित उदात्त तत्व का अकन हुआ है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद एक सश्लिष्ट आन्दोलन था और यद्यपि विभिन्न यूरोपीय देशो मे इसका कुछ स्थानीय स्वरूप मे विकास हुआ फिर भी रहस्यवादी प्रवृत्ति सभी स्थानो पर समान रूप से लक्षित होती है। कलाकार प्रकृति से अपना कुछ सम्बन्ध अनुभव करता है पर वह उसे स्पष्ट समझ नही सका है। प्रकृति को वह सप्राण समझकर उससे वार्तालाप करता है। इससे कलाओ मे व्यक्तिवाद की भी प्रतिष्ठा हुई है। शास्त्रीयतावाद के सर्व-स्वीकृत सिद्धान्तो से यहाँ आकर स्वच्छन्दतावादी कलाकार का विरोध आरम्भ हो जाता है। कलाकार अपने सवेदनो, अनुभूतियो, कल्पनाओ आदि को प्रमुख महत्व देता है और परम्परा से भिन्न एव रहस्यात्मक पद्धति से उसकी अभिव्यक्ति करता है। फोटोग्राफी के प्रचलन से विस्तृत दृश्यो, परिप्रेक्ष्य एवम् भ्रम उत्पन्न करने का फैशन बढा। स्वच्छन्दतावादी कला मे भी इस तत्व के दर्शन होते हैं। आधुनिक अतियथार्थवाद के पीछे इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

जेरीकॉल्त (१७९१—१८२४ ई०) इसे फ्रैंच स्वच्छन्दतावाद का अग्रदूत भी कहा जाता है। इसकी आरम्भिक शिक्षा कार्लें वर्नेट तथा गेरिन के द्वारा हुई थी। गेरिन की चित्रशाला मे देलाक्रा भी कार्य सीखता था। जेरीकाल्त पर ग्रास का बहुत प्रभाव पडा, विशेष रूप से अश्व-चित्रो तथा समकालीन विषयो के चयन मे। उस पर राफेल तथा माइकेल एंजिलो का भी प्रभाव है। टेक्नीक की दृष्टि से भी उसने कुछ नवीन प्रयोग किये। उसने विस्तृत विवरण युक्त प्रारूपों की रचना नहीं की और न ही वर्ग खीचकर चित्राकन किया। वह माडेल बिठा कर रगीन स्केच बना लेता था और उसी के आधार पर चित्रांकन करता था। राजनीतिक दृष्टि से वह सदैव अस्थिर विचारो वाला रहा। १८१९ मे उसने 'मेडूसा का भग्न जलपोत' नामक चित्र बनाया जिसमे एक जलपोत का टुकडा पानी पर वह रहा है और असहाय यात्री भयाक्रान्त हैं। १८१६ ई० मे उसने इटली की यात्रा की थी और १८२०—२२ ई० मे इग्लैंड की। इग्लैंड मे उसका यह चित्र एक चलती-फिरती प्रदर्शनी मे दिखाया गया। लन्दन की गलियो के उसने अनेक दृश्य-चित्र बनाये जिनमे लोगो की दीन-हीन दशा का मार्मिक चित्रण हुआ है। उसने तीन बडे चित्र और कुछ व्यक्ति-चित्र एव घोड़ों के चित्र भी प्रदर्शित किये तथापि उसका प्रभाव स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन पर व्यापक रूप से पड़ा। विशेष रूप से देलाक्रा उससे बहुत प्रभावित हुआ। मेडूसा के चित्र ने आगे चलकर यथार्थवाद के प्रसार में सहायता दी। इसकी रचना मे उसने दुर्घटना में बचे हुए यात्रियो, रोगियो, लाशो आदि का प्रत्यक्ष अध्ययन किया था और उस स्थान की भी यात्रा की थी जहाँ इस जलयान की दुर्घटना हुई थी। अब तक कलाकार प्राय प्लास्टर की मूर्तियों से ही शरीर-रचना का अध्ययन किया करते थे अत इस चित्र से कला-जगत मे खलबली मच गई थी।

देलाक्रा (१७९८—१८६३ ई०)—यह फ्रास मे स्वच्छदतावादी आन्दोलन का प्रमुख चित्रकार था। इसकी

कलो पेर जेरीकाल्त को प्रभाव पडा था। आरम्भ मे यह गेरिन का शिष्य था जहाँ जेरीकाल्त भी शिक्षा प्राप्त करता था। जेरीकाल्त के प्रभाव से वह इगलिश चित्रकला की ओर आकर्षित हुआ। उसने अश्व-चित्र भी अकित किये और आकृतियो को कठोर शास्त्रीय नियमो से बचाया। वह ग्रॉस का प्रशसक था और उसने रूबेन्स तथा वैरोनीज का अध्ययन किया था। रूबेन्स के पीले तथा लाल रगो के मूल्य का उस पर बहुत प्रभाव पडा। उसने कान्स्टेंबिल की भी प्रशसा की है। १८२५ ई० मे वह इग्लैण्ड गया और इगलिश दृश्य-कला के रगो की ताजगी तथा आकर्षण को उसने बहुत सराहा।

१८२२ मे उसने दान्ते तथा वर्जिल का जो चित्र बनाया उसका पेरिस मे अच्छा स्वागत हुआ, किन्तु १८२४ तथा १८२६ मे अंकित उसके चित्रो की कटु आलोचना हुई। लोगो को उसके चमकदार रग, समकालीन तथा विदेशी विषय एव रगो का उन्मुक्त निर्वाह आदि गुण पसन्द नही आये। इनमे परम्परागत फ्रेंच शास्त्रीयता की अवहेलना की गई थी। १८३२ मे वह उत्तरी अफ्रीका गया। इससे उसे एक बिल्कुल नवीन ससार के चित्रण का अवसर मिला, जैसे अरब तथा यहूदी जीवन, स्थानीय पशु, आदि। बायरन की कविता, तुर्को के विरुद्ध यूनानियो के युद्धो के दृश्य आदि का भी उसने चित्रण किया। १८३५ के लगभग से उस पर अधिकारियो की कृपा-दृष्टि रहने लगी और उसने उन विशाल चित्रो को पूर्ण किया जिनकी रचना मे आग्र असफल रहा था। उसकी प्रमुख कृतियाँ 'ट्राजन का न्याय', लूव्र मे अपोलो के सेलून की छत, सहायक अधिकारियो के चैम्बर, सीनेट कक्ष तथा होटल डी विले मे अकित चित्र हैं; किन्तु उसकी छोटे आकार की कृतियाँ अपेक्षाकृत सुन्दर बन पडी हैं जैसे युद्ध, आखेट, पशुओ, द्वन्द्व युद्ध एव व्यक्तियो से सम्बन्धित चित्र। उसने कुछ समय तक डायरी लिखी थी जिससे उसके जीवन तथा कलाकृतियो के विषय मे पर्याप्त जानकारी मिल जाती है। इस डायरी से पेरिस के कलात्मक, राजनीतिक, बौद्धिक एव सामाजिक जीवन की भी किंचित् झाँकी उपलब्ध होती है। यद्यपि उसकी चित्रशाला मे कुछ सहायक चित्रकार भी कार्य करते थे किन्तु उसने नियमित रूप से किसी को अपना शिष्य नही बनाया। स्वच्छन्दतावाद उसका व्यक्तिगत गुण था और उसका कोई अनुकर्त्ता नही हुआ। वह नये कलाकारो की दृष्टि मे बहुत ऊँचा था और शास्त्रीयता के विरुद्ध नयी पीढी की भावनाओ का हिमायती था। इसके हेतु उसे बहुत सघर्ष भी करना पडा था।

देलाक्रा को प्रभाववाद का पूर्वज कहा जाता है। उसने रगो के द्वारा प्रकाश की क्षणिक स्थितियो की व्याख्या की है। रगो के सम्बन्ध मे उसने प्राचीन तथा नवीन सिद्धान्तों का समन्वय किया है। वह स्वच्छन्दतावादी होते हुए भी शास्त्रीयता से प्रभावित था। उसकी आकृतियो मे रक्त और मासलता की व्यंजना, प्रबल शक्ति, दयालुता, सौम्यता, मौलिकता एव आकर्षक मुद्राएँ तथा रगो मे सूक्ष्मता की प्रवृत्ति है। उसने अनावृताओ के द्वारा प्रभाववाद का सीधा नेतृत्व किया है। ये सुन्दरियाँ स्वय अप्रत्यक्ष होकर रगो की क्रीड़ा मात्र रह जाती हैं। पूर्ण चित्रो की अपेक्षा उसके रेखाचित्र एवं स्केच अधिक सुन्दर हैं। १८३० मे हुई फ्रांस की क्राति का उसने अपने चित्रो के द्वारा अभिनन्दन किया है। हर्बर्ट रीड के विचार से वह बहुमुखी प्रतिभा का कलाकार था और स्वच्छन्दतावाद की सीमा मे नही बाँधा जा सकता।

कोरों (Camille Corot) १७९६-१८७५—कोरों चित्रकार होने के साथ-साथ एक कुशल राजनीतिज्ञ भी था। उसका जन्म पेरिस में हुआ था और आरम्भिक शिक्षा शास्त्रीय दृश्य-चित्रकारो के द्वारा सम्पन्न हुई थी। १८२५ मे स्विटजरलैण्ड होता हुआ वह इटली गया। उसने अपना अधिकांश समय रोम मे ही व्यतीत किया और वही रहकर प्रकाश, आकृति, विस्तार आदि का रगो के वलों के माध्यम से अध्ययन किया, रेखाकन के द्वारा नही। १८२७-३४ के मध्य उसने फ्रास तथा इटली की विस्तृत यात्राएँ की। इनके मध्य उसने अनेक स्केच अकित किये। आरम्भ मे उसने इन रेखाचित्रो से धुंधली तथा फूली-फूली आकृतियो एवं हरे रग की अधिकता वाले

दृश्य-चित्र निर्मित किये जिनको बहुत अधिक लोकप्रियता मिली। आगे चलकर उसने इस शैली को छोड दिया। वह स्वभाव से बडा दयालु था और दीन-हीनो की बहुत सहायता करता था।

उसे प्राय बारबिजन स्कूल का दृश्य चित्रकार माना जाता है। देहातो के शान्त, उत्तेजनाहीन तथा नैसर्गिक वातावरण में उसके चित्रो ने जन्म लिया है। यही कारण है कि उसके दृश्य-चित्र काव्य के समान आनन्द प्रदान करते हैं। भवनो तथा गिर्जाघरो आदि को उसने चित्रो मे बहुत दूरी पर दिखाया है और उन्हें प्राकृतिक दृश्य का ही एक अग बना दिया है। दृश्यो मे वह क्लाद लोरें की भाँति प्रकाश का उत्तम अकन तथा पुसिन की भाँति आकृतियो का श्रेष्ठ सयोजन करता था। शान्त वातावरण होते हुए भी उसके दृश्य-चित्रो मे ससार से विरक्ति का भाव नही है। दृश्यो मे वह मानवाकृतियो को भी बडी कुशलता से अकित करता था।

दृश्य-चित्रो के अतिरिक्त उसने आवृत तथा अनावृत मानवाकृतियो का भी अकन किया है। यद्यपि इनमे शास्त्रीय नियमो का आधार नही लिया गया तथापि आकृतियो की मासलता, उभार तथा घनत्व आदि का स्पष्ट आभास बहुत कम छाया-प्रकाश और थोडे ही प्रयत्न मे दे दिया गया है। उसके रेखाचित्र इस दृष्टि से अनुपम हैं। उसकी आकृतियाँ उसे पिकासो तथा ब्राक के समकक्ष लाने मे समर्थ हैं। उसने लगभग पाँच हजार चित्रो की रचना की है।

मिले (Jean Francois Millet १८१४–७५ ई०)—यह किसान का बेटा था और पेरिस मे कला की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् शृ गारपूर्ण अनावृताओ के स्थान पर ग्रामीण दृश्यो का चित्रण करने लगा था। कुछ समय तक उसने व्यक्ति-चित्रण भी किया था। उस पर दामिये का प्रभाव भी पडा। १८४८ मे जब उसने पेरिस के सेलून मे एक ग्रामीण विषय का चित्र प्रदर्शित किया तो उसकी बहुत आलोचना हुई। १८४६ मे वह बारबिजन चला गया और शेष जीवन वही व्यतीत करते हुए कृषको, श्रमिको, प्राकृतिक दृश्यो तथा नौकाओ के चित्र उरेहने लगा।

मिले की तूलिका ने दृश्य-चित्रण को फ्रैंच कला मे न्यायोचित स्थान की अधिकारी बनाया। शास्त्रीयतावाद तथा स्वच्छन्दतावाद दोनो ही फ्रास मे प्राय मानवाकृति का आधार लेकर चले थे। मिले इसे छोडकर प्रकृति के आँगन मे पहुँचा और वहाँ के सौन्दर्य को औद्योगिक दूषणो से त्रस्त नागरिक समाज के समक्ष प्रस्तुत किया। उसके दृश्य-चित्र प्रकृति के मायालोक और आत्मा की कविता का सौन्दर्यमय दर्शन हैं। यद्यपि उसने भावनाओं को प्रमुखता देकर ही दृश्य-चित्रण किया है तथापि इस स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति ने आगे चलकर प्रकृति के सूक्ष्म-निरीक्षण को बल दिया और उसकी प्रेरणा से ही यथार्थवाद को जन्म मिला।

दॉमिए (Daumier १८०८—१८७६ ई०) :—इसका जन्म मार्सेलीज मे हुआ था और बचपन मे ही अपने पिता के साथ पेरिस चला आया था। आर्थिक विपत्ति आ जाने के कारण इसे अल्पायु मे ही भरण-पोषण की चिन्ता करनी पडी। बचपन से ही उसे चित्रकला का शौक था और गन्दी गलियो के वातावरण मे जब कभी उसका मन दुखी होता तो वह लूव्र संग्रहालय देखने चला जाता। उसे न कोई कला की शिक्षा देने वाला था और न अच्छे-बुरे चित्रो की पहचान बताने वाला था, किन्तु जिन चित्रो मे उसने जीवन की पीडा का मार्मिक अकन देखा उन्ही की ओर वह आकर्षित होने लगा। इनका चित्रकार था रेम्ब्राँ। इसके साथ ही वह माइकेल एंजिलो के मूर्ति-शिल्प की ओर भी आकर्षित हुआ क्योकि उसमे उस प्रसिद्ध मूर्ति-शिल्पी के समान ही चारित्रिक विशेषताएँ उभरने को आकुल हो रही थीं। मन मे स्पर्द्धा का भाव लिये बालक दामिये घर मे रेम्ब्राँ के समान स्केच और माइकेल के समान मिट्टी की आकृतियाँ बनाने का प्रयत्न करने लगा।

कुछ समय के लिये इसे न्यायालय मे एक छोटी-सी नौकरी मिल गयी। इसके उपरान्त उसने एक पुस्तक-विक्रेता के यहाँ काम किया और तदुपरान्त वह एक व्यावसायिक कलाकार बन गया। बीस वर्ष की आयु

होने तक उसने लियोग्राफी मे दक्षता प्राप्त करली थी और उसने इस समय जो चित्र छापे हैं वे रेखांकन तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से फ्रैंच कला मे अद्वितीय हैं । उसकी ओर एक पत्र-सम्पादक आकर्षित हुआ और अबाध स्वतन्त्रता की शर्त पर उसने उसके यहाँ कार्य करना स्वीकार कर लिया । उसके व्यंग्यचित्र साप्ताहिक रूप में छपते और उन्हें देखकर ओर्लीएन्स के राजनीतिज्ञ तथा राज्य के मन्त्री तिलमिला जाते । अपने व्यंग्य-चित्रो के कारण उसे जेल-यात्रा भी करनी पड़ी किन्तु उसने कभी इसका दुःख नही माना । वह विभिन्न पत्रो के हेतु व्यंग्य—चित्र बना कर ही जीविकोपार्जन करता रहा ।

नगर के बहुत पुराने भाग में वह अपनी पत्नी के साथ रहता था । १८४८ से, जबकि उसका विवाह हुआ था, वह तैल-चित्रण भी करने लगा । किन्तु इससे उसे कोई आय नही होती थी । शाम को थक कर वह बाहर नौकाओ, मछुओ तथा धोबियो को खिड़की मे से टकटकी लगाकर देखा करता । उनके हेतु उसके हृदय मे अपार सम्वेदना थी । अपने अन्तिम समय तक उसे इन दीन-हीनो का ध्यान रहा । वृद्धावस्था में वह बहुत निर्धन हो गया था । उसकी आँखें भी कमजोर हो गयी थीं और व्यंग्य-चित्रो से जल-भुन कर उस पर विरोधियो ने मुकदमा भी आरम्भ कर दिया था । इस समय कौरों ने उसकी बहुत सहायता की । १८७८ मे उसके चित्रो की प्रदर्शनी हुई किन्तु उसमे बिके चित्रो से गैलरी का किराया भी पूरा न हुआ । अगले वर्ष ही अन्धा और लकवे का शिकार दॉमिए चल बसा और उसे राज्य की ओर से दफन कर दिया गया ।

दॉमिए ने कभी किराये के माडेल से अपने चित्र नही बनाये । उसका कथन था कि पेरिस के चलते-फिरते मनुष्य ही मेरे आदर्श हैं । वह उनके चरित्र और आत्मा मे प्रवेश करने का प्रयत्न किया करता । वह बाहरी आकार लेकर नही बल्कि अनुभूति के आधार पर चित्रो की रचना करता था और उसकी यह विशेषता फ्रैंच कला मे अद्वितीय थी । उसने न्यायालय मे कार्य किया था और उसका मत था कि 'ससार मे वकील के चलते हुए मुख से बढ़कर विचित्र कोई भी वस्तु नही है । अपराधी को बचाने के लक्ष्य से वह कितने थोथे और बनावटी तर्क न्यायाधीश के सामने रखता है, इस प्रकार वह न्याय को भी हास्यास्पद बना देता है ।' किसी भी चित्रकार ने मनुष्य के मुख को इतनी अधिक क्रियाशीलता सहित प्रस्तुत नही किया जितना दामिए ने वकीलो की आकृतियो मे किया है । कहा जाता है कि उसने ४५०० लियोचित्र बनाये थे । तैल-चित्रो मे "तीसरी श्रेणी का रेल-डिब्बा" उसका प्रसिद्ध चित्र है जिसमे विभिन्न मुद्राओ तथा भावो को प्रदर्शित करने वाली अनेक मुखाकृतियाँ चित्रित हैं । उसने जल रंगो से भी चित्र अंकित किये हैं ।

दामिए की शैली मे माइकेल एंजिलो के समान आकृतियो की गठन और रेम्ब्रां के समान छाया-प्रकाश के द्वारा भावो का प्रदर्शन मिलता है । उसने आंग्र, जेरीकाल्त, देलाका तथा अन्य स्वच्छन्दतावादी कलाकारो का कार्य भली प्रकार देखा था और वह यथार्थवादी कलाकार कुर्बे का समकालीन था । उसकी मृत्यु के पूर्व ही प्रभाववादी शैली का प्रचार होने लगा था और अनेक श्रेष्ठ कृतियाँ सामने आ चुकी थी । इस प्रकार वह कई प्रवृत्तियो के मिलन बिन्दु पर खड़ा हुआ था किन्तु इन सबसे अप्रभावित वह अपने मार्ग पर अडिग रहा आया । गरीबी और अत्याचारों के खिलाफ समाज पर व्यंग्य करने मे उसने लिथोग्राफी का प्रयोग गोया से भी अधिक सफलता से किया है । उसके चित्र मानवीय पीड़ा की करुण गाथा हैं । मुखाकृति की व्यंजना, मुद्रा एव मानसिक द्वन्द्व को प्रस्तुत करने मे वह बेजोड़ है । दामिए ने यथार्थवादी शैली के हेतु दैनिक जीवन के सर्वसाधारण विषयों के आदर्श उपस्थित कर स्वच्छन्दतावाद को यथार्थवाद मे परिणत होने का अवसर प्रदान किया । मध्यकाल के उपरान्त कला मे जो मानव-मूल्य स्थापित हुए हैं उनमे उसका योग सबसे अधिक है ।

ब्रिटिश दृश्य-चित्रण तथा स्वच्छन्दतावाद

यूरोप की कला मे दृश्य-चित्रण पृथक् विकसित होता रहा है। विषय का बन्धन उसके लिए कभी रोड़ा नही बना। दृश्य-चित्रकार अपनी मौज के अनुसार ही टेक्नीक विकसित करने मे समर्थ हुए। पुराने समय में दृश्य-चित्रण स्वतन्त्र कला नही थी। यो तो मिस्री चित्रो मे कहीं-कहीं प्राकृतिक दृश्यो का अंकन हुआ है पर वे दृश्य-चित्रण के लक्ष्य से नही बनाये गये हैं। वास्तव मे पुनरुत्थान काल से ही चित्रकला मे दृश्य-चित्रण का विकास हुआ है। टिण्टोरैट्टो, ज्योर्जिओन एव ड्यूरर आदि इसके विशेष प्रयोक्ता थे। दृश्य-चित्रकारो ने आरम्भ मे डच स्कूल से प्रेरणा ली। इनकी पीछे से दो शाखाएँ हुई—फ्रेंच तथा इंग्लिश। जल रगो के अधिक प्रयोग से ब्रिटिश दृश्य-चित्रकार प्रकाश तथा वातावरण का चित्रण सफलता से कर सके। फ्रास में प्रभाववादी कलाकारो ने रेखा तथा घनत्व को समाप्त कर दिया और शुद्ध रग की सवेदना मात्र शेष रह गयी। चित्रो की आकृतियो मे उभार दिखाने की जो प्रवृत्ति अब तक चली आ रही थी—यह उसके विरुद्ध आन्दोलन था। माने तथा मोने इसके अग्रणी थे। इस प्रकार फ्रास मे उन्नीसवी शती का अन्त हुआ।

इंग्लिश परम्परा मे दृश्य-चित्रण का विशेष महत्व है। प्रकृति के प्रति ब्रिटिश कलाकारो का विशेष रोमाण्टिक भाव रहा है। इसका स्वरूप बिखरा हुआ, विश्रामदायक, पलायनवादी और उन्मुक्त है। ब्रिटिश दृश्य-चित्रकारो ने अपनी रागात्मकता को प्रकृति से तद्रूप करके 'स्पृहणीय गरिमा के साथ प्रस्तुत किया है'। ब्रिटिश दृश्य-चित्रकारो की रग-योजना उष्ण रहती है। तूलिका के स्पर्श छोटी-छोटी तथा टूटी हुई रेखाओ का सृजन करते हैं। निम्नांकित कलाकार दृश्य-चित्रण में विशेष प्रसिद्ध हो गये हैं —

रिचर्ड विल्सन (Richard Wilson १७१३/१४-८२ ई०)—यह प्रथम महत्वपूर्ण इंग्लिश दृश्य-चित्रकार माना जाता है। रिचर्ड पादरी का बेटा था जिसने उसे आरम्भ से ही अच्छी शास्त्रीय शिक्षा दिलाने का यत्न किया। इसके फलस्वरूप दृश्य-चित्रण के प्रति उसमे इटालियन रुचि उत्पन्न हो गयी थी। क्लाद, गेस्पार तथा डच चित्रकार क्विप (Cuyp) से उसे विशेष प्रेरणा मिली। १७४० ई० में वह लन्दन आया और एक व्यक्ति-चित्रकार के रूप मे शीघ्र ही विख्यात हो गया। १७४६ तक उसने दृश्य-चित्रण भी आरम्भ कर दिया। फाउण्डलिंग चिकित्सालय मे उसके दो तत्कालीन दृश्य-चित्र अभी तक सुरक्षित हैं। कुछ समय पश्चात् उसके जीवन मे परिवर्तन आया। उसने अपना सारा समय दृश्य-चित्रण में ही लगाना आरम्भ कर दिया और वह इटली की ओर आकर्षित होने लगा। १७५० मे वह वेनिस गया। वहाँ उसका अधिकाश समय रोम तथा कैम्पेना मे ही व्यतीत हुआ। यहाँ उसकी कला पर इटालियन शैली का स्थायी प्रभाव पडा। १७५७ के लगभग वह इंग्लैंड लौटा और इटली के दृश्यो का ही चित्रण करता रहा। उसके विचार से शास्त्रीय विषयो तथा शास्त्रीय टेक्नीक की दृष्टि से ऐसा करना आवश्यक था। सम्भवत तत्कालीन पर्यटको को ये बहुत आकर्षक लगते थे।

इसके उपरान्त उसने इंग्लैण्ड तथा वेल्स के चित्र इटालियन पद्धति से अंकित करने आरम्भ कर दिये। देहाती घरो के भी चित्र वह बनाने लगा था। १७६० के आस-पास उसने इटली की पुनरुत्थानकालीन महान् शैली मे पौराणिक गाथाओ का चित्रण उसी प्रकार आरम्भ कर दिया जिस प्रकार व्यक्ति-चित्रण के क्षेत्र में रेनाल्ड्स ने महान् शैली की घोषणा की थी। किन्तु विल्सन को उसकी तुलना में बहुत कम ख्याति मिली। वह प्राय उपेक्षित ही रहा। १७६८ मे आरम्भ होने वाली अकादमी का वह सस्थापक सदस्य था। १७७६ मे जब उसने चित्रण छोड दिया और उस पर अर्थ सकट आया तो उसे अकादमी मे पुस्तकाध्यक्ष बना दिया गया।

अपने चित्रों मे रिचर्ड विल्सन डिजाइन के सयम से उत्पन सौंदर्य को शास्त्रीय रूप मे प्रस्तुत करता था। दृश्य मे प्रकाश का प्रभाव वह क्लाद तथा हालैण्ड के चित्रकारो की भाँति दर्शाता था। ये चित्र इतने प्रभावशाली

हैं कि इनकी असंख्य अनुकृतियाँ हुई हैं। इनकी प्रेरणा रोमन है और कान्स्टेबिल नामक दृश्य-चित्रकार की नैसर्गिकता के पूर्ण विरोध मे है। उसने एक ही दृश्य को कई प्रकार से चित्रित करने का प्रयत्न किया है। उसमें स्वच्छन्दतावाद के पूर्व की उस प्रवृत्ति के भी प्रथम दर्शन होते हैं जिसे प्रकृति के प्रति सुविचारित प्रेम कहा जा सकता है। उसके दृश्य-चित्रो मे सीमा-रेखा की स्पष्टता, रोकोको की लयात्मकता तथा शास्त्रीय शैली की गढ़नशीलता एवं रचना-विधि मिलती है। रिचर्ड विल्सन के दृश्य-चित्रो की अग्रभूमि मे दोनो ओर वृक्ष अथवा भवन अंकित रहते हैं बीच मे रिक्त मार्ग होता है जो सामने डूबते हुए सूर्य वाले क्षितिज तक जाता है। अग्रभूमि मे कुछ आकृतियाँ भी अंकित रहती हैं।

टामस गेंसबरो (Thomas Gainsborough १७२७-८८ ई०) गेंसबरो का जन्म सुडबरी मे हुआ था किन्तु १७४० ई० मे वह लन्दन चला आया। कुछ दिन तक यहाँ के चित्रकारो से शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त उसने यथार्थवादी शैली मे दृश्य-चित्रण आरम्भ किया। सत्रहवी शती की डच चित्रकला ने उसे सर्वाधिक आकर्षित किया था। लन्दन के चित्र-व्यापारियो के यहाँ वह पुराने डच दृश्य-चित्रो की मरम्मत किया करता था और स्वयं को इस शैली का चित्रकार समझता था। वह जीवन भर अपनी आन्तरिक वृत्तियो की तृप्ति के हेतु दृश्य-चित्रण करता रहा किन्तु आजीविका के हेतु व्यक्ति-चित्र बनाता रहा। इसी लक्ष्य से १७४८ ई० मे उसने अपनी जन्मभूमि मे एक दूकान खोली, किन्तु १७५० मे वह इप्सविच चला गया और वहाँ से १७५९ मे बाथ पहुँचा। इस समय वह प्रधानत. दृश्य-चित्र बनाता था और छोटी-छोटी आकृतियो से युक्त घटना-चित्र (जैसे-उद्यान मे वार्तालाप आदि) भी अङ्कित करता था। इन पर फ्रेंच चित्रकार वातो का प्रभाव है। दृश्य-चित्रण मे भी कहीं-कहीं फ्रांस का प्रभाव मिल जाता है। बाथ एक फैशनेबिल नगर था और वहाँ उसे व्यक्ति-चित्रण के पर्याप्त अवसर मिले। इस समय के उसके कार्य में पहले जैसी उत्कृष्टता नही है बल्कि एक प्रकार की फैशनेबिल रुचि और मानवाकृतियो के पीछे काल्पनिक दृश्य-चित्रण मिलता है। 'ब्लू-बाय' नामक कृति पर वान डाइक का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। ऐसे चित्रो मे उसने माडेल को वान डाइक के समान वेश-भूषा मे ही अंकित किया है। इस समय भी वह दृश्य-चित्र बनाता रहा किन्तु इनमे अध्ययन के स्थान पर संयोजनो की नवीनता मात्र दिखाई देती है। कहीं-कहीं इनमे रंगो का वैभव भी है जैसे पूलियो से भरी गाडी (The Harvest wagon) नामक चित्र में। १७६१ में उसने लन्दन में चित्र प्रदर्शित करना आरम्भ किया। १७६८ मे जब रायल अकादमी की स्थापना हुई तो वह उसका सदस्य चुन लिया गया। १७७३ ई० में अकादमी से उसका झगड़ा हो गया और उसने चित्रो का प्रदर्शन बन्द कर दिया। उसने रेनाल्ड्स से स्पर्द्धा की और अनेक व्यक्तियो ने इस स्पर्द्धा को प्रोत्साहित भी किया, किन्तु दोनो की शैली मे पर्याप्त अन्तर है। रेनाल्ड्स की अपेक्षा गेंसबरो चित्र मे अधिक सादृश्य ले आता है। फिर भी उसके चित्रो मे केवल यन्त्रवत् अनुकृति है, माडेल अथवा चित्रकार की आत्मा नहीं है। रेनाल्ड्स की अपेक्षा वह रंग भी अच्छे भर लेता था। यद्यपि रेमसे १७८४ ई० तक राजकीय चित्रकार रहा था और रेनाल्ड्स को सम्राट ने अकादमी के अध्यक्ष एवं दरबार मे नाइट के पद पर प्रतिष्ठित किया था तथापि राजपरिवार के सदस्य गेंसबरो से ही चित्र बनवाना पसन्द करते थे। १७८४ मे रेमसे की मृत्यु होने पर राजकीय चित्रकार का पद रेनाल्ड्स को प्राप्त हो गया था किन्तु सम्राट की सहानुभूति गेंसबरो के साथ ही रही। इस प्रकार यह स्पर्द्धा बहुत बढ चुकी थी। १७८० के उपरान्त गेंसबरो ने म्यूरिल्लो के अनुकरण पर अनेक फैंसी चित्र बनाना आरम्भ कर दिया। परवर्ती दृश्य-चित्रो मे वह रूबेन्स से प्रभावित दिखायी देता है। उसके अन्तिम दृश्य-चित्र बहुत सुन्दर बन पडे हैं।

गेंसबरो अपने चित्रो मे स्वयं ही कार्य करता था। उसने कभी किसी अन्य कलाकार से उनमे सहायता नहीं ली। वह बहुत लम्बी तूलिका से पानी के समान पतले तैल रंगो से कार्य करता था।

टर्नर (Joseph Mallord William Turner १७७५-१८५१ ई०)—ब्रिटिश चित्रकला के इतिहास में टर्नर अद्भुत प्रतिभाशाली एव सयमी कलाकार हो गया है। उसने सुन्दर तथा वीभत्स दोनो को गहराई से देखा और प्रत्येक प्रकार के दृश्य-चित्र अंकित किये। उसकी रुचि शास्त्रीय ढग की थी। प्राय: समुद्री दृश्य, नदियाँ, पर्वत, सुन्दर भवन, चमकती हुई धूप और गम्भीर तथा विशाल मेघो से आच्छादित आकाश उसे बहुत प्रिय थे। उसका मुख्य उद्देश्य प्रकृति की विशालता और भयंकरता का चित्रण करके दर्शकों को आश्चर्य-विभोर करना था। यह प्रभाव उत्पन्न करने के हेतु उसने प्रकाश को विशृंखलित भी किया है।

टर्नर एक नाई की सन्तान था। आरम्भ से ही उसमे कलात्मक प्रतिभा पर्याप्त विकसित थी। १७८९ ई० मे उसने रायल अकादमी मे प्रवेश किया और १७९१ मे वहाँ अपने चित्रो की प्रथम प्रदर्शनी आयोजित की। उस पर अकादमी की जीवन भर कृपा रही और वह भी उसका सदैव कृतज्ञ रहा। सत्ताईस वर्ष की आयु मे वह वहाँ परिप्रेक्ष्य का प्रोफेसर नियुक्त हुआ और १८४५ ई० मे उपाध्यक्ष निर्वाचित कर लिया गया। आर्थिक विनियोग मे भी वह कुशल था अत वर्षों तक वह अकादमी के आय-व्यय का लेखा-परीक्षक भी रहा था। १७९२ मे उसने अपनी प्रथम स्केच-यात्रा आरम्भ की और अगली अर्ध के शती मे भी उसकी ये यात्राएँ समय-समय पर होती रही। डा० मुनरो के घर गर्टिन (Girtin) नामक चित्रकार से उसकी भेंट हुई और टर्नर पर उसका व्यापक रूप से प्रभाव पड़ा। आज इन दोनो के जल-रगो से निर्मित चित्रो मे भेद कर पाना सरल नही है। १७९६ तक टर्नर जल रगो द्वारा स्थानीय जलवायु का ध्यान रखते हुए चित्राङ्कन करता रहा किन्तु इस समय से उसने तैल रङ्गो मे भी कार्य आरम्भ कर दिया। इस समय के उसके पनचक्की का नदीतट और चाँदनी नामक दो चित्रो पर सत्रहवी शती की डच चित्रकला का प्रभाव है। इसके उपरान्त टर्नर विल्सन तथा क्लाद से प्रभावित हुआ और १८०० के लगभग उसने महान शैली मे रचना करना आरम्भ कर दिया। १८०२ मे वह नेपोलियन द्वारा लूटे गये चित्रो की प्रदर्शनी देखने लूव्र गया। वहाँ उसने पुसिन की पर्याप्त प्रशंसा की किन्तु १८०३ में उसने जो चित्र अंकित किये उनमे स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति है। इस चित्र को 'अपूर्ण' कहकर बहुत आलोचना की गयी। इस के उपरान्त कलाके आलोचक उस के पक्ष तथा विपक्ष मे बहुत समय तक लड़ते रहे। इन आलोचनाओ से उसके बड़े चित्रो का विक्रय प्रभावित हुआ और १८०६ मे उसके चित्र बेकार समझे जाने लगे। स्वय टर्नर भी चित्रकला के शौक को बहुत बुरा कहने लगा था। कुछ समय पश्चात् उसमे साहस का सचार हुआ और १८०६ से १८१९ के मध्य उसने विभिन्न प्रकार के दृश्य चित्र उत्कीर्ण करके छापे। यह चित्र—शृंखला जो 'लाइबर स्टुडियोरम' नाम से प्रसिद्ध है, असफल रही। १८१९ मे वह इटली गया। वहाँ से लौटने पर उसके तैल चित्रो मे अधिकाधिक पीली चमक आने लगी जिसके प्रयोग वह जल-रङ्गो मे कर चुका था। अब वह रङ्गीन प्रकाश की बात सोचने लगा। १८२८ में वह पुनः इटली गया और १८३५ तथा १८४० में वेनिस की यात्रा की। इस समय के चित्रो मे वेनिस के प्रभाव से प्रकाश का बड़ा ही अनोखा प्रभाव है। इस समय तक जनता की रुचि उसकी ओर से हट चुकी थी किन्तु सहसा रस्किन ने उसका पक्ष लेना आरम्भ कर दिया। १८४३ में रस्किन ने 'आधुनिक चित्रकार' (Modern Painters) नामक पुस्तक लिखी और उसमें सत्य, शिव तथा सुन्दरम् की स्थापना के कारण टर्नर के दृश्य-चित्रों को प्राचीन आचार्यों की कला से श्रेष्ठ बताया। टर्नर ने अन्तिम समय में तीन सौ तैल-चित्र तथा लगभग बीस हजार रेखाचित्र एव जल-रङ्गो मे निर्मित चित्र राष्ट्र की सेवा में समर्पित कर दिये।

टर्नर ने अपनी कला के द्वारा प्रकाश का प्रयोग विकसित किया। उसने यूरोपीय महाद्वीप के विशाल क्षेत्रों का भ्रमण करके अनेक चित्र बनाये। उसका समुद्री अध्ययन बहुत अच्छा था। उसके सर्वश्रेष्ठ चित्र वे हैं जिनमे उसने प्रकाश तथा धरातलीय प्रभावों के समन्वय से महाप्रलय के दृश्य उपस्थित किये हैं। प्रकृति की भयानकताओ का उसने बड़े साहस के साथ स्वय अनुभव किया था। रस्किन के अनुसार टर्नर में लगन, ईमानदारी, उदारता,

दयालुता एवं दृढ़ता आदि गुण थे जिनके कारण ही वह अपनी शैली के निर्माण मे सफल हुआ। वह विलियम वर्ड्सवर्थ नामक कवि का समकालीन और उसी के स्तर का दृश्य-चित्रकार था। उसे हम प्रभाववाद तथा अभिव्यंजनावाद दोनो का पिता कह सकते हैं (फ्रेंच प्रभाववादी तथा जर्मन अभिव्यंजनावादी उससे प्रभावित हुए थे)। अपनी विशिष्ट शैली मे टर्नर का काम बड़ा ही वैविध्यपूर्ण है। उसका जल-रङ्गो मे किया हुआ आरम्भिक कार्य पीछे के तैल-चित्रण से बहुत अच्छा है।

कान्स्टेबिल (John Constable १७७६-१८३७ ई०)—आधुनिक कला के प्रणेताओ मे गोया, डेविड तथा टर्नर के साथ ही कान्स्टेबिल का नाम लिया जाता है। वह प्रायः इग्लैण्ड मे ही रहा। उसके चित्रो की प्रथम प्रदर्शनी १८०२ ई० मे हुई किन्तु उसका अधिक स्वागत नही हुआ। १८२९ मे वह रायल अकादमी का पूर्ण सदस्य बना लिया गया। ग्रामीण दृश्यो की प्रेरणा से ही उसने दृश्य-चित्रण आरम्भ किया था। १८०६ मे उसने लेक नामक जनपद का भ्रमण किया। ओस से भीगी घास के विशाल चरागाहो, पनचक्कियों, शीतल समीर से पूरित आकाश आदि के मध्य वह विशेष आनन्दित होता था। लन्दन के वातावरण को समझने में ल्यूक होवार्ड के तत्सम्बन्धी चित्रो से उसे बहुत सहायता मिली थी। १८२४ मे उसे "भूसा गाडी" तथा "धूल का दृश्य" नामक चित्रो पर पेरिस के सेलून मे स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। फ्रास मे उसकी कला ने बारबिजन स्कूल के विकास को प्रभावित किया (यह स्कूल मध्य उन्नीसवी शती के कतिपय फ्रेंच दृश्य चित्रकारो द्वारा फौन्टेनब्लू के वन मे स्थापित किया गया था। इन कलाकारो का उद्देश्य ग्रामीण तथा कृषक जीवन को पूरी सचाई से अङ्कित करना था। इन्हें हम प्रभाववाद के अग्रज कह सकते हैं)। स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन को भी इसकी शैली से पर्याप्त प्रेरणा मिली।

कान्स्टेबिल की कला पर सत्रहवी शती की डच चित्रकला का प्रमुख प्रभाव था। वह इस परम्परा का महान् चित्रकार था। टर्नर उससे कुछ अधिक समय तक जीवित रहा था अत उसके मरने के उपरान्त टर्नर ने प्रकृति के दूसरे ही पक्ष का चित्रण किया जो प्रायः आँधी, तूफान, वायु और जल से प्रमुखत सम्बन्धित था। इनके विपरीत कान्स्टेबिल को लहलहाते खेत, झुके हुए बादल और फटा-फटा आकाश अधिक प्रिय थे। ऋतुओं का परिवर्तन उसे बहुत अच्छा लगता था। तीव्र प्रकाश के साथ वह गहरी छाया का भी प्रयोग करता था। उसने बादामी रङ्ग लगाने की पुरानी पद्धति को छोड दिया, प्राकृतिक नीले तथा हरे रङ्गो का प्रयोग किया और सवेदनो के अनुसार रङ्गो की योजना की। कान्स्टेबिल की दृष्टि मे कोई वस्तु भद्दी नही थी। उसकी यह विशेषता थी कि एक ही दृश्य को अनेक बार बनाकर वह प्रकृति की विभिन्न शक्तियो का साक्षात्कार करना चाहता था। उसके विषय घर के अँधेरे से लेकर जङ्गल के खुले प्रकाश तक बिखरे हुए हैं। उसकी कला मे बारीकी का अभाव है। यह आधुनिक कला की एक नकारात्मक विशेषता है। आधुनिक कलाकार यह समझता है कि चित्र को बारीकी से पूर्ण करने से वस्तु की नैसर्गिक गति नष्ट हो जाती है। कान्स्टेबिल के रेखाचित्रो मे क्षणिक सवेदनाओं का अङ्कन हुआ है। उसने विभिन्न धरातलीय प्रभावो तथा वातावरण को भी बडी सावधानी से चित्रित किया है। उसके चित्रो मे प्रकाश कुछ निश्चित स्रोतो से आता है और बँधा हुआ चलता है।

विलियम ब्लेक (William Blake १७५७-१८२७ ई०)—ब्लेक को अलौकिक ससार के अनुभव शैशव में ही प्राप्त होने लगे थे। जब वह केवल चार वर्ष का था, एक खिडकी में उसे ईश्वर का मुख दिखाई दिया और वह भय से काँपने लगा। एक बार उसे वृक्ष की शाखा पर झूलते देवदूत मिले। इसी प्रकार एक और अवसर पर भीषण ग्रीष्म में उसे एक महान् ईसाई सन्त के दर्शन हुए। जैसे-जैसे वह बडा होता गया, उसके इन आध्यात्मिक अनुभवों का क्षेत्र भी विस्तृत होता गया। यूरोप की कला में वह सबसे बड़ा स्वप्न-दृष्टा कहा जाता है। इस गुण के कारण उसकी कला मे कुछ ऐसी विशेषताएँ आ गयी हैं जिनकी अनुकृति कोई भी दूसरा कलाकार नही कर सका है।

विलियम ब्लेक का जन्म लन्दन मे १७५७ ई० मे हुआ था। उसके पिता धार्मिक प्रवृत्ति के थे अतः उन्होने बालक ब्लेक के रहस्यात्मक झुकाव मे बाधा नही पहुँचाई। यद्यपि ब्लेक चित्रकार बनना चाहता था किन्तु घरेलू परिस्थितियो के कारण उसके पिता ने उसे एक उत्कीर्णक के यहाँ काम सीखने भेज दिया। सात वर्ष तक वहाँ रहकर वह इस कला मे पूर्ण पारंगत हो गया।

पच्चीस वर्ष की आयु मे वह अपनी पत्नी कैथेरीन के साथ जो एक माली की पुत्री थी, लीसेस्टर स्क्वायर मे रहने लगा। यद्यपि वह अशिक्षित थी किन्तु ब्लेक ने उसे लिखना, पढ़ना, चित्रो मे रङ्ग भरना और स्वप्न देखना, सब कुछ सिखा दिया था। तत्कालीन साहित्यकार यीट्स के शब्दो में कैथेरीन मे असीम प्रेम और अकलुष सौहार्द था। वे लन्दन में ही एक छोटे-से घर मे निर्धनता मे रहने लगे किन्तु धन का उनके लिये अधिक महत्व न था। ब्लेक दिन-रात परिश्रम करता। उसने कविताएँ, महाकाव्य और त्रासदी काव्य का प्रणयन किया। मिल्टन, ग्रे तथा काउपर आदि की कविताओ का चित्रण करके वह जीविकोपार्जन करता था। उससे जो धन प्राप्त होता उसी मे वह सन्तुष्ट रहता। उसे जन-रुचि की चिन्ता न थी और सबसे अधिक तृप्ति उसे अपनी रचनाओ तथा पत्नी के प्रेम मे मिलती।

स्वप्न-द्रष्टा चित्रकार प्राय अच्छे चित्र नही बना पाते किन्तु ब्लेक की कल्पनाएँ बड़ी स्पष्ट हैं। उसके चित्र बहुत सुन्दर और मौलिक हैं। जब उसे धुन सवार होती तो वह आध्यात्मिक लेख लिखने बैठ जाता और मोटी-मोटी पोथियाँ लिख डालता किन्तु उनका कोई महत्त्व नही था।

प्राचीन चित्रकारो की अवहेलना करते हुए वह अध्ययन के हेतु कभी प्रकृति के क्षेत्र मे नही गया। माडेल की अनुकृति को वह कला नही मानता था। उसके विचार से प्रकृति तथा मनुष्यो की अनुकृति करना मूर्खों का काम था। वह केवल कल्पना मे ही किसी आकृति अथवा दृश्य का साक्षात्कार करके उसे चित्रित करता था। आकृति के अध्ययन की शास्त्रीय पद्धति का बहिष्कार करके भी उसने जो चित्र बनाये हैं वे अपने सौंदर्य मे बेजोड़ हैं।

१८०० ई० में वह बोग्नोर के निकट फेलफाम मे पहुँचा। वहाँ वह तीन वर्ष रहा। तत्पश्चात् वह पुनः अपने घर लौट आया। जोशुआ रेनाल्ड्स का वह विरोधी था और उसे कला का शत्रु मानता था। जीवन के अंतिम दिनो मे उसे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पड़ा किन्तु उसके धनाढ्य एव विद्वान मित्रो ने उसकी बहुत सहायता की। प्राचीन रिनेसाँ, रेखा-चित्रो एव गोथिक कला की माँसलता एव यौन प्रभाव से रहित आकृतियों के आधार पर उसने 'द बुक आफ जोब' और दाँते की 'डिवाइन कामेडी' नामक रचनाओ का विस्तृत चित्रण किया। उसकी रेखा कठोर और लोचहीन है। अनेक जड वस्तुओ को उसने मानवीय प्रतीकता के साथ प्रस्तुत किया है। उसकी आकृतियाँ लम्बी भद्रिकाओं मे लयात्मक विधि से सयोजित रहती हैं जिनमे झुकाव, तरग एव कुण्डलियो का प्रयोग होता है। उसके आकार बडे जीवन्त, क्रियाशील एव नाटकीय हैं तथा उसके द्वारा ब्लेक ने सर्वशक्तिमान की कृपा, प्रसन्नता, दयालुता, कोप एव भयानकता आदि को व्यक्त किया है। उसने अपनी पुस्तको को स्वय ही छापा, सजाया, उनमें रंगीन आलेखन बनाये, उत्कीर्ण चित्रो से विभूषित किया और स्वय उसकी जिल्दे बनायीं। जिन्होंने इन पुस्तकों को देखा है वे इनकी प्रशसा करते नहीं अघाते।

ब्लेक की दृष्टि में दैवी अनुभव ही कला की प्रेरणा देते हैं, सांसारिक वस्तुएँ नहीं। प्रकृति को वह शैतान की सृष्टि मानता था और कला में वह ऐसे रूपो की सृष्टि करना चाहता था जो प्रकृति से श्रेष्ठ हैं। उसने जल रंगों के अतिरिक्त टेम्परा में भी कार्य किया है। "साग्स आफ इन्नोसेन्स", "सौंग्स आफ एक्सपीरिएन्स", "द बुक आफ जोब", "डिवाइन कामेडी" आदि उसकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। उसका आरम्भिक कार्य नवशास्त्रीयतावाद से प्रभावित है किन्तु धीरे-धीरे वह मध्यकालीन एव रीतिवादी चित्रकारो की ओर मुड़ गया है। इस समय उसने विस्तार

की तर्कपूर्ण संयोजन छोड़ दिया है तथा प्रकाश, रंग एवं रूप का पूर्ण व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित प्रयोग करने लगा है। उसने जो कुछ भी अंकित किया है उसे अपनी कल्पना-शक्ति के बल पर श्रेष्ठ रूप मे ही रखा है। उसका कार्य तत्कालीन बुद्धिवादी एव स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो का विरोधी है, किन्तु ब्लेक को किसी भी कला-शैली अथवा सम्प्रदाय से पूरी तरह नही बाँधा जा सकता।

उसके पश्चात् ब्रिटेन के कलाकार अधिक यथार्थवादी हो गये। वे दृश्य-चित्र, अश्व-चित्र, ग्राम्यजीवन तथा पशु-समूहो का अधिक अकन करने लगे। कला मे रंगो का वैभव तथा विषयो की समृद्धि होने लगी।

यथार्थवाद (Realism) लगभग १८५० से लग० १८६० तक

स्वच्छन्दतावादी कला आन्दोलन मे से यथार्थवादी प्रवृत्ति धीरे-धीरे उत्पन्न होने लगी थी, यह हम देख चुके हैं। कलाकार प्राचीन शास्त्रीय विषयो तथा इतिहास को छोडकर समकालीन जीवन का चित्रण करने लगे थे। उच्चवर्ग तथा धर्माधिकारियो के प्रति घृणा का भाव बढ रहा था और मध्यम तथा निम्नवर्ग को कलाकार की सहानुभूति प्राप्त होती जा रही थी। कलाकार अपना और समाज का सम्बन्ध भी समझने लगा था। चित्रो मे उसने स्वय को विभिन्न सामाजिक स्थितियों मे चित्रित करना आरम्भ कर दिया, यहाँ तक कि वह अपनी चित्रशाला का भी अकन करने लगा। उसने स्वय को जनता के समक्ष कलाकार के ही रूप में चित्रित किया है।

यथार्थवादी कलाकारो ने शास्त्रीय विषयो की भाँति शास्त्रीय नियमो की भी अवहेलना की। उन्होंने चारो ओर के ससार को जिस रूप मे देखा, उसी रूप मे चित्रित करने का प्रयत्न किया। उसे उन्होंने न सुन्दर बनाने की चेष्टा की, न कुरूप बनाने की। आधुनिक कलाकार समाज का नियन्त्रण नही मानता, यह प्रवृत्ति भी यथार्थवाद से आरम्भ होती है। यथार्थवादी कलाकार प्राकृतिकतावाद एव आदर्शवाद का भी विरोधी है। वह समाज की प्रतारणा का अंकन अनिवार्य मानता है। इस आन्दोलन का प्रमुख कलाकार तथा नेता गुस्ताव कुर्बे था।

गुस्ताव कुर्बे (Gustave Courbet १८१९-७७ ई०)—कुर्बे फ्रांस के ओरनास क्षेत्र मे उत्पन्न हुआ था जो स्विटजरलैण्ड की सीमा के निकट है। १८४० मे वह पेरिस गया और वहाँ लूव्र मे चित्रो की अनुकृति करने लगा। साथ ही एक चित्रकार की दूकान पर भी उसे कुछ काम मिल गया। धीरे-धीरे उसकी कला में प्रबल प्राकृतिकतावाद उभरने लगा जिस पर कैरेवज्जियो एव वेनिस के कलाकारो का भी प्रभाव था। इस समय उसने दैनिक जीवन, व्यक्तियो, अनावृताओ, स्थिर-जीवन, फूलो, समुद्री एव प्राकृतिक दृश्यो के चित्र अकित किये। प्राकृतिक दृश्य प्राय: उसकी जन्म-भूमि के निकटवर्ती पर्वतीय प्रदेश के हैं जिनमे अनावृताओ, आखेटको अथवा बर्फीनी वातावरण मे मृगो को भी समाविष्ट कर दिया गया है। दैनिक-जीवन के चित्रो में उसने गरीबो का बडा ही मार्मिक चित्रण किया है (फलक १४-ग)। मृत्यु विषयक एक चित्र मे मानवाकार चालीस के लगभग आकृतियाँ हैं। वह धर्माधिकारियो से बहुत घृणा करता था और उसने शराब पिये हुए पुरोहितो का एक चित्र भी अंकित किया था जिसे एक कैथोलिक धर्मानुयायी ने खरीद कर नष्ट कर दिया। १८४८ की क्रांति में भाग लेने के कारण उसे बहुत हानि भी उठानी पडी। १८७१ मे उसने नेपोलियन के स्मारक का एक स्तम्भ तोड डाला जिससे वह कारागार मे डाल दिया गया। अन्त मे वह स्विटजरलैण्ड भाग गया और वही उसकी मृत्यु भी हुई।

कुर्बे बौद्धिकता का विरोधी था यद्यपि बोडलेयर तथा अन्य लेखक आदि उसके मित्र थे। वह आदर्शवादी कला का विरोधी था और उसने शास्त्रीय एव स्वच्छन्दतावादी दोनो कला-शैलियो के प्रति विद्रोह किया। उसके अनुसार एक मे साहित्यिक तथा दूसरी मे विदेशी विषयो का दोष था। वह केवल यथार्थवाद को ही सच्चा जनवादी आन्दोलन समझता था। उसकी दृष्टि में श्रमिको एव कृषकों का चित्रण ही कलाकार के हेतु सर्वश्रेष्ठ विषय था। दृश्य मे से काट-छाँट करना भी वह अनुचित समझता था किन्तु उसकी कला-कृतियो मे इस सिद्धान्त का पूर्णतः

पालन नही हुआ है। पेरिस के सेलून मे उसकी कृतियाँ निरन्तर प्रदर्शित होती रहती थी और १८४६ ई० मे उसने स्वर्ण पदक भी प्राप्त किया था किन्तु उसकी कला की कटु आलोचना होती रहती थी। १८५५ तथा १८६७ में फ्रास मे अन्तर्राष्ट्रीय चित्र प्रदर्शनियाँ हुई और कुर्बे ने इनके मुकाबले मे अपनी विशाल प्रदर्शनियाँ स्वतन्त्र रूप मे आयोजित की। यद्यपि इनका भी विरोध हुआ किन्तु यही से कलाकार द्वारा अपने चित्रो की व्यक्तिगत प्रदर्शनी आयोजित करने की प्रथा आरम्भ हुई। १८७३ ई० मे वह फ्रास से भाग गया अतः उस समय आधुनिक कला के प्रथम महान् आन्दोलन-प्रभाववाद-की प्रगति से वह प्राय अपरिचित ही रहा।

कुर्बे रूढियो का नितान्त विरोधी था। उसकी चेष्टाएँ विद्रोहियो के समान थी। उसने उन नई परम्पराओ को आगे बढाया जिन्हे अन्य कलाकारो ने हतोत्साहित होकर छोड दिया था। सहजता, शीघ्रता तथा सवेदनशीलता मे वह रेम्ब्राँ के समान था। अपने चित्रो मे समाज का खाका खीचने का कारण उसे शैतान कहा गया। उसके सभी चित्र अच्छे नही हैं। उसके अच्छे चित्रो मे समृद्ध रग-योजना, छाया-प्रकाश का सुन्दर निर्वाह एवं नाटकीयता आदि गुण मिलते हैं। उसकी अनावृताओ मे कही-कही बहुत अधिक शृङ्गारिकता आ गई है। जीवन के अन्तिम दिनो मे उसकी चित्रशाला मे कुछ अकुशल कलाकार भी आ गये थे। उसने जो स्विस-दृश्य-चित्र बनाये हैं वे अच्छे नही हैं। फ्रास की अपेक्षा हालैण्ड, बेल्जियम तथा जर्मनी मे उसकी कला का अधिक स्वागत हुआ। वह ऐसा प्रथम कलाकार था जिसने काल्पनिक गाथाओ के स्थान पर केवल दृश्यमान् यथार्थ का चित्रण ही ठीक समझा। अपनी कला के द्वारा उसने इसे एक नवीन महत्व प्रदान किया।

कुर्बे के अतिरिक्त कोरों, दामिए, मिलै, थियोडोर रूसो तथा चार्ल्स डाबिनी की विभिन्न कलाकृतियो में यथार्थवाद का विकास हुआ है। प्रभाववादी कला भी अनेक अशो मे इससे प्रभावित हुई। प्रभाववादी कलाकारो ने अपने चित्रो मे समसामयिक विषयो का ही अकन किया था जिनकी पृष्ठ-भूमि यथार्थवाद निर्मित कर चुका था। कोरों आदि बारबिजन कलाकारो द्वारा अकित ग्रामीण दृश्यो से ही प्रभाववादी कलाकार पिसारो एव वान गॉग प्रेरित हुए थे।

प्रभाववाद को लोकप्रिय बनाने में मिलै ने बहुत योग दिया। वह प्रमुखत. किसानो का चित्रकार था। उसके चित्रो मे दैनिक जीवन के श्रम और खेत की मिट्टी का अभिनन्दन किया गया है। आधुनिक कला के विषयो के निर्धारण में इनका भी आधार रहा है। यही नही, आधुनिक शैलियो के निर्माण मे भी सरलता का आदर्श रहा है। दृश्य-चित्रण मे स्थानीय प्रकृति का समावेश उसी के कारण आरम्भ हुआ है। चार्ल्स डाबिनी की कृतियाँ इसका प्रमाण हैं। इग्लैण्ड का दृश्य-चित्रण और फ्रास तथा इटली का सामाजिक, व्यक्ति एव स्थिर-जीवन का अकन यथार्थवाद की परम्परा मे होकर ही प्रभाववाद मे आया है। सामाजिक यथार्थवाद को रूस मे पर्याप्त प्रोत्साहन मिला है। इटालियन भविष्यवाद भी इसी से प्रेरित है। प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् बीसवी शती के जर्मनी में यथार्थवाद के प्रति पुन उत्साह दिखाई दिया है। इटली मे इसका एक और रूप 'नव-यथार्थवाद' के रूप मे उभरा है। लोकप्रिय यथार्थवाद (Popular Realism) के नाम से १९५५—६० के आस-पास एक नवीन कला-आन्दोलन का सूत्रपात हुआ है जिसे 'पोप कला' (Pop Art) भी कहते हैं। आलोचको ने इसे कबाडी की कला, अकला तथा कला-विरोधी कला भी कहा है। इसमे विज्ञापन, पैकिंग एव कथा-चित्रो आदि मे प्रयुक्त वस्तुओ, प्रतीकों तथा आकृतियो आदि को 'ललित कला' के ढाँचे मे प्रस्तुत किया जाता है तथा उसकी श्रेष्ठता का माप-दण्ड वह 'झटका' है जिसे दर्शक ऐसी कलाकृति देखते समय अनुभव करता है।

जैसा कि अभी कहा जा चुका है, यथार्थवादी शैली का फ्रास मे अधिक स्वागत नही हुआ। कलाकार चित्रण-पद्धति, रगो की चमक तथा शैली के विषय मे कुछ नवीन प्रयोग कर रहे थे। कुछ कलाकारो ने एक दल बना कर जो प्रयत्न किये उनके परिणाम-स्वरूप आधुनिक कला मे 'प्रभाववाद' का प्रवर्तन हुआ। आधुनिक कला

के समस्त आन्दोलन किसी-न-किसी रूप मे प्रभाववाद से प्रभावित हुए है अतः यही से यूरोप मे आधुनिक कला का सूत्रपात समझना चाहिये।

प्राक्-राफेलवाद (Pre-Raphaelitism)

१८४० ई० के पश्चात् इगलिश कलाकारो के एक दल ने दृश्य कलाओ में सुधार करने के लक्ष्य से जिस आन्दोलन का सूत्रपात किया वह प्राक्-राफेलवाद के नाम से विख्यात हुआ। इस कला-प्रवृत्ति के प्रमुख प्रवर्त्तक विलियम होलमन हण्ट (William Holman Hunt, १८२७—१९१०), जौन एवरेट मिलैस (John Everett Millais, १८२६—९६), तथा दान्ते रोजेटी (Dante Gabriel Rossetti, १८२८—८२) थे। हण्ट एक स्टोर-मैनेजर का पुत्र था, मिलैस मध्यवर्गीय परिवार मे उत्पन्न हुआ था और रोजेटी इटालियन कवि था। इस दल के अन्य सदस्य फ्रेडरिक जार्ज स्टीफेन्स, विलियम माइकेल रोजेटी, टामस वूलनर तथा जेम्स कालिन्सन थे। हण्ट ने इस आन्दोलन के लक्ष्य इस प्रकार बताये थे :—

१—वास्तव में मौलिक विचारो को व्यक्त करना; २—छाया-प्रकाश तथा सयोजन के समस्त शास्त्रीय नियमो को त्यागकर सीधे प्रकृति का अध्ययन करना; ३—घटनाओ को यथातथ्य प्रस्तुत करने की चेष्टा करना और अलकरण आदि से बचना।

व्यावहारिक रूप मे इन लक्ष्यो के परिणाम-स्वरूप प्राय. कीट्स, शेक्सपियर एव टेनीसन आदि के साहित्य तथा इतिहास के गम्भीर एव अर्थपूर्ण अंशो का चित्रण किया जाने लगा। प्राय खुले वातावरण का अधिकाधिक अध्ययन हुआ। स्टूडियो की अपेक्षा अधिक विविध बलो का प्रयोग किया गया तथा अग्रभूमि का सावधानी एव सूक्ष्मता से अङ्कन होने लगा। विशेषतः पुष्पो पल्लवो एव पर्वतीय चट्टानो का पर्याप्त विवरणात्मक चित्रण हुआ। चरित्रगत विशेषताओ एव अभिव्यंजना से पूर्ण मुखाकृतियो का महत्व बढा और केवल सुन्दरता का कोई स्थान न रहा। प्राय कथा का स्पष्ट आभास देने वाली मुद्राओ का ही प्रयोग हुआ चाहे वे देखने मे कितनी ही असुन्दर क्यो न लगें। यह सब तत्कालीन फैशनेबिल चित्रकारी के विरुद्ध था जिसमे भावुकतापूर्ण विषयो को सीमित रंगो, आकृतियो एव मुद्राओ की एक बँधी हुई परिपाटी के द्वारा व्यक्त किया जाता था।

सन् १८४८ ई० मे जब प्राक् राफेलवादी बन्धु संघ (Pre-Raphaelite Brotherhood) की स्थापना की गयी थी तो हण्ट तथा रोजेटी बीस वर्ष एव मिलैस १९ वर्ष की आयु के थे। इनमे युवावस्था का उत्साह, बड़ों के प्रति असम्मान तथा आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति थी। बन्धु-सघ नाम से लोग इसे प्राय समस्त यूरोप मे फैला गुप्त दल मानने और इस पर शका करने लगे थे। १८४९ ई० की अकादमी की प्रदर्शनी मे इन कलाकारो ने अपने चित्रो पर केवल पी० आर० बी० लिखा था। लोग इसका अर्थ नही समझ सके अतः इनके चित्रो की प्रशंसा की गयी। हण्ट के रेंजी (Rienzi) नामक चित्र के हेतु रोजेटी ने रोमन न्यायाधिकरण तथा मिलैस ने सैनिक के रूप में माडेल का कार्य किया था। यह चित्र सशक्त मुद्राओ तथा संयोजन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। मिलैस ने कीट्स की "इसाबैला" कविता के आधार पर "लोरेंजो तथा इसाबैला" नामक चित्र अंकित किया था जो बहुत अच्छा बन पड़ा है। टेक्नीकल दृष्टि से ये चित्र बहुत स्याही माध्यम मे अकित हुए हैं। मिलैस ने पृष्ठभूमि पर अकित एक मेज पर झुके हुए शिरो को लयात्मक सयोजन मे तथा अग्रभूमि मे कुत्ते को ठोकर मारते हुए एक व्यक्ति को बडे साहस के साथ ऐसे ढग से प्रस्तुत किया है जिसका निर्वाह सरल नही है। यद्यपि इन चित्रो ने शास्त्रीय परम्पराओ को चुनौती दी थी तथापि कुछ नवीनता और कुछ मनोरजन के तत्व के कारण आलोचकों ने इनका स्वागत ही किया। किन्तु अगले वर्ष यह सब परिवर्तित हो गया। इनके लघु हस्ताक्षरो का एक समाचार पत्र मे स्पष्टीकरण कर दिये जाने से इंगलैण्ड-निवासी इनके विरुद्ध हो गये। यद्यपि इन कलाकारो ने यह समझाने का बहुत प्रयत्न किया कि राफेल के प्रति उनके मन मे कोई असम्मान की भावना नही है तथापि उनका

यह निश्चित मत है कि राफेल से ही एकेडेमिक रूढ़ियों का आरम्भ हुआ है। ब्रिटेन में उस समय राफेल के चित्रों की प्रदर्शनी चल रही थी और उनके लिए यह सौभाग्य की बात थी कि इटली के बाहर पुनरुत्थान काल के सर्वश्रेष्ठ कार्य को देखने का अवसर प्राप्त हो रहा था; अत. ब्रिटेनवासियो को पी० आर० बी० का यह विचार अपमानजनक प्रतीत हुआ। मिलैस ने एक चित्र बनाया था—'ईसा अपने माता-पिता के घर मे' जो बढई की दूकान के नाम से भी विख्यात है। इस चित्र मे गम्भीरता लाने के उद्देश्य से मुखाकृतियाँ यथार्थवादी, निर्धनो के समान रूखे शरीर एव हाथ तथा दूकान का अस्त-व्यस्त वातावरण चित्रित किया गया है। बालक ईसा के हाथ मे कील लगने से रक्त बह निकला है जिसे कुमारी बडी वेदनापूर्ण मुद्रा मे देख रही हैं, एक अन्य बालक (सन्त बैप्टिस्ट) पानी के कटोरे को ध्यान से देख रहा है, तथा पृष्ठभूमि की भेड़ें चारा खाकर तृप्त दिखाई दे रही हैं। इस चित्र से ईसाइयो की धार्मिक भावना को बड़ी ठेस लगी और इन कलाकारों को ईश्वर का अपमानकर्त्ता कहा गया। डिकेन्स ने कुमारी की मुखाकृति को 'दुर्गुणो को प्रस्तुत करने वाले फ्रासीसी कैबरे में भयानकतम चेहरे से भी अधिक कुरूप' कहा। प्राय सभी ओर से आलोचना होने के कारण यह आन्दोलन समाप्त-सा दिखाई देने लगा। रोजेटी ने कुछ समय के लिये स्वप्न-लोक के सदृश मध्यकालीन गाथाओ का जलरगो मे चित्रण आरम्भ कर दिया। १८५१ में एलिजाबेथ सिड्ल (Elizabath Siddal) नामक एक अत्यन्त रूपवती युवती से उसकी भेंट हुई। प्राक् राफेलवादी दल इस युवती से बहुत दिन तक प्रेरित होता रहा। १८६० मे रोजेटी तथा एलिजाबेथ का विवाह हो गया किन्तु शारीरिक दृष्टि से दुर्बल यह सुन्दरी दो वर्ष उपरान्त ही चल बसी। रोजेटी के हेतु यह बडा कष्टप्रद समय रहा। हण्ट तथा मिलैस विरोधो को सहते हुए अपने मार्ग पर बढ़ते रहे थे। अकादमी में उनके चित्र प्रदर्शित होते रहे। चार्ल्स कोलिन्स नामक कलाकार भी इनमे आ मिला। इनकी कटु आलोचनाएँ पुन आरम्भ हो गयी किन्तु जोन रस्किन ने इनका समर्थन किया और लोगो को समझाया कि ये नवयुवक गत तीन शताब्दियो की कला से उत्तम नवीन परम्पराएँ अपने देश में स्थापित करना चाहते हैं। इस विचार से जनता की प्रतिक्रिया भी प्रभावित हुई और इनका शनै. शनै सम्मान होने लगा। स्थान-स्थान पर इनके चित्र प्रदर्शित और प्रशसित हुए। १८५४ मे हन्ट ने फिलिस्तीन की यात्रा की और वह दो वर्ष वहाँ रहा। उसने यह अनुभव किया कि बाइबिल के दृश्यो मे फिलिस्तीन का वातावरण (प्रकृति, वेश-भूषा, स्थापत्य एव मानवाकृति आदि) होना आवश्यक है। इस समय से लेकर जीवन पर्यन्त उसने धार्मिक चित्रो मे इस नियम का पालन किया है। ससार की ज्योति, बलि का बकरा, मदिर मे ईसा का मिलना, मृत्यु की छाया तथा अबोधो की विजय उसके प्रसिद्ध चित्र हैं। इन सबमे जहाँ चमकदार रग हैं वहाँ आलेखन-योजना भी अशास्त्रीय और मौलिक है। उसने सभी आकृतियो तथा दृश्यो का वास्तविक निरीक्षण के द्वारा ही चित्रण किया है। मदिर मे ईसा के मिलने का चित्र १८६० ई० मे पूर्ण नहीं हुआ था। इसे एक कला-विक्रेता ने ५५०० गिन्नियो मे खरीदकर अपनी ही चित्र वीथी में प्रदर्शित किया। लोगो की अपार भीड इसे देखने को आती रही और इसकी प्रशसा करती रही। यही से हण्ट की इग्लैण्ड के महान् कलाकारो की श्रेणी मे गणना आरम्भ हुई।

इस अवधि मे, १८५६ में, मिलैस ने दो उल्लेखनीय चित्रो की रचना की थी। ये थे 'अन्धी लडकी' तथा पतझड। इनमे कोमल भावनाओ का मन स्थिति तथा प्राकृतिक दृश्य से समन्वय करके आलेखन तथा रगो की साहसिकता के साथ अकन हुआ है। इनके समान श्रेष्ठ चित्र मिलैस फिर नही बना सका। १८५५ मे रस्किन की पत्नी ने मिलैस से विवाह कर लिया था और ये चित्र इसी वैवाहिक जीवन के प्रथम वर्ष की रचनाएँ हैं।

प्राक्-राफेलवादी चित्रकार अधिकाधिक गम्भीर होते जा रहे थे। वे प्राय श्रम, पत्थर तोड़ने वाले, घायल अश्वारोही आदि सामयिक विषयो का अकन करने लगे, किन्तु मिलैस की कला में इस समय अलगाव

और पतन के चिन्ह आरम्भ हो गये। यद्यपि सुन्दर तथा आकर्षक व्यक्तित्व, सौजन्यपूर्ण व्यवहार और लोकप्रियता के कारण वह अकादमी का प्रधान चुन लिया गया तथापि उसका कलात्मक जीवन प्रायः समाप्त हो गया।

इस मौलिक सृजन-धारा के अतिरिक्त ये कलाकार समकालीन कविताओं एवं उपन्यासों के भी चित्र अंकित करने लगे थे। यह युग अंग्रेजी उपन्यासों का युग था और ये कलाकार इनके विविध प्रसंगों का अपने माध्यम में चित्रण करते रहते थे।

रोजेटी के शिष्यों में विलियम मोरिस तथा एड्वर्ड बर्न जोन्स विशेष प्रसिद्ध हुए। इन्होंने मध्यकालीन मुद्राओं, शास्त्रीय विषयों तथा सुरुचिपूर्ण आकृतियों का प्रयोग किया है। इस प्रकार ये इस आन्दोलन से पूर्णतः भिन्न लक्षित होते हैं। स्वयं रोजेटी के विचार से केवल हण्ट ही इस आन्दोलन का सच्चा प्रतिनिधि था। फिर भी कला के आलोचक इन सबको इसी वर्ग में मानते रहे। धीरे-धीरे कलाकारों में पर्याप्त विविधता दिखायी देने लगी और वे प्रायः आन्दोलन की मूल भावना के विरुद्ध जाने लगे। यह आन्दोलन एक फैशन मात्र रह गया और कलाकार प्रायः टैपेस्ट्री एवं रंगीन काँच आदि के अलंकरण तक सीमित हो गये।

प्राक्-राफेलवादी कलाकार प्रस्तुत दृश्य की विवरणात्मकता एवं यथार्थता पर बल देते थे। दृश्यगत विस्तार आदि का उन्होंने बड़ा अच्छा प्रभाव दिखाया है। उनके धैर्यपूर्वक किये गये सूक्ष्म निरीक्षण ने दृश्यात्मक प्रभावों को जिस यथातथ्यवादी दृष्टि से अंकित किया उसे भविष्य ने ग्रहण नहीं किया। आगे आने वाली कला केवल तात्कालिक प्रभावों को अंकित करने के प्रयत्न में लगी। प्राक्-राफेलवादी कलाकार दृश्यों का तो स्थान पर जाकर चित्रण करते थे किन्तु मानवाकृतियों को उचित वस्त्र पहनाकर स्टुडियो में ही अंकित करते थे। इन दोनों में पूर्ण समन्वय नहीं आ पाता था। इसके पश्चात् जन्म लेने वाली प्रभाववादी कला ने इस कमी को दूर करने का प्रयत्न किया। प्राक्-राफेलवादी कलाकारों की देन ब्रिटिश कला में उपकरणों की श्रेष्ठता, काष्ठ चित्रों की रेखाओं की उत्तमता तथा आलंकारि[illegible] निहित है।

चित्र-सूची

१—क.

सांभर मृगी का शिर एवं ग्रीवा
अल्टामिरा, स्पेन
(विवरण पृष्ठ ८)

१—ख

महिष (बाइसन)
लास्को, फ्रांस
(विवरण पृष्ठ १२)

२—क वजीर मरेरुका की समाधि का एक भित्ति-चित्र
सक्कारा, मिस्र (विवरण पृष्ठ ३८)

२—ख. सेनोफर और उसकी बहिन,
अठारहवाँ राजवंश, थुतमोसिस तृतीय का युग, मिस्र (विवरण पृष्ठ ४२)

३—क. आइसिस के मन्दिर का एक उत्कीर्ण चित्र, मिस्र, यूनानी-रोमन युग
(विवरण पृष्ठ ४५)

३—ख डूबे हुए रिलीफ मे अंकित आकृतियाँ
देवी हाथोर का मन्दिर-मिस्र, यूनानी-रोमन युग (विवरण पृष्ठ ४५)

४—क. एम्फोरा पात्र पर प्रथम ज्यामितीय चित्रकारी,
एथेन्स (विवरण पृष्ठ ५६)

४—ख काली आकृति : एथेनियन पात्र
(विवरण पृष्ठ ५८)

४—ग. स्तन्य पान कराते हुए एफ्रोडाइटी,
पात्र-चित्रण, इट्रस्कन शैली, इटली में निर्मित, चतुर्थ शती ई पू
(विवरण पृष्ठ ७१)

४—घ वसन्त, रोमन भित्ति-चित्र
(विवरण पृष्ठ ७३)

५—क आरम्भिक नारी आकृति, यूनान (विवरण पृष्ठ ५८)

५—ख वीनस, मूर्तिकार-मिलो (विवरण पृष्ठ ६५)

५—ग एफ्रोडाइटी, यूनान (विवरण पृष्ठ ६३)

५—घ आरम्भिक पुरुष आकृति, यूनान (विवरण पृष्ठ ५८)

५—ङ विजय श्री, सेमोथ्रेस, यूनान (विवरण पृष्ठ ६५-६६)

५—च मल्ल, पोलीक्लीटस द्वारा निर्मित (विवरण पृष्ठ ६१)

फलक—६
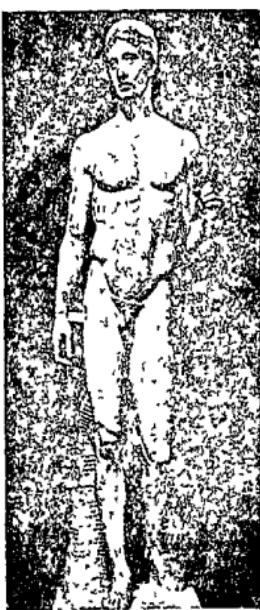
६—क सिकन्दर तथा डेरियस का युद्ध
(केवल सिकन्दर की आकृति)
रोमन मणिकुट्टिम चित्र
(विवरण पृष्ठ ६७)

६—ग मैडोन्ना और शिशु, रंगीन काँच
चार्ट्रेस कैथेड्रल, गोथिक, १२ वीं शती
(विवरण पृष्ठ ६८)

६—ख साम्राज्ञी थियोडोरा, मणिकुट्टिम,
सान वाइटेल, रैवेन्ना, छठी शती
(विवरण पृष्ठ ८१)

७—क जिओत्तो : गड़रिये और जोशिम
ऐरीना चैपल, पादुआ, १३०५ ई
(विवरण पृष्ठ १०१)

७—ख पार्मीजिआनीनो
मैडोन्ना और शिशु, उफीजी, फ्लोरेंस,
रीतिवाद, १५३४-३६ ई
(विवरण पृष्ठ १४४)

फलक—८

८—क साण्ड्रो बोत्तिचेलो
वीनस का जन्म
(विवरण पृष्ठ ११३)

८—ख राफेल
सिस्टाइन मैडोन्ना
(विवरण पृष्ठ १२१)

फलक—६

६ क— माइकेल एंजिलो
आदम की सृष्टि
(विवरण पृष्ठ ११६)

६ ख— तिशियां
उर्बीनो की वीनस
(विवरण पृष्ठ १२८)

१० क— लिओनार्दो दा विंची—शैलखडो की कुमारी
(विवरण पृष्ठ ११७)

१० ख— लिओनार्डो दा विंची—मोना लिसा
(विवरण पृष्ठ ११८)

११ क— ह्यूगो वानडर ग्वेज :
पोर्टिनरी आल्टरपीस
(विवरण पृष्ठ १३८)

११— ख ज्योर्जिओन—द टेम्पेस्ट
(विवरण पृष्ठ १२६)

१२ क— ड्यूरर —आत्मचित्र
(विवरण पृष्ठ १३१)

१२ ख— पीटर पाल रूबेन्स : कलाकार की दूसरी पत्नी
(विवरण पृष्ठ १५०)
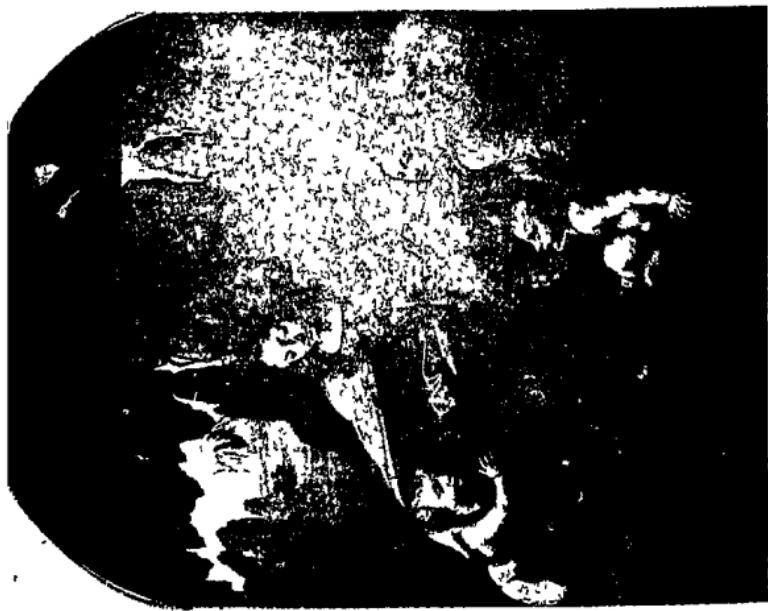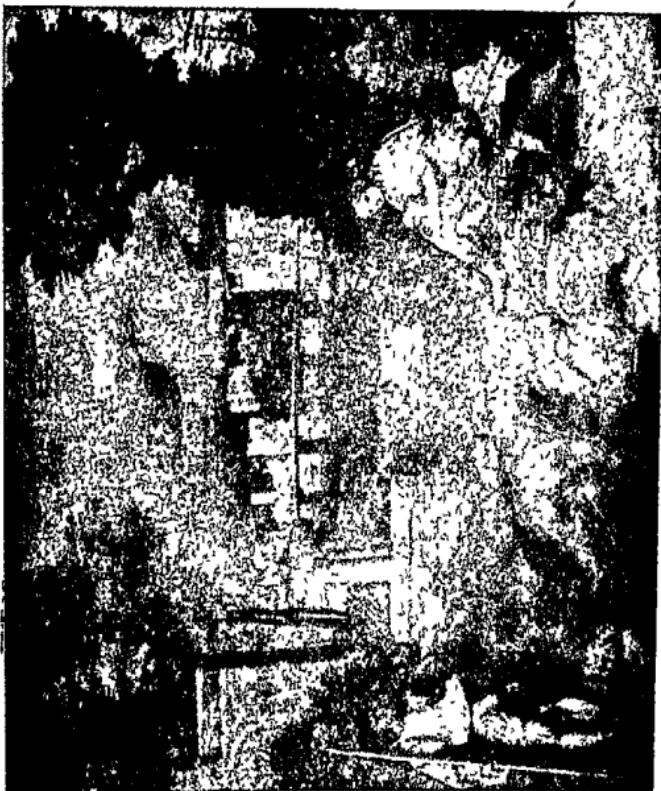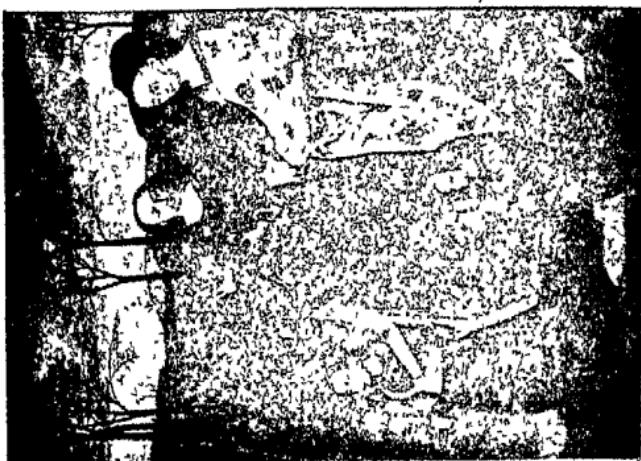
१३ क— बार्तोलोम म्यूरिल्लो . द इम्मैकुलेट कन्सेप्शन, १६६० ई, बरोक शैली
(विवरण पृष्ठ १५३)

रेम्ब्राँ
१३ ख—वाश ड्राइंग

विवरण पृष्ठ १५६

१३ ग—जान सिक्स
का व्यक्ति चित्र

१४ क— गोया . पिशाचिनियों की सभा
(विवरण पृष्ठ १७३)

१४ ख— आंग्र : प्रेरणा
(विवरण पृष्ठ १७७)

१४ ग—कुर्वे . पत्थर तोड़ने वाले
(विवरण पृष्ठ १८७)